इकाई 1 मानव शरीर एवं शरीर रचना , कोशिका एवं उतक संरचना, प्रकार एवं कार्य

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मानव शरीर के विभाग
1.4 कोशिका की संरचना, प्रकार एवं कार्य
1.5 ऊतक –संरचना, प्रकार एवं कार्य
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उतर
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना –

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय है मानव शरीर की संरचना एवं कार्य विद्यार्थियों जैसा कि हम सभी इस तथ्य से परिचित है, कि मानव शरीर का निर्माण स्वयं परम् पिता परमेश्वर द्वारा किया गया है, पंच तत्व के द्वारा हमारी इस स्थूल देह का निर्माण हुआ है अतः मानव शरीर की संरचना एवं इसकी कार्यप्रणाली को समझना एक जटिल एवं कठिन कार्य है। किन्तु असम्भव नहीं सारी चीजें सारी अंग अवयवों क्रमशः एक दूसरे से सम्बन्धित है अतः यदि आप पड़ते समय अपनी एकाग्रता को बनाये रखगें तो समझना आसान हो जायेगा ।

प्रस्तुत इकाई में हम शरीर के मुख्य विभाग हमारे शरीर की मूलभूत इकाई तथा कोशिकाओं के समूह उतक की संरचना एवं कार्यो का अध्ययन करेगें।

1.2 उद्देश्य –

प्रिय पाठकों , प्रस्तुत इकाई का चयन करने के उपरान्त आप–

- मानव शरीर की संरचना को स्पष्ट कर सकेगे।
- मानव शरीर के प्रमुख भागों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
- कोशिकाओं की संरचना एवं कार्यो का वर्णन कर सकेंगे।
- उतक की संरचना एवं कार्यो का विवेचन कर सकेंगे।

1.3 मानव–शरीर के मुख्य विभाग

जिस प्रकार किसी मशीन (Machine) का आधार अनेक कल–पुर्जे होते हैं, उसी प्रकार मनुष्य का शरीर भी अनेक अवयवों का सम्मिलित स्वरूप है। मशीन और मनुष्य में मुख्य अन्तर यही है कि मशीन निष्प्राण होती है, और उसका संचालन किसी मनुष्य के ऊपर ही निर्भर करता है, जबकि मनुष्य सप्राण होता है और उसका अंग–संचालन स्वयं उसी की इच्छा पर निर्भर रहता है। मशीन का निर्माता मनुष्य है, वह उसे अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप चाहे जो स्वरूप दे देता है परन्तु मनुष्य–शरीर का निर्माता जगदाधार परमपिता परमेश्वर है, जो केवल मनुष्य को ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व–ब्रह्मण्ड के सभी सचराचर जीवों एवं पदार्थों की उत्पत्ति का हेतु निर्माता नियन्ता और उनका विनाशक भी है।

मनुश्य–शरीर के निम्नलिखित चार मुख्य विभाग हैं–

1. सिर (Head)
2. ग्रीवा (Neck)
3. धड़ (Trunk or Body)
4. शाखाऐं अर्थात् हाथ–पाँव (Limbs)

शाखाओं के दो विभाग हैं–

1. ऊर्ध्व शाखाऐं अर्थात् दोनों हाथ (Upper Linbs)
2. निम्न शाखाऐं अर्थात् दोनों पाँव (Lower Linbs)

1. **सिर (Head)-** इसे (1) खोपड़ी तथा (2) चेहरा–इन दो भागों में बाँटा जा सकता है। खोपड़ी–सिर के ऊपरी तथा पिछले भाग की हड्डियों का वह कोष्ठ (आवरण) है, जिसमें 'मस्तिष्क' (Brain) सुरक्षित रहता है। इस भाग को कपाल (Cranium) भी कहते हैं। चेहरे (Face) के अन्तर्गत कान, नाक, आँख, ललाट, मुख तथा दोनों जबड़ों की गणना की जाती है।
2. **ग्रीवा (Neck)-** यह सिंर को धड़ से जोड़ती है अतः यह सिर और धड़ के मध्य का भाग है। इसके पीछे की ओर रीढ़ की हड्डी आगे की ओर टैंटुआ तथा मध्य में ग्रास–नली रहती है। इस प्रकार शरीर के इस छोटे से विभाग में श्वास तथा भोजन–प्रणाली के कुछ अंग स्थित रहते हैं।
3. **धड़ (Trunk)-** गर्दन से नीचे के भाग को 'धड़' कहा जाता है। इसके दो उप–विभाग हैं– 1. ऊपरी भाग को 'वक्षस्थल' तथा निचले भाग को 'पेट' कहा जाता है। धड़ के इन दोनों भागों को विभाजित करने वाली एक पेशी है, जिसे 'डायफ्राम' कहा जाता है। यह पेशी धड़ के मध्य में एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली हुई है। वक्षः स्थल के अन्तर्गत पसलियाँ, फुस्फुस् अर्थात् फेफड़े (Lungs) तथा हृदय (Heart) मुख्य हैं। उदर में आमाशय (Stomach) यकृत्(Liver), प्लीहा (Spleen), वृक्क अर्थात् गुर्दे (Kidney), अग्नाशय, छोटी और बड़ी आँतें तथा श्रोणि मेखला की स्थिति रहती है।

4. **शाखाऐं (Limbs)-** ऊपरी शाखाऐं अर्थात् हाथ धड़ के ऊपरी भाग में कन्धों की हड्डियों से जुड़े रहते हैं। इसके भी दो उप–विभाग हैं–दाँया (Right) तथा बाँया (Left)। शाखाओं अर्थात् टाँगों के भी दाँयें तथा बाँयें दो विभाग हैं। ये दोनों धड़ के निम्न भाग में श्रोणि मेखला से जुड़े रहते हैं।

शरीर के आठ मुख्य संस्थान

शरीर के उन भागों का जो किसी कार्य विशेष को करते हैं, 'अंग' अथवा अवयव (Organ) कहा जाता है। प्रत्येक अंग की अलग–अलग क्रियाएँ (Function) होती हैं। जैसे– पाँव की चलना, हाथ की पकड़ना, आँख की देखना, अमाशय की भोजन को पचाना आदि।

जब अनेक अंग मिलकर किसी एक विशेष काम को करते हैं, तब उन क्रियाओं के कार्यसमूह को 'संस्थान' (System) कहा जाता है।

मनुष्य शरीर में निम्नलिखित 8 संस्थान (System) मुख्य माने गये हैं–

1. **अस्थि–संस्थान अथवा कंकाल–तन्त्र (The Bony or skeleton System)-** इस संस्थान में शरीर की सभी छोटी–बड़ी हड्डियाँ सम्मिलित हैं। यह शरीर के विभिन्न अंगों को आकार, आधार एवं दृढ़ता प्रदान करता है।
2. **माँस–संस्थान अथवा पेशी–तन्त्र (The Muscular System) -** इसके अन्तर्गत पेशियाँ आती हैं। यह संस्थान शरीर के विभिन्न अंगों को गति प्रदान करता है अर्थात् उन्हें गतिशील बनाता है।
3. **रक्तवाहक संस्थान अथवा परिवहन–तन्त्र (The Circulatory System)-** इसमें हृदय तथा रक्त वाहिनियाँ सम्मिलित हैं। यह संस्थान शरीर के विभिन्न भागों में रक्त संचरण (Blood Circulation) का कार्य करता है।
4. **श्वासोच्छास संस्थान अथवा श्वसन–तन्त्र (The Respiratory System)-** इसमें नाक, टेंटुआ तथा फेफड़े सम्मिलित हैं। यह संस्थान श्वासोच्छास का कार्य करता है।
5. **पोषण या पाचक संस्थान अथवा आहार–तन्त्र (The Digestive System)-** इसमें मुख, ग्रास–नली, आमाशय तथा छोटी–बड़ी आँतें सम्मिलित हैं। यह संस्थान भोजन को पचाकर शरीर के पोषण का कार्य करता है।
6. **उत्पादक संस्थान अथवा प्रजनन–तन्त्र (The Reproductive System)-** इसमें शिश्न, अण्डकोष, योनि आदि प्रजनन अंग समिमलित हैं। यह संस्थान सन्तानोत्पत्ति के कार्य को करता है।
7. **मूत्रवाहक एवं मल–त्याग संस्थान अथवा उत्सर्जन–तन्त्र (The Excretory or The Urinary System)-** इसमें शिश्न, वृक्क, गुदा आदि अंग सम्मिलित हैं। यह संस्थान मल–मूत्र आदि त्याज्य–पदार्थों को बाहर निकाल कर शरीर को शुद्ध करने का कार्य करता है।
8. **वातनाड़ी संस्थान अथवा तन्त्रिका–तन्त्र (The Nervous System)-** इसके अन्तर्गत मस्तिष्क, रीढ़, रज्जु तथा तन्त्रिकाऐं सम्मिलित हैं। यह संस्थान बाह्य–वस्तुओं का ज्ञान कराता है तथा शरीर के कार्यों पर नियन्त्रण रखता है।

1.4 कोशिका की संरचना, प्रकार व कार्य

कोशिका : जीवन की मूलभूत इकाई (Cell : Basic Unit of Life)

मानव शरीर असंख्य सूक्ष्म इकाईयों से मिलकर से बना है, जिन्हें कोशिकाऐं (Cell) कहा जाता है। कोशिका शरीर का सूक्ष्मतम रूप है। यह शरीर की एक मूलभूत रचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई है, जो स्वतन्त्र रूप से जीवन की क्रियाओं को चलाने की क्षमता रखती है।

शरीर के विभिन्न अंगों की कोशिकाओं में भिन्नता होती है परन्तु समस्त कोशिकाओं की मूलभूत संरचना एकसमान ही होती है। ये इतनी सूक्ष्म होती हैं, कि इन्हें बिना माइक्रोस्कोप के देख सकना सम्भव नहीं है। इन्हें स्टेन करने के पश्चात् स्लाइड पर स्थिर करके ही देखा जा सकता है। स्टेन करने से कोशिका के भिन्न–भिन्न भाग भिन्न–भिन्न रंग ग्रहण कर लेते हैं तथा सभी भाग स्पष्ट एवं एक–दूसरे से भिन्न दिखाई देने लगते हैं। कोशिका की रचना के अन्तर्गत कई–एक सम्मिलित अंग हैं, इन्हें अंगों (Bodies) के सामूहिक रूप को कोशिका (Cell) कहते हैं। कार्यों की विभिन्नता के कारण कोशिकाओं के आकार एवं आकृति में अन्तर होता है, परन्तु कुछ रचनात्मक विशिष्ट गुण उन सभी में समान रहते हैं।

1. कोशिका की संरचना (Structure of Cell)

प्रत्येक कोशिका के निम्न तीन मुख्य भाग होते हैं–

1. कोशिका कला या भित्ति (Cell membrane or cell wall)
2. कोशिकाद्रव्य (Cytoplasm)
3. केन्द्रक (Nucleus)

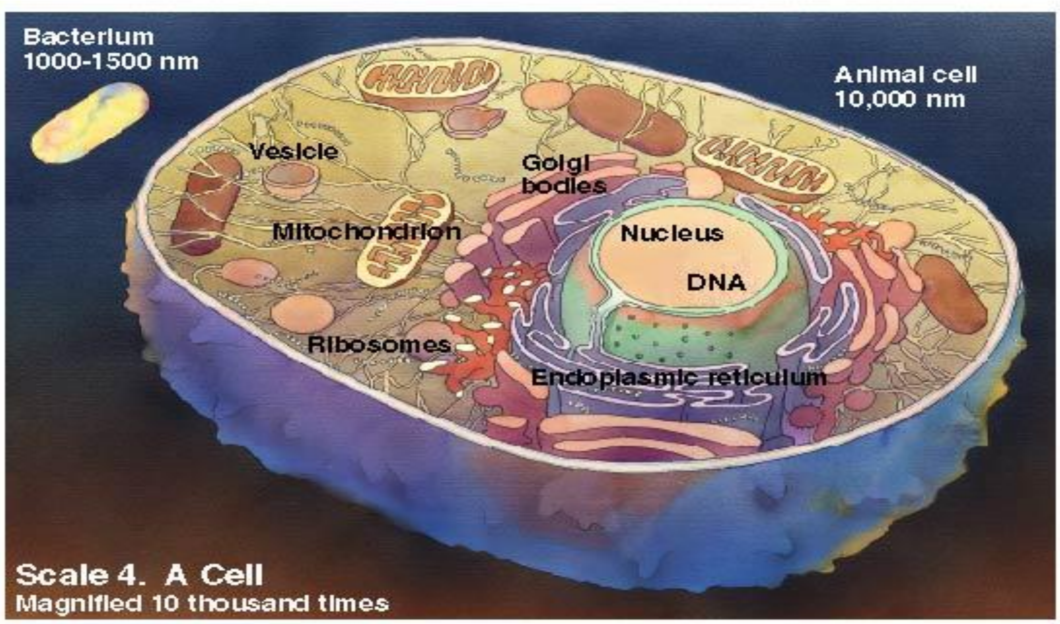

1. कोशिका कला (Cell Membrane)

यह एक पतली झिल्ली है जो कोशिका की सबसे बाहरी (Outermost) परत को बनाती है, इसे **प्लाज्मा मेम्ब्रेन** भी कहा जाता है। यह वसा (Lipid), प्रोटीन तथा लवणों की दो परतों वाली झिल्ली है। इसकी उत्पत्ति कोशिकाद्रव्य (Cytoplasm) से होती है। कोशिका कला से ही समस्त कोशिकाओं से अलग रहती है। परन्तु कोशिका कला इतनी सूक्ष्म होती है तथा समीपस्थ कोशिका की भित्ति से इतना अधिक सट जाती है, कि दोनों कोशिकाओं के मध्य केवल एक भित्ति ही दिखाई देती है। यह पारदर्शी तथा अर्द्धपारगम्य (Semi permeable) होती है।

कोशिका कला के कार्य–

1. कोशिका की कोमल संरचनाओं की रक्षा करती है।
2. बाह्य उत्तेजनाओं को ग्रहण करती है।
3. इससे होकर ही, कोश्किा रक्त से पोषक तत्वों एवं ऑक्सीजन को ग्रहण करती है और त्याज्य पदार्थ कार्बन डाइऑक्साइड को बाहर निकालती है।
4. इससे होकर कोशिका के शरीर से विकारों का निष्कासन होता रहता है।

वस्तुतः कोशिका के भीतर–बाहर आने–जाने वाले पदार्थों, जैसे–जल, ऑक्सीजन, कार्बन डाईऑक्साइड तथा ग्लूकोज आदि पर कोशिका कला का पूर्ण नियन्त्रण रहता है और इस प्रकार यह जीवद्रव्य (Protoplasm) की रासायनिक संरचना को बनाये रखने में सहायक होती है।

2. कोशिकाद्रव्य/साइटाप्लाज्म (Cytoplasm)

केन्द्रक (Nucleus) के अतिरिक्त, कोशिका के भीतर के समस्त भाग को कोशिकाद्रव्य (Cytoplasm) कहते हैं। कोशिका का जीवन इसी साइटोप्लाज्म पर ही आधृत है, एवं इसी पर कोशिका की समस्त मूलभूत जीवन–क्रियाएँ–वृद्धि, श्वसन, गतिशीलता, पाचन, उत्सर्जन, चपापचय, उत्तेजनशीलता तथा प्रजनन आदि निर्भर करती हैं। जीवितावस्था में साइटोप्लाज्म में अनेक रासायनिक क्रियाएँ अति तीव्र गति से होती रहती है, जिसके फलस्वरूप कोशिकाएँ जीवित रहती हैं। जीवितावस्था में साइटोप्लाज्म की रचना देखना असम्भव होता है। अतः इसके गठन का कुछ पता नहीं लगता है। यदि इसका विश्लेशण करने का प्रयत्न किया जाय तो यह नष्ट हो जाता है और इसमें कुछ रासायनिक परिवर्तन हो जाते हैं। इसके नष्ट हो जाने पर समस्त जैविक–क्रियाएँ रूक जाती हैं, जिसके फलस्वरूप प्राणी की मृत्यु हो जाती है।

साइटोप्लाज्म में अपनी दशा को परिवर्तित करने की क्षमता पाई जाती है। इस कारण भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में इसकी रचना में भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। अतः विभिन्न वैज्ञानिकों ने इसकी रचना अलग–अलग तरह की बतायी है। कुछ वैज्ञानिकों के मतानुसार यह एक रंगहीन अर्द्धपारदर्शक, चिपचिपा, गाढ़ा द्रव होता है। कभी यह समांशी (Homogenous) दिखाई देता है, तो कभी रचनाविहीन लगता है। कभी इसमें सूत्रों का जाल–सा दिखाई देता है, जिसके बीच–बीच मे तरल, रचनाविहीन पदार्थ भरा रहता है। कभी–कभी यह फेनदार भी दिखाई देता है और कभी इसमें तरल पदार्थ के बड़े–बड़े गोल कण तैरते दिखाई देते हैं। अधिकतर वैज्ञानिकों ने इसकी रचना जाल–युक्त बतायी है।

उनके अनुसार इसमें सूत्रों का जाल फैला रहता है, जिसके कोष्ठों (Vacuoles) के भीतर एक स्वच्छ समांशी पदार्थ भरा होता है। जाल की रचना करने वाला पदार्थ जालकद्रव्य (Spongiplasm), तथा कोष्ठों में पाया जाने वाला पदार्थ स्वच्छद्रव्य (Hyaloplasm) कहलाता है। इसके अत्यन्त छोटे–छोटे कण (tiny particles) बराबर ब्राउनियन गति (Brawnian movement) से गतिमान रहते हैं।

कोशिका के साइटोप्लाज्म में कार्बनिक पदार्थ (Organic matters)- प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, जो दो प्रकार के होते हैं– (i) घुलनशील कार्बोहाइड्रट–ग्लूकोज, माल्टोज, सुक्रोज आदि, (ii) अघुलनशील कार्बोहाइड्रट स्टार्च, जैसे ग्लाइकोजन एवं सेल्युलोज विद्यमान रहते हैं। इसमें वसा (Fat) भी पायी जाती है। अकार्बनिक पदार्थ (Inorganic matters) जैसे– फॉस्फेट, क्लोराइड, कैल्शियम, सोडियम तथा पोटैशियम भी इसमें रहते हैं। इसमें विभिन्न प्रकार के विटामिन, पेप्सिन तथा ट्रिप्सिन आदि एन्जाइम भी पाये जाते हैं। उपर्युक्त समस्त पदार्थ साइटोप्लाज्म के अजीवित (non-living) भाग हैं, जिन्हें **निर्जीवास–द्रव्य** (Cytoplasmic inclusions) कहा जाता है।

साइटोप्लाजम में कुछ सक्रिय रचनाएँ भी होती है, जिन्हें **सक्रिय–अंगक** (Cytoplasmic organelles) कहा जाता है, जिनकी उपस्थिति समस्त कोशिकाओं में होना अनिवार्य है? जो निम्नलिखित हैं–

(I) कलामय अंगक (Membranous organelles)–

- प्लाज्मा मेम्ब्रेन (Plasma membrane)
- अन्तर्द्रव्यी जालिका (Endoplasmic reticulum)
- गॉल्जी उपकरण (Golgi apparatus or complex)
- माइटोकॉण्ड्रिया (Mitochondria)
- लाइसोसोम (Lysosome)

(II) साइटोप्लाजमिक राइबोन्यूक्लिइक एसिड/राइबोसोम (Cytoplasmic ribonucleic acid (RNA)/Ribosomes)

(III) सेन्ट्रोसोम (Centrosomes)

(IV) विविध तंतुक (Fibrils), तन्तु (Filaments) एवं सूक्ष्म नलिकाएँ (Tubules) [प्लाज्मोसिन (Plasmosin), रिक्तिकायें (Vacuoles), कणिकाएँ (Granules)]

(I) कलामय अंगक (Membranous organelles)-

- **प्लाज्मा मेम्बेन–** पूर्व में वर्णित कोशिका कला देखें।
- **अन्तर्द्रव्यी जालिका (Endoplasmic reticulum)**

यह साइटोप्लाज्म में विद्यमान कलामय नलिकाओं (Membranous canals) की जाल के समान एक संरचना है। यह दो प्रकार की होती है, एक रूक्ष या खुरदरी (Rough) सतह वाली तथा दूसरी चिकनी (Smooth) सतह वाली। रूक्ष सतह वाली एण्डोप्लाज्मिक रेटीकुलम पर राइबोसोम के कण पंक्तियों में सटे रहते हैं। चिकनी एण्डोप्लाज्मिक रेटीकुलम में लिपिड्स (Lipids) एवं स्टेरॉयड हॉर्मोन्स का संश्लेषण या निर्माण होता है तथा इसका सम्बन्ध कुछ औषधियों के निर्विषीकरण (Detoxification) से भी होता है।

ये पेशीय कोशिकाओं में आवेगों (impulses) का संवाहन करती हैं, यकृतीय कोशिकाओं में, प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट के संश्लेषण का कार्य करती हैं, आमाशय में हाइड्रोक्लोरिक एसिड को स्त्रावित करती हैं।

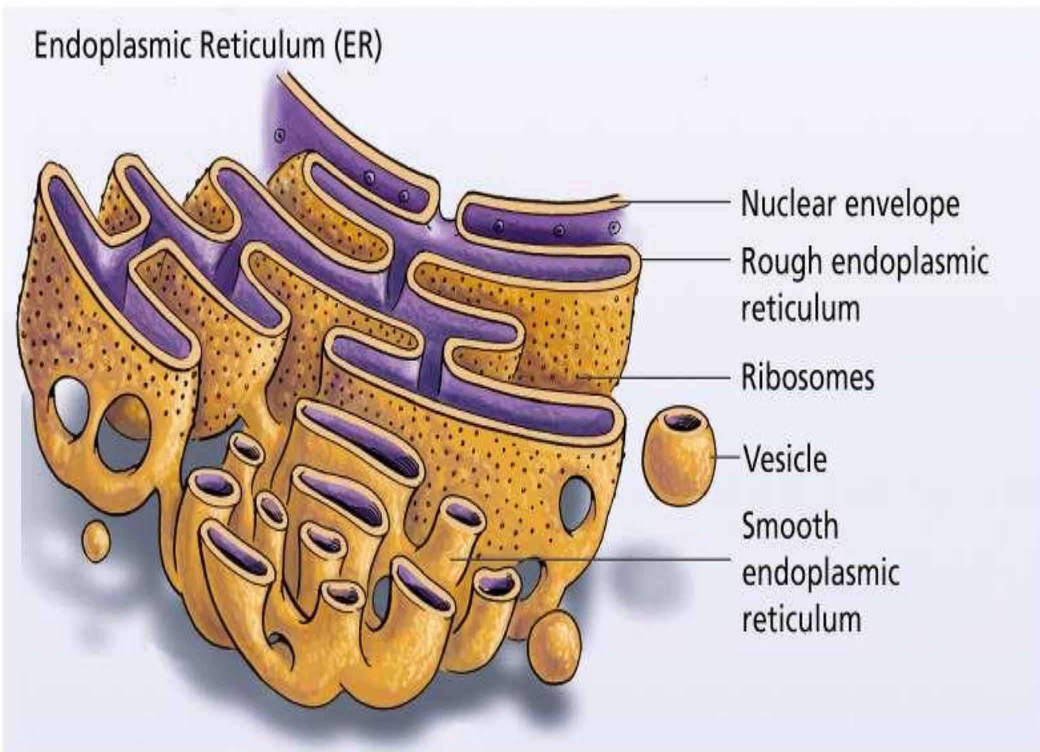

Copyright © 2004 Pearson Prentice Hall, Inc.

- **गॉल्जी उपकरण (Golgi apparatus)-**

यह साइटोप्लाज्म मे स्थित कलाओं (Membranes) का एक समूह है, जो भौतिक रूप से (Physically) एवं क्रियात्मक रूप से एण्डोप्लाज्मिक रेटीकुलम से सम्बद्ध होता है। ये प्रायः कोशिकाओं के केन्द्रक (nucleus) के समीप स्थित होते हैं। इनकी रासायनिक रचना में लाइपोप्रोटीन अधिक रहता है।

गॉल्जी उपकरण का सम्बन्ध कोशिका की रासायनिक क्रियाओं, विशेषकर स्त्रावण (secretion) की क्रिया से है। यह ग्लाइकोप्रोटीन स्त्राव के पॉलीसैकेराइड अंश का

संश्लेषण भी करता है। इसकी आकृति, आकार एवं स्थिति समस्त कोशिका की सक्रियता के अनुसार बदलती रहती है।

कोशिका में उत्पन्न हुए स्त्रावी उत्पाद इसी गॉल्जी उपकरण में एकत्रित होते हैं तथा कोशिका कला तक ले जाकर इन्हें बाहर छोड़ दिया जाता है।

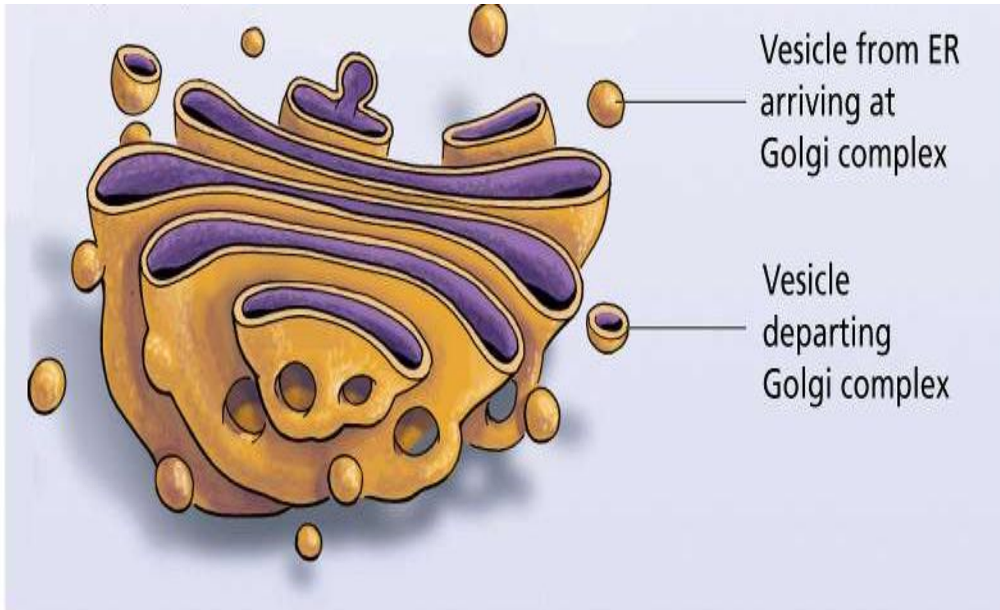

The Golgi Apparatus

- **माइटोकॉण्ड्रिया (Mitochondria)-**

साइटोप्लाज्म में विभिन्न आकारों की अनेकों छोटी–छोटी रचनाएँ–अण्डाकार या रॉड के समान रचनाएँ चारों ओर बिखरी रहती हैं, जिन्हे माइटोकॉण्ड्रिया कहते हैं। जीवित कोशिका में ये इधर–उधर घूमते रहते हैं। इनकी संख्या तथा आकार में परिवर्तन होता रहता है और ये विभाजित भी हो जाते हैं। कभी–कभी ये समूह रूप में एकत्र रहते हैं तथा कभी–कभी बिखरे से रहते हैं।

माइटोकॉण्ड्रिया को कोशिका का **ऊर्जा–गृह** (Power House) कहा जाता है, क्योंकि

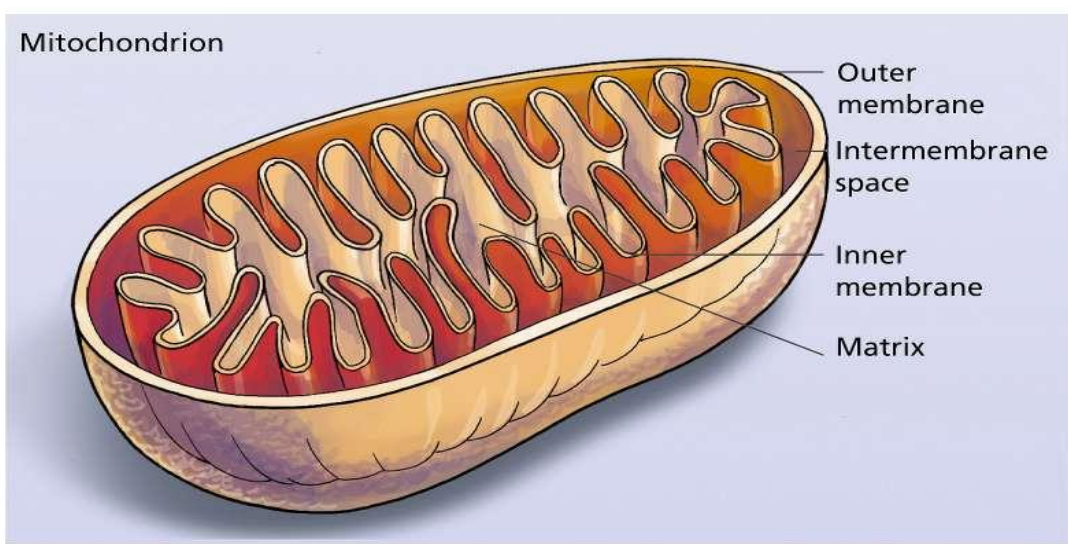

Copyright © 2004 Pearson Prentice Hall, Inc.

ये कोशिका के भीतर पचकर आये हुए भोजन का ऑक्सीकरण करके उसकी संग्रहीत ऊर्जा को विमुक्त कर ATP में संग्रहित करते हैं, जिससे कोशिका को विभिन्न अंगक 'कोशिका–श्वसन' (Cell respiration) के लिए उत्तरदायी होता है। इनका प्रोटीन संश्लेषण तथा लिपिड चयापचय के साथ भी सम्बन्ध होता है।

- **लाइसोसोम (Lysosomes)-**

लाइसोसोम साइटोप्लाज्म में स्थित कलामयी स्फोटिकाएँ (Membranous vesicles) होती है, जो अण्डाकार या गोलाकार एन्जाइम्स उत्पन्न होते हैं, जो कोशिका के भीतर प्रोटीन, कार्बोहाइड्रट, वसा एवं न्यूक्लिइक एसिड (RNA, DNA) के बड़े अणुओं को छोटे–छोटे अणुओं में खंण्डित कर देते हैं, जो बाद में माइटोकॉण्ड्रिया द्वारा ऑक्सीकृत होते हैं। किन्हीं विशेष परिस्थितियों में लाइसोसोम अपने अंतर्पदार्थ को भी पचा जाते हैं, इसीलिए इन्हें '**आत्महत्या की थैली**' (Suicide bag) भी कहा जाता है। इनका प्रधान कार्य 'आन्तरकोशिकीय पाचन' (intracellular digestion) से है, इसीलिए इन्हे 'पाचन उपकरण' (Digestive apparatus) भी कहते हैं। क्षतिग्रस्त कोशिका को भी लाइसोसोम पचा जाता है (Cell necrosis)। श्वेत रक्त कोशिकाओं में यह ऐसे एन्जाइम उत्पन्न करते हैं, जो सूक्ष्मजीवों को पचा जाते हैं। जीवाणु भक्षण (Phagocytosis) लाइसोसोम की एक अद्भुत् एवं विलक्षण क्रिया है।

(II) राइबोसोम (Ribosomes)-

राइबोसोम स्वभावतः राइबोन्यूक्लियोप्रोटीन हो हैं तथा ये समस्त साइटोप्लाज्म या कोशिकाद्रव्य में एकाकी अथवा समूहों में बिखरे हुए रहते हैं। राइबोसोम राइबोन्यूक्लिइक एसिड (RNA) से भरपूर रहते हैं, तथा समस्त कोशिका का 60 प्रतिशत प्रोटीन इन्हीं में रहता है। राइबोसोम प्राटीन संश्लेषण (Protein synthesis) से सम्बन्धित हैं, इसीलिए इन्हें **'प्रोटीन फैक्टरी'** कहा जाता है।

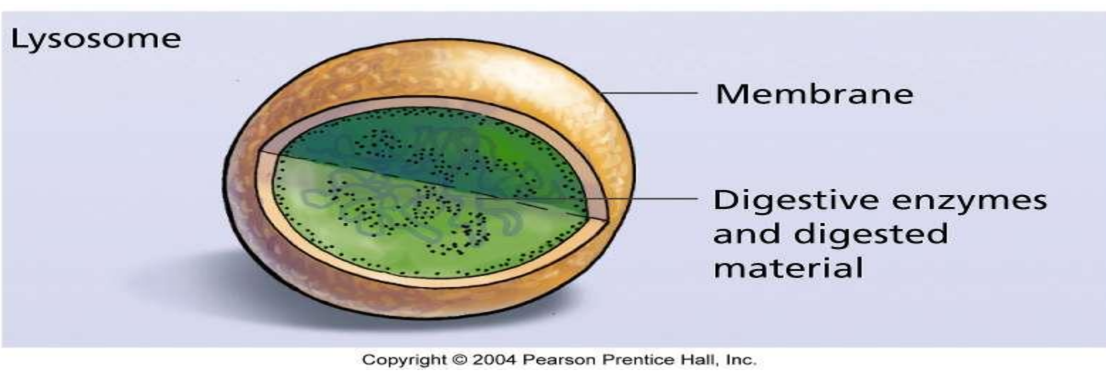

Ribosomes

(III) सेन्ट्रोसोम (Centrosome)-

सेन्टोसोम न्यूक्लियस के समीप छड़ की आकृति की एक रचना है। यह धागों के समान चारों ओर निकली हुई रचना से घिरी रहती है। इसमें कुछ अधिक गहरे रंग की दो गोलाकार रचनाएँ और होती हैं, जिन्हें सेन्ट्रियोल (Centrioles) कहते हैं। सेन्ट्रोसोम इन्हीं सेन्ट्रियोल्स द्वारा कोशिका विभाजन में, महत्वपूर्ण भाग लेता है।

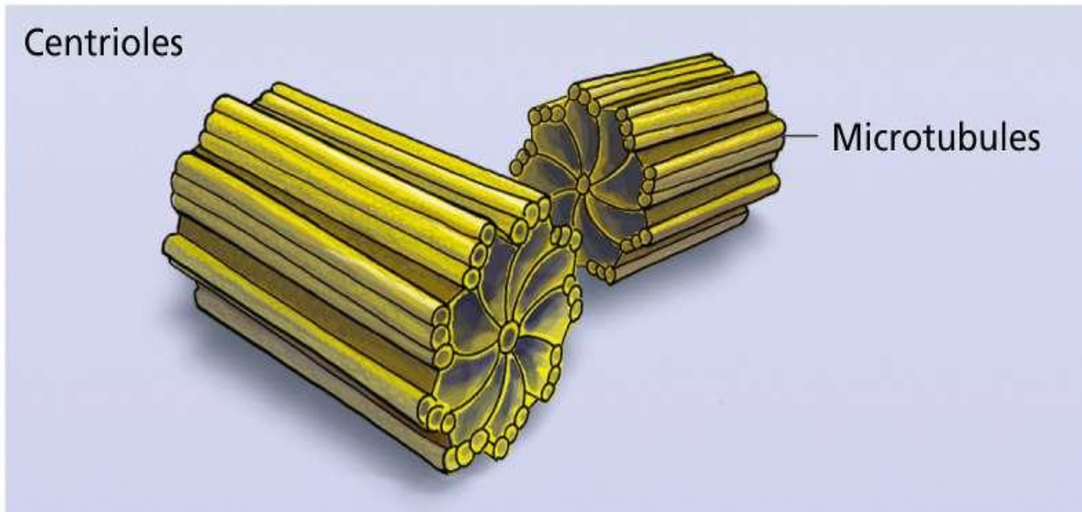

Copyright © 2004 Pearson Prentice Hall, Inc.

तन्त्रिका–कोशिकाओं में सेन्ट्रोसोम और सेन्ट्रियोल नहीं होता है, इसीलिए ये उत्पादन में असमर्थ रहती हैं।

(IV) विविध संरचनाएँ :

- **प्लाज्मोसिन (Plasmosin)-**

  प्लाज्मोसिन साइटोप्लाज्म का सदैव विद्यमान रहने वाला विशिष्ट संघटन है।

- **रिक्तिकाएँ (Vacuoles)**

साइटोप्लाज्म में इधर–उधर छोटे–छोटे रिक्त स्थान दिखाई देते हैं जिन्हें रिक्तिकाएँ (Vacuoles) कहते हैं। ये परिवर्तनशील होती हैं। इनके चारों ओर कुछ मात्रा में लिपिड पदार्थ संग्रहीत पाया जाता है।

- **कणिकाएँ (Granules)**

साइटोप्लाज्म में उपर्युक्त रचनाओ ंके अतिरिक्त कोशिकाओं की किसी फिजियोलॉजीकल अवस्था में जैसे धूप में तपने के पश्चात् त्वचा की एपीथीलियल कोशिकाओ ंमें पिगमेन्ट के कण प्रकट हो जाते हैं।

- **आन्तरकोशिक तन्तुक (Intracellular fibrils)-**

इसमें लंब आकारके प्राटीन के कण होते हैं जिनमें डीऑक्सीराइबोन्यूक्लियो प्राटीन अत्यधिक मात्रा में रहता है। ये कण आपस में लम्बाई में सटे रहते हैं तथा 'आन्तरकोशिक तन्तुक' का निर्माण करते हैं। इसके उदाहरण हैं– एपीथीलियल कोशिकाओं के

टोनोफाइब्रिल (Tonofibril), पेशी कोशिकाओं के पेशी तन्तुक (Myofibrils) तथा तन्त्रिका कोशिकाओं के तन्त्रिका तन्तुक (Nerve fibrils)।

3. केन्द्रक (Nucleus)

लाल रक्त कोशिकाओं (Erythrocytes) को छोड़कर शरीर की समस्त कोशिकाओं के मध्य भाग में एक गोलाकार रचना होती है, जिसे केन्द्रक (Nucleus) कहते हैं। कंकालीय पेशी (Skeletal Muscle) एवं कुछ अन्य कोशिकाओं में एक से अधिक केन्द्रक होते हैं। केन्द्रक कोशिका का सबसे बड़ा अंगक (Organelle) होता है तथा यह कोशिका कला या प्लाज्पा मेम्बेन के समान एक दोहरी परत वाली मेम्ब्रेन जिसे **केन्द्रक कला** (Nuclear membrane) कहते हैं, से चारों ओर से घिरा रहता है, जिससे केन्द्रक साइटोप्लाज्म से अलग रहता है। न्यूक्लियर मेम्ब्रेन में छोटे–छोटे छिद्र (tiny pores) होते हैं जिससे कुछ ही पदार्थ इसके और साइटोप्लाज्म के बीच आ–जा सकते हैं एवं इन पदार्थों पर नियन्त्रण रखती है।

न्यूक्लियस के भीतर विद्यमान द्रव को **न्यूक्लियो प्लाज्मा या केन्द्रकद्रव्य** कहते हैं, जो प्रोटोप्लाज्म का ही भाग होता है। यह कोशिका की वृद्धि एवं कोशिका को दो सन्तति कोशिकाओं (Daughter Cells) में विभाजित होने के लिए आवश्यक सूचनाएँ जमा रखता है।

न्यूक्लियस के भीतर न्यूक्लियोप्लाज्म में सूत्रवत् रचनायें पायी जाती हैं, जिन्हें **गुणसूत्र** (Chromosomes) कहते हैं। ये डीऑक्सिराइबोन्यूक्लिइक एसिड (DNA) और हिस्टोन्स (Histones) नामक प्रोटीन्स के परस्पर कुण्डली बनकर बने गुच्छों– **क्रोमेटिन** (Chromatin) से बनते हैं। प्रत्येक क्रोमेटिन में कई क्रोमोसोम होते हैं। इन क्रोमोसोमों पर लड़ी के रूप में अनेकों सूक्ष्म रचनायें विद्यमान होती हैं, जिन्हें **जीन** (Gene) कहते हैं। इन्हीं जीन्स के द्वारा क्रोमोसोम एक वंश या पीढ़ी से दूसरे वंश तक आनुवंशिक गुणों (Hereditary Characters) को पहुँचाने का कार्य करते हैं। सामान्यतया क्रोमोसोम्स केवल सूक्ष्मदर्शी (Microscope) द्वारा ही दिखाई देते हैं, वे भी उस समय जब कोशिका विभाजित होने के लिए तैयार रहती है।

न्यूक्लियस के भीतर एक छोटी सी गाढ़ी, गोल रचना होती है, जिसे **उपकेन्द्रक** या **न्यूक्लियोलस** (Nucleoles) कहते हैं जो कुछ प्रकार की प्रोटीन्स का संश्लेषण (Synthesis) करता है।

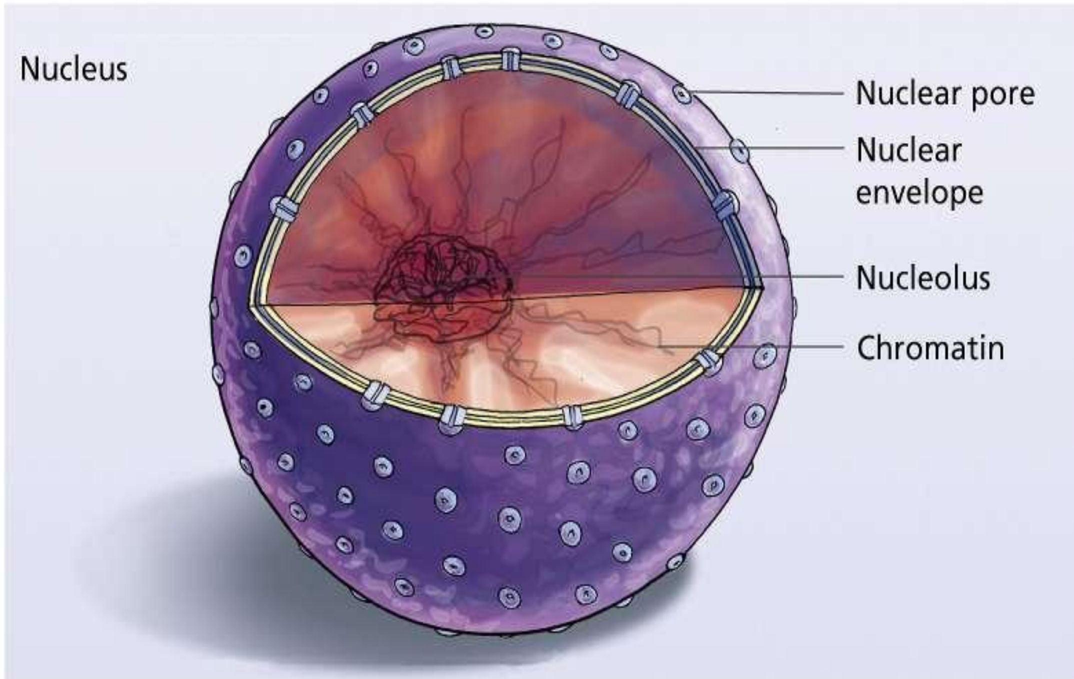

Copyright © 2004 Pearson Prentice Hall, Inc.

1.5 ऊतक की सरंचना, प्रकार व कार्य

मानव एक बहुकोशीय प्राणी (Multicellular organism) है, जिसमें कोशिकाएँ रचना तथा कार्य में एक दूसरे से भिन्न होती हैं। एक प्रकार की कोशिकाएँ, एक ही प्रकार का कार्य करती हैं और एक ही वर्ग के ऊतक जैसे–अस्थि, उपास्थि, पेशी आदि का निर्माण करती हैं। संक्षेप में **'समान रचना तथा समान कार्यों वाली कोशिकाओं के समूह को ऊतक कहते हैं।'** प्रत्येक ऊतक का अपना विशिष्ट (Specialised) कार्य होता है। ऊतकों का निर्माण करते समय कोशिकाएँ आपस में एक दूसरे से एक विशेष अन्तराकोशिकी पदार्थ (Intercellular substance) के द्वारा जुड़ी और सम्बन्धित रहती हैं। बहुत से ऊतक मिलकर शरीर के अंगों (Organs), जैसे–आमाशय, गुर्दे, यकृत, मस्तिष्क आदि का निर्माण करते हैं। प्रत्येक अंग का भी अपना विशिष्ट कार्य होता है। विभिन्न अंग परस्पर मिलकर किसी संस्थान करता है, जैसे–नाक, स्वरयन्त्र(Larynx), श्वास प्रणाल (Trachea) एवं फेफड़े मिलकर श्वसन संस्थान (तन्त्र) का निर्माण करते हैं, जो कि शरीर एवं वायुमण्डल के बीच ऑक्सीजन एवं कार्बन डाइऑक्साइड का आदान–प्रदान करता है।

ऊतक के प्रकार एवं संरचना

मानव शरीर का निर्माण निम्नलिखित प्रारम्भिक ऊतकों (Elementary tissues) के मिलने से होता है–

1. उपकला ऊतक (Epithelial tissue)

2. संयोजी ऊतक (Connective tissue)
3. पेशीय ऊतक (Muscular tissue)
4. तन्त्रिका ऊतक (Nervous tissue)

1) उपकला ऊतक (Epithelial tissue)

उपकला ऊतक या एपीथीलियम विभिन्न आकार की कोशिकाओं से बनने वाला वह ऊतक है जो शरीर की सतह जैसे त्वचा तथा खोखले अंगों–आमाशय, गर्भाशय, गुहाओं, रक्त वाहिनियों आदि की भीतरी सतह को आच्छादित किए रहते हैं। उपकला ऊतक अंगों की सीमा, स्वतन्त्र सतहें (Free surfaces) तथा अस्तर कला (Lining membrane) को बनाते हैं। समस्त एपीथिलियल कोशिकाएँ परस्पर सटी होती हैं। तथा इन्हे जोड़ने का काम म्यूकोप्रोटीन पदार्थ के द्वारा होता है। प्रायः इस प्रकार के ऊतकों में एक आधार–कला (बेसमेन्ट मेम्ब्रेन) रहती है, जिस पर कोशिकाएँ अवस्थित रहती हैं।

कोशिकाओं की परतों एवं आकार के अनुसार उपकला ऊतक मुख्य रूप से निम्न दो प्रकार के होते हैं–

(A) सरल उपकला (Simple epithelium)

1. शल्की उपकला (Pavement or squamous epithelium)
2. घनाकार उपकला (Cuboidal epithelium)
3. स्तम्भाकार उपकला (Columnar epithelium)
4. रोमक उपकला (Ciliated epithelium)
5. ग्रथिल उपकला (Glandular epithelium)

(B) मिश्रित उपकला

1.अन्तरवर्ती (Transitional)
2. श्रृंगी स्तरित शल्की उपकला (Stratified squamous cornified)
3. अश्रृंगी स्तरित शल्की उपकला (Stratified squamous non-cornified)
4. स्तरित स्तम्भाकार उपकला (Stratified columnar)
5. रोमक स्तरित स्तम्भाकार उपकला (Stratified columnar ciliated)

(A) सरल उपकला (Simple epithelium)

सरल उपकला में कोशिकाओं के केवल एक परत होती है तथा सामान्यतः अवशोषी या स्त्रावी सतहों पर पायी जाती है। यह उपकला बहुत ही नाजुक होती है तथा ऐसे स्थानों पर पायी जाती है जहाँ बहुत कम टूट–फूट होती है। यह निम्न पाँच प्रकार की होती है जिनके नाम कोशिकाओं के आकार तथा कार्यों के अनुसार भिन्न होते हैं।

1. **शल्की उपकला (Pavement or Squamous epithelium)** यह वृहदाकार चपटी कोशिकाओं की केवल एक परत की बनी होती हैं तथा समस्त कोशिकाओं की केवल एक परत की बनी होती है तथा समस्त कोशिकाएँ एक आधार कला (Basement membrane) पर अवस्थित रहती है। न्यूक्लियस सामान्यतः कोशिका के केन्द्र में होता है। इस प्रकार की उपकला फेफड़ों के वायुकोष्ठों (alveoli), सीरमी कलाओं जैसे–पेरीटोनियम, प्लूरा आदि, हृदय के आभ्यन्तरिक

स्तर, रक्तवाहिनियों के अन्तःस्तर, कॉर्निया, टिम्पेनिक मेम्ब्रेन आदि में रहती है, फेफड़े, सीरमी कलाओं, रक्त वाहिनियों एवं लसीका वाहिनियों में इसे **अन्तःकला** (endothelium) के नाम से भी जाना जाता है। हृदय में इसे **अतःहृद्कला** (endocardium) कहते हैं। इस उपकला का प्रमुख कार्य 'रक्षात्मक' है। साथ ही गैसों एवं तरलों का आदान–प्रदान भी इसके द्वारा होता रहता है।

2. **घनाकार उपकला (Cuboidal epithelium)-** इसकी कोशिकाएँ घनाकार होती हैं तथा एक ही परत में रहती हैं एवं आधार कला पर अवस्थित रहती हैं। इस प्रकार की उपकला सूक्ष्म श्वसन नलिकाओं (Small terminal respiratory bronchioles), पाचन ग्रन्थियों के आभ्यन्तर में, लार ग्रन्थियों (Salivary glands), थाइरॉयड तथा डिम्ब ग्रन्थि की सतह आदि में पायी जाती हैं। इस प्रकार की उपकला अंगों की रक्षा करती है तथा कहीं–कहीं स्त्रावण (Secretion), भरण (Storage) आदि का भी कार्य करती हैं।
3. **स्तम्भाकार उपकला (Columnar epithelium)-** इसकी कोशिकाएँ चौड़ाई में कम तथा ऊँचाई में अधिक अर्थात् आयताकार होती हैं। इसमें भी कोशिकाएँ आधार कला पर, एक परत में अवस्थित ग्रन्थियों की नलियों में पायी जाती है। इस प्रकार की उपकला में कोशिकाओं का आकार विभिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न प्रकार का होता है। कार्य की दृष्टि से यह उपकला अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह अवशोषण (Absorption) एवं स्त्रावण (Secretion) दो मुख्य कार्य करती हैं।
4. **रोमक उपकला (Ciliated epithelium)-** इस प्रकार की कोशिकाएँ प्रायः स्तम्भाकार होती हैं, किन्तु कहीं–कहीं ये घनाकार भी होती हैं। प्रत्येक कोशिका के मुक्त सिरे पर 20 से 30 बालों के समान रचनाएँ पायी जाती हैं, जिन्हें रोमिकाएँ (Cilia or Flagellae) कहते हैं। जिस सिरे पर रोमिकाएँ अवस्थित होती हैं उसमें आधारी कणों (Basal particles) की एक पंक्ति होती है, तथा प्रत्येक आधारी कण से एक रोमक (Cilium) लगा रहता है। ये आधारी कण कोशिका के सेन्ट्रियोल के अंश (Fragments) होते हैं। इस प्रकार की उपकला सामान्यतः डिम्ब वाहिनियों (Fallopian tubes), श्वसन मार्गों तथा सुषुम्ना की मध्य नलिका आदि में पायी जाती हैं। रोमिकाएँ अपनी रोमक गति (Ciliary movement) करती हैं जो कोशिकाओं की जीवितावस्था में सदैव होती रहती है। रोमक गति प्रति सेकण्ड दस से बीस बार होती है। इसमें एक बार रोमिकाएँ झुकती हैं (Effective phase) और दूसरी बार सीधी अवस्था में लौट आती है (Return phase) । इसी रोमक गति से डिम्ब (Ovum) डिम्ब वाहिनी से गर्भाशय की ओर खिसकता है; श्वसन मार्गों से धूल, म्यूकस (श्लेष्मा) आदि गले की ओर बढ़ते रहते हैं।
5. **ग्रन्थिल उपकला (Glandular epithelium)-** इस प्रकार की उपकला वायुकोष्ठकों में (Alveoli) तथा स्तन ग्रन्थियों, स्वेद ग्रन्थियों, लार ग्रन्थियों एवं त्वग्वसीय ग्रन्थियों (Sebaceous glands) की वाहिनियों के कुछ भागों ताि आन्त्रीय ग्रन्थियों के कुछ भागों एवं थाइरॉयड ग्रन्थि के वायुकोष्ठकों (Alveoli)

आदि का अस्तर बनाती है। इसकी कोशिकाएँ सामान्यतः घनाकार (Cubical), स्तम्भाकार अथवा बहुसतीय (Polyhedral) होती हैं तथा प्रायः एक ही परत में अवस्थित रहती हैं। इस उपकला की कोशिकाएँ किसी–न–किसी नये पदार्थ का उत्पादन करती हैं तथा उन्हें उनके अलग–अलग स्त्रावों में पास कर देती हैं, जो कि इनका अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है।

चषक कोशिकाएँ (Goblet Cells)

ये कोशिकाएँ श्लेष्मा (Mucus) का स्त्रावण करती है। इस तरह की कोशिकाएँ प्रायः स्तंम्भाकार (Columnar) एवं रोमक कोशिकाओं के बीच, जैसे श्वास प्रणाल (Trachea), जठरान्त्र पथ (Gastro-intestinal tract) आदि में बिखरी पायी जाती हैं। कोशिका के गहराई वाले भाग में न्यूक्लियस एवं साइटोप्लाज्म होता है, जबकि शीर्ष भाग (Apical part) पर म्यूकस उत्पन्न करने वाली कणिकाएँ (Mucinogen granules) होती हैं। ये ग्लाइकोप्रोटीन म्यूसिन बनाती हैं। जो धीरे–धीरे फूलती हैं तथा फट जाती हैं और म्यूकस (श्लेष्मा) स्त्रावित करती हैं। इस प्रक्रिया की पुनरावृत्ति होती रहती हैं। गोब्लेट कोशिकाओं से स्त्रावित म्यूकस चिकनाई (Lubrication), श्लेष्मिाक कला पर रक्षात्मक परत बनाने, अम्ल एवं क्षारों आदि को न्यूट्रल करने, तथा जीवाणुओं, बाह्य पदार्थों आदि को फँसाने का कार्य करता है।

(B) मिश्रित उपकला (Compound Epithelium)

मिश्रित उपकला में कोशिकाओं की कई परतें होती हैं। इसका मुख्य कार्य अपने नीचे स्थित रचनाओं की रक्षा करना है। यह निम्न प्रकार की होती हैं–

1. **अन्तरवर्ती कोशिकाएँ (Transitional epithelium)-** इस प्रकार की उपकला में कोशिकाओं की तीन या चार परतें होती हैं तथा यह एक परत वाली सरल उपकला (Simple epithelium) एवं अनेकों परत वाली स्तरित उपकला के बीच वाले स्थान में पायी जाती है। इसलिए इसे अन्तरवर्ती उपकला कहा जाता है। इसकी प्रथम पंक्ति की कोशिकाएँ बड़ी, चपटी, टेढ़ी–मेढ़ी तथा अष्टकोणीय आकार की रहती हैं। प्रायः इनमे दो न्यूक्लियस पाये जाते हैं। दूसरे परत में पाइरीफॉर्म कोशिकाएँ रहती हैं। जिनके सिरे बाहर की ओर गोलाकार होते हैं तथा अपने नीचे वालही अस्तर की कोशिकाओं के शीर्ष के गर्त में समाये रहते हैं। इससे नीचे की अगली एक या दो परतों में छोटी–छोटी बहुसतीय (Polyhedral) कोशिकाएँ रहती हैं जो दूसरी वाली परत की पाइरीफॉर्म कोशिकाओं के नुकीले सिरों के बीच में पैक रहती हैं।

   इस प्रकार की उपकला गुर्दे की गोणिका (Pelvis of Kidney), मूत्रनलियों (Ureters), मूत्राशय तथा मूत्रमार्ग (Urethra) के ऊपरी भाग में पायी जाती है। यह उपकला उत्सर्जित पदार्थों को संस्थान (System) में पुनः अवशोषित होने से रोकती है।

2. **श्रृंगी स्तरीय शल्की उपकला (Stratified squamous cornified epithelium)-** यह उपकला कोशिकाओं की अनेकों परतों से मिलकर बनती है। उपरिस्थ (Superficial) परत केरैटिन (Keratin) के जमाव के कारण श्रृंगी

(Horny) हो जाती है। यह त्वचा में पायी जाती है। बाल, नाखून, दाँतों का इनेमल आदि इसी वर्ग के एपीथीलियल ऊतक हैं। त्वचा की अगली परत चपटी, शल्कों के समान, दबी–दबी या संक्षिप्त कोशिकाओं से बनती है। इसके नीचे वाली परत में कोशिकाएँ चौड़ी और बहुसतीय (Polyhedral) होती हैं। इससे भी अगली, और भी गहराई में स्थित कोशिकाएँ छोटी तथा स्तम्भाकार होती हैं, जो कि एक–दूसरे से असंख्य अन्तर्कोशिकीय तंतुक (intercellular fibrils) तथा जीवद्रव्यी प्रवर्धों (Protoplasmic Processes), जो काँटों के समान प्रतीत होते हैं, के द्वारा जुड़ी रहती हैं। इसी काँटेदार बनावट के कारण इन कोशिकाओं को **'शक कोशिकाएँ'** (Prickle cells) कहा जाता है। रगड़ एवं घर्षण से उपरिस्थ परतों की कोशिकाएँ बराबर झड़ती रहती हैं। इन कोशिकाओं की क्षतिपूर्ति, गहराई में स्थित परत की कोशिकाओं में कोशिका विभाजन होते रहने से निरन्तर होती रहती है।

इस प्रकार की उपकला वातावरणीय प्रभाव, यान्त्रिक दबाव, रगड़ खाने तथा चोट पहुँचने आदि से अपने नीचे स्थित रचनाओं की रक्षा करती है। त्वचा इसका एक उत्तम प्रारुपिक उदाहरण (Typical example) है।

3. **अश्रृंगी स्तरित शल्की उपकला (Stratified squamous, non-cornified)-** हिस्टोलॉजीकली, इसकी रचना श्रृंगी स्तरित उपकला के समान ही है, अन्तर केवल इतना है कि इसमें उपरी परत केरैटिनीकृत नहीं होती है। इस तरह की उपकला कॉर्निया, मुँह, ग्रसनी (Pharynx), ग्रासनली (Oesophagus), गुदीय नाल (Anal canal), मूत्रमार्ग के निम्न भाग, स्वर–रज्जु (Vocal cords), योनि एवं गर्भाशय ग्रीवा (Cervix) आदि अंगों में पायी जाती है। इस उपकला से अंगों को यान्त्रिक सुरक्षा मिलती है।
4. **स्तरित स्तम्भाकार उपकला (Stratified columnar epithelium)-** इस प्रकार की उपकला दुर्लभ (Rare) होती है तथा केवल कुछ ही स्थानों पर पायी जाती है। यह स्वच्छमण्डल (Fornix of conjuctiva), ग्रसनी (Pharynx), कण्ठच्छद (Epiglottis), गुदीय म्यूकोजा (Anal mucosa), पुरुष मूत्रमार्ग के कैवरनस भाग आदि छोटे–छोटे भागों को ढँके रहती है।
5. **रोमक–स्तरित–स्तम्भाकार उपकला (Stratified columnar ciliated epithelium)-** यह भी केवल कुछ छोटे स्थानों, जैसे कोमल तालू की नासा सतह (Nasal surface), स्वर यन्त्र के कुछ भागों आदि में पायी जाती है।

<u>2) संयोजी ऊतक (Connective tissue)</u>

यह ऊतकों का एक विस्तृत समूह है, जो कई प्रकार के होते हैं। इन ऊतकों का विशिष्ट कार्य सेयोजन करना, अंगों को आच्छादित करना तथा उन्हें यथास्थान रखना है। ये शरीर कोशिकाओं की तरह बहुत अधिक सटी हुई नहीं होती बल्कि एक दूसरे से काफी अलग–अलग रहती हैं जिनके बीच के स्थान में अन्तर्कोशिकीय पदार्थ (Intercellular Substance), जिसे **मैट्रिक्स** कहते हैं, भरा रहता है। यह पदार्थ सूत्रमयी (Fibrous)

दिखाई देता है। संयोजी ऊतकों की कोशिकाएँ विभिन्न –रूप रंग और आकार की होती हैं यद्यपि सबके संयोजी कार्य में समानता होती है। वास्तव में ये सभी आद्य कोशिकाओं से उत्पन्न होते हैं। जिन्हें **मीजेनकाइमल कोशिकाएँ** (Mesenchymal cells) कहते हैं।

संयोजी ऊतक (Connective tissue) निम्न प्रकार के होते है–

1. अवकाशी ऊतक (Areolar tissue)
2. वसीय ऊतक (Adipose tissue)
3. श्वेत सौत्रिक या तन्तुमय ऊतक (White fibrous)
4. पीत प्रत्यास्थ ऊतक (Yellow elastic tissue)
5. जालीदार ऊतक (Reticular tissue)
6. रक्त उत्पादक ऊतक (Haemopoietic tissue)
7. उपास्थि (Cartilage)
8. अस्थि ऊतक (Bone or osseous tissue)
9. लसीकाभ ऊतक (Lymphoid tissue)
10. श्लेष्माभ ऊतक (Mucoid tissue)

1. अवकाशी ऊतक (Areolar tissue)

शरीर में यह अन्य संयोजी ऊतकों की अपेक्षा सबसे अधिक पाया जाने वाला ऊतक हैं यह ढीला–ढाला ऊतक होता है जो प्रायः अन्य ऊतकों को जोड़ने और उन्हें सहारा देने का कार्य करता है। यह शरीर के प्रत्येक भाग पर, जैसे त्वचा के नीचे, पेशियों के बीच में तथा पाचक नली (Alimentarycanal) आदि में यह पाया जाता है। पेशियों, रक्तवाहिनियों एवं तन्त्रिकाओं आदि को परस्पर बाँधे रहने और उन्हें अपने स्थान पर स्थिर रखने वाली प्रावरणी (Fascia) के आवरण भी इसी ऊतक से बने होते हैं। ग्रन्थियों में यह ऊतक स्त्रावी कोशिकाओं (Secretory cells) को सहारा देते हैं।

अवकाशी ऊतक में विभिन्न तन्तु (Fibres) श्वेत या कोलेजनमय, पीत प्रत्यास्थ (Yellow elastic) एवं जालीदार (Reticular) तन्तु तथा विभिन्न कोशिकाएँ–फाइब्रोब्लास्ट्स, हिस्टयोसाइट्स, बेसोफिल्स, प्लाज्मा सेल्स, पिगमेन्ट सेल्स एवं मास्ट सेल्स पायी जाती हैं।

2. वसीय ऊतक (Adipose tissue)

वसा ऊतकों की विशेषता है कि इनमें स्थित वसा कोशिकाओं (Fat cells) में उन्मुक्त वसा विद्यमान रहती है। वसीय कोशिकाएँ अवकाशी ऊतकों के ढीले फ्रेम (मैट्रिक्स) पर आधृत रहती हैं। कोशिकाएँ प्रायः बड़ी–बड़ी, गोलाकार या अण्डाकार होती हैं। आस–पास की कोशिकाओं के दबाव के कारण इन ऊतकों की कोशिकाएँ बहुसतीय (Polyhedral) हो जाती हैं। वसीय ऊतक की कोशिका का समस्त भाग वसा–गोलिकाओं (Fat globules) से भरा हुआ रहता है। यहाँ तक कि वसा के दबाव से साइटोप्लाज्म तथा न्यूक्लियस किनारों से चपटे हो जाते हैं।

इस प्रकार के वसीय ऊतक आँखों की पलकों, शिश्न, वृषणकोष (Scrotum), लघु भगोष्ठ (Labia minora), मस्तिष्कीय गुहा आदि के अतिरिक्त शरीर के प्रायः सभी स्थानों के अधस्त्वचीय ऊतकों (Subcutaneous tissues) में पाया जाता है। पीत–अस्थि मज्जा

(Yellow bone marrow) में वसा अधिक रहती है। प्रस्त्रावित दुग्ध ग्रंधियों (Lactating mammary glands) में वसीय ऊतकों का बहुल्सय रहता है।

वसीय ऊतक त्वचा में नीचे रहकर प्रत्यंगों एवं शरीर को आकृति (Shape) देता है; अंतरांगों के चारों ओर रहकर अपने–अपने स्थान पर स्थिर रखता है तथा चोट लगने से रक्षा करता है। यह वसाओं के रूप में शरीर में शक्ति को संचित करता है और शरीर के तापमान को नियमित रखता है। भूखे रहने की स्थिति में शरीर में संचित वसा का ही उपयोग होता है। ऐसी स्थिति में इसका ऑक्सीकरण होता है जिससे शरीर के लिए आवश्यक ऊर्जा एवं ऊष्मा की प्राप्ति होती है।

3. श्वेत सौत्रिक या तन्तुमय ऊतक (White fibrous tissue)

इस प्रकार के ऊतक चमकदार श्वेत तन्तुओं (Fibres) से निर्मित होते हैं। ये तन्तु पतले और आशाखीय (Non-branching) रहते हैं। प्रायः ये तन्तु एकाकी न रहकर बण्डलों में रहते हैं। श्वेत तन्तुओं के बण्डल लहरदार (Wavy) होते हैं तथा विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित होते से दिखाई देते हैं। बण्डलों से ही शाखाएँ आवस में मिलती जाती हैं। इनके बीच–बीच का खाली स्थान अवकाशी ऊतक तथा संयोजी ऊतक कणिकाओं (Connective tissue corpuscles) से भरा रहता है। इन ऊतकों की रासायनिक रचना में मुख्य रूप से 'कोलेजन' नामक प्रोटीन होती है।

इस प्रकार के ऊतक कण्डराओं (Tendons), स्नायुओं (Ligaments), संधि–संपुटों (Articular capsule), अंगों के तन्तुमय आवरणों तथा कुछ कलाओं (Membranes) में पाये जाते हैं।

इन ऊतकों का कार्य शरीर के विभिन्न भागों तथा शरीर के विभिन्न ऊतकों को जोड़ना है, तथा ये जहाँ भी रहते हैं, वहाँ उन अंगों का फैलाव एवं उनके दबाव से यान्त्रिक सुरक्षा (Mechanical protection) प्रदान करते हैं। साथ ही इन अंगों को अत्यधिक दृढ़ता तथा अत्यधिक मात्रा में नम्यता एवं लचीलापन प्रदान करते हैं।

4. पीत प्रत्यास्थ ऊतक (Yellow elastic tissue)

इस प्रकार के संयोजी ऊतकों की रचना भी तन्तुमय ही रहती है, परनतु श्वेत सौत्रिक ऊतकों से इनकी रचना मिलती है। इनमें पीलापन रहता है तथा तन्तु कुछ मोटे होते हैं। प्रत्येक तन्तु में से अनेक उन्मुक्त शाखाएँ फूटती हैं जो एक–दूसरे से जुड़ती जाती हैं, जिससे एक जाल के समान रचना बन जाती है। तन्तु अलग–अलग और कभी–कभी बण्डलों के रूप में प्रवाहित होते हैं। बण्डल में रहने पर भी प्रत्येक तन्तु की बाह्य रेखा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इनमें लहरिया (Wavy) प्रवाह नहीं रहता है, बल्कि ये सीधे–सीधे ही प्रवाहित होते हैं। इन तन्तुओं में प्रत्यास्थता (Elasticity) रहती है; तथा ये 'इलास्टिन' (Elastin) नामक प्रोटीन से बने होते हैं।

इस प्रकार के ऊतक रक्त वाहिनियों एव श्वास नलिकाओं की भित्तियों में पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त ये बाह्य कणों (Extenal ears) तथा कण्ठच्छद (Epiglottis) आदि की उपस्थि में भी पाये जाते हैं। स्नायुओं के रूप में ये ऊतक संधियुक्त भागों को कसकर थामें रहते हैं और यही लचीले स्नायु जुड़े हुए अंगों को स्वच्छंद गति करने देते हैं। इस प्रकार के ऊतक रक्तवाहिनियों में अपने प्रत्यास्थ प्रतिक्षेप (Elastic recoil) गुण के द्वारा अत्यधिक विस्फारण की स्थिति आने से रोकते हैं तथा इस प्रकार से रक्त–परिसंचरण तथा

रक्तचाप को नियन्त्रित रखने में भी सहायता प्रदान करते हैं। फेफड़ों में इसका प्रत्यास्थ–प्रतिक्षेप गुण बहिःश्वसन (Expiration) क्रिया में भी सहायता प्रदान करता है।

5. जालीदार ऊतक (Reticular tissue)

इस तरह के ऊतक भी अवकाशी ऊतकों के समान होते हैं। लेकिन इनकी कुछ अपनी भी विशिष्टताएँ होती हैं। ये रचना में श्वेत तन्तुमय ऊतक (White fibrous tissue) से मिलते–जुलते होते हैं, परन्तु ये बारीक एवं पतले होते हैं; इनमें से उन्मुक्त शाखाएँ फूटती हैं; इनकी कोशिकाओं के बीच में बहुत कम खाली स्थान रहता है तथा उस खाली स्थान में लसीका (Lymph) एवं ऊतक द्रव्य भरा रहता है।

ये ऊतक शरीर में फैले रहते हैं। इन्हीं से कई प्रकार के उपकला–ऊतकों की आधारीय कला (Basement membrane) बनती है, कई अंगों के फ्रेम बनते हैं तथा ये उनकी कोश्किामयी रचना को सहारा भी देते हैं। इस तरह के ऊतक यकृत, प्लीहा, अस्थिमज्जा (Bone marrow) तथा बहुत से अन्य अंगों में पाये जाते हैं।

6. रक्त उत्पादक ऊतक (Haemopoetic tissue)

रक्त एक प्राणाधर तरल संयोजी ऊतक है। इस पर प्राणियों का जीवन निर्भर करता है। वाहिकाओं में होकर रक्त सम्पूर्ण शरीर में जीवन पर्यन्त धाराप्रवाह बहता रहता है। रक्त एक ऐसा ऊतक है, जो द्रव (Fluid) है तथा अस्थिर एवं गतिशील है। रक्त का परिमाण शरीर का 1/20 भाग होता है। इस प्रकार स्वस्थ शरीर में रक्त की मात्रा लगभग 6 लीटर होती है।

7. उपास्थि ऊतक (Cartilage tissue)

उपास्थि (कार्टिलेज) ऊतक अन्य संयोजी ऊतकों से अधिक दृढ़ परन्तु अस्थि की अपेक्षाकमजोर होता है। यह कुछ–कुछ अपारदर्शी, चमकदार, दृढ़ रचना वाला प्रत्यास्थपूर्ण यानि लचीला होता है। उपास्थि ऊतक, उपास्थि कोशिकाओं (Cartilage cells), कोण्ड्रोब्लास्ट्स (Chondroblasts) तथा काफी मात्रा में अंतःकोशिका आधार पदार्थ (मैट्रिक्स) से मिलकर बने होते हैं। मैट्रिक्स स्वच्छ एवं समांशी (Homogeneous) होता है अथवा इसमें तन्तुमय ऊतक (Fibrous tissue) भी विद्यमान हो सकते हैं। कार्टिलेज कोशिकाओं की संख्या तथा मैट्रिक्स की प्रकृति के आधार पर कार्टिलेज (उपास्थि) को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(i) काचाभ या हायलीन उपास्थि (Hyaline cartilage)

(ii) तन्तुकी उपास्थि (Fibro-cartilage)

(iii) प्रत्यास्थ या इलास्टिक उपास्थि (Elastic cartilage)

(i) काचाभ या हायलीन उपास्थि (Hyaline cartilage)- यह उपास्थि कोशिकाओं तथा स्वच्छ समांशी मैट्रिक्स की बनी होती हैं। इसमें तन्तु ऊतक (Fibrous tissue) बिल्कुल नहीं होते हैं। यह नवीन असस्था में अर्द्धपारदर्शक नीलापन लिए हुए श्वेत पदार्थ सा दिखाई देता है। इसका मैट्रिक्स ठोस और चिकना होता है, जिसमें कोलेजन तन्तु तथा सम्पुट में कोण्ड्रोसाइट नामक कोशिकाएँ पायी जाती हैं।

यह उपास्थि सन्धायक उपास्थि के रूप में अस्थियों के सन्धितल (Articular ends) पर वृद्धि की ओर अगसर लम्बी अस्थियों के अधिवर्ष (Epiphysis) तथा अस्थिवर्ध यानि दीर्घास्थि कांड (Diaphysis) पर, प्र्शुकाओं के अग्र (Anterior) सिरे पर पायी जाती है। यह उपास्थि नाक, बहिः कर्ण–कुहर (External auditory meatus), स्वर यन्त्र (Larynx), श्वास प्राणाल (Trachea) तथा श्वासनलियों (Bronchial tubes) आदि में भी पायी जाती है। विभिन्न स्थानों पर इसके नाम भी भिन्न–भिन्न हो जाते हैं, जैसे पर्शुकाओं के पास इन्हें पर्शुका उपास्थि (Articular Cartilage) तथा विकासशील अस्थियों के बीच इन्हें अधिवर्ध उपास्थि (Epiphyseal cartilage) कहते हैं।

(ii) तन्तुमय उपास्थि (Fibro-cartilage)- इस प्रकार उपास्थि वहाँ विद्यमान होती है, जहाँ कि तनावयुक्त शक्ति के साथ लचीलेपन एवं दृढ़ता की आवश्यकता होती है। यह मैट्रिक्स में श्वेत तन्तुओं के सघन पिण्डों के भरने से बनती है। यह कशेरुकाओं के कार्यों (Vertebral bodies) के बीच में गद्दियों के रूप में पायी जाती है, जिन्हें अन्तरा–कशेरुका चक्रिकाएँ (Intervertebral discs) कहा जाता है। यह उपास्थि एक अन्तरासन्धि उपास्थि (Inter-articular cartilage) के रूप में घुटनों के जोड़ों की अस्थियों की सन्धायक सतहों के बीच में पायी जाती है। जिन्हें अर्द्धचन्द्राकार उपास्थि (Semilunar cartilage) कहा जाता है। अस्थियों को जोड़ने वाले स्नायुओं (Semilunar cartilage) के रूप में तथा जघन सन्धानक (Pubic symphysis) की उपास्थि गद्दी में यही उपास्थि पायी जाती है।

(iii) प्रत्यास्थ उपास्थि (Elastic cartilage)- यह उपास्थि उन भागों में पायी जाती है जहाँ सहारे के साथ–साथ लचीलेपन की आवश्यकता होती है। इसका रंग पीला होता है तथा इसमें बहुत से प्रत्यास्थ तन्तु विद्यमान रहते हैं। मैट्रिक्स में असंख्य प्रत्यास्थ (Elastic) तन्तु की विद्यमानता होने से यह हायलीन कार्टिलेज से भिन्न हो जाती है। मैट्रिक्स में इलास्टिक तन्तु के अतिरिक्त कोलेजन तन्तु भी विद्यमान होते हैं। प्रत्यास्थ तन्तुओं के बीच–बीच में कोण्ड्रोसाइट नामक कोशिकाएँ भी पड़ी होती हैं।

इस प्रकार के ऊतक में लचीलापन बहुत होता है अतः दबाने या मोड़ने के तुरन्त बाद यह पुनः अपनी पूर्व स्थिति में लौट आता है। यह कर्ण–पाली (Pinna), यूस्टेचियन नली, कण्ठच्छद (Epiglottis) एवं स्वरयन्त्रज कार्टिलेज के कुछ भाग में पायी जाती है।

8. अस्थि ऊतक (Bone or osseous tissue)

समस्त संयोजी ऊतकों में यह सबसे अधिक कठोर एवं दृढ़ ऊतक है, जो कंकाल (Skeleton) का निर्माण करता है। यह अस्थि कोशिकाओं (Bone cells), कैल्सियम लवणों तथा अन्तराकोशिकीय आधार–पदार्थ का बना होता है। यह सब अस्थ्यावरण (Periosteum) से आच्छादित रहते हैं। इसमें तीन तरह की अस्थि कोशिकाएँ– ऑस्टियोब्लास्ट, ऑस्टियोसाइट तथा ऑस्टियोक्लास्ट होती है, जो परस्पर सम्बद्ध रहती है।

घनत्व एवं कठोरता के आधार पर अस्थि को दो वर्गों में विभाजित किया गया है–

(i) सघन अस्थि (Compact or dense bone)

(ii) सुषिर अस्थि (Cancellated or spongy bone)

(i) सघन अस्थि– समस्त अस्थियों की बाह्य परत तथा दीर्घास्थियों के काण्ड (Shaft) सघन अस्थि ठोस प्रतीत होती है परन्तु इसकी अनुप्रस्थ काट (Transverse section) का सूक्ष्मदर्शीय परीक्षण करने पर चक्रों की एक डिजाइन–सी दिखाई देती है। प्रत्येक चक्र के मध्य में एक नलिका पायी जाती है, जिसे हैवरसीयन–नलिका (Haversian canal) कहते हैं, इसमें रक्त वाहिनियाँ लसीका वाहिनियाँ, तन्त्रिकाएँ एवं कुछ मज्जा कोशिकाएँ रहती हैं, जो चारों ओर से अस्थियों की तहों (Plates) से घिरी होती है। ये विभिन्न आकार की चक्राकार तहें होती हैं जो एक दूसरे के भीतर स्थित रहती है, इन्हें हैवरसीयन पटलिका (Haversian lamellae) कहते हैं। पास–पास सटी इन तहों के मध्य में सूक्ष्म रिक्त स्थान (गर्त) होते हैं, जिन्हें रिक्तिकाएँ (Lacunae) कहते हैं। इनमें लसीका (Lymph) तथा अस्थि कोशिकाएँ (Osteocytes) पायी जाती हैं। प्रत्येक रिक्तिका (Lacuae) के चारों ओर सूक्ष्म लहरदार नलिकाएँ निकलती हैं, जिन्हें सूक्ष्म प्रणालिकाओं द्वारा प्रत्येक रिक्तिका (Lacunae) एक–दूसरे से तथा अन्ततः हैवरसीयन–नलिका से सम्बन्धित रहती हैं। रक्त से निकला हुआ लिम्फ या लसीका हैवरसीयन नलिका में होकर, प्रणलिकाओं में होता हुआ, रिक्तिकाओं की गर्तिकाओं में पहुँच जाता है तथा वहाँ पर स्थित अस्थि कोश्कि का पोषण करता है। ये सभी रचनाएँ मिलकर हैवरसीयन–तन्त्र (Haversian system) कहलती हैं।

(ii) सुषिर अस्थि– नग्न नेत्रों से देखने पर इस प्रकार की अस्थि खोखली या स्पन्जी दिखायी देती है। इसकी अनुप्रस्थ (Transverse section) का सूक्ष्मदर्शीय परीक्षण करने पर हैवरसीयन–नलिकाएँ सघन अस्थि की अपेक्षा बहुत बड़ी–बड़ी होती हैं और पटलिकाएँ बहुत कम होती हैं, जिससे अस्थि की अनुप्रस्थ काट मधुमक्खियों के छतों की भाँति प्रतीत होती है। सुषिर अस्थि में हमेशा लाल अस्थि मज्जा (Red bone marrow) पायी जाती है। यह कोमल कार्बनिक पदार्थ रक्तोत्पादक होता है तथा इससे लाल रक्त कोशिकाओं की उत्पत्ति होती है।

सुषिर अस्थि, चपटी अस्थियों के आन्तरिक भाग, दीर्घास्थियों के गोलाकार सिरों, पर्शुकाओं, तथा कशेरुकाओं के कार्यों (Body of the vertebrae) आदि में पायी जाती है। सघन अस्थि की पतली तह से ढकी रहने वाली अस्थियाँ भी भीतर से सुषिर (Spongy) रहती हैं।

अस्थावरण (Periosteum)

यह एक तन्तुमय (Fibrous) तथा वाहिकीय (Vascular) झिल्ली होती है, जो प्रायः पूर्णरूपेण अस्थियों को आच्छादित किए रहती है। इसमें बाह्य एवं आन्तरिक दो परतें होती हैं। बाह्य परत श्वेत–तन्तुमय ऊतकों की बनी होती है, जिसमें रक्तकोशिकाएँ तथा लसीकाएँ होती हैं और इससे ही अस्थि को पोषण मिलता है। आन्तरिक परत, अस्थि के ठीक ऊपर उसी से सटी रहती है, तथा ऑस्टियोब्लासस्ट्स एवं ऑस्टियोक्लास्ट्स नामक कोशिकाओं से बनी होती है। इन्हीं कोशिकाओं के शेषांश (Remnants) मूल अस्थि की रचना में भाग लेते हैं।

आस्थावरण (Periosteum), अस्थि को ढँकती है तथा उसकी 'अति वृद्धि' पर नियन्त्रण रखती है। सामान्य अस्थि निर्माण की प्रथम–नियन्त्रक, अस्थ्यावरण ही होती है।

इससे अस्थि को पोषण मिलता है। अस्थ्यावरण से ही पेशियाँ तथा उनकी कण्डराएँ सलग्न रहती हैं। अस्थ्यावरण की निचली परत, नवीन अस्थि के निर्माण की भी क्षमता रखती है। अपनी इसी विशेषता के कारण ये अस्थि भंग के विरोहरण (Healing) में सहायता देती है। अस्थि का विकास (Ossification) धीरे–धीरे, कई अवस्थाओं को पार करने के उपरान्त पूर्ण होता है।

9. लसीकाभ ऊतक (Lymphoid tissue)

लसीका (Lymph) भी एक प्रकार का संयोजी ऊतक होता हैं। इसमें एक अर्द्ध ठोस (Semi-solid) मैट्रिक्स होता है, जिसमें लसीका कोशिकाएँ (Lymphocytes) अधिक संख्या में पायी जाती हैं, इनका अधिकांश भाग केन्द्रक से ही भरा रहता है। लसीकाभ ऊतकों में इस प्रकार की कोशिकाएँ सर्वत्र बिखरी रहती हैं। इनके अतिरिक्त सूक्ष्म भित्तियों वाली नलिकाएँ–लसीका वाहिनियाँ भी होती हैं, जिनमें वाल्व भी रहते हैं और इन्हीं वाल्वों के कारण लसीका एक दिशा में बहती है।

इस प्रकार के ऊतक लसीका पर्वों (Lymph nodes), प्लीहा (Spleen), टान्सिल्स, एपेंडिक्स, छोटी एवं बड़ी आँतों की श्लेष्म कला, अस्थिमज्जा, थाइमस ग्रन्थि आदि में पाये जाते हैं। लसीका ग्रन्थि में लसीकाभ ऊतक समूहों में रहते हैं।

लसीकाभ ऊतकों में रोगक्षमता उत्पन्न करने वाले पदार्थों (Immunizing substances) का निर्माण होता है, जो शरीर को रोगमुक्त रखने में सहायक होते हैं।

10. श्लेष्माभ ऊतक (Mucoid tissue)

श्लेष्माभ ऊतक अवकाशी ऊतकों के ही रूपान्तरित भ्रूणीय ऊतक होते हैं, जिनमें तन्तुमय ऊतकों का अभाव रहता है तथा कोशिकाएँ लगभग समांगी (Homogeneous) जैली के समान आधार–पदार्थ (मैट्रिक्स) में इधर–उधर बिखरी होती हैं तथा साथ ही कुछ तन्तु भी रहते हैं। इस तरह के ऊतक नाभिरज्जु (Umbilical cord) में ह्वारटन्स जैली (Wharton's jelly) के रूप में तथा वयस्कों में नेत्र–काचाभ द्रव (Vitreous humour) में पाये जाते हैं।

<u>3)पेशीय ऊतक (Muscular tissue)</u>

पेशीय ऊतक संकुचनशील तन्तुओं से मिलकर बना होता है, जिससे शरीर तथा शरीर के किसी भाग में गति होती है। उत्तेजित होने पर, संकुचित होने की क्षमता पेशीय ऊतक की विशिष्टता है। इसमें उत्तेजनशीलता (Irritability), चालकता (Conductivity) तथा लचीलेपन (Elasticity) का गुण भी होता है। पेशीय ऊतक में अन्तराकोशिकी पदार्थ बहुत कम होता है, जिससे तन्तु या कोशिकाएँ बहुत पास–पास सटी होती है।

पेशियाँ तीन प्रकार की होती है–

(i) ऐच्छिक पेशी (Voluntary muscle)
(ii) अनैच्छिक पेशी (Involuntary muscle)
(iii) हृदपेशी (Cardiac muscle)

(i) ऐच्छिक पेशी (Voluntary muscle)

इसे **रेखित पेशी** (Striated muscle) भी कहते हैं। इन पेशियों को अपनी इच्छानुसार संकुचित एवं प्रसारित किया जा सकता है जिससे शरीर के विभिन्न अंगों में गति होती है अतः इन्हें ऐच्छिक पेशियाँ कहा जाता है। चूंकि ये पेशियाँ अस्थियों से संलग्न रहती हैं, इसलिए इन्हें **कंकालीय पेशियाँ** (Skeletal muscles) भी कहते हैं।

ऐच्छिक पेशी बहुत से तन्तुओं से मिलकर बनी होती हैं जो संयोजी ऊतकों द्वारा परस्पर जुड़े होते हैं। प्रत्येक पेशी तन्तुकों (Myofibrils) का बना होता है। यह साइटोप्लाज्म द्वारा निर्मित दृढ़ कोशिका कला (Cell membrane) में बन्द रहता है, जिसे सार्कोलीमा (Sarcolemma) कहते हैं। प्रत्येक पेशी तन्तु में कई अण्डाकार केन्द्रक होते हैं, जो सार्कोलीमा के ठीक नीचे स्थित रहते हैं। पेशीतन्तु में माइटोकॉण्ड्रिया तथा गाल्जी–अंगक भी रहते हैं। कोशिका पदार्थ में असंख्य अनुदैर्ध्य पेशीतन्तुक (Myofibrils), जिन्हें सार्कोस्टाइल (Sarcostyles) कहते हैं तथा एक स्वच्छ तरल पदार्थ जिसे सार्कोप्लाज्म (Sarcoplasm) कहते हैं, विद्यमान रहते हैं।

प्रत्येक तन्तु एक–दूसरे के समान्तर होता है और जब इन्हें सूक्ष्मदर्शी में देखा जाता है, तो इन पर सुस्पष्ट एकान्तरतः (Alternately) आड़ी काली तथा सफेद पट्टियाँ होती है। जिससे ये धारीदार सी दिखायी देती हैं। प्रत्येक सफेद पट्टी की सीमा रेखा पर बिन्दुओं की क्षैतिज पंक्तियामें से, आमने–सामने वाले बिन्दुक, एक सूक्ष्म पतली रेखा से जुड़े दिखाई देते हैं। यह रेखा काली पट्टी को पार करती हुई स्थित रहती है। प्रत्येक श्वेत पट्टिका एक और रेखा, जिसे क्रॉसीज कला या डॉबीस लाइन (Krause's membrane or Dobies line) कहते हैं, के द्वारा ठीक मध्य से दो भागों में बँट जाती है। डॉबीस लाइन (Dobies line) प्रत्येक सार्कोस्टाइल को छोटे–छोटे विभागों में, जिन्हें सार्कोमीयर (Sarcomere) कहते हैं, विभक्त कर देती है।

प्रत्येक सार्कोमीयर में, इस प्रकार से एक काली पट्टिका (Asrcous element) तथा दोनों ओर की आधी–आधी श्वेत पट्टिका रहती हैं। प्रत्येक सार्कस–तत्व ठीक मध्य में एक और रेखा द्वारा विभाजित रहता है। अनुदैर्ध्य दिशा में इसमें नलियाँ रहती हैं, जिनका खुला मुख श्वेत पट्टिका में रहता है तथा बन्द पिछला सिरा काली पट्टिका की मध्य रेखा डोबी लाइन में रहता है। जब पेशी मे संकुचन होता है, तो सार्कोप्लाज्म इन नलिकाओं में भर जाता है और इस क्रिया से काली पट्टिका, साइकोप्लाज्म से भर जाने से फूल जाती है, तथा श्वेत पट्टिका सिकुड़ जाती है।

इस तरह की पेशियाँ बीच में मॉसल (मोटी) तथा दोनों सिरों पर बहुत पतली होती हैं। इन सिरों को कण्डराएँ (Tendons) कहते हैं, जो तन्तुमय ऊतक के बने होते हैं। इन्हीं कण्डराओं के द्वारा पेशी अस्थि से जुड़ी होती है। कंकालीय पेशियाँ (Skeletal muscles) दो तरह की होती हैं– जो एक दूसरे के विपरीत कार्य करती हैं। अंगों को मोड़ने वाली पेशियों को आकुंचनी (Flexor) तथा अंगों को फैलाने या उन्हें सीधा करने वाली पेशियों को प्रसारिणी (Extensor) कहा जाता है।

(ii) अनैच्छिक पेशी (Involuntary muscle)

इसे **अरेखित** (Unstriated) तथा **चिकनी** (Smooth) पेशी भी कहते हैं। इस वर्ग की पेशियाँ इच्छाधीन नहीं होती हैं। इनमें अनैच्छिक तन्त्रिका तन्त्र (Involuntary nervous system) की नियन्त्रण व्यवस्था रहती है।

इस प्रकार की पेशी का सूक्ष्मदर्शी द्वारा परीक्षण करने पर इसमें तकली के आकार के (Spindle shaped) लम्बे तन्तु पाए जाते हैं। इनके मध्य में केवल एक अण्डाकार न्यूक्लियस होता है। इस प्रकार के पेशी तन्तु में पट्टियाँ नहीं पायी जातीं जिससे इन्हें अरेखित पेशी कहा जाता है। ऐसी पेशियाँ किसी अस्थि से जुड़ी नहीं होती बल्कि किसी अन्तरांग (Viscera) से जुड़ी होती हैं, जिससे इन्हें **अन्तरांगी पेशी** (Visceral muscle) भी कहा जाता है। इस वर्ग की पेशियाँ खोखले अभ्यन्तरांग ट्यूब, ग्रन्थि की नलियों, श्वसनीय–पथ, आहारनल, मूत्राशय, मूत्र–नलियों, गर्भाशय, डिम्बवाहिनियों आदि की भित्तियों, प्लीहा, त्वचा, नेत्रगोलक आदि में पायी जाती हैं। इस प्रकार की पेशियों की सहायता से आहारनाल में क्रमाकुंचक गति (Peristaltic movement) द्वारा भोजन का निकलना, डिम्बवाहिनियों में डिम्बों का गर्भाशय की ओर खिसकना, आदि क्रियायें स्वतः होती हैं।

संवरणी या अवरोधिनी पेशी (Sphincter muscle)

यह एक प्रकार की अनैच्छिक पेशी होती है, जो वृत्ताकार पेशी तन्तुओं की बनी होती है। यह किसी छिद्र के मुख पर अथवा किसी नली के बाह्य एवं आन्तरिक द्वारों पर विद्यमान होती है। जब यह संकुचित होती है, जो छिद्र अथवा नली के द्वार कसकर बन्द हो जाते हैं, उदाहरणतः– गुदीय संवरणी (Anal sphincter) जो गुदा को बन्द करती है; आमाशय एवं ग्रासनली के जुड़ने वाले भाग पर विद्यमान कार्डियक संरणी (Cardiac sphincter) आदि।

(iii) हृदय पेशी (Cardiac muscle)

इस वर्ग की पेशियाँकेवल हृदय की भित्तियों में ही पायी जाती है। इनमें ऐच्छिक पेशियों की तरह पट्टियाँ होती हैं परन्तु इनकी क्रिया अनैच्छिक होती है अर्थात् इच्छा को नियन्त्रण नहीं होता। ये मृत्यु पर्यन्त बिना विश्राम किए संकुचित एवं शिथिल होती रहती हैं।

हृदय पेशी का रंग लाल होता है। इसके तन्तु छोटे तथा बेलनाकार होते हैं, एवं अनुदैर्ध्य दिशा में आयताकार तथा अनुप्रस्थ दिशा में बहुतलीय होते हैं। प्रत्येक तन्तु में केवल एक न्यूक्लियस रहता है, जो प्रायः मध्य में स्थित रहता है। हृदय पेशी में अनुदैर्ध्य दिशा तथा अनुप्रस्थ दिशा, दोनों में पट्टियाँ होती हैं, परन्तु ये पट्टियाँ अधूरी एवं अस्पष्ट–सी रहती हैं। पेशी आवरण (Sarcolemma) भी अस्पष्ट एवं अधूरा रहता है। तन्तुओं में से शाखाएँ निकली रहती हैं, जो अन्य तन्तुओं से निकली शाखाओं से मिलती जाती हैं तथा इस प्रकार इनमें जीवद्रव्य का सातत्य (Protoplasmic continuity) बना रहता है।

4)तंत्रिका ऊतक (Nervous tissue)

तंत्रिका ऊतक विशेष रूप से शरीर के बाहर एवं अन्दर से संवेदनों को ग्रहण करता है, उत्तेजित होने पर यह ऊतक अन्य ऊतकों तक आवेगों को शीघ्रता से ले जाता है। तंत्रिका ऊतक तंत्रिका कोशिका (Nerve cell) तथा उनके प्रविर्धित तन्तुओं (Nerve

fibres) से मिलकर बनते हैं। इन दोनों के अतिरिक्त तंत्रिका कोशिकाओं को सहारा देने के लिए कुछ तंत्रिका बन्ध (Neuroglia) नामक संयोजी ऊतक भी रहते हैं।

एक तंत्रिका कोशिका अपने समस्त प्रवर्धित तन्तुओं सहित **न्यूरॉन** (Neuron) कहलाती है। न्यूरॉन ही तन्त्रिका तन्त्र की कार्यात्मक एवं रचनात्मक इकाई होती है। प्रत्यक तंत्रिका कोशिका (न्यूरॉन) के मुख्यतः निम्न दो भाग होते हैं–

1. कोशिका काय (Cell body)
2. प्रवर्ध (Processes)
    (i) अक्षतन्तु (Axon)
    (ii) पार्श्वतन्तु (Dendrites)

(1) कोशिका काय (Cell body)

तन्त्रिका कोशिका (न्यूरॉन) में एक बड़ा तथा अनियमित आकार का कोशिका काय (Cell body) होता है, जिसके मध्य में एक बड़ा न्यूक्लियस होता हैं इसके बाहर कणिकामय साइटोप्लाज्म रहता है। कोशिका काय में कई छोटे–छोटे प्रवर्ध होते हैं जिन्हें पार्श्वतन्तु (Dendrite) एवं अक्षतन्तु (Axon) कहते हैं। इन्हीं के द्वारा तन्त्रिका आवेग कोशिका काय तक पहुँचते हैं अथवा उससे बाहर निकलत हैं।

(2) प्रवर्ध (Processes)

(i) अक्षतन्तु (Axon)

अक्षतन्तु (एक्सॉन) चालक और अपवाही प्रवर्ध (Eferent process) होता है तथा तन्त्रिका आवेगों को कोशिका काय से दूर ले जाता है। इसका उद्‌गम न्यूरॉन की कोशिका काय के विशेष स्थान (Axon-Hillock), से होता है, तथा प्रायः काफी लम्बा तथा एकाकी होता है।

अक्षतन्तु या एक्सॉन में चारों ओर एक पतली झिल्ली होती है, जिसे एक्सोलेमा कहते हैं। यह कोश्किा काय के साइटोप्लाज्म के पसार को बन्द किए होती है। एक्सॉन माइलिन से युक्त या माइलिन रहित, दो प्रकार का होता है। बड़े तथा परिसरीय तन्त्रिकाओं के एक्सॉनों के ऊपर श्वेत वसीय पदार्थ माइलिन का आवरण चढ़ा होता है। इसमें एक्सॉन की लम्बाई में व्यवस्थित स्कवैन कोशिकाओं की एक श्रृंखला होती है। स्कवैन कोश्किा की सबसे बाहरी परत को न्त्रिकावरण या न्यूरिलेमा (Neurilema) कहा जाता है। माइलिन बीच–बीच में संकुचित होकर विभाजित हो जाता है। विभाजन के स्थान को नोड ऑफ रैन्वियर कहते हैं। ये तन्त्रिका आवेगों को शीघ्रता से संचारित होने में सहायता करते हैं। गण्डिकापश्च (Postganglionic) तन्तु तथा केन्द्रिय तन्त्रिका तन्त्र में कुछ छोटे तन्तु माइलिन रहित होते हैं।

(ii) पार्श्वतन्तु (Dendrite)

पार्श्वतन्तु (डैण्ड्राइट) सांवेदनिक तथा अभिवाही प्रवर्ध (Afferent process) होते हैं। इनमें निसल कणिका (Nissl's granules) विद्यमान रहते हैं। जबकि ये एक्सॉन में नहीं होते हैं। इस प्रकार के तन्तु बहुत छोटे होते हैं, परन्तु इनमें से बहुत–सी शाखाएँ फूटती हैं। तन्त्रिका कोशिका (न्यूरॉन) में इनकी संख्या भिन्न–भिन्न होती है।

तन्त्रिका कोशिका में कई ध्रुव रहते हैं। इनके अनुसार ही इनके नाम होते हैं। जब इसमें एक भी ध्रुव नहीं रहता है, तो यह अध्रुवीय (Apolar) कहलाता हैं एक ध्रुव वाले को एकध्रुवीय (Unipolar) कहते हैं, दो ध्रुव वाले को द्विध्रुवीय (Bipolar) तथा अनेक ध्रुवों वाले को बहुध्रुवीय (Multipolar) कहते हैं। प्रत्येक प्रकार की कोशिका में एक एक्सॉन अवश्य रहता है। शेष सभी डेण्ड्राइट होते हैं।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1.मानव शरीर के मुख्य–––विभाग है।
2.मानव शरीर की मुलभुत इकाई ––––है।
3.कोशिकाओं के समूह को –––कहते है।
4.शरीर के ये भाग जो विशेष कार्य करते है–––कहलाते है।
5.––––संस्थान शरीर के विभिन्न अंग को आकार, आधार एवं द्रढ़ता प्रदान करता है।

1.6 साराश –

प्रिय पाठकों उपर्युक्त विवेचन से आप समझ गये होंगे की किस प्रकार से मानव शरीर निर्मित हुआ है। इसके मुख्य विभाग कौन–कौन से है तथा कोशिका एवं उतक किस प्रकार से अपना कार्य करते है।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते है, कि मानव शरीर एक जटिल संरचना है। जिसके चार प्रमुख विभाग है– सिर, ग्रीवा ,जड़ तथा साखायें अथवा हाथ पैर । यह शरीर आठ संस्थानो के माध्यम से अपनी विभिन्न गतिविधियों का संचालन करता है, जैसे कि अस्थि तंत्र पैशीय तंत्र तंत्रिका तंत्र अंतस्रावी तंत्र इत्यादि कोशिका मानव शरीर की मुलभूत इकाई तथा बहुत सारी कोशिकायें मिलकर एक समूह बनाते है जिसे उतक कहा जाता है। जो शरीर की विभिन्न गति विधियों में सहायता प्रदान करता है।

1.7 – शब्दावली

कोशिका – मानव शरीर की मुलभूत इकाई

उतक – कोशिकाओं कासमूह

ऊर्ध्व– उपर

डायफ्राम –वक्ष स्थल तथा पेट को विभाजित करने वाली पैशीय

अस्थि– हड्डी

ऐच्छिक पैशीय – जिन पैशीओं की क्रियाओं पर नियंत्रण रहता है।

अनैच्छिक पैशीय – जिन पैशीओं की क्रियाओ पर नियंत्रण नहीं होता है।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उतर

1.चार 2.कोशिका 3.ऊतक 4.अंग या अवयव 5.अस्थि

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
3. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
4. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
5. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1.2.3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली
6. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा
7. सक्सेना, ओ0पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।
8. Chaurasis's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 मानव शरीर की संरचना को स्पष्ट करते हुये शरीर के आठ प्रमुख संस्थानों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

प्रश्न 2 कोशिका की संरचना एवं कार्यो का वर्णन किजिए।

प्रश्न 3 ऊतक की संरचना एवं कार्यो का वर्णन कीजिए।

इकाई–2 अस्थियों की संरचना, प्रकार एवं कार्य

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अस्थि तंत्र

2.4 अस्थि तंत्र के कार्य

2.5 अस्थियों की संरचना

2.6 अस्थि तंत्र के प्रकार

2.7 अस्थि तंत्र मे हड्डियां की संख्या

2.8 सारांश

2.9 शब्दावाली

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 – प्रस्तावना–

प्रिय पाठकों, इससे पूर्व की ईकाई में आपने मानव शरीर की संरचना, इसके मुख्य विभाग तथा कोशिका एवं ऊतक की संरचना एवं कार्यो का अध्ययन किया है। प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय हैं, अस्थि तंत्र की संरचना एवं कार्य प्रणाली का अध्ययन करना ।

प्रिय विद्यार्थियों , जैसाा कि हम सभी जानते है। कि किसी भी कार्य को शुरू करने से पहले एक आकार की जरूरत होती है। जैसे कि जब किसी नये भवन का निर्माण होता है तो सर्वप्रथम नींप रखी जाती है और उस नींव पर ही पूरा भवन खड़ा होता है और यदि वह नींव कमजोर हो तो वह भवन भी लम्बे समय तक टिक नहीं सकता उसी प्रकार मानव शरीर को वह आधार प्रदान करने का कार्य अस्थि या कंकाल तंत्र ही करता है। यह शरीर को न केवल आधार प्रदान करता है। वह शरीर के कोमल अंगों के सुरक्षा कवच के रूप में भी कार्य करता है। इस अस्थि तंत्र के कारण ही शरीर के अन्य सभी तंत्र अपना अस्तित्व कायम रख पाते है। अतः कंकाल तंत्र मानव शरीर का आधार तंत्र है।

2.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

–अस्थि तंत्र क्या है– इसे स्पष्ट कर सकेंगे।

–अस्थि तंत्र के प्रमुख कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।

–अस्थि तंत्र की संरचना को स्पष्ट कर सकेंगे।

–अस्थि तंत्र को प्रमुख भेदों का वर्गीकरण कर सकेंगे।

–मानव शरीर में पायी जाने वाली हड्डियों का वर्णन कर सकेंगे।

–अस्थि तंत्र की उपयोगिता का स्पष्ट कर सकेंगे।

2.3 अस्थि तंत्र

मनुष्य शरीर ढँचा अस्थियों (हड्डियों) से बना है। हड्डियों के इस ढाँचे को अस्थि पंजर अथवा कंकाल (Skeleton) कहा जाता है। यह अस्थि–पंजर ही मांस, चर्म शिराएँ धमनियाँ, स्नायु आदि कोमल अंगों को शरीर के भीतरी गहवरों में सुरक्षित रखने का आधार है। मांस, पेशी, पेशीबन्धन, बन्धनी, सौत्रिक तन्तु आदि इसी से लिपटे रहते हैं। मानव–शरीर का वाहन स्वरूप इसी ढाँचे के अनुरूप होता है।

2.4 अस्थि तंत्र के कार्य

अस्थि (Bone) एवं अस्थि–पंजर (Skeleton) के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

1. शरीर को आकार देना।
2. शरीर में दृढ़ता लाना।
3. भीतरी कोमल अंगों की रक्षा करना।
4. पेशियों को मुड़ने का स्थान देना।
5. शरीर की सन्धियों को व्यवस्थित करना और शरीर को कार्य करने तथा चलने–फिरने आदि के योग्य बनाना।

विभिन्न हड्डियाँ ही आपस में मिलकर सन्धियाँ बनाती हैं तथा उन्हें गति प्रदान करने में सहायता देती हैं। लम्बी अस्थियों द्वारा रक्त के लाल कण भी तैयार किये जाते हैं। अस्थि–पंजर में कुछ हड्डियाँ लम्बी, कुछ गोल, कुछ चपटी, कुछ टेढ़ी–मेढ़ी और कुछ बेलनाकार होती हैं। इनकी लम्बाई–चौड़ाई भी अलग–अलग पायी जाती है। सम्पूर्ण शरीर में छोटी–बड़ी हड्डियों की कुल संख्या 206 है। इनका भार शरीर के भार का प्रायः 16वां हिस्सा होता है।

हाथ–पाँव आदि जिन अंगों को अधिक काम करना पड़ता है, उनकी हड्डियाँ अधिक लम्बी (Long) तथा कलाई आदि की हड्डियाँ छोटी (Short) होती हैं। कूल्हा, कनपटी, गाल, खोपड़ी आदि की हड्डियाँ टेढ़ी–मेढ़ी (Irregular) होती हैं। लम्बी हड्डियों के दो सिर होते हैं (Head) तथा एक मध्य भाग (Central Shaft) होता है।

2.5 अस्थियों की संरचना

यदि किसी हड्डी को काट कर देखा जाय तो यह ज्ञात होगा कि उसकी सतह ठोस तथा कड़ी अर्थात् कठिन तन्तुओं से निर्मित है और उसके भीतरी भाग में स्पंज की भाँति अनेकों छिद्र हैं। इन छिद्रमय तन्तुओं, जिन्हें जालमय तन्तु भी कहा जाताह है, 'लाल मज्जा' (Red Marrow) भरी रहती है, जिसे 'अस्थि–मज्जा' कहते हैं। परन्तु यह मज्जा छोटी तथा कन्दी हड्डियों के छिद्रमय खाली अंशों में ही पाई जाती है, लम्बी हड्डियों का मध्य भाग इस प्रकार की मज्जा से एकदम भरा हुआ नहीं रहता। ऐसे खोखले स्थानों को 'हड्डियों के बीच की मज्जा–नली' (Medullary cavity) कहा जाता है।

हड्डियों के भीतर पाई जाने वाली मज्जा दो प्रकार की होती है– 1. लाल और 2. पीली। लाल रंग की मज्जा हड्डी के जालमय भाग में तथा पीले रंग की मज्जा हड्डी के सिरों में दिखाई देती है।

अस्थि–पंजर की सभी हड्डियाँ आपस में निम्नलिखित तीन आधारों से सम्बद्ध रहती हैं–

1. सेवनी सन्धि (Sutares)- अर्थात् एक हड्डी का दूसरी हड्डी के नुकीले किनारों से मिलना जैसे– पार्श्वकस्थि (Parictal bones) में पाया जाता है, जिसके द्वारा मूर्द्धा देश बनता है।
2. उपास्थि अथवा कोमलास्थि द्वारा सन्धि–स्थान का गठन।

3. बन्धन (Ligaments) द्वारा।

समस्त सन्धियाँ एक प्रकार के बहुत कड़े तथा चमकीले पदार्थ से घिरी रहती है, जिन्हें 'सूत्रहीन उपास्थियाँ' (Articular capsule) कहा जाता है। इनके द्वारा हड्डियाँ अपने स्थान पर ठीक–ठीक बनी रहती हैं तथा खिसकने नहीं पातीं।

हड्डियों के उक्त स्थानों पर जहाँ वे एक दूसरों से मिलती हैं, कोमल–अस्थि जैसे पदार्थ का आवरण चढ़ा रहता है, जिसे 'सन्धि–समूहों की उपास्थि' (Articular Cartilage) कहा जाता है।

सभी हड्डियाँ तन्तुमय, शिरा समन्वित झिल्लियों से ढँकी रहती हैं, जिसे अस्थि–आवरण (Periosteum) कहते हैं। इन्हीं जगहों के शरीर का पोषण करने वाली धमनियाँ जिन्हें रक्त वाहिनियाँ कहा जाता है, उन छोटे–छोटे 'अस्थि–छिद्रों' (Foramina) में प्रवेश करती है, जो उनके पटल पर बने होते हैं। यह अस्थि या आवरण जब तक स्वस्थ एवं क्रियाशील बना रहता है, तबतक हड्डियों के दोषों–टूटना, खिसकना आदि को सुधारा जा सकता है, अन्यथा नहीं।

अस्थियाँ का निर्माण सजीव पदार्थ (Organic Matter) तथा खनिज पदार्थ (Mineral Matter) के मेल से होता है। इनमें सजीव पदार्थ का प्रतिशत 33.30 पतिशत तथा खनिज पदार्थ का 66.70 प्रतिशत पाया जाता है।

छोटे बालकों की हड्डियों में सजीव पदार्थ (Organic Matter) प्रतिशत अधिक रहता है, इसी कारण उनकी हड्डियाँ नमनशील होती हैं तथा चोट आदि लगने पर टूटने की बजाय मुड़ सी जाती हैं। परन्तु वृद्ध लोगों की हड्डियों में खनिज पदार्थ (Mineral Matter) की मात्रा बढ़ जाती है, जिसके कारण आघात आदि लगने पर वे टूट जाती हैं।

2.6 अस्थि तंत्र के प्रकार

अस्थि–पंजर को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जाता है–

1. **अक्षय कंकाल (Axial Skeleton)-** इसके अन्तर्गत रीढ़ की हड्डी (Vertibial column), करोटि (Skull), एवं पर्शुकाऐं तथा उरोस्थि (Ribs and Stemum) की हड्डियाँ आती हैं।
2. **अनुबंधीय कंकाल (Appendicular Skeleton)-** इसके अर्न्तगत शाखाओं (Linbs) तथा चक्रों (Gurdles) की अस्थियाँ आती हैं।

परन्तु और अधिक सुविधा के लिए हम कंकाल को निम्नलिखित 3 भागों में विभाजित कर सकते हैं।

1. खोपड़ी अथवा कपाल (Skull)
2. धड (Trunk).
3. भुजाऐं और टांगे (Upper and Lower Linbs)

2.7 अस्थि तंत्र में हड्डियां की संख्या

मनुष्य–शरीर में पाई जाने वाली कुल 206 हड्डियों में से विभिन्न अंगों में निम्नलिखित संख्या में हड्डियाँ पाई जाती हैं–

1. कपाल (Cravium) में	8
2. चेहरा (Face) में	14
3. कान (Ear) में	6
4. रीढ़ (Spinal Column) में	26
5. पसलियों (Ribs) में दोनों ओर 12+12 कुल	24
6. छाती (Sternum) में	1
7. नले (Hyoid Bone) में	1
8. ऊर्ध्व शाखाओ अर्थात् दोनों हाथों में 32+32 कुल	64
9. निम्न शाखाओं अर्थात् दोनों पाँवों में 31+31 कुल	62
कुलयोग	206

पुरुष–शरीर की भाँति स्त्रियों के शरीर में भी कुल 206 हड्डियाँ होती हैं। उक्त हड्डियों की संख्या के सम्बन्ध में विशेष विवरण निम्ननुसार है–

खोपड़ी के अस्थियों में–

(अ)	1. मस्तिष्क (Cravium) भाग में		8
	2. चेहरे (Face) में		14

धड़ की हड्डियों में–

3. दोनों ओर की पसलियों में	12+12	24
4. छाती (Sternum) में		1
5. अक्षकास्थियाँ अथवा हंसली की हड्डियाँ (Collar Bone or Clavicle)		2

(ब)	6. स्कन्धास्थि अथवा कंधे की हड्डी (Shoulder Blade or Scapulla)	2
	7. श्रोणी मेखला (Hip Girdle)	2
	8. कशेरूकाऐं (Vertebre)	33

भुजाओं की हड्डियों में–

(स)	9. प्रगण्डास्थियाँ (Humerus)	2
	10. अन्तः प्रकोष्ठास्थियाँ (Ulna)	2
	11. बहिः प्रकोष्ठस्थियाँ (Radius)	2
	12. मणिबन्ध की अस्थिया (Corpal Bones)	16
	13. शलाकास्थियाँ (Metacarpals)	10
	14. अंगुलास्थियाँ (Phalanges)	28

टाँगों की हड्डियों में–

	15. ऊर्ध्वविकास्थियाँ (Femur)	2
	16. जानुवस्थियाँ (Knee Cap, Patella)	2
	17. अन्तर्जङ्घि (Tibia)	2
	18. बहिर्जङ्घि (Fibula)	2
	19. गुल्फास्थियाँ (Tarsals)	14
	20. अनुगुल्फास्थियाँ (Metatarsals)	10
	21. अंगुलास्थियाँ (Phalanges)	28
	कुलयोग	206

Types of Bone

Compact bone

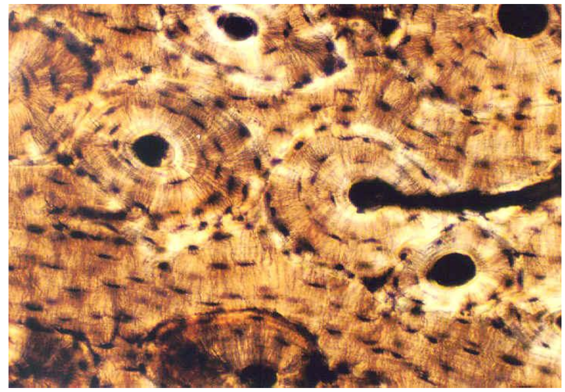

Spongy bone

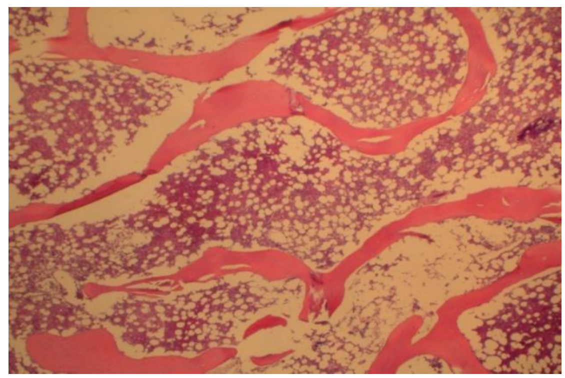

CLASSIFICATION of BONES

According to structure

1. **compact** = solid mass; dense & hard
   = forms the outer layer of bone structure
   = functional unit --- ***Haversian system***

2. **cancellous or spongy** = contain spaces filled with bone marrow
   = incomplete ***Haversian system***

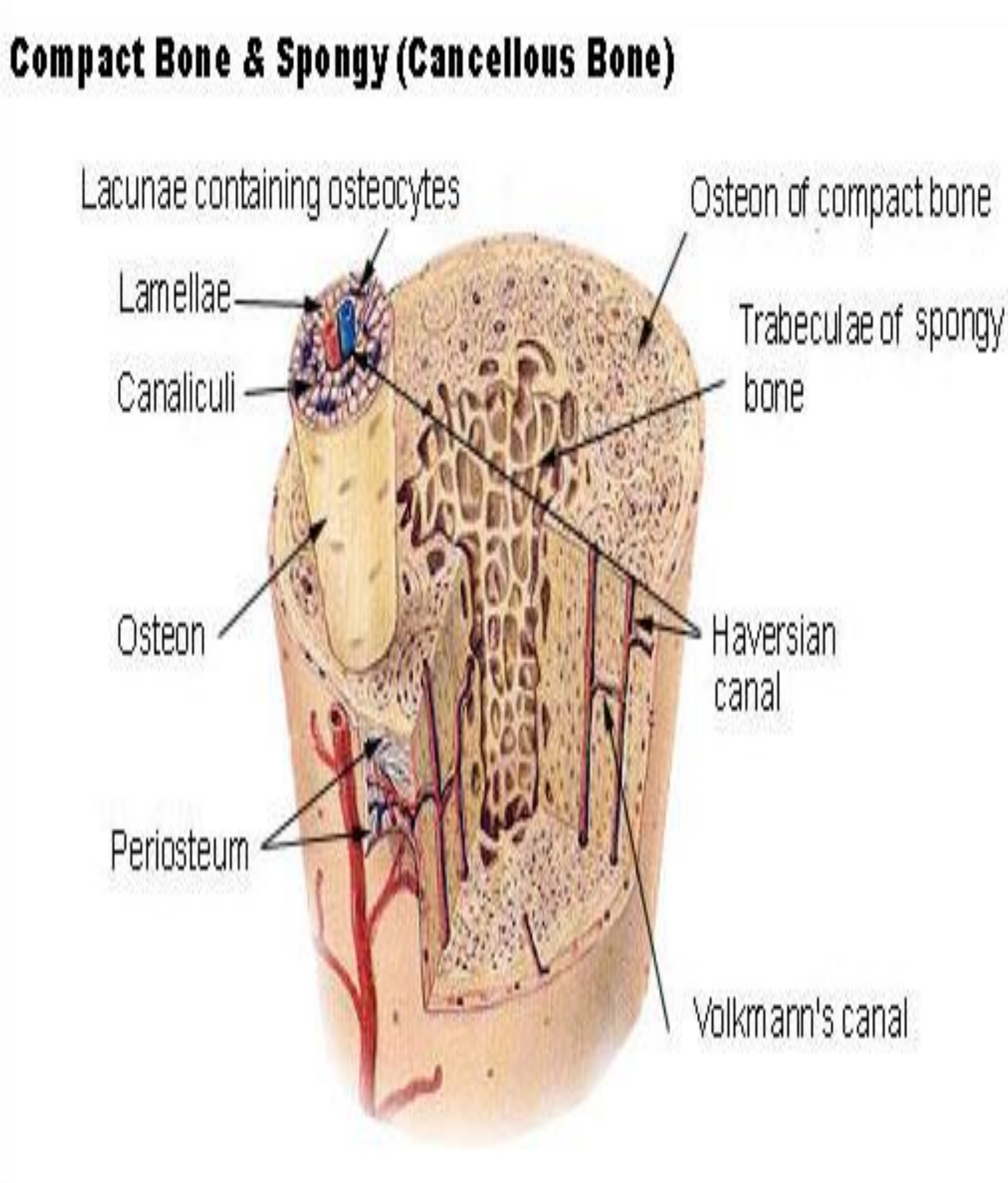
Compact Bone & Spongy (Cancellous Bone)
Lacunae containing osteocytes
Osteon of compact bone
Lamellae
Trabeculae of spongy bone
Canaliculi
Osteon
Haversian canal
Periosteum
Volkmann's canal

CLASSIFICATION of BONES

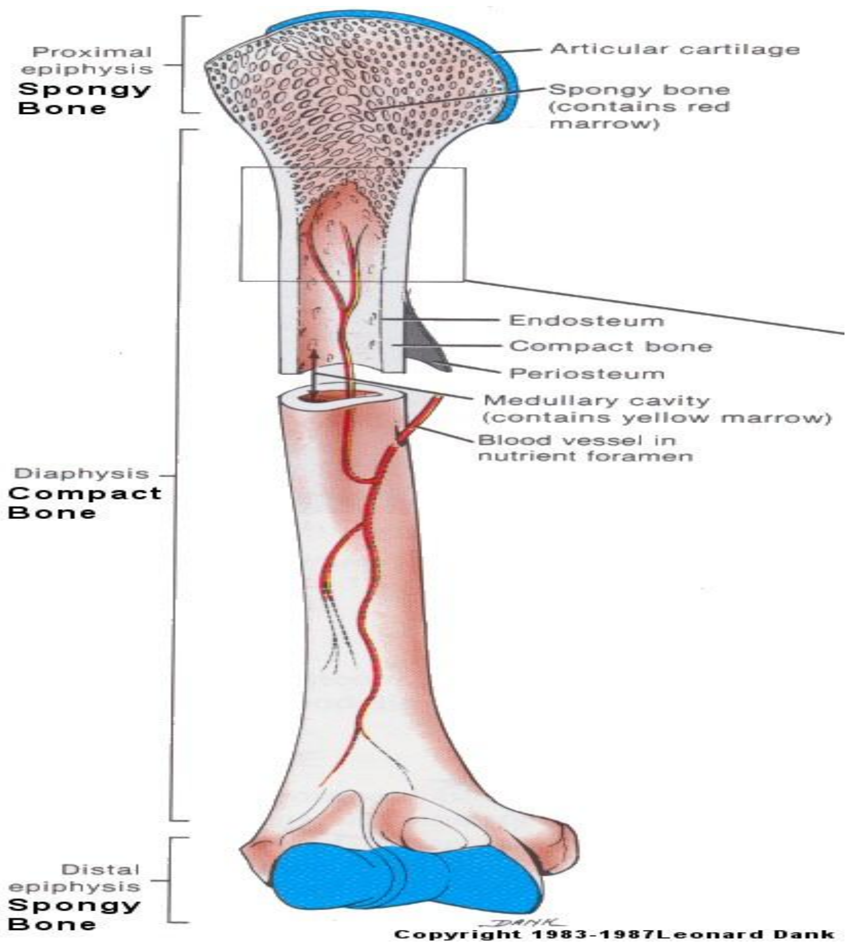

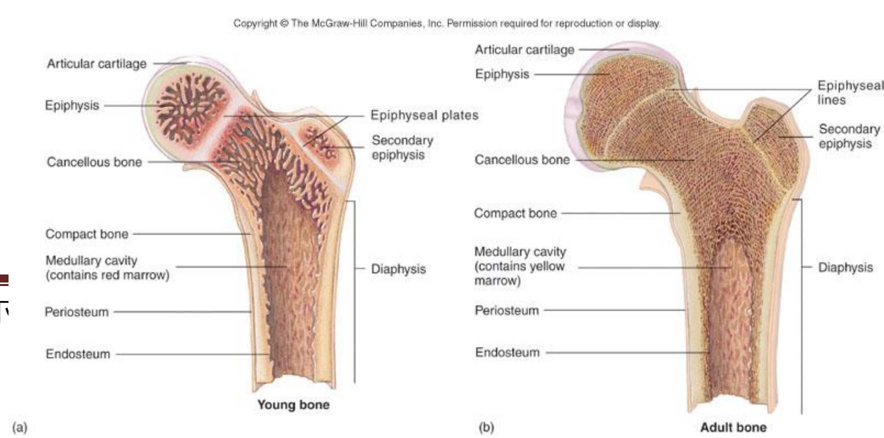

- **According to shape**

1. long bones = length is greater than breadth

= consists of shaft (diaphysis) &
two extremities (epiphysis)

diaphysis = filled with yellow marrow

= cylindrical, large space or canal at the center

= periosteum

epiphysis = made up of cancellous tissue

e.g.: femur, humerus, tibia, fibula, radius, ulna, phalanges

Membranes: **1. periosteum**
2. endosteum

2. short bones = cuboidal in shape

= spongy bone with thin coat of compact bone

= ***sesamoid bone*** -- short bone embedded in a tendon e.g.: patella

e.g.: carpals (wrist), tarsal (ankle) bones

3. flat bones = broad or elongated flat plates

= for protection & muscle attachments

composition: 2 thin layers of compact tse. enclosing a thin layer of spongy bone

e.g.: bones of the skull, sternum, ribs, scapula

4. **Irregular bones** = all other bones not assigned to the previous groups

e.g.: vertebrae
pelvic bones
bones of the base of the skull

- ***According to development***

1. **Membranous** = starts as fibrous membrane, calcium gradually deposited until structure becomes ossified → intramembranous ossification

e.g.: bones of the skull, mandible

2. **Cartilagenous** = starts as cartilage, gradually ossified enchondral or intracartilagenous ossification.

e.g.: long bones

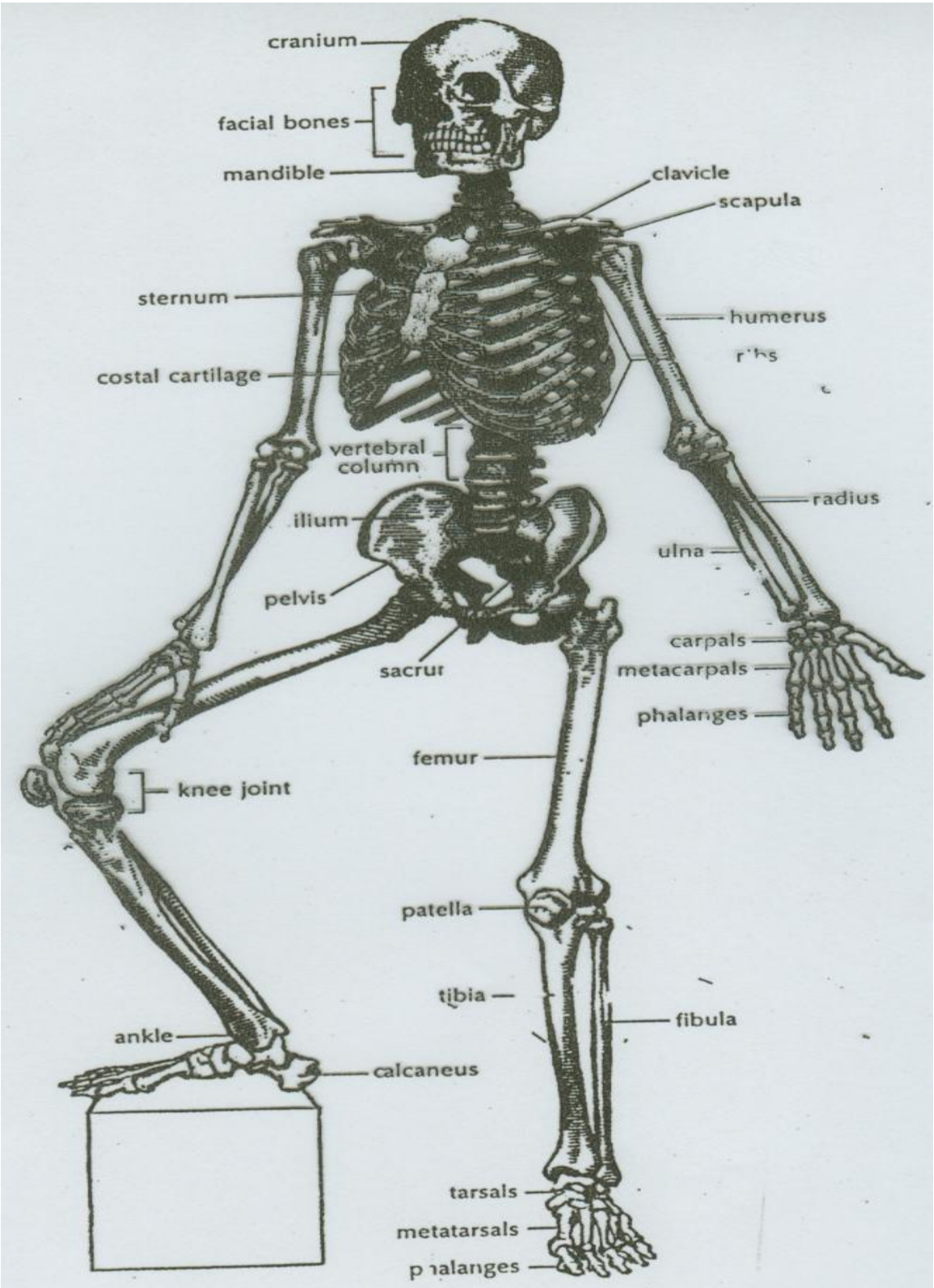
cranium
facial bones
mandible
clavicle
scapula
sternum
humerus
costal cartilage
vertebral column
radius
ilium
ulna
pelvis
carpals
metacarpals
phalanges
femur
knee joint
patella
tibia
fibula
ankle
calcaneus
tarsals
metatarsals

Copyright © The McGraw-Hill Companies, Inc. Permission required for reproduction or display.

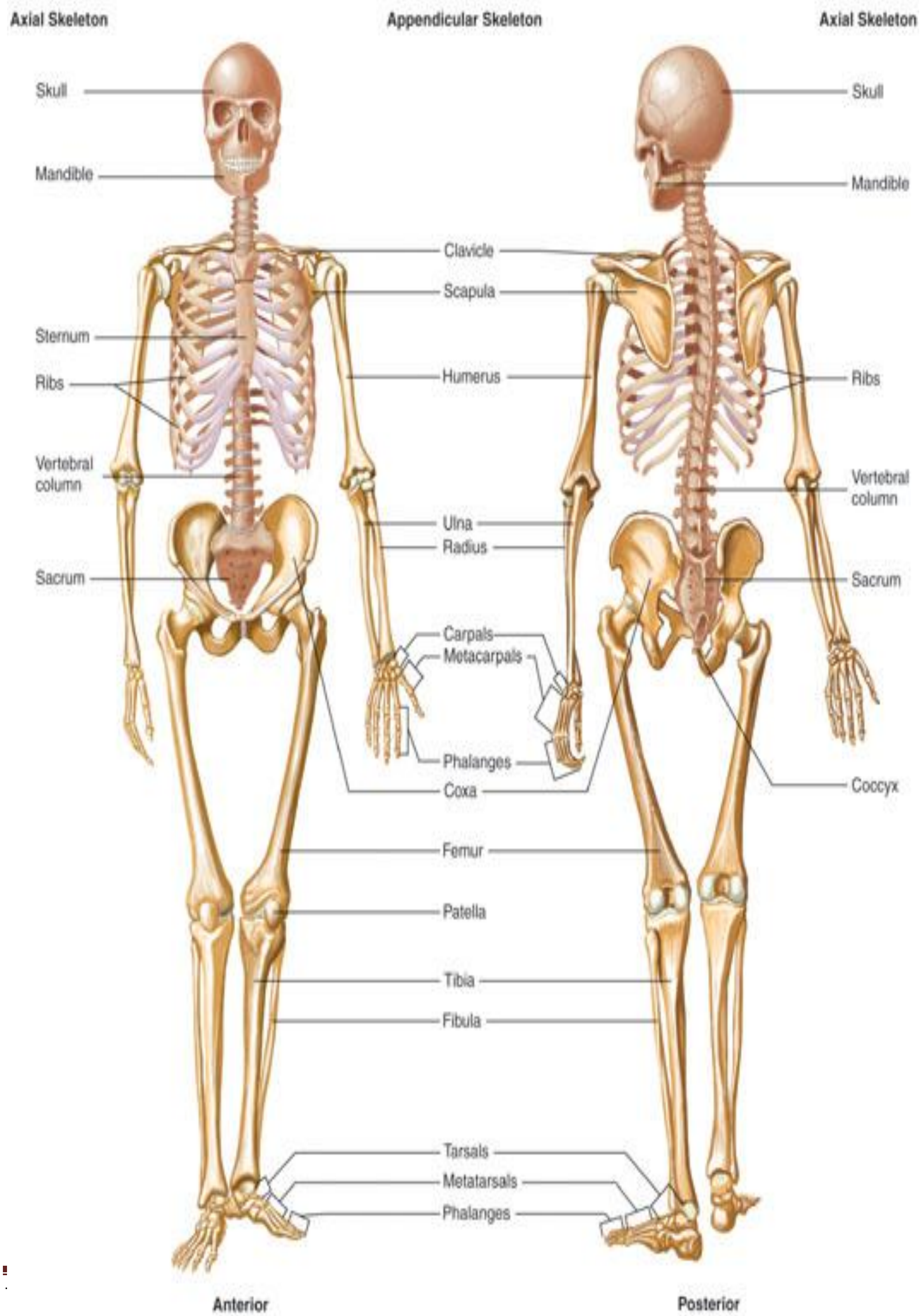

सिर की हड्डियाँ (Skull)

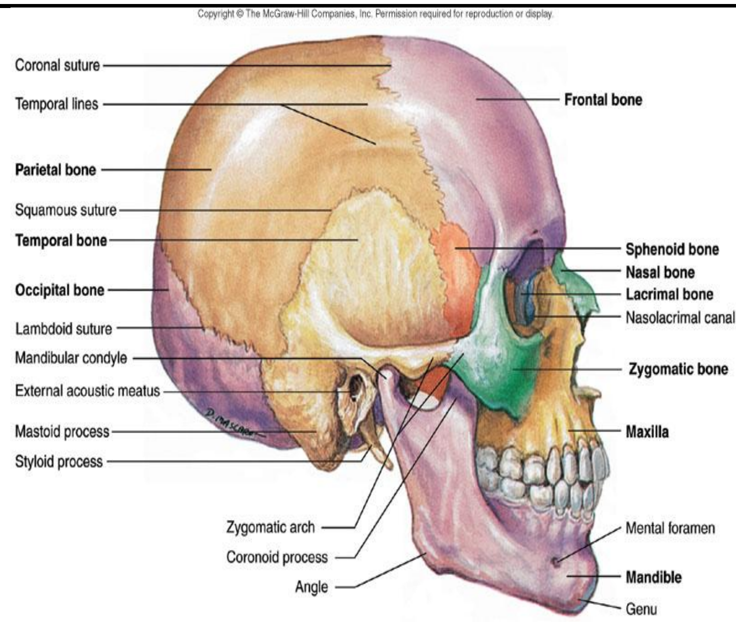

सिर की हड्डियों से हमारा तात्पर्य उन हड्डियों से है, जो कि सिर के केवल ऊपरी भाग को बनाती है। सिर अर्थात् कपाल की विभिन्न हड्डियाँ परस्पर ऐसी दृढ़ता से जकड़ी हुई हैं कि वे सब मिल कर एक सम्पूर्ण हड्डी का रूप ले बैठी है और इस कारण वे तनिक भी हिल–डुल नहीं सकती सिर की हड्डियों की कुल संख्या 8 है।

1. **पूर्व कपालास्थि (Frontal Bone)-** यह ललाट में सामने की ओर रहती है। यह संख्या में एक होती है।
2. **पश्च कपालास्थि (Frontal Bone)-** इससे सिर का पिछला भाग बनता है। यह भी संख्या में एक होती है।
3. **पार्श्व कपालास्थि** (Parietal Bone)**-** यह सिर के दोनों पार्श्व में रहती हैं तथा ये ही मिलकर मूर्द्धादेश अथवा मस्तक के शिरोभाग को बनाती है। ये संख्या में दो होती हैं।
4. **शंखास्थि** (Temoral Bones)**-** ये भी सिर के दोनों तरफ होती हैं। इन्हीं में बाह्य कर्णरन्ध्र (Outer Ear) रहते हैं। इनके ही भीतर छोटी अस्थियाँ (Ossticles) तथा कान का मध्य भाग (Middle Ear) भी है। ये भी संख्य में दो होती है।
5. **कीलकास्थि अथवा जतूकास्थि** (Sphenoid Bone)**-** यह दोनों शंखास्थियों के भीतर रहती है तथा इससे मस्तक का तलदेश निर्मित होता हे।
6. **शौणिरास्थि अथवा झर्झरास्थि** (Ethmoid Bone)**-** यह हड्डी नाक के ऊपर तथा आँख के पीछे की ओर होती है। इसके भीतर से निकलने वाले सभी आयु आँखों में जाते हैं। ये स्नायु बचपन में असंयुक्त (Open Fontanelle) रहते हैं, परन्तु सात–आठ वर्ष की आयु में मिलकर दृढ़ हो जाते हैं।

सिर की उक्त 8 हड्डियों के विषय में विस्तृत विवरण निम्न प्रकार से है–

1. पूर्व कपालास्थि (Frontal Bone)- इसे 'सम्मुख कपालास्थि' अथवा 'ललाटास्थि' भी कहते हैं। यह सिर की सम्पूर्ण हड्डियों के सामने अग्रभाग में स्थित है। इसके दो भाग होते

हैं। ऊपरी गोल भाग को पट्टक (Squama) तथा निम्न भाग को 'पिण्ड' कहा जाता है। यह हड्डी मस्तिष्क को ऊपर से ढँके रखती है तथा ललाट का निर्माण करती है।

इस हड्डी में 'पट्टक (Squama) के दो दल होते हैं– 1. अग्र तथा 2. पश्च।

अग्रतल उन्नतोदर एवं चिकना होता है और उसके ऊपर दोनों ओर हड्डियाँ कुछ उभरी रहती हैं। इसके ऊपर एक चपटी मांसपेशी होती है, जिसे 'ललाटिका' (Frontalis) कहा जाता है। यह मांसपेशी क्रोध अथवा त्यौरी बदलने के समय सिकुड़ जाती है तथा शान्त अवस्था में फैली रहती है। इसका पिछला भाग दाँतेदार (Serratid) होता है, जो पार्श्व कपालास्थि के अग्रतल से जुड़ा रहता है। इस ललाटास्थि के निम्न भाग में दो चाप होते हैं, जिन्हें 'अधि नेत्रगुहा चाप' (Supra Orbital Arches) कहा जाता है। इन दोनों चापों के मध्य भाग में नाक की हड्डी (Nosal Bone) लगी रहती है। नासास्थि के ठीक पीछे एक चलनी जैसी जालीदार हड्डी होती है, जिसे 'झर्झरास्थि प्रवर्ध' (Ethmoid Process) कहा जाता है। 'पट्टक' का पश्च तल नतोदर होता है जिसके भीतर धनियों के चिन्ह बनते हैं। प्रमस्तिष्क का अग्रखण्ड इसके ठीक नीचे रहता हैं पट्टक का पिण्ड नेत्रगुहा की छत का निर्माण करता है।

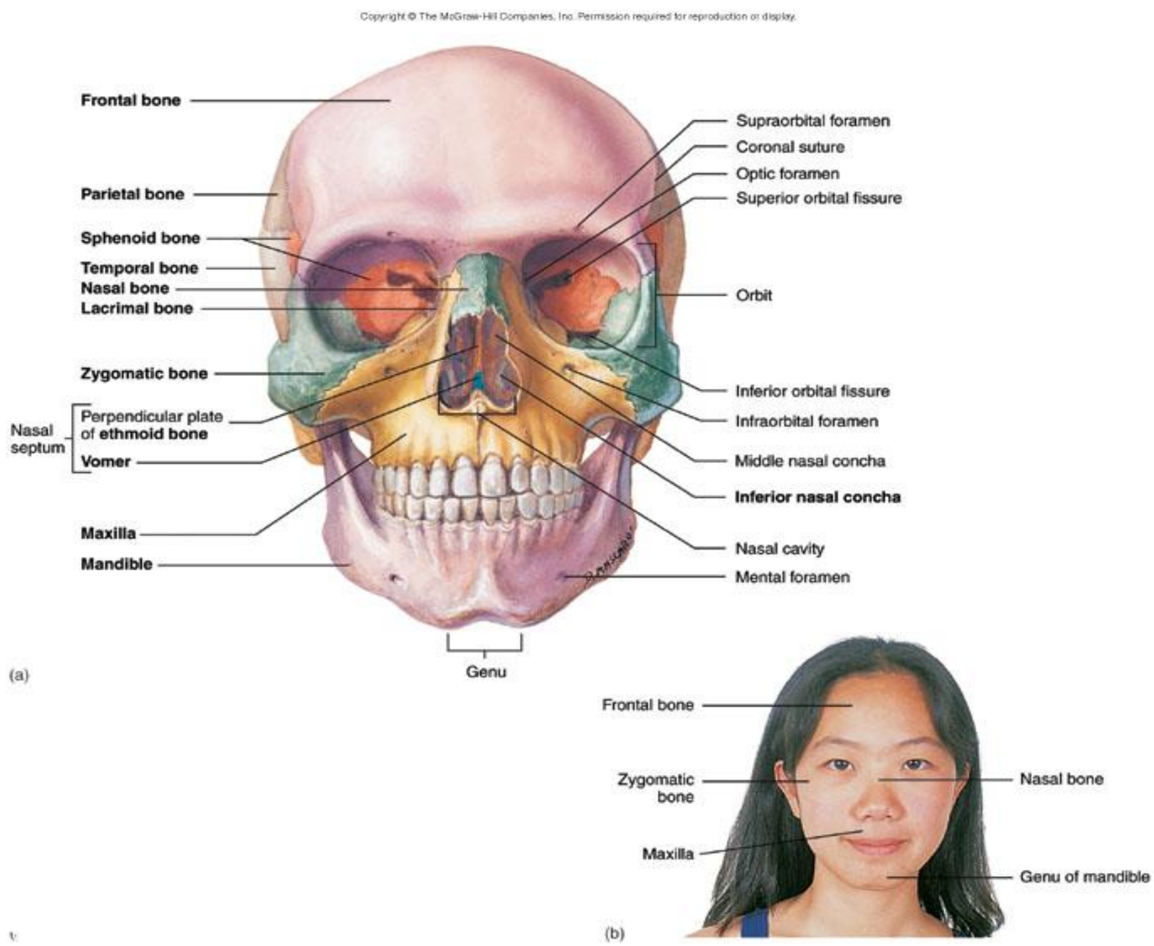

पश्चकपालास्थि (Occipital Bone)- यह हड्डी सिर के सबसे पिछले भाग में स्थित है। इसके भी 1. पट्टक तथा 2. पिण्ड– ये दो भाग होते हैं। इन दोनों के मध्य में एक बहुत बड़ा गोल छिद्र होता है, जिसे 'महाछिद्र' अथवा 'महाविवर' (Foramen Magnum) कहा जाता है।

इस हड्डी का 'पट्टक' (Squama) सबसे पीछे की ओर स्थित रहता है। इसके 2 भाग तथा 3 धारा होती हैं। इसका पश्चतल उभरा रहता है। इसके मध्य में एक छोटी गोल हड्डी का उभार होता है, जिसे 'कपाल गुलिका' (Occipital Tubercle) कहा जाता है। इस गुलिका से एक बहुत मोटा तथा दृढ़ तन्तु प्रारम्भ होता है, जो रीढ़ की हड्डियों (कशेरुकाओं) के ऊपर की श्रेणियों में संलग्न रहता है। इसके दोनों ओर तीन उभरी हुई लकीरें बनी होती हैं, जिन्हें क्रमशः 1. अधिरेखा (Superior Neuchal line) 2. मध्य रेखा (Middle Neuchal line) तथा 3. अध्यः मध्य रेखा (Inferior Neuchal line) कहा जाता है। इन लकीरदार उभारों से अनेक मांसपेशियाँ आरंभ होती हैं, जो गर्दन, रीढ़ की हड्डी तथा पीठ से लगी रहती हैं।

इसका अग्रभाग दँतिदार होता है, जो पार्श्व कपालास्थि के पश्चधारा (Posterior Border) से संयुक्त रहता है। इसका पार्श्वभाग शंखास्थि (Temporal Bone) के कर्णमूल प्रवर्ध (Mastoid Process) के पिछले किनारे से जुड़ता है। पट्टक का अग्रतल नतोदर एवं भीतर की ओर रहता है। इसे दो खड़ी हड्डियाँ जो आड़े रूप में एक दूसरे को काटती हैं, 4 हिस्सा में विभक्त करती हैं। ऊपर के दो हिस्सों में पश्चखण्ड (Ocipital Labe) के अन्तिम भाग तथा निचले हिस्से में 'लघु मस्तिष्क' की अविस्थिति रहती है।

इस हड्डी का 'पट्टक' पर्वोक्त 'महाछिद्र' के अग्रभाग में स्थित तथा चौकोर होता है। इसे 'पश्च कपालास्थि का आधारी भाग' (Basilar Portion of the Occipital Bone) कहते हैं। इसके सामाने का भाग जन्तुकास्थि (Sphenoid Bone) के पिछले किनारे से मिलता है तथा पार्श्वभाग शंखास्थि (Temporal Bone) के पिट्रस भाग के दोनों ओर मिलता है। महाछिद्र, जिसमें से 'सुषुम्ना शीर्ष' (Medulla Oblongate) निकलता है, के दोनों ओर हड्डियों के दो लम्बे उभार पाये जाते हैं।

पार्श्व कपालास्थि (Parictal Bones)- ये हड्डियाँ संख्या में दो होती हें तथा पूर्व कपालास्थि एवं पश्च कपालास्थि के बीच में रहती है। ये आकार में गोल हैं। इसके दो धरातल तथा चार किनारे होते हैं। इनका ऊपरी ध्रातल (Superior Surface) चिकना (Smooth) तथा उभरा हुआ होता है। ये दोनो हड्डियाँ एक दूसरे से मिलकर एक गुम्बद जैसा बनाती हैं, जो 'प्रमस्तिष्क' के पार्श्वखण्ड को भलीभाँति आच्छादित किए रहता है।

पार्श्वखण्ड का निम्न ध्रातल नतोदर एवं खुरदुरा होता है। यह मस्तिष्क के सम्पर्क में रहता है तथा इसके भीतर छोटी धमनियों के चिन्ह बने रहते हैं। पार्श्व कपालास्त्थि का अगला किनारा सीधा एवं दाँतेदार होता है तथा ललाटास्थि के पट्टक के पश्चभाग से जुड़ा रहता है। इसका पिछला किनारा कुछ घुमाव लिए दाँतेदार होता है, जो पश्च कपालास्थि के पट्टक अग्रधारा से जुड़ता है। इसका पार्श्वभाग भीतरी भाग में पतला होता है, जो शंखास्थि (Temporal Bone) के पट्टक पर जा लगता है। दोनों पार्श्व कपालास्थियों के अधिमध्य भाग परस्पर एक दूसरे से मिले रहते हैं।

ये दोनों हड्डियाँ शैशवावस्था में प्रायः मुलायम रहती है तथा 5–6 महीने तक पास में नहीं जुड़ पातीं, तदुपरान्त जुड़कर कठोर हो जाती है।

शंखास्थि (Temporal Bone)- ये हड्डियाँ सिर के दोनों और पार्श्व में स्थित होती है। इसके ऊपर पार्श्व कपालास्थि, सामने ललाटास्थि, पीछे पश्च कपालास्थि तथा नीचे जबड़े के ऊपरी भाग की स्थिति रहती है। इसमें दो छिद्र होते हैं– 1. कान का छिद्र तथा 2. नीचे की ओर का छिद्र, जिसे (Carotid canal) कहा जाता है और जिसके द्वारा (Internal Corotid Artery) मस्तिष्क के भीतर प्रविष्ट होती है।

इस हड्डी के 5 भाग होते हैं–

1. **पट्टक (Squama)-** यह चौड़ा भाग खोपड़ी के पार्श्व भाग में स्थित रहता है। इसका ऊपरी भाग पतला तथा गोल एवं पार्श्वभाग कपालास्थि की पार्श्वधारा से संयुक्त रहता है। इसका अग्रभाग ललाटास्थि से जुड़ता है। इसके अधिमध्य तथा पार्श्व ये दो तल होते हैं।
2. **कर्णमूल प्रवर्ध (Mastoid Process)-** यह कनपटी का पिछला भाग है जो पश्च कपालास्थि के पट्टक के अग्रभाग से जुड़ा रहता है। यह कान के छिद्र के पीछे होता है।
3. **पिट्रस भाग (Petrous Portion of the Temporal Bone)-** यह सिर के भीतर रहने वाला कनपटी का भाग है, जिसके पश्च में कपालास्थि एवं अग्रभाग में जतूकास्थि (Sphenoid Bone) स्थित रहती है। इसके कारण श्रवण–अंग स्थिर बने रहते हैं।
4. **शर प्रवर्ध (Styloid Process)-** सलाई के आकार का यह अत्यन्त पतला भाग नीचे की ओर स्थित रहता है, इससे हड्डी के दो स्नायु– 'कण्ठिका शर स्नायु' (Stylo-Lyoid Ligament) तथा 'अधो हन स्नायु' (Stylomendibulum Ligament) आरंभ होते हैं। पहला स्नायु शर प्रवर्ध से आरम्भ होकर कण्ठकास्थि से जा मिलता है तथा दूसरा जबड़े से मिल जाता है।
5. **गण्ड प्रवर्ध (Zygomatic Process)-** यह एक पतली लम्बी हड्डी कान के छिद्र के तथा एक पतली झिल्ली से ढँका रहता है। उसे शंख प्रावरणी कहा जाता है। इससे 'शंखच्छदिका' (Temporalis Muscle) नामक एक मांसपेशी निकलती है। पट्टक का मध्यतल नतोदर एवं खुरदुरा होता है तथा मस्तिष्क के उस भाग से सम्बन्धित रहता है, जिसे शंखीयखण्ड (Temporal Lode) कहा जाता है।

   विशेष– इस हड्डी का 'पट्टक' का पार्श्वतल (Lateral Surface) चिकना, उभरा हुआ तथा एक पतली झिल्ली से ढँका रहता है। उसे शंख प्रावरणी (Temporal Fascia) कहा जाता है। इससे 'शंखच्छदिका' (Temporalis Muscle) नामक क मांसपेशी निकलती है। पट्टक का मध्यतल नतोदर एवं खुरदुरा होता है तथा मस्तिष्क के उस भाग से सम्बन्धित रहता है, जिसे शंखीयखण्ड (Temporal Lobe) कहा जाता है।

कीलकास्थि अतवा जतूकास्थि (Sphenoid Bone)

यह चौड़ी हड्डी मस्तिष्क के आधार पर, दोनों शंखास्थियों के भीतर, डैने फैलाऐ हुऐ चमगादड़ की भाँति रहती है। इसके 1. पिण्ड (Body) तथा 2. वक्षक (Ala) नामक दो भाग होते हैं।

'पिण्ड' नामक भाग पतला, छोटा तथा चौकोर होता है। यह दोनों वक्षकों के मध्य में रहता है तथा इसका भाग प्श्चकपालास्थि के आधारी भाग से जुड़ा रहता है। इसके ऊपरी भाग में 'पीयूष ग्रंथि' (Hypophysis Cerebri) एवं पिनियल बॉडी (Pineal Body) स्थित रहती है।

'पक्षक' नामक फैले हुए भाग के ऊपर वृहद् मस्तिष्क का आधार रहता है। इसका अग्रभाग ललाटास्थि के पिण्ड के पृष्ठभाग से जुड़ा रहता है तथा पृष्ठभाग शंखास्थि के पिट्रस भाग के अग्रभाग से संयुक्त रहात है।

शैविरास्थि अथवा झर्झरास्थि (Ethmoid Bone)

यह हड्डी नाक के ऊपर तथा आँख के पीछे की ओर होती हैं।

चेहरे की हड्डियाँ (Bones of Face)

सम्पूर्ण मुखमण्डल अर्थात्, चेहरा 14 हड्डियों से बना है। इनके नाम निम्नानुसार हैं–

2 ऊर्ध्वहनु अस्थि (Superior Maxillary)
1 अधोहनु अस्थि (Inferior Maxillary)
2 कपोलास्थि (Malar or Cheek Bones)
2 तालु अस्थि (Palat Bones)
2 नासास्थि (Nasal Bone)
2 अधः शुक्तिका अस्थि (Inferior Turbrinated Bones)
1 नासाफलकास्थि (Vomers Bone)
2 अश्रु अस्थि (Lachrymal Bones)

इनमें से केवल अधोहनु अस्थि (Lower Jaw-Inferior Maxillary) के अतिरिक्त शेष 12 हड्डियाँ अचल (Non-Movable) हैं और वे कपाल के साथ मिली रहती हैं।

इन हड्डियों के विषय के विशेष जानकारी निम्नानुसार समझनी चाहिए–

ऊर्ध्वहनु अस्थि (Superior Maxillary Bone)

ये हड्डियाँ संख्या में दो होती हैं। ये परस्पर जुड़ी रहती हैं। इनसे गाल (कपोल) बनने में सहायता मिलती है। इनके तीन मुख्य भाग होते हैं–

1. Palatine Part- इसमें परस्पर बीच में जुड़ी हुई दो पतली हड्डियाँ होती हैं, जिनके द्वारा मुख का ऊपरी भाग तथा ऊपरी नाक का आधार तैयार होता है। तालवास्थि के पिछले एक 'मृदुतालु' नामक पतली झिल्ली होती है।
2. Alveolar Part- यह गोलाकार भाग मुँह के ऊपरी जबड़े को बनाता है। इसके एक घेरे में 16 छिद्र होते हैं। इससे ऊपरी होठ भी लगा रहता है।
3. Orbital Part- यह दोनों नेत्र गोलकों का धरातल भाग होता है।

अधुहनु अस्थि (Inferior Maxillary Bone)

यह संख्या में एक होती है। इसे 'निचले जबड़े की हड्डी' भी कहा जाता है। यह जूते के नाल के आकार की होती है। इसके महराब से 'हनु' बनता है। इसके चौड़े उभार को 'हनुकूट' (Ramus of Mandible) कहते हैं। इसके दो धरातल होते हैं। बाहरी धरातल (Convex) में होठ की गति प्रदान करने वाली पेशियाँ तथा भीतरी भाग (Concave) में जीभ की गतिशील रखने वाली पेशियाँ होती हैं।

इसका निचला भाग बहुत पतला होता है और उसमें से एक बहुत पतली मांसपेशी गले की ओर नीचे जाती है जिसे Platysma कहा जाता है।

अधोहन्वस्थि का चौड़ा भाग, जो गाल की ओर उभरा हुआ रहता है 'प्रशाखा' (Ramas) कहा जाता है। इसके पिछले कोने को, जिसके ऊपर एक गोला सा बना रहता है Mandibular Condyle कहते हैं। यह भाग शंखास्थि के अधोहन्वस्थि खत से मिला रहता है। इसके सामने का नुकीला सिरा गण्ड प्रवर्ध के अभिमध्य की ओर स्थित रहता है। उसका पार्श्वतल चतुष्कोणात्मक होता है। जिसके ऊपर चर्वणिका लगी रहती है।

कपोलास्थि अथवा गण्डास्थि (Malar or Check Bones)

ये हड्डियाँ संख्या में दो होती हैं। ये चेहरे के बाहरी तथा ऊपरी भाग में रहती हैं। इनके द्वारा गालों को ऊपरी उभार बनता है। ये हड्डियाँ आयताकार होती हैं तथा गाल के दोनों ओर स्थित रहती है। इनके चार भाग होते हैं। इसका एक ऊपरी भाग नेत्रों का आधार (Eye Orbit) बनता है तथा नासास्थि से मिल जाता है। पार्श्वभाग शंखास्थि के गण्ड प्रवर्ध से मिला रहता है। निम्नभाग ऊर्ध्व हनु अस्थि से मेल करता है तथा बाहरी धरातल चर्म से ढँका रहता है।

तालु अस्थि (Palate Bones)

यह हड्डियाँ भी संख्या में दो होती हैं। ये एक–एक की संख्या में नाक के पीछे दोनों ओर रहती हैं। इनके द्वारा तालु का निर्माण होता है। तालु के दो अंश होते हैं– 1. कठिन तथा 2. कोमल। कठिन अंश तो दाँत का पृष्ठ भाग होता है तथा उसके पिछले किनारे कोम ल अंश मिला रहता है।

नासास्थि (Nasal Bones)

ये हड्डियाँ भी संख्या में दो होती हैं तथा नाक के बीच की दीवार के पिछले भाग का निर्माण करती हैं। ये दोनों एक दूसरे के सम्मुख जुड़ी रहती हैं। इनके बीच से एक हड्डी निकलती है, जो नाक को दाँये–बाँयें दो भागों में बाँटती हैं।

नासास्थि का ऊपरी भाग ललाटास्थि के निम्न तथा मध्य भग से जुड़ा रहता है। इसके अभिमध्य तल के ऊपर बहुत पतली झिल्ली होती है, जो भीतर की ओर रहती है। यहीं से घ्राण तन्त्रिकाऐं ललाटास्थि के निचले छिद्र को पार करती हुई ऊपर मस्तिष्क में जाती है।

इस हड्डी का पार्श्वतल नेत्रगुहा की अभिमध्य सीमा बनाता हुआ ऊर्ध्व हनु अस्थि से जुड़ा रहता है। इसका निम्न भाग 'नासा उपास्थि' नामक नरह हड्डी से संयुक्त रहता है।

अधः शुक्तिका अस्थि (Inferior Turbinated Bone)- ये हड्डियाँ भी संख्या में दो होती हैं तथा एक–एक करके दोनों नासा–गह्वरों में रहती है।

नासा फलकास्थि (Vomers Bone)- यह हड्डी केवल एक होती है तथा नाक के बीच की दीवार का पिछला भाग बनाती है।

अश्रु अस्थि (Lachrymal Bone)- ये हड्डियाँ संख्या में दो होती हैं तथा चक्षु–गह्वर के सामने वाले भाग में स्थित रहती हैं। इनके मार्ग से आँसू निकलकर नाक में आ जाते हैं।

चक्षु–गह्वर सिर के दोनों ओर जो एक–एक गोल गड्ढे होते हैं, उन्हें 'चक्षु–गह्वर' कहा जाता है। इसी में चक्षु–गोलक रखा रहता है। यह निम्नलिखित 7 हड्डियों से बनता है–

1. ललाटास्थि (Frontal Bone)
2. झर्झरास्थि (Ethmid Bone)
3. जतूकास्थि (Sphenoid Bone)
4. अश्रु अस्थि (Lachrymal Bone)
5. ऊर्ध्वहनु अस्थि (Superior Maxillary Bone)
6. तालु अस्थि (Palati Bone)
7. गण्डास्थि (Molar Bones)

ब्रह्मरन्ध्र तथा अधिपति रन्ध्र (Fontanelles and posterior fontanelle)

ब्रह्मरन्ध्र (Fontanelles)- दोनों पार्श्व कपालास्थियाँ तथा ललाटास्थियाँ तथा ललाटास्थियाँ जहाँ पश्च मस्तकास्थि से मिलती हैं, वहाँ एक तिकोना गड्ढा सा होता है। यह गड्ढा एक वर्ष से कम आयु वाले बच्चों के सिर में ही दिखाई देता है। इसी को ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं। इसी स्थान पर पूर्ण कपालास्थि से दोनों पार्श्व कपालास्थियाँ मिलती हैं।

अधिपतिरन्ध्र (Posterior Fortanelle)- समचतुर्भुज अर्थात् चतुष्कोण गड्ढा होता है, जो छः मास से कम आयु वाले शिशुओं के सिर दिखाई देता है। यह गडढा पश्च कपालास्थि तथा पार्श्व कपालास्थि के सम्मिलन–स्थान पर होता है।

स्मरणीय है कि बच्चे ज्यो–ज्यों बड़े होते हैं, त्यों–त्यों उक्त दोनों गड्ढे भरते चले जातो हैं, यदि निम्न हनु में किसी प्रकार का झटका अथवा आधात लगता है तो वह मस्तिष्क में जा पहुँचता हैं यदि व आघात अथवा झटका जोर का हो तो उसके कारण खोपड़ी की तल फट सकती है। खोपड़ी के भीतर ही 'मस्तिष्क' (Brain) सुरक्षित रहता है। अतः छोटे बच्चों को इस प्रकार के झटके अथवा आघातों से बाचाऐ रखना आवश्यक है।

Copyright © The McGraw-Hill Companies, Inc. Permission required for reproduction or display.

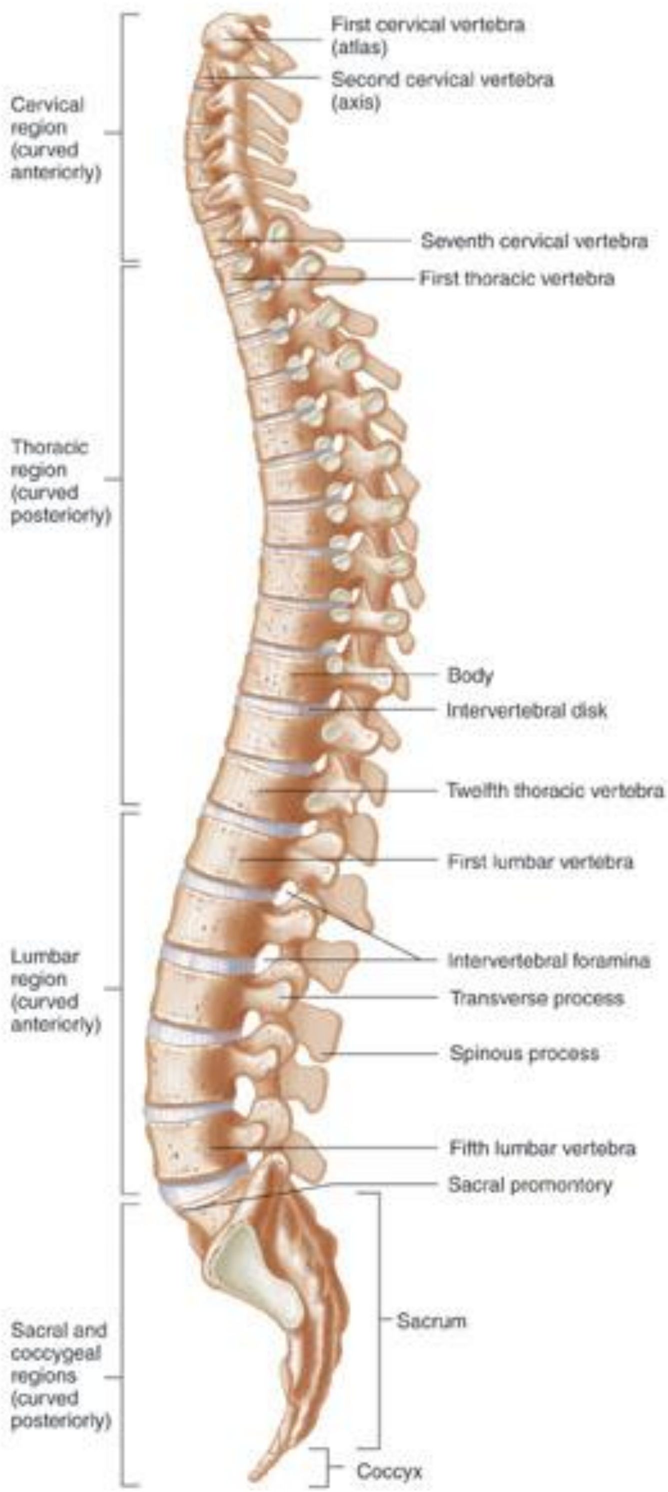

मेरुदण्ड की हड्डियाँ (Spinal or Vertebral Column)- मेरुदण्ड में कुल 33 हड्डियाँ होती हैं। ये हड्डियाँ आपस में एक श्रृंखला की भाँति जुड़ी रहती हैं और इन्हें 'कशेरुका' (Vertebra) कहा जाता है। यह पीठ के ठीक बीचों–बीच स्थित है। मेरुदण्ड पश्च कपालास्थि (Occipital Bone) के निम्न भाग से आरम्भ होकर नीचे गुदा के समीप समाप्त होता है।

गर्दन, पीठ तथा कमर से नीचे तक हुण्डे की भाँति निर्मित इस कड़ी वस्तु को मेरुदण्ड, रीढ़ अथवा कशेरुका नामों से पुकारा जाता है।

मेरुदण्ड की कुल 33 कशेरुकाऐं निम्नलिखित 2 भागों में विभक्त संखा में बँटी रहती हैं–

1. **ग्रीव कशेरुका (Cervical Vertebrae)-** इसमें कुल 7 कशेरुकाएं होतीहैं। ये गर्दन में रहती हैं।
2. **वक्षीय अथवा पृष्ठ कशेरुका (Thoracic or dorsal Vertebrae)-** इसमें कुल 12 कशेरुकाएँ होती हैं। ये वक्ष तथा पीठ के मध्य भाग में रहती हैं।
3. **कटि कशेरुका** (Lumber Vertebrae)- इसमें कुल 5 कशेकाऐं होती हैं। ये कटि–प्रदेश में स्थित रहती हैं।
4. **त्रिककशेरुका अस्थि त्रिकास्थि** (Saeral Vertebrace or Sacrum Bones) ये 'त्रिक' स्थानों में रहती है तथा संखा में 5 होती है, परन्तु ये एक दूसरी से इस प्रकार मिली होती है कि एक ही हड्डी जैसी प्रती होती है। इसी कारण इन्हें 'त्रिकास्थि' भी कहा जाता है।
5. **अनुत्रिक कशेरुका** (Coccygeal Vertebrae) अथवा '**गुदास्थि**' (Tail Bones)- ये संख्या में 4 होती हैं, परन्तु ये भी एक दूसरे के साथ मिलकर एकाकार हो गई हैं, इसी कारण इन्हें 'गुदास्थि' भी कहा जाता है।

उक्त प्रकार से गर्दन में 7, पृष्ठ में 12, कटि में 5, त्रिक में 5 तथा अनुत्रिक में 4 इस प्रकार 33 कशेरुकाऐं हैं, परन्तु चूँकि त्रिक कशेरुकाऐं एवं आनुत्रिक कशेरुकाऐं परस्पर मिल जाने के कारण एक जैसी ही प्रतीत होती हैं, अतः इन हड्डियों अथवा कशेरुकाओं की कुल संख्या 26 ही रह जाती है।

मेरुदण्ड–कशेरुका की हड्डियाँ आकार मे एक दूसरी से कुछ भिन्न, टेढ़ी–मेढ़ी, ऊँची–नीची तथा छोटी–बड़ी होती हैं, फिर भी ये एक दूसरी के ऊपर ढँग से रखी रहती हैं। इनके बीच में एक छिद्र (Vertebral Foramen) होता है, साथ ही इनमे एक पूँछ सी भी निकली रहती है। इसके मोटे तथा पतले दो अंश होते हैं, मोटे अंश को 'पिंड' कहते हैं। यही घेरा है, जिसका पिछला भाग कशेरुका कंटक (Spinous Process) कहलाता है तथा नोंकदार होता है। घेरा तथा पिण्डमूल जिस स्थान पर मिलते हैं, उसे चक्रमूल (Peducle) कहते हैं।

मेरुदण्ड मान–शरीर का एक अस्थिमय आधार हैं यही सिर का भी आधार है यह अपने भीतरी भाग में सुषुम्ना अथवा मज्जा को धारण किए रहता है। यह आगे की ओर झुक सकता है, अगल–बगल की ओर भी कुछ झुक सकता है। परन्तु पीछे की ओर बिल्कुल नहीं झुक पाता।

बैठने तथा खड़े होने की उचित स्थिति पर ध्यान देने से कशेरुका गात्र (Vertebral Body) जब बेतरतीब हो जाता है, तब अस्थि क्षत अथवा घाव (Earies of Necrosis) उत्पन्न हो जाता है।

मेरुदण्ड में 'ग्रैव'–कशेरुक' (Cervical Vertebrae) का पिण्ड तथा पाँचों 'कटि कशेरुक' (Lumbar Vertebrae) के पिण्ड क्रमशः सामने की ओर झुके तथा पीछे की ओर उभरे रहते हैं। त्रिक कशेरुक (Sacral Vertebrae) शरीर के भार को दोनों

पाँवों की ओर बाँट देते हैं, जिसके कारण खड़े होने अथवा बैठे रहने की स्थिति सन्तुलित बना रहता है।

शिशु के जन्म के समय तक ये 'पिण्ड' तथा 'चाप' तैयार हो जाते हैं। जब शिशु की आयु एक वर्ष की हो जाती है, उस समय दोनों चाप पीछे की ओर जुड़ जाते हैं तथा वहीं से 'कष्टक' आरम्भ हो जाता है।

कशेरुकाओं का अग्रभाग चौड़ा तथा ठोस होता है, जिसे पिण्ड (Body) कहते हैं। इस पिण्ड के पिछले तथा बाहरी भाग से दोनों ओर को दो लम्बी हड्डियाँ निकलती हैं, जो पीछे की ओर आपस में मिलकर एक बड़े छिद्र का निर्माण करती हैं। इन दोनों हड्डियों को 'चाप' (Arch) कहा जाता है। इनके द्वारा निर्मित छिद्र को 'कशेरुका छिद्र' (Vertibral Formen) कहते है। 'सुषुम्ना' इसी छिद्र में होती हुई नीचे की ओर जाती है।

दोनों चापों (Arch) के मिलन–स्थल पर एक लम्बी तथा नुकीली हड्डी पीछे तथा नीचे की ओर झुकी रहती है, जिसे 'कण्टक' (Spine) कहा जाता है। 'चाप' तथा 'पिण्ड' के सन्धि–स्थल से एक–एक लम्बी हड्डी दायीं तथा बाँई ओर को जाती है, इन्हें 'अनुप्रस्थ प्रवर्ध' (Transverse Process) कहा जाता है।

'चाप' तथा 'पिण्ड' के मिलन–स्थल पर दोनों ओर ऊपर तथा नीचे दो गड्ढे होते हैं, जिन्हें कशेरुक खात' की संज्ञा दी गई है।

जब एक कशेरुक दूसरे कशेरुक के ऊपर बैठता है, उस समय कशेरुका के नीचे वाला खात (गड्ढा) तथा ऊपर वाला खात–ये दोनों मिलकर एक–एक छिद्र बनाते हैं, जिनके द्वारा 'सुषुम्ना तन्त्रिकाओ' (Spinal Nerves) का प्रादुर्भाव होता है। खात के समीपस्थ पिण्ड से संयुक्त हड्डियों के दो पतले और गोल–गोल भाग ऊपर की ओर उठे रहते हैं। इन्हें 'फलक' (Facts) कहा जाता है। ये 'पिण्ड' के दोनों ओर रहते हैं। जब एक 'कशेरुक' दूसरे कशेरुक के ऊपर बैठता है, तब ये फलक एक दूसरे से संयुक्त हो जाते हैं।

प्रत्येक ऊपर तथा नीचे वाले दो कशेरुकों के मध्य एक प्रकार की उपास्थि की गद्दी रहती है, जिसे 'अन्तर कशेरुका तन्तु उपास्थि' (Inter Vertibral Fibro Cartilage) कहा जाता है। यह गद्दी कशेरुकों को परस्पर आघात लगने से बचाने का कार्य करती है।

यह विवरण एक 'सामान्य कशेरुका' का है। अब हम विभिन्न कशेरुकों के विषय में अलग–अलग लिखेंगे।

'ग्रैव कशेरुका' अथवा **'ग्रीवा कशेरुका'** (Cervical Vertebrae)

इनकी स्थिति गले में पीछे की ओर होती है तथा सामान्य कशेरुकों की अपेक्षा इनकी रचना में भी कुछ अन्तर होता हे। ये संख्या में कुल 7 होते हैं। ग्रैव कशेरुका (Cervical Vertebrae) की नली (Vertebral Canal) 'वक्षीय कशेरुका' (Thoracic Vertebrae) की नली से जुड़ी होती है। वक्षीय– कशेरुका के कंटक की अपेक्षा ग्रैव–कशेरुका कम लम्बा होता है। अपितु इसके दो छोटे–छोटे 'कंटक' होते हैं, जो परस्पर मिले रहते हैं। इसका अनुप्रस्थ प्रवर्ध तथा पिण्ड' भी छोटा होता है। ग्रैव कशेरुका के अनुप्रस्थ प्रवर्ध तथा चाप जिस जगह मिलते हैं, वहीं दोनों ओर एक–एक छिद्र होते हैं, जिनसे 'सुषुम्ना–तन्त्रिकाऐं' निकलती हैं। इनके अतिरिक्त 'वक्ष–कशेरुका' तथा 'ग्रैव–कशेरुका' में और कोई अन्तर नहीं होता।

प्रथम तथा द्वितीय ग्रैव कशेरुक में कुछ भिन्नताएँ होती हैं, जो अन्य कशेरुकों में नहीपाई जाती हैं। इनके विषय में निम्नानुसार समझना चाहिए–

प्रथम ग्रैव कशेरुका– इसे 'एटलस गुटिका' (Atalas Vertebrae) भी कहा जाता है। पश्च–कपालास्थि (Occipital Bone) इसी के ऊपर स्थित रहती है। इस कशेरुका में 'पिण्ड' नहीं होता, अपितु उसकी जगह एक घुमावदार लम्बी हड्डी रहती है, जो 'अग्र चाप' बनाती है। इसके मध्य में अग्रभाग के ऊपर एक मोटा 'तन्तु' रहता है जो इस हड्डी से सिर को दृढ़तापूर्वक जोड़े रखता है। इसके दोनों ओर दो लम्बे गड्ढे होत हैं, जो मध्य भाग की ओर झुके रहते हैं, इन्हीं के ऊपर पश्चकपालास्थि का स्थूलक लगा रहता है। इसके पार्श्वभाग में दो छिद्र होते हैं, उनमें से 'प्रथम ग्रीवा तन्त्रिका' (First Cervical Nerve) निकलती है। यह हड्डी (कशेरुका) एक छल्ले जैसी होती है। इसका 'कण्टक' बहुत ही छोटा होता है तथा पश्चकपालास्थि से आरंभ हुई मांसपेशी उसी के ऊपर आकर लगती हे।

द्वितीय ग्रैव कशेरुका– इसे 'अक्ष कशेरुका' (Axis) भी कहा जाता है। इसके पिण्ड एक नुकीला उभार ऊपर की ओर उठा रहता है, जिसे 'दन्ताभ प्रवर्ध' (Odontoid Process) कहते हैं।इसके ऊपरी नुकीले भाग के ऊपर, पश्चकपालास्थि के निम्नभाग से आरम्भ होने वाला एक बहुत मोटा तथा दृढ़ तन्त लगा रहता है। इसके पण्डि के अग्रतल के ऊपर एक गहरी क्यारी–सी बनी होती है, जिसके ऊपर प्रथम कशेरुक का अग्रचाप आकर जुड़ जाता है। इस कशेरुका के अन्य सभी भाग प्रथम ग्रैव कशेरुका जैसे ही होते हैं।

टिप्पणी– अन्य सभी ग्रैव कशेरुकों की रचना 'सामान्य कशेरुक' (जिसके विषय में पहले लिखा जा चुका है) की भाँति ही होती है।

वक्ष कोशेरुका (Thoracic Vertebrae) ये संख्या में कुल 12 होते हैं। इनकी स्थिति ग्रैव–कशेरुका तथा कटि–कशेरुकों के मध्य रहती है। ये वक्ष स्थल के पिछले घेरे का निर्माण करते हैं। ग्रैव–कशेरुकों की अपेक्षा इनका पिण्ड बड़ा होता है, परन्तु कशेरुका–छिद्र (Vertebral Forman) कुछ संकारा होता है।

इनके दोनों ओर अनुप्रस्थ–प्रवर्ध (Transverse Process) होते हैं, जो पसली की हड्डियों से लगे रहते हैं। इनका 'कण्टक' (Spin) पतला तथा लम्बा होता है। इसके अन्त के एक बहुत छोटै भाग के ऊपर पीठ की माँस–पेशियाँ रहती हैं।

कटि कशेरुका (Lumbes Vertebrae) ये संख्या में 5 होते हैं तथा वक्ष कशेरुका एवं पिण्ड की अपेक्षा बड़े होते हैं। इनके पार्श्वतल पर दोनों ओर 'वृक्क' (Kidney) रहते हैं। 'वक्षोदर मध्यास्थि' का मध्य भाग इनके पिण्ड से संयुक्त रहता है।

कटि कशेरुका का पिण्ड लम्बाई लिए गोल होता है। इसका पूर्वतल उन्नतोदर तथा पश्चतल नतोदर होता है। ऊर्ध्व तथा निम्नभाग नतोदर एवं खुरदुररा होता है। इसके ऊपर 'अन्त्र कशेरुक चक्रिका' (Inter Vertebral Cartilage) की स्थिति रहती है। इसका 'अनुप्रस्थ प्रवर्ध 'वक्षकशेरुक' जितना लम्बा तो नहीं होता, परन्तु इससे अधिक चौड़ा प्रायः आयताकार होता है। इसके द्वारा पीठ की मांस पेशियाँ दोनों ओर लगी रहती हैं। इसका 'कशेरुका–छिद्र' भी छोटा होता है।

त्रिक कशेरुका अथवा त्रिकास्थि (Sacral Vertebral) ये संख्या में 5 होते हैं, परन्तु एक दूसरे से मिले रहने के कारण ये एक ही हड्डी का रूप ग्रहण कर लेते हैं। इनकी उपस्थिति

'कटि कशेरुका' एवं 'अनुत्रिक कशेरुका' के मध्य में होती है। इनमें ऊपर का (पहला) कशेरुका बड़ा तथा चौड़ा तथा नीचे के कशेरुका पूर्वापेक्षा छोटे तथा पतले होते हैं। ये कशेरुका दोनों श्रोणि–अस्थियों (Hip Bones) के मध्य स्थित होते हैं तथा श्रोणि (Pelvis) की पश्चिमी सीमा का निर्माण करते हैं। इनके दो धरातल 1. पूर्व तथा 2. पश्च होते हैं। पूर्वतल ऊपर से नीचे तक 'नतोदर' (Concave) होता है तथा बड़ी आँतों का अन्तिम भाग इसके सम्पर्क में रहता है। पूर्वतल में पिण्ड बाई तथा दाँई–दोनों ओर 4–4 छिद्र होते हैं।

इसका पश्चतल खुरदुरा होता है और उसके ऊपरी भाग में पीठ की माँस–पेशियाँ आकर समाप्त होती हैं। इसका निम्न भाग त्वचा से ढँका रहता है।

'त्रिकास्थि' के पार्श्वतल चौड़े तथा खुरदुरे होते हैं। वे श्रोणि–अस्थि–पिण्ड के अभिमध्यतल से जुड़े रहते हैं। त्रिक श्रोणि फलक स्नायु (Sacro Iliac Ligament) यहीं लगा रहता है।

'त्रिकास्थि' का ऊपरी भाग बहुत चौड़ा तथा मोटा होता है, जो कटिकशेरुका पिण्ड के निम्न धरातल से संयुक्त रहता है। इसके ऊपरी पश्च भाग में कसेरुक–छिद्र की भाँति होता है, जिसके भीतर सुषुप्ना नाड़ी का अन्तिम भाग प्रविष्ट होता है। इसके दोनों ओर के चाप प्रत्येक कशेरुका से संलग्न बने रहते हैं।

'त्रिकास्थि' का निम्न भाग ऊपरीभाग की तुलना में अधिक पतला, छोटा तथा सामने की ओर झुका हुआ होता है। इसका निम्न धरातल 'अनुत्रिकास्थि' के सम्पर्क में रहता है। इससे आरम्भ होने वाले दो स्नायु 'अनुत्रिकास्थि' से जाकर मिल जाते हैं।

अनुत्रिकास्थि अथवा पुच्छ कशेरुकाऐं (Coccygeal Vertebrae) ये कशेरुकाऐं संख्या में 4 होती हैं, परन्तु परस्पर मिली रहने के कारण एक ही हड्डी जैसी प्रतीत होती हैं। इनमें ऊपर की हड्डियों की अपेक्षा क्रमशः बड़ी होती हैं। ये हड्डियाँ सामने की ओर झुकी रहती हैं तथा 'सुषुप्ना का अन्तिम भाग' (Felum Terminals) यहीं आकर समाप्त हो जाता है।

अनुत्रिकास्थि का निम्न भाग पतला तथा नुकीला होता है। यहाँ से 'गुद उन्नमनिका' (Lavotor Ani) नामक एक मांसपेशी आरंभ होती है। इसके दोनों ओर दो तन्तु निकलते होते हैं, जिन्हे त्रिक गुलिकास्थि (Sacrotuberous Ligments) कहा जाता है।

वक्षःस्थल की हड्डी, वक्षोस्थि अथवा उरोस्थि (Sternum) यह हड्डी वक्षःस्थल के मध्य भाग में स्थित रहती है। इसका ऊपरी भाग कुछ चौड़ा तथा निम्न भाग नुकीला होता है। यह हड्डी कुछ चपटी होती है तथा गर्दन से आरम्भ होकर 'पेट की कौड़ी' (Epigastrium) तक जाती है। इसके ऊपरी चौड़े भाग को 'उरोस्थि मुष्टि' (Manubricum Stemi) मध्य भाग को 'पिण्ड' (Body of the Sternum) तथा नीचे के नुकीले छोटे भाग को उरः पत्रक (Xiphisternum) कहते हैं।

'उरोस्थि मुष्टि' का ऊपरी भाग कुछ गोल तथा दबा हुआ से होता है, जिसके दोनों किनारों पर एक–एक गड्ढे होते हैं, जिनमें जन्तुकास्थि (Clavicle Bone) जुड़ी रहती है। एक प्रकार से इसी स्थान पर सम्पूर्ण बांह का धड़ से सम्बन्ध स्थापित होता है। इसका निम्न भाग उरोस्थि पिण्ड के ऊपरी भाग से जुड़ता है। ये दोनों हड्डियाँ जिस जगह मिलती

हैं वहाँ दोनों ओर दो गड्ढे से होते हैं, जिन पर पतली तथा दूसरी पसली की हड्डियों के अग्रभाग आकर जुड़ जाते हैं।

उरोस्थि पिण्ड का लम्बा भाग ऊपर से नीचे तक रहता है। इसके दोनों ओर गड्ढे बने रहते हैं, जिनमें तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी तथा सातवीं पसलियों की हड्डियों के अग्रभाग आकर जुड़ते हैं। इसका सामने का हिस्सा चर्म के पीछे रहता है, तथा इसके दोनों ओ वृहद् वक्षच्छदिका (Pectoralis Major Muscles) संयुक्त रहती है।

उरः पत्रक बहुत छोटा होता है। इसके पृष्ठभाग से 'मध्यच्छदिका' (Diaphragm) का संयोग होता है। इसके निम्नभाग से दो मांसपेशियाँ आरंभ होती हैं, जो नीचे जाकर श्रोणि अस्थि से मिल जाती हैं। इन माँसपेशियों को समादरिका (Rectus Abdominis Muscle) कहा जाता है।

विशेष– वक्षोस्थि के दोनों ऊपरी भाग कठोर अस्थिमय होते हैं तथा निम्न भाग जीवन के मध्य काल तक कोमल एवं लचीला बना रहता है। 40 वर्ष की आयु के बाद यह भाग भी हड्डी में परिवर्तित होकर कड़ा बन जाता है।

पर्शुकाऐं अथवा पसलियाँ (RIBS) पसलियों की हड्डियों संख्या में 24 होती हैं। इनके द्वारा वक्षःस्थल की दीवार का निर्माण होता है। इनमें से 12 पसिलयाँ (हड्डियाँ) वक्षःस्थल के दाँई और तथा 12 पसलियाँ बाँई ओर रहती हैं।

वक्षःस्थल ऊपर की ओर सँकरा तथा नीचे की ओर चौड़ा एक पिंजड़े जैसा होता है। उक्त 12–12 पसलियों पहली 7–7 पसलियाँ सामने की ओर मध्य धड़ में अर्थात् वक्षेस्थि में जुड़ी रहती हैं। इन सात पसलियों को पूर्ण पंजरास्थि (True Ribs) कहा जाता है। शेष 5–5 पसलियों में ऊपर वाली तीन–तीन पसिलयों की उपास्थि सातवीं पसली से जुड़ी रहती है तथा अन्तिम दो–दो पसलियों को 'झूठी पसलियाँ' अथवा 'तैरती पसलियाँ' (Floating Ribs) कहा जाता है। क्योंकि इनका एक सिरा किसी से जुड़ा नहीं रहता।

यहाँ यह ध्यान में रखने योग्य है कि सभी पसलियाँ वक्षोस्थि से एकदम जुड़ी नहीं रहती। 'वक्षोस्थि' तथा पसलियों के बीच एक अपास्थि–सी होती है, जिसे 'उपर्शुका' (Costal Cartilage) कहते हैं। यही पसलियां को वक्षोस्थि से संयुक्त करने का काम करती हैं।

पीठ की पहली कशेरुका दोनों ओर की पहली पसलियों तथा वक्षोस्थि के ऊपरी किनारे पर एक छिद्र रहता है, जिसके भीतर से रक्तवाहिनियाँ निकलती हुई गर्दन से वक्षःस्थल में आती हैं तथा अन्य कितनी ही नाड़ियाँ इसी छिद्र में होकर ऊपर को जाती हैं।

किसी बीच की पसली की हड्डी की परीक्षा करने पर उसके निम्नलिखित तीन भाग ज्ञात होते हैं–

1. अन्ति भाग, 2– मध्य भाग तथा 3– अग्र भाग।

अन्तिम भाग (Vertebral End)- यह भाग पीछे की ओर स्थित रहता है तथा इसके (क) सिर, (Head) (ख) ग्रीवा (Neck) (ग) गलिका (Tubercle) तीन भाग होते हैं। 'सिर' वाला भाग गोल होता है और वह दो वक्ष–कशेरुकाओं के पार्श्वतल के गड्ढे से जुड़ा रहता है। 'ग्रीवा' वाला भाग सँकरा तथा लम्बा होता है और यह वक्ष कशेरुका के अनुप्रस्थ प्रवर्ध से जुड़ा रहता है। 'गुलिकायें' वाला भाग उभरा हुआ होता है। यह एक दृढ़ तथा मोटे तन्तु द्वारा अनुप्रस्थ प्रवर्ध (Transverse Process) से

जुड़ा रहता है। यह भाग श्वास लेते तथा छोड़ते समय 'अनुप्रस्थ प्रवर्ध' के एक ओर से दूसरी ओर को फिसलता रहता है।

2. **मध्य भाग** (Shaft) यह भाग टेढ़ा, चपटा, संकरा तथा लम्बा एवं दो किनारों वाला होता है। इसके (क) बाह्य धरातल चिकना एवं उन्नतोदर होता है। ऊपर वाली पसली के बाह्य तथा आभ्यन्तर भाग में 'त्रिक कंटिका' मांशपेशी (Sacro Spinatis) लगी रहती है। बीच वाली हड्डियों से 'तिर्यक् बाह्योदरी' (External Oblique) नामक मांसपेशी निकलती है। नीचे की मसली से 'कटिपार्श्वच्छदिका' (Latisiums) नामक मांसपेशी संयुक्त रहती है। पार्श्वभाग में ये हड्डियाँ सामने एवं नीचे की ओर झुकी रहती हैं तथा इनके बाह्य–धरातल पर त्वचा चढ़ी रहती हैं।

मध्यभाग का भीतरी भाग नतोदर होता है। यह एक लम्बे धरातल के उभार द्वारा दो भागों में विभक्त रहता है। निचले भाग में अन्तरापर्शुका धमनी शिरा एवं तन्त्रिका जुड़ी रहती हैं। इसके ऊपरी तथा निचला–ये दो किनारे होते हैं। ऊपर वाली पसली के निचले किनारे से आरंभ होने वाली दो मांसपेशियाँ नीचे की दूसरी पसली वाली हड्डी के ऊपरी किनारे पर समाप्त होती हैं। इनके नामक क्रमशः 'बाह्य अन्तरापर्शुका' तथा 'आभ्यन्तर अन्तरापर्शुका' होते हैं।

फेफड़ों की झिल्ली तथा वर्ण फुफ्फुस का सम्बन्ध पसली की हड्डी के भीतरी धरातल से रहता है। पसली की सभी हड्डियाँ वक्षःस्थल के विभिन्न अवयवों की रक्षा का कार्य करती हैं।

ऊर्ध्वशाखा की हड्डियाँ (Bones of the upper Extremities) ऊर्ध्व शखा में कंधे के बगल से दोंनो ओर की दोनों बाँहें तथा हाथ तथा उनके अंशों की गणना की जाती है। कन्धे का निर्माण चूँकि स्कन्धास्थि तथा 'कण्ठास्थि' (हँसली की हड्डी) से मिलकर हुआ है अतः 'कण्ठास्थि' की गणना भी ऊर्ध्वशाखा की हड्डियों के अन्तर्गत ही की जाती है।

ऊर्ध्व शाखा के दक्षिण तथा वाम–ये दो भाग होते हैं। इनमें से प्रत्येक भाग में 32–32 हड्डियाँ पाई जाती हैं। इस प्रकार ऊर्ध्व शाखा में कुल मिलाकर 64 हड्डियाँ होती हैं। जो निम्नानुसार हैं–

1. कण्ठास्थि अथवा अक्षकास्थि अथवा जन्तुकास्थि (Clavicle) सामने की ओर	1
2. स्कन्धास्थि अथवा अंशफलक (Scapula) पीछे की ओर	1
3. प्रगण्डास्थि (Humerus) बाँह में	1
4. चक्रदण्ड अस्थि (Radius) अग्रबाहु में	1
5. अन्तः प्रकोष्ठास्थि (Ulna), कुलनी में	1
6. मणिबन्ध अस्थियाँ (Metacarpal Bones), मणिबन्ध में	8
7. करभास्थियाँ (Metacarpal Bones) हथेली में	5
8. अंगुल्यास्थियाँ (Phalanges), अँगुलियों में	14
कुलयोग	32

उपर्युक्त विवरण एक ओर की ऊर्ध्व शाखा की हड्डियों का है। जिस प्रकार एक ओर कुल 32 हड्डियाँ हैं उसी प्रकार दूसरी ओर भी 32 हड्डियाँ होती हैं। ऊर्ध्वशाखा की विभिन्न अस्थियों के सम्बन्ध में अलग–अलग विवरण आगे लिखे अनुसार समझना चाहिए।

कण्ठास्थि, अक्षकास्थि अथवा जत्रुकास्थि (CLAVICLE) ये हड्डियाँ संख्या में 2 होती हैं तथ्ा 'उरोस्थि' (Starnum) के दोनों ओर ऊपरी भाग में स्थित रहती हैं। इनके दो सिरे होते हैं– 1. अभिमध्य तथा 2. पार्श्व। अभिमध्य का अन्त भाग गोल होता है और वह उरोस्थि के पार्श्व–अन्त चपटा होता जो स्कन्धास्थि अथवा अंसफलक (Scapula) के अन्त भाग से जुड़ता है।

इस अस्थि का ऊपरी भाग फुफ्फुस के शिखर के निकट होता है। इसके ठीक पीछे निम्न भाग में 'अधोजतुक' नामक एक धमनी रहती है।

स्कन्धास्थि अथवा अंशफलक (SCAPULA) यह एक त्रिभुजाकार हड्डी है, जो पीठ में दोनों ओर के ऊपरी भाग में स्थित रहती है। इसके 2 धरातल, 3 किनारे तथा 3 उभार होते हैं। इसका 1 धरातल पीछे तथा एक सामने की ओर होता है। पिछले धरातल के ऊपरी भाग में एक तिरछी तथा उभरी हड्डी होती है, जिसे 'कंटक' (Spine) कहा जाता है। यह 'कंटक' स्कन्धास्थि के पिछले धरातल को 2 भागों में विभक्त करता है, उनमें नीचे वाले चौड़े भाग तथा बड़े भाग को 'अधः अंशुपृष्ठिका खात' (Fass or Infraspinata) कहते हैं। यही से एक 'अधः अंशपृष्ठिका' (Infrapinatus Muscles) नामक मांसपेशी निकलती हैं। 'कंटक' का ऊपरी भाग सँकरा होता है। इसे 'ऊर्ध्व अंश पृष्ठिा खात' (Farsa Supraspinata) कहते हैं। इससे भी एक मासंपेशी निकलती है।

स्कन्धास्थि का पश्चतल उन्नतोदार होता है और वह एक कण्टक द्वारा दो भागों में बँटा रहता है। ऊपरी भाग 1/5 तथा निचला भाग 4/5 है। ऊपर के सँकरे भाग से 'ऊर्ध्व अंश पृष्ठिका' (Surptaspinatus Muscle) नामक एक मांसपेशी निकलती है तथा नीचे के चौड़े एवं बड़े भाग से अधः अंशपृष्ठिका (Infraspinatus Muscle) नामक एक अन्य मासपेशी निकलती है। 'कंटक' के ऊपरी तथा चौड़े पार्श्व भाग को 'अंशकूट' (Aeromion) कहा जाता है। यह लगभग 'जतुकास्थि' (Clavicle) से जुड़ा रहता है इसके ऊपरी भाग से एक 'त्रकोणिका' (Deltoid Muscle) नामक मांसपेशी निकलती है।

अंश–गर्त के ऊपर प्रगण्डास्थि का ऊपरी भाग आ मिलता है। अंशगर्त के ऊपर ही 'तण्ड–प्रवर्ध' (Coracoid Process) नामक एक टेढ़ी हड्डी लटकती रहती है। यही तन्तु निर्मित एक मोटा सम्पुट (Capsule) होता है, वह प्रगण्डास्थि को चारों ओर से जकड़े रहता है। इसे संधायक सम्पुट (Articular Capsule) कहते हैं।

संधायक सम्पुट एवं प्रगण्डास्थि के सिर के पीछे एक तैल सदृश चिकना–द्रव रहता है, जो 'प्रगण्डास्थि' को 'अंशगर्त' में चारों ओर घुमाने में सहायता करता है। इस तरल–द्रव को 'श्लेषक द्रव' (Synovial Fluid) कहा जाता है।

स्कन्धास्थि, जतुकास्थि (कण्ठास्थि) तथा प्रगण्डास्थि– ये तीनों हड्डियाँ जिस स्थान पर मिलकर एक गन्धि का निर्माण करती हैं, उस जगह को 'स्कन्ध–सन्धि' (Shoulder joint) कहते हैं। यह सन्धि गेंद–बल्ला जैसी होती है।

यह बाँह की हड्डी है। इसके तीन भाग होते हैं–

1. ऊपरी भाग।

2. पिण्ड।
3. निम्न भाग।

प्रगण्डास्थि का ऊपरी भाग (Upper End of Humerous) ऊपर स्कन्धास्थि तथा नीचे कूर्पर सन्धि (Elbow joint) के मध्य में स्थित रहता है। यह ऊपरी भाग कंधे की संधि से जा मिलता है। इसके ऊपरी भाग के 4 विभाग होते हैं– 1. सिर, 2. ग्रीवा 3. वृहत् गुलिका तथा 4. गुलिका।

'सिर' वाला भाग घड़ी के मूंठ की भाँति गोल तथा स्कन्धास्थि के अंशगर्त से जुड़ा रहता है। 'ग्रीवा' वाला भाग सँकरा होता है। इसके चारों ओर एक बहुत मोटी तथा दृढ़ झिल्ली लगी रहती है, जो अंशगर्त तथा सिर को भलीभाँति बाँधे रखती है। इस झिल्ली को संघायक सम्पुट (Articular Capsule) कहा जाता है। इसी के बगल में 'वृहत् गुलिका' रहती है। 'लघु गुलिका' के ऊपर स्कन्धास्थि आरंभ होने वाली मांसपेशियाँ रहती हैं। ये मांसपेशियाँ त्रिकोणिका जतुम तथा अंशकूट से आरंभ होकर प्रगण्डस्थि के ऊपरी भाग से जा लगती है।

प्रगण्डास्थि का पिण्ड त्रिभुजाकार होता है। इसकी 1. अग्र 2. अभिमध्य तथा 3. पार्श्व– ये तीन धाराऐं (Border) होती हैं तथा तीन ही तल (Surface) भी होते हैं।
1. अग्रधारा तथा अभिमध्य धारा के बीच का भाग अग्र 'अभिमध्य तल' 2. अग्र तथा पार्श्व धारा के बीच का भाग 'अग्र पार्श्वतल' तथा 3. पीछे का भाग 'पश्च तल' कहा जाता है।

अग्रधारा तथा अग्र अभिमध्य तल के ऊपर वाली मांसपेशी को 'द्विशरस्का' (Bleeps Muscle) तथा अग्र पार्श्व एवं पश्चतल के ऊपर वाली मांसपेशी को 'त्रिशिरस्का' (Triceps Muscle) कहा जाता है।

प्रगण्डास्थि का निम्न भाग चौड़ा होता है तथा इसके अभिमध्य एक पार्श्वधारा बहुत नुकीले होते हैं। इसके निम्न भाग में एक 'चक्रक' (Trochlea) होता है। अन्तः प्रकोष्ठास्थि इसी के ऊपर रहकर सामने तथा पीछे की ओर घूमती है। इस चक्रक के दोनों ओर हड्डी के दो उभार होते हैं।

जिन्हें क्रमशः 1. 'अभिमध्य अधिस्थूलक' (Medial epicondyle) एवं 2. पार्श्व अधिस्थूलक (Lateral Epieondyle) कहलाता है।

कूर्परसन्धि– प्रगण्डास्थि, बहिःप्रकोष्ठास्थि तथा अन्तः प्रकोष्ठास्थि इन तीन अस्थियों के द्वारा बनने वाली संधि को 'कर्पूर सन्धि' (Elbow joint) कहा जाता है।

बहिः प्रकोष्ठास्थि तथा अन्तः प्रकोष्ठास्थि (Radius and Ulna) ये दोनों हड्डियाँ अग्रबाहु में रहती हैं। अंगूठे की ओर रहने वाली हड्डी को 'बहिः प्रकोष्ठास्थि' अथवा 'चक्रदण्ड अस्थि' (Radius) तथा कनिष्ठा अंगुली की ओर रहने वाली हड्डी को 'अन्तः प्रकोष्ठास्थि' (Ulna) कहा जाता है।

उक्त दोनों हड्डियाँ एक दूसरी के समान्तर रहती है तथा त्रिभुजाकार होती हैं। इन दोनों हड्डियों का अभिमध्य भाग नुकीला होता है। जो एकक अंतरास्थि कला, नामक झिल्ली द्वारा परस्पर जुड़ा रहता है। यह सुदृढ़ झिल्ली के ऊपर से नीचे की ओर फैली रहती है।

बहिः प्रकोषठास्थि (Radius)- यह हड्डी अग्रबाहु के पार्श्व (Lateral Sick) में स्थित रहती है। इसके ऊपरी भाग में सबसे ऊपर एक गोल तथा छिछला गड्ढा होता है, जिसे 'बहिः प्रकोष्ठिक' चक्रिका' (Radial Disc) कहते हैं, इसके ड्डपर प्रगण्डास्थि का

सबसे निम्न भाग का मुण्डक आकर मिलता है। इस चक्रिका के निचले संकरे भाग को 'ग्रीवा' कहते हैं। इसके चारों और झिल्ली निर्मित एक तन्तु लिपटा रहता है जिसे 'वलयी स्नायु' (Anular Ligament) कहा जाता है। ग्रीवा के नीचे अभिमध्यस्थ तथा अन्तः प्रकोष्ठिकास्थि से संयुक्त हड्डी का एक गोल भाग होता हे, जिसे 'बहिः प्रकोष्ठिका गुलिका' (Radius tuberosity) कहा जाता है। बहिः प्रकोष्ठास्थि का मध्य भाग त्रिभुजाकार तथा 'अभिमध्य' (Medial) की ओर कुछ झुका रहता है। निम्न भाग चौड़ा एवं त्रिभुजाकार होता ह। इसका अभिमध्य भाग भी नतोदर होता है और वह अन्तः प्रकोष्ठास्थि से जुड़ा रहता है।

अन्तः प्रकोष्ठास्थि (Ulna)**-** यह हड्डी अग्रबाहु के अभिमध्य में स्थित रहती है। इसके तीन विभाग होते हैं– 1. ऊपरी 2. मध्य अर्थात् पिण्ड एवं 3. निम्न। इसके ऊपरी भाग के भी दो भाग होते हैं। तथा उन दोनों के मध्य एक गड्ढा होता है। ऊपरी भाग को 'कूर्पर' (Olieranon) तथा निम्न भाग को 'चंचु प्रवर्ध' (Coronoid Process) कहा जाता है। 'कूर्पर' तथा चंतु प्रवर्ध के बीच एक गुहा होती है, जिसे 'चंचुखात' (Coronoid Fassa) कहते हैं। 'चंचु प्रवर्ध' के निचले पार्श्व में भी एक गड्ढा होता है, उसे 'वाह्य प्रकोष्ठीक खात' (Radial Notch) कहा जाता है। बाह्य प्रकोष्ठाास्थि तथा वृहत्–गुलिका (Tuberosity) इसी गड्ढे में जुड़ती है।

इसके 'पिण्ड' का पार्श्वधारा बहुत तेज तथा अन्तरास्थि कला नामक एक मोटी झिल्ली से आवृत्त होता है। इसका निम्न भाग ऊपरी भाग की तुलना में बहुत छोटा होता है तथा कनिष्ठिका अंगुली की ओर कलाई की हड्डी से मिला रहता है।

मणिबन्ध अस्थियाँ (Carpal Bones or Wrist Bones)**-** ये हड्डियाँ संख्या में 8 होती हैं। इनका मुख्य कार्य कलाई को सरलतापूर्वक घुमाना होता है। इनका ङुपरी भाग बहिः प्रकोष्ठास्थि तााअन्य प्रकोष्ठास्थि से जुड़ा रहता है तथा निम्न भाग करभास्थियों से मिलता हे।

करभास्थियाँ (Metacarpal Bones)**-** ये हड्डियाँ संख्या में 5 होती हैं तथा हथेली में पाई जाती हैं। ये अपने ऊपरी भाग में मणिबन्ध अस्थियों से तथा निम्नभाग में अंगुल्यास्थियों से मिली रहती है।

अँगुल्यास्थियाँ (Phalanges)**-** ये हड्डियाँ अंगुलियों में रहती हैं तथा संख्या में 14 होती हैं। ये अपने ऊपरी भाग में करभास्थियों से संयुक्त रहती हैं। प्रत्येक अंगुली में 3–3 तथा अंगूठे में 2 अस्थियाँ होती हैं।

अधः शाखा की अस्थियाँ (Bones of the Lower Extremities)**-** अधः शाखा में कूल्हे से लेकर दोनों पाँव तथा उनके सभी भाग आ जाते हैं। ऊर्ध्व शाखा की भाँति ही इस शाखा के भी दो भाग हैं– 1. दक्षिण और 2. वाम। इस शाखा के प्रत्येक भाग में 31–31 हड्डियाँ होती हैं। इस प्रकार अधः शाखा में कुल मिलाकर 62 हड्डियाँ होती हैं। अधः शाखा के प्रत्येक भाग में निम्नलिखित संख्या में हड्डियाँ पाई जाती हैं–

1. नितम्बस्थि (Osinnominatum or Hip Bone) 1
2. ऊर्ध्वस्थि अथवा और्विकास्थि (Femur of thigh Bone) 1
3. जान्वस्थि (Patella) 1
4. सम्मुख जंघास्थि अथवा अन्तर्जंघास्थि (Tibia or Shin Bone) 1
5. अनुजंघास्थि अथवा बहिर्जंघास्थि (Fibulla) 1

6. पादकूर्च्चास्थियाँ (Tarsal Bones)		7
7. प्रपादास्थियाँ (Metatarsal Bones)		5
8. अंगुल्यास्थियाँ (Phalamges of the toes)		14
	कुलयोग	31

उपर्युक्त विवरण एक ओर की अधः शाखा की हड्डियों का है जिस प्रकार एक और कुल 31 हड्डियाँ हैं, उसी प्रकार दूसरी और भी 31 हड्डियाँ होती हैं। अतः दोनों ओर कुल मिलाकर 62 हड्डियाँ हुईं।

अधः शाखा की विभिन्न अस्थियों के सम्बन्ध मे अलग–अलग विववरण नीचे लिखे अनुसरण समझना चहिए।

नितम्बास्थि (Osinnominati or Hip Bone)- इसका निर्माण तीन हड्डियों– 1. श्रोणि फलक (Ilium), 2. आसनास्थि (Ischium) तथा 3. जघनास्थि (Pubis)- से मिलकर हुआ है। इन हड्डियो के पार्श्व में स्थित एक कटोरी जैसे गड्ढे को 'उलूखल' (Aectabulum) कहा जाता हे। उलूखल के नीचे एक बहुत बड़ा छिद्र होता है जिसे 'गवाक्ष छिद्र' (Obturat or Forman) कहते हैं। इस छिद्र का तीन चौथाई भाग 'गवाक्ष कला' (Obturat or Forman) नामक एक मोटी तथा सुदृढ़ झिल्ली द्वारा ढँका रहता है। इसी हड्डी के पीछे की ओर वाले गहरे भाग को 'वृहद् आसन खात' (Greator Setatic Notch) कहते हैं।

नितम्बास्थि का एक भाग 'श्रोणि फलक' है। इलियम के ऊपरी घूमे हुए भाग को शिखर (Crest) कहा जाता है। शिखर के अग्रभाग को 'अधिअग्र श्रोणि कंटक' (Anterior Superior Iliac Spines) कहते हैं। यहाँ से एक मोटा तथा दृढ़ स्नायु निकल कर तााि जघनास्थि पर पहुँचकर गुलिका में जुड़ जाता है। फलतः इन दोनों का आकार अंगेजी के V अक्षर जैसा बन जाता है। इसे 'वक्षण स्नायु' (Inguinal Ligament) कहते हैं। यह सम्पूर्ण उदर का आधार बनकर, जाँघ को उदर से अलग करता है। इसके मध्य में एक छिद्र होता है, जिसे 'वक्षण वलय' (Inquinal Ring) कहा जाता है। इस वलय के द्वारा 1. और्बी शिरा 2. और्बी धमनी तथा 3. और्बी तन्त्रिका–ऊपरी जाँघ में एक दूसरे के समानान्तर प्रविष्ट होते हैं।

ऊर्ध्वस्थि अथवा और्विकास्थि (FEMUR)- यह जाँघ की लम्बी मजबूत तथा त्रिभुजाकार हड्डी 'नितम्बास्थि' (Hip Bone) एवं अन्तर्जघिका (Tibia) के मध्य स्थित रहती है। इसके 1. सिर (Head), 2. पिण्ड (Body) तथा 3. निम्न भाग (Lower End)- ये तीन हिस्से होते हैं।

और्विकास्थि का 'सिर' (Head) छोटी गेंद की भाँति गोल होता है, जिसके मध्य में एक गड्ढा होता है। उसे 'और्विका शिर गर्त्तिका' (Fovea Capites Femors) कहते हैं। नितम्बास्थि के उलूखल (Acetabulum) से आरंभ होने वाला एक बहुत मोटा 'गोलस्नायु' (Ligamentum Teres) इससे लगा रहता है। और्विकास्थि का सिर ऊपर अन्दर की ओर झुका रहता है और उलूखल के गड्ढे से आ मिलता है। इन दोनों के मध्य एक चिकना तरल द्रव रहता है, जो और्विकास्थि के सिर को गति देने में सहायता करता है।

और्विकास्थि की ग्रीवा (Neck) सिर (Head) से पतली तथा सँकरी होती है और वह पिण्ड के साथ 120^0 का कोण बनाती है। यह ग्रीवा प्रगण्डास्थि की ग्रीवा की अपेक्षा अधिक लम्बी तथा पिण्ड से अलग होती है। इसके चारों ओर 'संधायक सम्पुट' (Articular Capsule) लगा होता है। जिस प्रकार 'प्रगण्डास्थि' में वृहत् गुलिक होता है, उसी॰पकार और्विकास्थि में भी एक 'वृहत् ट्रोकेन्टर' (Great Trochanter) होता है। यह पार्श्व में स्थित होता हैं इसका पार्श्वतल उन्नतोदर तथा खुरदुरा होता है, जिसके ऊपर तुण्डिका पेशियाँ (Piri Formis Muscles) संयुक्त होती है। इस अस्थि के नीचे की ओर अभिमध्य भाग में 'लघु ट्रोकेन्टर' (Lesser Trochanter) नामक हड्डी का एक छोटा सा गोला होता है।

और्विकास्थि का 'पिण्ड' (Body) त्रिभुजाकार होता है, जिसका आधार सामने की तरफ तथा शिखर पीछे की तरफ रहता है। इसके तीन तल होते हैं– 1. अग्र, 2. पश्च अभिमध्य तथा 3. पश्च पार्श्व। अभिमध्य तल के ऊपर क्रमशः तीन पेशियाँ ऊपर से नीचे तक लगी रहती हैं, जो 'नितम्बास्थि' से निकली होती हैं। इनके अतिरिक्त 3 अन्य बड़ी तथा मोटी पेशियाँ भी होती हैं, जो जाँघ को तीन ओर से आच्छादित किए रहती हैं।

और्विकास्थि का 'निम्नभाग' (Lower End) चौड़ा तथा मोटा होता है। यह अभिमध्य अधि स्थूलक' (Medial Epicondyle) तथा 'पार्श्व अधिस्थूलक' (Lateral Epicondyle) नामक दो भागों में विभक्त रहता है। इनमें पार्श्व अधिस्थूलक आकार में कुछ बड़ा तथा नीचे की ओर लटका हुआ, अन्तर्जंघास्थि से जुड़ा रहता हे।

जान्वस्थि (PATELLA)

'घुटने की सन्धि' (Knee Joint)- के निर्माण में 1. और्विकास्थि का निम्न भाग, 2. अन्तर्जंघास्थि 3. बहिर्जंघास्थि तथा 4. जान्वास्थि– ये चार हड्डियाँ भाग लेती हैं। घुटने के ऊपर का उभरा हुआ भाग पहले एक स्नायु के रूप में होता हे। यह और्विकास्थि के निम्न भाग से (Petallae) है। प्रायः 6 वर्श की आयु में इस स्नायु का मध्य भाग कड़ी हड्डी के रूप में बदल जाता है। तब इसे 'जान्वास्थि' (Petalla) कहते हैं।

घुटने की संधि को 'अभिमध्य' तथा 'पार्श्व स्वस्तिक' (Medial and Lateral Cruciate Ligament) नामक दो स्नाुय भली–भाँति जकड़े रहते हैं। 'अभिमध्य स्नायु' अन्तर्जंघिका के अभिमध्य से आरम्भ होकर और्विकास्थि के पार्श्व से जुड़ा रहता है तथा 'पार्श्व स्वस्तिक स्नायु' अन्तर्जंघिका के पार्श्व से आरंभ होकर और्विकास्थि के अभिमध्य से जुड़ा रहता है। ये दोनों स्नायु एक दूसरे को काटते हुए की स्थिति (Cross) में रहते हैं। अन्तर्जंघिका के अभिमध्य तथा पार्श्व में 'चक्रिका' (Dise) नामक दो हड्डियाँ होती हैं। अभिमध्य तथा पार्श्व भाग में उपास्थि–तन्तु से निर्मित इसी वलय चक्रिका पर और्विकास्थि का निम्न भाग जुड़ा रहता है।

और्विकास्थि तथा अनार्जंघिका के मध्य में एक 'श्लेषक कला' (Synovial Menbrane) होती है, जिसके भीतर एक तरल श्लेषक द्रव (Synovial Fluid) रहता है। यह द्रव घुटने से मुड़ने में सहायता देता है। जानु–संधि में 1. कुंचन तथा 2. प्रसार– ये दो प्रकार की गतियाँ होती हैं।

सम्मुख जंघास्थि अथवा अन्तर्जंघास्थि (Tibla or Shin Bone)- यह पाँव के नीचे की लम्बी, मजबूत तथा मोटी हड्डी है, जिसका ऊपरी भाग मोटा तथा चौड़ा एवं निमनभाग पतला तथा संकरा होता है। इसके ऊपरी भाग के ऊपर 2 गोल तथा छिछले गड्ढे होते हैं, सिके भीतर और्विकास्थि का निम्न भाग आकर लगता है। इसके निम्न तथा मध्य भाग हड्डी का एक उभार नीचे की ओर लटका रहता है, जिसे अभिमध्य गुल्फ (Medial Maleolus) कहते हैं।

इसका अभिमध्य तल ऊपर से नीचे तक चिकना, चपटा एवं त्वचाच्छादित होता हे। इसके पार्श्व की पार्श्वधारा से एक मोटी तथा दृढ़ झिल्ली लगी होती है, जो यहीं से आरंभ होकर अन्तर्जंघिकास्थि (Fibulla) से जा लगती है। यह झिल्ली ही पाँव को दो भागों में विभक्त करती है। इस झिल्ली के सम्मुख भाग को (Anterior Portion) तथा पृष्ठभाग को Posteriar Portion कहा जाता है।

अनुजंघास्थि अथवा बहिर्जंघास्थि (Fibula)- यह पतली हड्डी अन्तर्जंघास्थि (Tibia) के पार्श्व में तथा उसी के समानान्तर रहती है। इसके 1. ऊपरी 2. मध्य तथा 3. निम्न– ये तीन भाग होते हैं। ऊपरी सिरा अपने अभिमध्य भाग में नतोदर होता है तथा अन्तर्जंघिकास्थि के पार्श्व तथा ऊपरी भाग से मिला रहता है। इसका निचला सिरा चौड़ा होता है, जिसे पार्श्वगुल्फ (Lateral Maleolus) कहते हैं। इसका मध्यभाग (Body) प्रायः चर्मच्छादित रहता है।

पादमूर्च्चास्थियाँ (Tarsal Bones)- ये हड्डियाँ काफी मोटी, बड़ी दृढ़ तथा संख्या में 7 होती हैं। इनके द्वारा 'एड़ी' का निर्माण होता है।

प्रपादास्थियाँ (Metatarsal Bones)- ये हड्डियाँ भी बहुत दृढ़ तिाा मोटी होती हैं। ये एड़ी की हड्डियों तथा पाँव की अंगुलियों के बीच स्थित रहती हैं। ये संख्या में 5 होती हैं तथा इनका निम्न भाग नतोदर होता है।

अंगुलास्थियाँ (Phalanges of the Toes)- हाथ की अंगुलियों की भाँति ही, पाँव की ये अस्थियाँ भी एक ओर को 14 अर्थात् दोनों ओर कुल मिलाकर 28 की संख्या में होती हैं। ये प्रत्येक अंगुली में 3–3 तथा अंगूठे में 2–2 पाई जाती हैं। पंजे तथा एड़ी की हड्डियाँ एक ही धरातल पर स्थित नहीं रहतीं, अपितु वे एक चाप बनाती हैं, जिसके कारण एड़ी तथा पंजे के जमीन से लगने पर ही तलवा (Arch of Foot) ऊपर को उठा रहता है। इस व्यवस्था से चलने में सुविधा रहती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न –

(i) हड्डियों के ढाँचे को–––तंत्र कहा जाता है।

(ii) मानव शरीर में कुल ––––हड्डियों पायी जाती है।

(iii) अस्थि तंत्र के अष्टाय कंकाल तथा––––कंकाल दो भेद है।

2.8 सारांश –

प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवरण से आप जान गये होंगे की अस्थि तंत्र का मानव शरीर संरचना में कितना महत्व है। अस्थि संस्थान हमारे शरीर को आकार एवं दृढ़ता प्रदान करने के साथ–साथ अन्य शारीरिक संस्थानों के लिये एक आश्रय स्थल के रूप में भी कार्य करता है। यदि अस्थियों का ढाँचा अर्थात् कंकाल तंत्र ही न हो तो मांसपेशियाँ कहाँ होगीं। रक्त कहाँ सहेगा अन्तः स्रावी ग्रन्थियों का अस्थित्व किस प्रकार से संभव होगा इसी प्रकार अन्य संस्थानों के अंग के लिये जगह या आश्रय कैसे उपलब्ध होगा। अतः अस्थि तंत्र भले ही हमारी शारीरिक संरचना की सबसे स्थूल परत या संस्थान है तथापि इसका भी उतना ही महत्व है, जितना की अन्य शारीरिक संस्थानो का क्योंकि कोई भी एक तंत्र मिलकर सम्पूर्ण शरीर का निर्माण नहीं करता वरन् सभी तंत्रों के आपस में मिलने पर ही एक सर्वांगपूर्ण शरीर की रचना होती है तथा सभी संस्थान एक–दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते है।

2.9 – शब्दावली

अस्थि पंजर – कंकाल तंत्र या अस्थि तंत्र
धमनी –ऐसी रक्त नलिकायें जिनमें ऑक्सीजन युक्त रक्त सहता ह।
शिरा– जिन रक्त नलिकाओं में अशुद्ध या कार्बनडइ ऑक्साइड युक्त रक्त प्रवाहित होता है।
कपालास्थि –खोपड़ी की हड्डी
अधोहनुस्थि – निचले जबड़े की हड्डी
ग्रीवा – गर्दन
काटि – कमर
पक्षीय – छाती वाले हिस्से से संबंधित
जान्वस्थि –घुटने की अस्थि

2.10 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(i) अस्थि तंत्र, कंकाल तंत्र

(ii) 206

(iii) अनुबंधीय कंकाल

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
10. गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
11. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
12. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
13. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1.2.3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली
14. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा
15. सक्सेना, ओ0पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।
16. Chaurasis's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

2.10 – निबंधात्मक प्रश्न

1. कंकाल तंत्र की संरचना का वर्णन करते हुये इसके प्रमुख कार्यों पर प्रकाश डालिये।
2. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
   (क) अस्थि तंत्र में हड्डियों की संख्या
   (ख) अस्थि तंत्र के प्रकार
3. कंकाल तंत्र की संरचना का वर्णन करते हुये इसके प्रमुख कार्यों पर प्रकाश डालिये।
4. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
   (क) अस्थि तंत्र में हड्डियों की संख्या
   (ख) अस्थि तंत्र के प्रकार

इकाई – 3– संधियों के प्रकार एवं कार्य

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 संधियों के प्रकार

3.3.1 संरचना के आधार पर

3.3.2 गति के आधार पर

3.4 संधियों में होने वाली गतियाँ एवं प्रकार्य

3.5 मानव शरीर की मुख्य संधियाँ

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों इससे पूर्व की इकाईयों में आपने मानव शरीर संरचना के अन्तर्गत कोशिका, ऊतक तथा अस्थियों की संरचना एवं कार्य के विषय में अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय है– संधियों के प्रकार एवं कार्य अर्थात् विभिन्न अस्थियाँ आपस में मिलकर किस प्रकार संधियों का निर्माण करती है। इन संधियों के विभिन्न कार्य कौन – कौन से हैं, संधियों में कौन – कौन सी गतियाँ होती हैं इत्यादि। तो आइये पाठको, सर्वप्रथम हम यह जानें कि संधिया जोड़ किस कहते है तथा किस आधार पर इनका वर्गीकरण किया गया है।

3.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- संधि किसे कहते है – इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- संधियों को विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकेंगे।
- संधियों में होने वाली विभिन्न प्रकार की गतियों का अध्ययन कर सकेंगे।
- संधियों के कार्यो को स्पष्ट कर सकेंगे।
- मानव शरीर में पाई जाने वाली प्रमुख संधियों का अध्ययन कर सकेंगे।

3.3 संधियों के प्रकार –

शरीर के कंकाल की रचना छोटी–बड़ी, लम्बी–पतली, चपटी–गोल आदि अनेकों प्रकार की अस्थियों से मिलकर होती है तथा पेशियाँ इन्हें शक्ति प्रदान करती हैं, परन्तु गतिशील सन्धियों से शरीर को गति करने की क्षमता प्राप्त होती है। शरीर में जहाँ कहीं दो अस्थियाँ अथवा उपस्थियाँ आपस में मिलती हैं वहाँ जोड़ या सन्धि बनती हैं। सन्धियों का वर्गीकरण रचना तथा गति के आधार पर किया गया है।

3.3.1 – संरचना के आधार पर संधि का वर्गीकरण–

संरचना के आधार पर सन्धियों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है; जैसे–

1. तन्तुमय सन्धियाँ (Fibrous joints)
2. उपस्थिमय सन्धियाँ (Cartilaginous joints)
3. साइनोवियल सन्धियाँ (Synovial joints)

3.3.2 गति के आधार पर संधि का वर्गीकरण –

गति के आधार पर भी सन्धियों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। जिस स्थान पर अस्थियाँ आपस में सन्धि बनाती हैं वहाँ पर वे थोड़ी बहुत गति कर सकती है,

परन्तु कुछ सन्धियाँ ऐसी भी हैं, जिनमें गति करने की क्षमता बिल्कुल भी नहीं रहती हैं। कुछ सन्धियों में स्वच्छन्दतापूर्वक गति करने की क्षमता रहती है। कुछ सन्धियों में केवल हल्की (Slightly) गति हो सकती है।

जैसे–

1. अचल सन्धियाँ (Immovable joints or Synarthroses)
2. अल्पचल सन्धियाँ (Slightly movable joints or Amphiarthroses)
3. चल सन्धियाँ (Movable joints or Diarthroses)

साधारण तौर पर देखा जाय तो तन्तुमय सन्धियाँ सामान्यतः अचल (Synarthroses), उपस्थिमय सन्धियाँ सामान्यतः अल्पचल सन्धियाँ (Amphiarthroses), तथा साइनोवियल सन्धियाँ सामान्यतः चल सन्धियाँ (Diarthroses) होती हैं। किन्तु सभी सन्धियाँ इस वर्गीकरण के अन्तर्गत विभाजित नहीं की जा सकती हैं। क्योंकि कुछ सन्धियाँ ऐसी भी हैं, जो थोड़ी सी गतिशील होती हैं जैसे टिबिया और फिब्यूला का निचला जोड़। कुछ उपस्थिमय सन्धियाँ होती हैं, जो विरले ही गतिशील है, जैसे सिम्फाइसिस प्यूबिस।

तन्तुमय सन्धियाँ (Fibrous Joints)

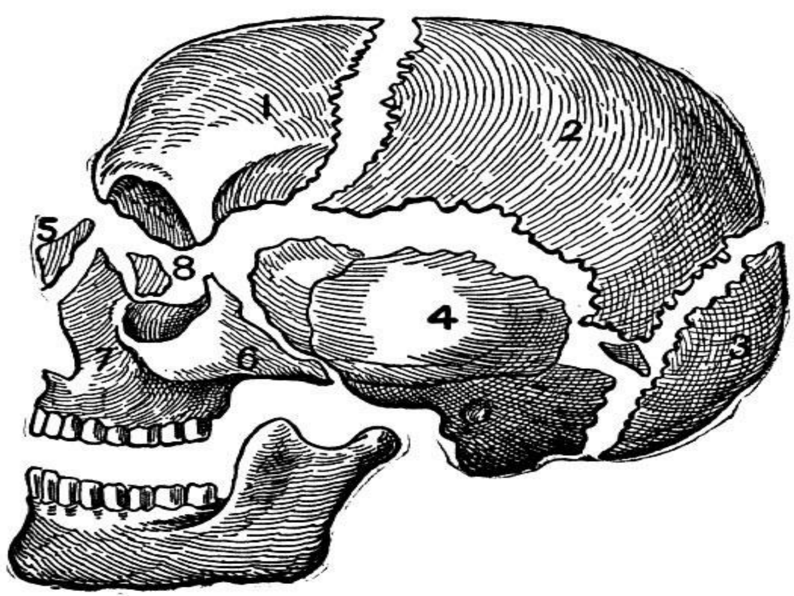

Fibrous joints

तन्तुमय सन्धियों में सन्धि गुहा (joint cavity) का अभाव रहता है, तथा तन्तुमय संयोजी ऊतक (Fibrous connective tissue) अस्थियों को आपस में सन्धिबद्ध करते हैं। चूंकि

ये आपस में कसकर जुड़ जाते हैं, इसीलिए वयस्कों में तन्तुमय सन्धियाँ सामान्यतः अचल होती हैं। सामान्यतः तन्तुमय संधियाँ निम्न तीन प्रकार की होती हैं–

1. सन्धि रेखाएँ या स्यूचर्स (Sutures)
2. सिण्डेस्मोसिस (Syndesmoses)
3. गोम्फोसिस (Gomphoses)

स्यूचर्स (Sutures)

कपाल की अस्थियों के बीच पा जाने वाली सन्धि रेखाएँ (Sutures) तन्तुमय या अचल सन्धियाँ होती हैं। वयस्कों में ये अस्थियाँ जुड़ने के बाद गति नहीं करती हैं और पूर्ण रूप से स्थिर हो जाती हैं। जुड़ने वाली अस्थियों के किनारों पर आरी के समान दाँत रहते हैं, जो एक–दूसरी अस्थि के दाँतों में फिट बैठकर स्यूचर सन्धि बनाते हैं। शिशु में जन्म के समय अस्थि और अस्थि के बीच तन्तुमय ऊतक की स्पष्ट रेखा रहती है, जो अस्थियों के किनारों को एक दूसरे के ऊपर मामूली खिसकने देती हैं, जिसे श्रोणिय मार्ग (Birth canal) से निकलते समय शिशु के सिर का शीर्शानुकूलन (Moulding) होने में आसानी होती है। भ्रूणों एवं बच्चों में कपालीय स्यूचर्स के लचीलेपन के कारण ही मस्तिश्क वृद्धि (Growth) सम्भव होती है, वयस्कों में, अस्थियों के बीच स्थित संयोजी ऊतक के तन्तु अस्थि में परिवर्तित हो जाते हैं तथा अस्थियाँ स्थायी रूप से जुड़ जाती है। इस तरह की सन्धि को अस्थि संयोजन या साइनोस्टोसिस (Synostosis) कहा जाता है।

सिण्डेस्मोसिस (Syndesmoses)

यह ऐसी अचल सन्धि होती है, जिसमें अस्थियाँ पास–पास होती हैं, किन्तु एक–दूसरे को स्पर्श नहीं करतीं तथा कॉलेजन तन्तुओं अथवा इन्टरोसियस लिगामेन्ट्स (Interoseous ligaments) द्वारा जुड़ी रहती है। ऐसी सन्धि की गति अस्थियों के बीच की दूरी तथा तन्तुमय संयोजी ऊतक के लचीलेपर पर निर्भर होती है। ऐसी अचल सन्धि इन्फीरियर टिबियोफिब्यूलर सन्धि में बनती है, जहाँ की सीमित गति होती है, जिससे इस जोड़ को ताकत मिलती है।जबकि रेडियस एवं अल्ना के बिच स्थित इन्टरोसियस लिगामेन्ट्स द्वारा अत्यधिक गति होती है, जिसमें अग्रबाहु की अवतानन (प्रोफेसन) एवं उत्तानन (सुपिनेशन) गतियाँ भी होती हैं।

गोम्फोसिस (Gomphosis)

एक प्रकार की तन्तुमय सन्धि है, जो एक कील या खूँटी (Peg) और गर्त्त (Socket) की बनी होती है। इस प्रकार की सन्धि दन्तमूल के दन्त कोटर में उसकी अस्थिल सॉकेट में फिट होने से बनती है।

उपस्थिमय सन्धियाँ (Cartilaginous Joints)

उपस्थिमय सन्धियों में अस्थियाँ हाएलिन कार्टिलेज की प्लेट अथवा फाइब्रोकार्टिलेज की गद्दी (Disc) से जुड़ी रहती हैं। ऐसी सन्धियों में सन्धि गुहा (Joint cavity) का अभाव रहता है तथा बहुत मामूली–सी गति होती है अथवा बिल्कुल गतिनहीं होती हैं। वर्टिब्री के कार्यों (Bodies), मेन्यूब्रियम के बीच और स्टर्नम के काय में उपस्थिमय सन्धि पायी जाती हैं।

साइनोवियल सन्धियाँ (Synovial Joints)

शरीर की अधिकांश स्थायी सन्धियाँ साइनोवियल होती है। इस प्रकार की सन्धियों में अस्थियों के सिरे एक पतली, चिकनी सन्धि बनाने वाली उपस्थि (आर्टिक्यूलर हाएलिन कार्टिलेज) से ढंके रहते हैं। इसमें एक सन्धि गुहा (joint cavity) होती है, जिसमें एक साफ, गाढ़ा, लसलसा तैलीय द्रव (साइनोवियल फ्ल्यूड) भरा रहता है, जो सन्धि को चिकना बनाये रखता है और रक्तवाहिका विहीन आर्टिक्यूलर कार्टिलेज को पोषण प्रदान करता है। सन्धि एक तन्तुमय आर्टिक्यूलर कैप्सूल द्वारा घिरी रहती है, जिसमें साइनोवियल कला या मेम्ब्रेन का स्तर रहता है। यह स्तर अस्थि के सिरों, उपास्थि और डिस्क पर नहीं रहता। तन्तुमय कैप्सूल (Fibrous capsule) कोलेजन तन्तुओं की मोटी परत, जिसे लिगामेन्ट कहते हैं, से जुड़ा रहता है। इस तरह की गन्धियों के बीच अन्य तरह की सन्धियों की अपेक्षा अधिक स्वच्छन्दता पूर्वक गतियाँ होती हैं।

साइनोवियल सन्धियों को अपने में होने वाली गतियों की सीमा अथवा अस्थियों के आर्टिकुलेटिंग सतहों के आकार के अनुसार विभिन्न वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं–

कोर या हिन्ज सन्धियाँ (Hinge joints)

इस प्रकार की सन्धियों को चूलदार सन्धियाँ भी कहते हैं। इनमें केवल एक ही दिशा में गति होना सम्भव होता है। इस प्रकार की सन्धियों में केवल आंकुचन (Flexion) एवं प्रसारण (extension) ही हो पाता है। कोहनी, घुटने, टखने, जबड़े और उंगलियों में इसी प्रकार की सन्धियाँ रहती हैं।

घुमावदार सन्धियाँ (Pivot joints)

इस प्रकार की सन्धियों में केवल एक्सिस या अक्ष के चारों ओर धूर्णन (rotation) ही सम्भव होता है। ग्रीवा की एटलस वर्टिब्रा एवं एक्सिस वर्टिब्रा के ऑडोन्टॉइड प्रवर्ध सन्धियाँ इसी प्रकार की सन्धियाँ हैं।

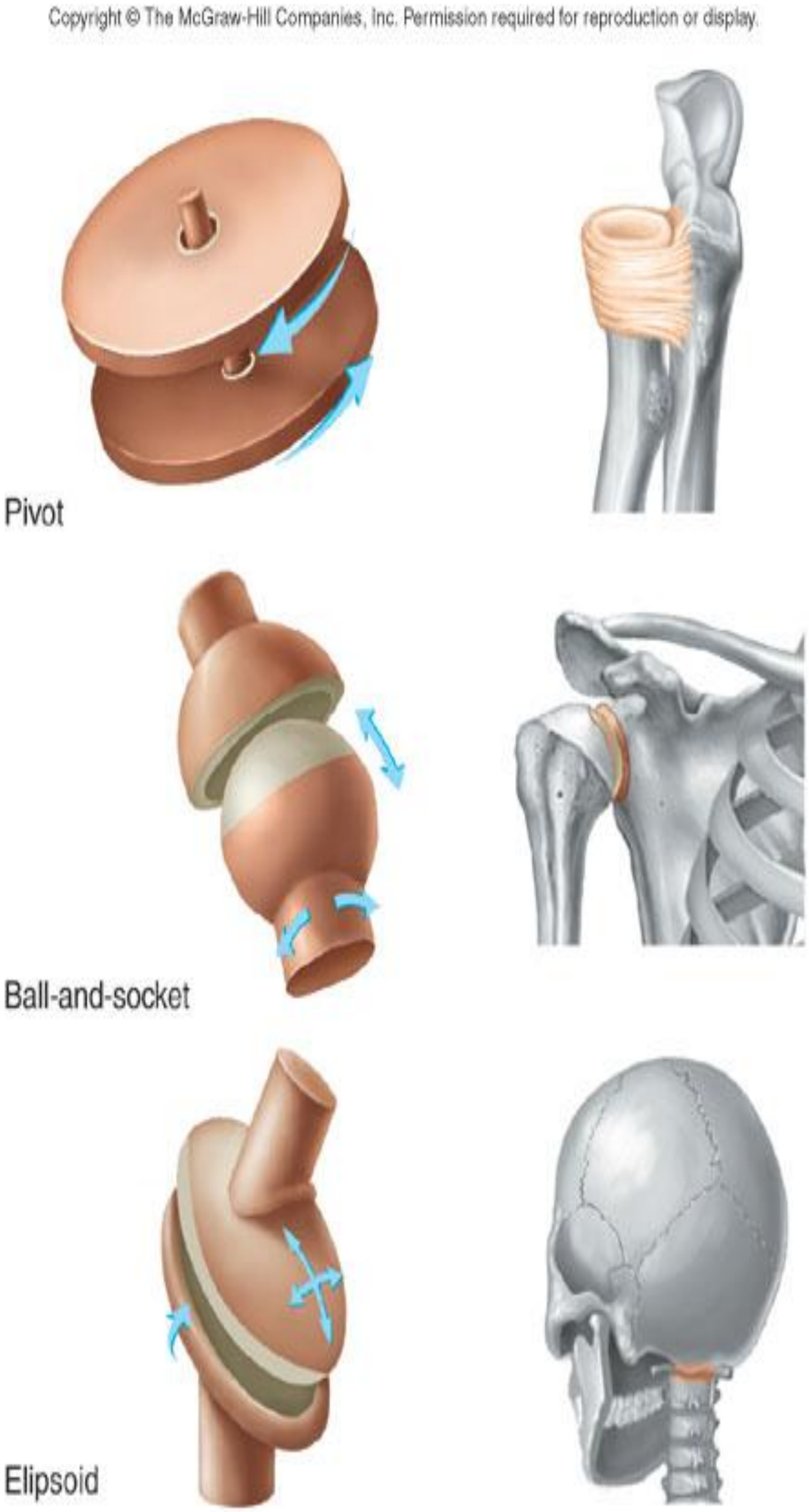

कॉण्डायलॉइड सन्धियाँ (Condyloid joints)

इस प्रकार की सन्धियाँ हिन्ज के समान ही होती हैं। इनमें पार्श्व में तथा अग्र–प्श्च दो दिशाओं में गतियाँ होना सम्भव होता है। इन सन्धियों में आकुंचन (Flexion), प्रसारण (Extension), अपावर्तन (Abduction), अभिवर्तन (Adduction) तथा कुछ–कुछ पर्यावर्तन (Circumduction) होना सम्भव होता है। परन्तु घूर्णन (Rotation) होना सम्भव नहीं होता। हाथ के अंगूठे को छोड़कर उंगलियों की मेटाकार्पोफेलेन्जियल सन्धियाँ (Knuckles), मेटाटार्सोफेलेन्जियल सन्धियाँ इसी प्रकार की सन्धियाँ हैं।

फिसलने वाली या ग्लाइडिंग सन्धियाँ (Gliding joints)

इस प्रकार की सन्धियों में अस्थियों की आर्टिकुलर सतहें चौरस (Flat) होती हैं, जिससे एक अस्थि दूसरी अस्थि पर फिसलती है। वर्टिब्री के आर्टिकुलर प्रवर्धो के बीच की सन्धियाँ, एक्रोमियोक्लोविकुलर सन्धि तथा कार्पल एवं टार्सल अस्थियों के बीच की सन्धियाँ इसी प्रकार की हैं।

सैडल सन्धियाँ (Saddle joints) -

इस प्रकार की सन्धियों में एक अस्थि का उत्तल शीर्ष दूसरी अस्थि के अवतल रचना वाले शीर्ष में जुड़ता है। इनमें अंग को घुमाने की बहुत स्वच्छन्दता रहती है। ऐसी सन्धि हाथ की प्रथम मेटाकार्पल तथा ट्रैपीजियम अस्थि के बीच सन्धि होती हैं। इन सन्धियों में अपावर्तन (Abduction), अभिवर्तन (Abduction), अपोजिशन (Opposition) एवं रीपोजीशन (Reposition) होता है।

बॉल एवं सॉकेट सन्धियाँ (Ball & Socket joints)

इस प्रकार की सन्धियों में एिक अस्थि का गोल सिरा दूसरी अस्थि के कप के आकार के सॉकेट (गुहा) में फिट रहता है। ये सन्धियाँ अन्य समस्त सन्धियों की अपेक्षा सर्वाधिक उन्मुक्त रूप से गति करती हैं। कन्धों की सन्धियाँ तथा कूल्हों की

सन्धियाँ इसी प्रकार की सन्धियाँ होती हैं। इन सन्धियों में आकुंचन, प्रसारण, अपवर्तन, अभिवर्तन, घूर्णन (अन्दर एवं बाहर की ओर) तथा र्प्यावर्तन (Cirumduction) होना सम्भव होता है। इनमें उत्तानन (सुपिनेशन) एवं अवतानन (प्रोनेशन) गतियाँ नहीं हो पाती हैं।

3.4 सन्धियों में होने वाली गतियाँ एवं प्रकार्य

1. आकुंचन या मुड़ाव (Flexion)

इस गति के द्वारा अंग को मोड़कर शरीर की मध्य रेखा की ओर लाने की क्रिया आती हैं। अंग को मोड़ना झुकाना (Bending) भी इसी गति के अन्तर्गत आता है। जैसे– कोहनी या घुटने को मोड़ लेना।

2. प्रसारण या तानना (Extension)

इस गति में अंग को शरीर के मध्य रेखा से दूर फैलाना सम्भव होता है। अंग को सीधा करके फैलाने की क्रिया (Straightening) इसी गति के अन्तर्गत आती है। जैसे– बाहों को तान लेना।

3. अपवर्तनि (Abduction)

शरीर के किसी अंग को शरीर की मध्य रेखा से दूर ले जाने को अपवर्तन कहा जाता है।

4. अभिवर्तन (Adduction)

शरीर की मध्य रेखा के समीप अंग को लाने की क्रिया को अभिवर्तन कहा जाता है।

5. पर्यावर्तन (Circumduction)

इस गति में अंग को शरीर से कुछ दूरी पर गोलाकार गति में घुमाना होता है, उदाहरण के तौर पर ऐसी गति क्रिकेट बॉल को हाथ घुमाकर फेंकने पर होती है।

6. घूर्णन (Rotation)

एक्सिस पर घूमने की गति को घूर्णन गति कहते हैं। ऐसी गति किसी अस्थि के प्रवर्ध के चारों ओर अन्य अस्थि के घूमने अाविा उसके किसी अन्य अस्थि के भीतर घूमने से होती है, जैसे एटलस वर्टिब्रा एवं एक्सिस वर्टिब्रा के ऑडोन्टॉइड प्रवर्ध के बीच की सन्धि में गति होती है।

7. अंतर्वर्तन (Inversion)

इसमें भीतर की ओर मोड़ने की क्रिया होती है, जैसे पाँच के तलवे का भीतर की ओर को घूम जाना।

8. बहिर्वर्तन (Eversion)

इस गति में अंग को बाहर की ओर मोड़ने की क्रिया होती है, जैसे पाँव के तलवे का बाहर की ओर को घूम जाना।

9. उत्तानन (Supination)

अग्रबाहु की घुमावदार गति जिसमें रेडियस घूमकर अल्ना के समान्तर हो जाती है या हथेली को ऊपर की ओर घुमाना अथवा पाद के मध्यवर्ती किनारे को ऊपर उठाना या कमर के सहारे सीधा लेटना।

10. अवतानन (Pronation)

अग्रबाहु की घुमावदार गति जिसमें रेडियस अल्ना के ऊपर तिरछी हो जाती है या हथेली को नीचे या पीछे की ओर घुमाना अथवा चेहरे को नीचे की ओर करके लेटने की क्रिया।

11. सम्मुख (Opposition)

यह एक कोणीय गति होती है, जिसमें अंगूठे से छोटी उंगली को स्पर्श किया जाता है। ऐसी गति केवल हाथ के अंगूठे के कार्पोमेटाकार्पल जोड़ पर होती है।

12. पुनःस्थापन (Reposition)

ऐसी गति जिसमें अंगूझा अपनी एनाटॅामिकल पॉजीशन में पहुँच जाता है। यह सम्मुख गति के विपरीत गति है।

13. प्रोट्रेक्शन (Protraction)

सामने की ओर गति जैसे मैण्डीब्ल (Mandible) का आगे को बढ़ जाना।

14. रिट्रैक्शन (Retraction)

पीछे को खींचने की क्रिया। जैसे– मैण्डीब्ल को पीछे की ओर खींचना।

15. डिप्रेसन (Depression)

शरीर के अंग का नीचे अथवा अन्दर की ओर विस्थापन।

16. एलिवेशन (Elevation)

शरीर के अंग को उठाना (Raising)।

3.5 मानव शरीर की मुख्य सन्धियाँ

1. कपाल से सम्बद्ध सन्धियाँ या जोड़ (Joints associated with skull)

जबड़े का जोड़ या टेम्पोरोमैण्डिबुलर सन्धि (Temporomandibular joint or TM joint)

चेहरे की केवल यही (TM joint) सन्धि गतिशील हैं यह साइनोवियल सन्धि है जिसमें हिनज एवं सिलने वाली (Gliding) संरचनाएँ होती हैं। इसका वर्णन चेहरे की अस्थियों में किया जा चुका है।

2. एटलेन्टोऑक्सिपिटल सन्धि (Atlantooccipital joint)

यह एटलस एवं आक्सिपिटल (पश्चकपालिक) अस्थि के बीच की सन्धि है। इसमें हिन्ज सन्धि होती है जिसमें सिर को 'हाँ' में हिलाया जाता है।

3. वर्टिब्रल कॉलम की सन्धियाँ (Joints of the vertebral column)

सभी वटिब्री में, दूसरी सर्वाइकल वटिब्रा से लेकर सेक्रम तक, सन्धियाँ होती हैं। वर्टिब्रा के कार्यो (Bodies) के बीच उपास्थिमय सन्धि होती हैं और वर्टिब्रल आर्चेज के बीच साइनोवियल सन्धि पायी जाती हैं।

4. पसलियों एवं स्टर्नम से सम्बद्ध सन्धियाँ (Joints associated with the ribs & sternum)

कॉस्टोवर्टिब्रल सन्धियाँ (Costovertebral joints)

ये पसलियों के शीर्शों पर स्थित आर्टिकुलर फेसेट्स एवं ट्यूबरक्ल्स तथा थेरैसिक वर्टिब्री के ट्रान्सवर्स प्रवर्धो पर स्थित कॉस्टल फेसेट्स के बीच साइनोवियल सन्धियाँ होती हैं। इनमें सरकने वाली (Gliding) तथा घूर्णन (Rotation) गति होती है।

स्टर्नोकॉस्टल सन्धियाँ (Sternocostal joints)

पसलियों की कॉस्टल कार्टिलेज के सिरे स्टर्नम के पार्श्व में स्थित गड्डों से जुड़ते हैं, जिससे स्टर्नोकॉस्टल सन्धियाँ बनती हैं। पहली पसली का जोड़ अचल होता है। दूसरी से सातवीं पसलियों के जोड़ों में फिसलने वाली गति होती है। ये साइनोवियल सन्धियाँ हैं।

इन्टरकॉण्ड्रल सन्धियाँ (Interchondral Joints)

पाँचवीं से नौवीं पसलियों की कॉस्टल कार्टिलेजेज की सन्धियों को इन्टरकॉण्ड्रल सन्धियाँ कहते हैं। इनमें फिसलने वाली गति होती है, जो श्वसन के दौरान सामायोजन (Adjustment) बनाए रखती हैं। ये भी साइनोवियन सन्धियाँ होती हैं।

मैन्यूब्रियोस्टर्नल सन्धि (Manubriosternal joint)

यह स्टर्नम के मैन्यूब्रियम एवं उसकी काय के बीच की सन्धि है। यह सन्धि उपस्थिमय सन्धि होती है। इिसमें ह ।लकी सी गति सम्भव होती है।

जीफीस्टर्नल सन्धि (Xiphisternal joint)

यह स्टर्नम के जीफॉइड प्रवर्ध एवं उसके काय के बीच की उपस्थिमय सन्धि है। इसमें भी मामूली–सी गति होती है।

5. पेक्टोरल गर्डल (कन्ध) की सन्धियाँ (Joints of the pectoral Girdle)

स्टर्नोक्लैविक्यूलर सन्धि (Sternoclavicular joint)

यह क्लैविक्ल के स्टर्नलि सिरा, स्टर्नम का मेन्यूब्रियम तथा पहली पसली की कॉस्टल कार्टिलेज से मिलकर बनती है। यह एक फिसलने वाली (gliding) सन्धि है, जिसमें एलिवेशन, डिप्रसन, प्रोट्रेक्शन एवं रिट्रेक्शन गतियाँ होती हैं।

एक्रोमियोक्लैविक्यूलर सन्धि (Acromioclavicular joint)

यह क्लैविक्ल के एक्रोमियल सिरे एवं स्कैपुला की एकोमियन की मीडियल सतह के बीच की सन्धि है। यह साइनोवियल सन्धि है तथा इसमें भी फिसलने वाली गतियाँ होती हैं। इससे कन्धे की सन्धि पर झूमरस अस्थि की स्वतन्त्र गति में सहायता मिलिती है।

कोराकोक्लैविक्यूलर सन्धि (Coracoclavicular joint)

यह क्लैविकल एवं स्कैपुला के कोराकॉइड प्रवर्ध के बीच की तन्तुमय सन्धि है। यह एक अचल (Syndesmoses) सन्धि है, जो क्लैविकल को स्कैपुला से अलग होने से रोकती है।

6.बाहु (Arm) एवं अग्रबाहु (Forearm) की सन्धियाँ स्कन्ध सन्धि का कन्धे का जोड़ (Shoulder joint or Glenohumeral joint)

यह बॉल एवं सॉकेट (ball and socket) प्रकार की सन्धि है, तथा शरीर की सभी सन्धियों की अपेक्षा अधिक मुक्त गति होने देती है। यह ह्यूमरस के गोलाकार शीर्ष के स्कैपुला की ग्लीनॉइड गुहा में फिट होने से बनती है। बनाने वाली सतहें (Articular surfaces) तन्तुमय उपस्थियों द्वारा ढ़की रहती हैं तथा ग्लीनॉइड गुहा तन्तुमय उपास्थि की गोल किनारा (Fibrocartilaginous rim), जिसे ग्लीनॉइड लेब्रम (glenoid labrum) कहते हैं, द्वारा और भी गहरी हो जाती है जिससे गति को सीमित किए बिना अतिरक्ति दृढ़ता उपलब्ध होती है और विस्थापन (Dislocation) के जोखिम को कम करती है। स्कैपपुला ओर ह्यूमरस दोनों अस्थियाँ लिगामेन्टस् के लचीले स्कैपुला के द्वारा आपस में जुड़ी रहती हैं, जिससे इस सन्धि पर सामान्य रूप से सम्भव स्वच्छन्द गति हो सकती है, साथ ही शक्तिशाली पेशियाँ अस्थियों को स्थिति में बनाये रखने में सहायता करती हैं। बाइसेप्स पेशी का लम्बा टेन्डन इन्ट्राकैप्सुलर लिगामेन्ट का कार्य करता है। यह टेन्डन ह्यूमरस की ट्यूबरोसिटीज के बीच बाइसिपीटल ग्रूव से सन्धि की गुहा में जाता है और चूँकि यह ग्लीनॉइड गुहा के ठीक ऊपर स्कैपुला से निकलता है इसलिए यह सन्धि बनाने वाली सतहों को ठीक स्थिति में बनाये रखता है।

7. कोहनी की सन्धि (Elbow joint)

यह ह्यूमरस अस्थि के निचले सिरे पर स्थित ट्रॉक्लिया (Trochlea) एवं कैपीटुलम (Capitulum), अल्नाकी ट्राक्लियर नॉच (Trochlear notch) तथा रेडियस के शीर्ष (Head) से जुड़ने से बनी हिन्ज सन्धि (Hinge joint) है। ह्यूमरस का ट्रॉक्लिया अल्ना के ट्रॉक्लियर नॉच में फिट होता है तथा कैपीटुलम रेडियस के शीर्ष से जुड़ता है। इसमें सन्धि कैप्सूल से बाहर (Extrtacapsular) शक्ति पहुँचाने वाले एन्टीरियर, पोस्टीरियर, मीडियल एवं लेटरल लिगामेंट्स भी रहते हैं। इस सन्धि से आकुंचन (Flaxion) एवं प्रसारण (Extension) गतियाँ होती हैं।

8. रेडियोअल्नर सन्धि (Radioulnar joint)

रेडियस एवं अल्ना अस्थियों के बीच निकटस्थ (Proximal) एवं दूरस्थ (Distal) दो चल सन्धियाँ होती हैं। निकटस्थ रेडियोअल्नर सन्धि रेडियस के शीर्ष एवं अल्ना के रेडियल नॉच के बीच, तथा दूरस्थ रेडियोअल्नर सन्धि अल्ना के शीर्ष एवं रिडियस के अल्नर नॉच के बीच बनती है। दोनों ही सन्धियाँ पाइवट (Pivot) सन्धियाँ होती हैं।

सन्धि कैप्सूल के बाहर एक शक्तिशाली एन्यूलर लिगामेन्ट होता है, जो रेडियस के शीर्ष को चारों ओर से घेरे रहता है और इसे अल्ना के रेडियल नॉच के सम्पर्क में बनाए रखता है। इन दोनों सन्धियों में अवतानन (Pronation) एवं उत्तानन (Supination) गतियाँ

होती हैं। अवतानन गति में हथेली नीचे की ओर उत्तानन गति में हथेली ऊपर की ओर आ जाती है।

9. रेडियोकार्पल सन्धि या कलाई का जोड़ (Radiocarpal joint)

यह रेडियस के निचले या दूरस्थ सिरे (एवं आर्टिकुलर डिस्क) ताि निकटस्थ पंक्ति (Proximal row) की स्केफॉइड, ल्यूनेट व ट्राइक्वीट्रन नामक का कार्पल अस्थियों के बीच की सन्धि है।

सन्धि कैप्सूल के बाहर मीडियल एवं लेटरल लिगामेन्ट तथा एन्टीरियर व पोस्टीरियर रेडियोकार्पल निगामेन्ट पाए जाते हैं, इस सन्धि पर रेडियल अपवर्तन (Abduction), अल्नर अभिवर्तन (Adduction), आंकुचन (Flexion), प्रसारण (Extension), अतिप्रसरण (Hyperextension) तथा चक्राकार (Circumduction) की गतियाँ होती हैं।

10.हाथ की सन्धियाँ (Joints of the Hand)

कार्पल सन्धियाँ (Carpal joints)

ये निकटस्थ (Proximal) एवं दूरस्थ (Distal) पंक्तियों की कार्पल अस्थियों के बीच की सन्धियाँ हैं। इनमें हिन्ज सन्धि होती है। चूँकि ये अस्थियाँ एक दूसरे काफी सटी हुई होती हैं अतएव इनके बीच मामूली सी आकुंचन (Flexion) एवं प्रसरण (Extension) की गतियाँ होती हैं।

अंगूठे की कार्पोमेटाकार्पल सन्धि (Carpometacarpal joint)

यह ट्रेपीजियम एवं प्रथम मेटाकार्पल अस्थि के निकटस्थ सिरे के बीच की सन्धि है। यह सैडल प्रकार की सन्धि (Saddle joint) होती है।

मेटाकार्पोफैलेन्जियल सन्धियाँ (Knuckle)

मेटाकार्पल अस्थियों के शीर्षों तथा निकटस्थ फैलेन्जीज के आधारों के बीच कॉण्डीलॉइड (Condyloid) प्रकार की सन्धियाँ बनती हैं। इन सन्धियों पर आंकुचल, प्रसरण,

अपवर्तन, अभिवर्तन तथा पर्यावर्तन गतियाँ होती हैं।

Copyright © The McGraw-Hill Companies, Inc. Permission required for reproduction or display.

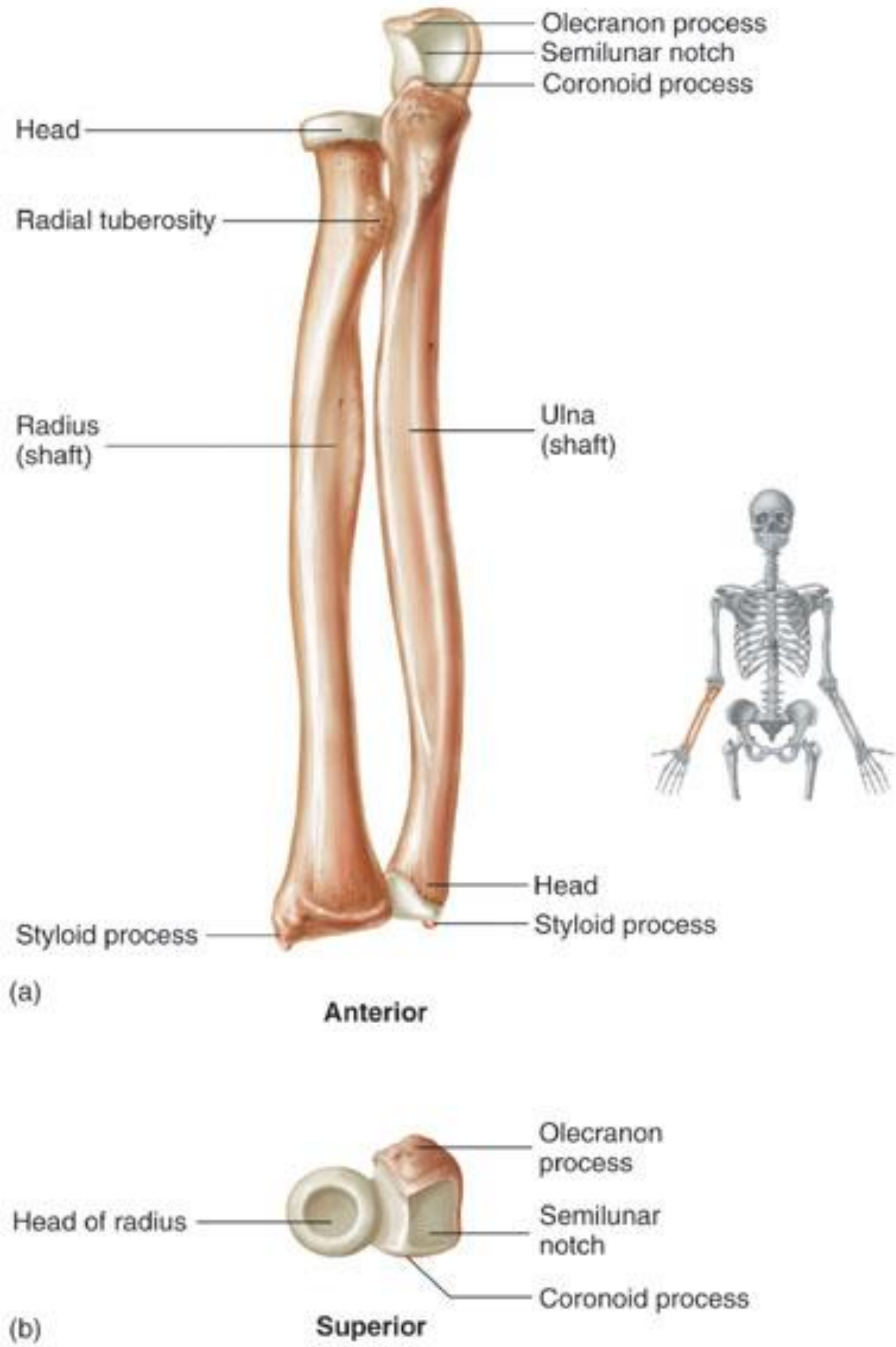

इन्टरफेलेन्जियल सन्धियाँ (Interophalangeal joints)

फेलेन्जीज के शीर्षों तथा सटी हुई फेलेन्जीज के अवतल आधारों के बीच की हिन्ज प्रकार की सन्धियाँ बनती हैं। इन सन्धियों पर आकुंचन एवं प्रसरण की गतियाँ होती

Copyright © The McGraw-Hill Companies, Inc. Permission required for reproduction or display.

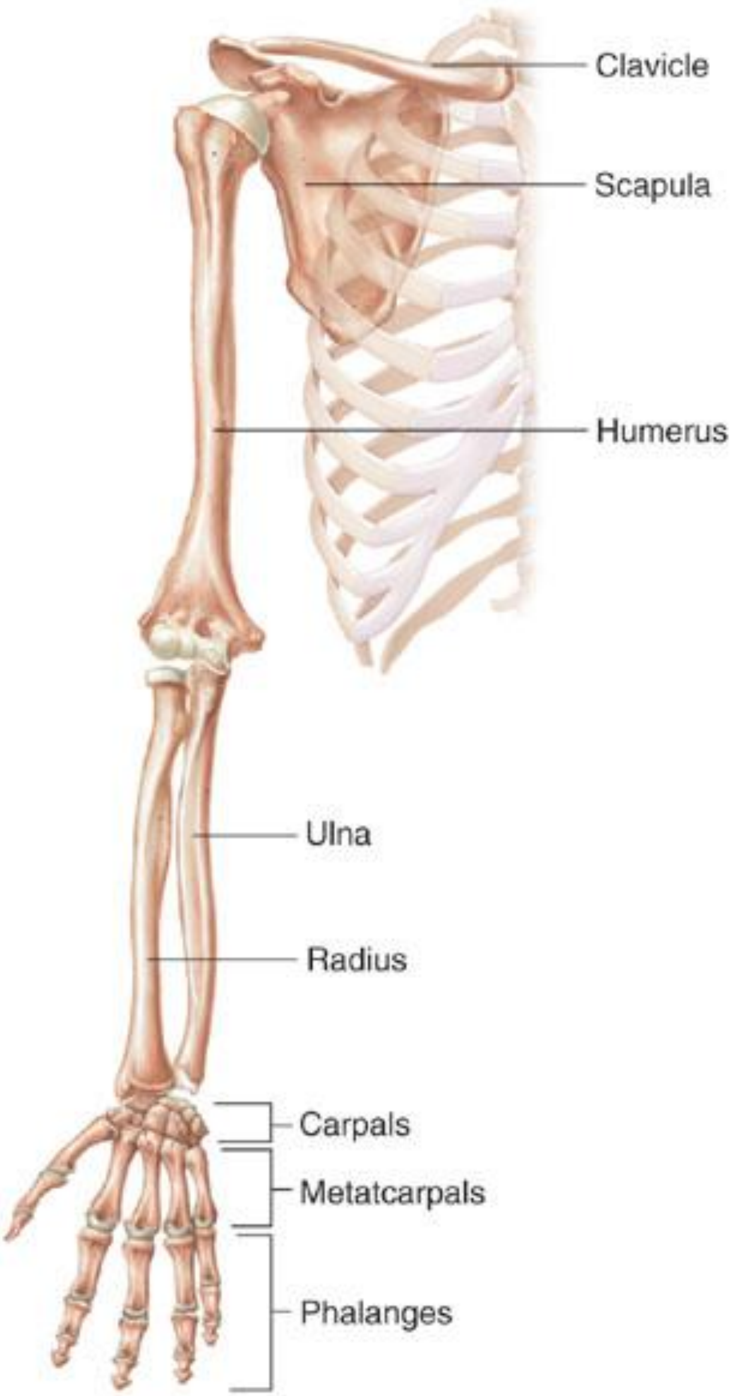

हैं।

11. श्रोणि या पेल्विस की सन्धियाँ (Joints of the Pelvis)

सैक्रोइलियक सन्धि (Sacroiliac joint)

सैक्रम एवं इलियम अस्थियों के बीच एन्टीरियर (अग) एवं पोस्टीरियर (पश्च) दो सन्धियाँ होती हैं एन्टीरियर सन्धि साइनोवियल सन्धि होती है, जिसमें मामूली सी फिसलने वाली (Gliding) तथा घुर्णन गतियाँ होती हैं जो सन्धि को लचीलापन प्रदान करती हैं, तथा पोस्टीरियर सन्धि तन्तुमय (Fibrous) सन्धि होती है, जिसमें मामूली–सी गति होती है और सन्धि को सुरक्षा प्रदान करती है।

सिमुइसिस प्यूबिस (Symphysis pubis)

प्यूबिक अस्थियों की कायों (Bodies) के बीच की तन्तु उपस्थिमय (Fibrocartilaginous) सन्धि है, जो लगभग अगतिशील (Immovable) होता है, लेकिन प्रसव के दौरान कुछ गति होती है।

कूल्हे का जोड़ या नितम्ब सन्धि (Coxal or hip joint)

यह बॉल एवं सॉकेट प्रकार की सन्धि है, जो इन्नोमिनेट अस्थि (Hipbone) के कप के आकार के गहरे एसीटाबुलम में फीमर अस्थि के गोलाकार सिर के फिट होने से बनती है। सन्धि बनाने वाली सतहें आर्टिकुलर कार्टिलेज से ढँकी रहती हैं। एसीटाबुलम के किनारोंपर चारों ओर एसीटाबुलर लेब्रम (Acetabular labrum) जो एक तन्तुमय उपस्थि होती है, द्वारा एसीटाबुलम केविटी की गहराई और बढ़ जाती है, जिससे फीमर का शीर्श भली भाँति समायोजित हो जाता है।

कैप्सूलर लिगामेन्ट फीमर की ग्रीवा के अधिकांश भाग को ढँके रहता है। फीमर के शीर्श का लिगामेन्ट शीर्श पर स्थित एक छोटे और खुरदरे गड्ढ़े फोविया (Fovea) से शुरू होकर एसीटाबुलम तक जाता है। साइनोवियल मेम्ब्रेन एसीटाबुलर लेब्रम की दोनों साइडों को ढँके रहती है तथा फीमर के शीर्श के लिगामेन्ट के चारों ओर एक खोल–सा बना लेती है। सन्धि कैप्सूल को चारों ओर से घेरने एवं उसे शक्ति पहुँचाने वाले कई लिगामेन्ट होते हैं, उसमें से एक इलियोफीमोरल (Iliofemoral) लिगामेन्ट सबसे अधिक शक्तिशाली होता है, जो सन्धि के सामने रहता है और कूल्हे का प्रसरण धड़ की मध्यरेखा से अधिक दूर नहीं होने देता है। कूल्हें के जोड़ पर आकुंचन, प्रसरण, अपवर्तन, अभिवर्तन, मीडियल एवं लेटरल घूर्णन तथा पर्यावर्तन (Circumduction) गतियाँ होना सम्भव हैं।

12. घुटने की सन्धि या जोड़ (Knee or Tibio-femoral joint)

घुटने की सन्धि शरीर की सबसे बड़ी एवं अत्यन्त जटिल (Most Complex) सन्धि है। यह हिन्ज संरचना (Hinge structure) की एक साइनोवियल सन्धि है।

वास्तव में घुटने की सन्धि तीन साइनोवियल सन्धियों से मिलकर बनी होती है, एक सन्धि फीमर एवं टिबिया के मीडियल कॉण्डाइलों के बीच होती है, दूसरी सन्धि इन अस्थियों के लेटरल कॉण्डाइलों के बीच होती है तथा तीसरी सन्धि पटेला एवं फीमर के बीच होती है। आर्टिकुलर कैप्सूल का एन्टीरियर भाग क्वाड्रीसेप्स फीमोरिस पेशी के टेण्डन का बना होता है, जो पटेला को भी सहारा देती है। अर्टिकुलर कैप्सूल को बाह्य लिगामेन्टों, टिबियल या मीडियल कोलेटरल लिगामेन्ट एवं फिब्युलर या लेटरल कोलेटरल लिगामेन्ट

जो फीमर के पार्श्वों तक फैले रहते हैं, से शक्ति प्राप्त होती है। सन्धि के भीतर मध्य में एक दूसरे को क्रॉस करते हुए मजबूत डोरी के समान एन्टीरियर एवं पोस्टीरियर दो क्रुशिएट लिगामेन्ट्स (Cruciate ligaments) होते हैं, जो फीमर के इन्टरकॉण्डाइलर नॉच से लेकर टिबिया के इन्टरकॉण्डाइलर उत्सेघ (Eminence) तक फैले रहते हैं और साइनोवियल मेम्बेन के द्वारा ढँके रहते हैं। ये सन्धि को स्थिर रखने में सहायता करते हैं तथा घुटने की गति को नियन्त्रित रखते हैं।

सन्धि के भीतर टिबिया के आर्टिकुलर कॉण्डाइलों के शिखर पर श्वेत तन्तुमय उपस्थि की दो अर्द्धचन्द्राकार गद्दियाँ (Semilunar discs) रहती हैं, जिन्हें मेनिस्काइ (Menisci) कहा जाता हे। ये फनाकार (Wedge-Shaped) होती है और इनका बाहरी किनारा अधिक मोटा होना है। ये अस्थियों के लेटरल विस्थापना (Displacement) को रोककर सन्धि के स्थिर होने में सहायता करती हैं, और ये टिबिया की आर्टिकुलर सतहों पर फीमर की कॉण्डाइलर सतहों के फिट होने के लिए उन्हें और गहरा बना देती है।

सन्धि में कई बर्सा (Bursa) होते हैं, जो गद्दियों का कार्य करते हैं, वे हैं, पेटेला के ऊपर का सुप्रापटेलर बर्सा (Suprapatellar Bursa), जो क्वाड्रीसेप्स ीमोरिस पेशी तथा फीमर के बीच स्थित होता है, दूसरा प्रीपटेलर बर्सा (Prepatellar Bursa) जो त्वचा एवं पटेला के बीच स्थित होता है तथा तीसरा इन्फ्रापटेलर वर्सा जो त्वचा एवं टिबियल ट्यूबरोसिटी के बीच स्थित रहता है। इनसे अस्थि एवं लिगामेन्ट या टेण्डन के बीच तथा त्वचा एवं पटेला के बीच में घर्शण कम होता है। घुटने की सन्धि में आकुंचन, प्रसरण और मामूली–सी घूर्णन की गति होना सम्भव है।

टखने की सन्धि (Ankle or Talocrural joint)

यह टिबिया के निचले (दूरस्थ) सिरे एवं उसके मीडियल मैलीयोलस (Medial malleolus) तथा फिब्यूला के दूरस्थ सिरे या लेटरल मैलीयोलस एवं टेलस (Talus) की ऊपरी सतह के बीच की हिन्ज प्रकार की सन्धि होती है। सन्धि को डेलॅइड तथा एन्टीरियर, पोस्टीरियर, मीडियल एवं लेटरल लिगामेन्टों से शक्ति मिलती है। इसमें आकुंचन एवं प्रसरण की गति होती हैं, लेकिन साधारणतः आकुंचन को डॉर्सिफ्लेक्शन (पाँव को ऊपर की ओर उठाना) तथा प्रसरण को प्लान्टर फ्लेक्शन (एड़ी को ऊपर उठाना) कहा जाता है।

13. पाद सन्धियाँ (Joints of the Foot)

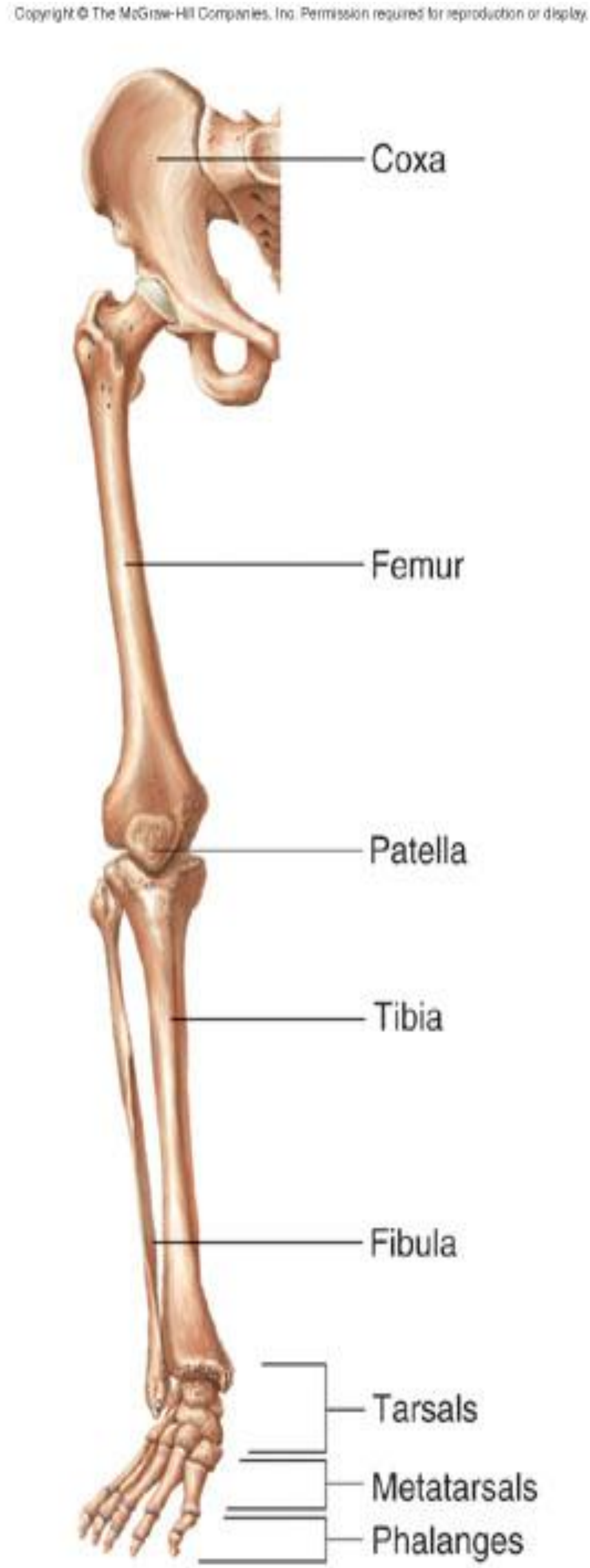

पाद अस्थियाँ डॉर्सल, प्लान्टर तथा इन्टरओसियस लिगामेन्टों द्वारा आपस में जुड़ी होती हैं। इनके बीच फिसलने वाली सन्धियाँ (Gliding Joints) होती हैं। टार्सल अस्थियों में टेलस और कैल्केनियस के बीच **पोस्टीरियर सन्धि** या **सबटेलर सन्धि** (Subtalar joint) होती है। टेलस और कैल्केनियस और क्यूबॉइड तथा टेलस और नेविकुलर अस्थियों के बीच मिश्रित रूप से बनी **ट्रान्सवर्स टार्सल सन्धि** (Transverse tarsal joint) होती है। ये तीनों सन्धियाँ एक इकाई के रूप में सन्धि बनाती हैं। इनके घूर्णन का अक्ष एक रेखा बनाता है, जिसे सबटेलर एक्सिस (Subtalar axis) कहते हैं। इन सन्धियों में अन्तर्वर्तन (Inversion) तथा बहिर्वर्तन (Eversion) की गतियाँ होती हैं। अर्थात् पाँच भीतर और बाहर की ओर को घूम जाता है।

टार्सोमेटाटार्सल सन्धियाँ (Tarsometatarsal joints)

ये चार एन्टीरियर टार्सल अस्थियों तथा मेटाटार्सल अस्थियों के आधारों के बीच की सन्धियाँ हैं। ये फिसलने वाली सन्धियाँ होती हैं, जिनमें हल्की–सी गति होती है।

मेटाटार्सोफैलेन्जियल सन्धियाँ (Metatarsophalangenl joints)

ये पाँचों मेटाटार्सल अस्थियों के शीर्षों (Heads) तथा निकटस्थ (Proximal) फैलेन्जीज के आधारों के बीच की कॉण्डाइलॉउठ प्रकार की सन्धियाँ होती हैं। इन सन्धियों में आकुंचन, प्रसरण, अपावर्तन, अभिवर्तन गतियाँ होती हैं।

सन्धियों पर आयु का प्रभाव

आयु बढ़ने के साथ प्रायः सन्धियों में विद्यमान साइनोवियल फ्लूड घट जाता है तथा सन्धियों की उपस्थि पतली पड़ जाती है। लिगामेन्ट्स छोटे तथा कम लचीले ही जाते हैं। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप आर्थराइटिस, बर्साइटिस, एवं अन्य सन्धिरोग उत्पन्न हो जाते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न –

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1. संधियों का वर्गीकरण ....तथा ....के आधार पर किया गया है।
2. संरचना के आधार पर संधियों को ....में विभाजित किया गया है।
3. शरीर की मध्य रेख के समीप अंग को लाने की क्रिया को .... कहा जाता है।
4. दो अस्थियों या उपास्थियों के आपस में मिलने से .... बनती है।
5. गति के आधार पर संधियों को ....वर्गो में वर्गीकृत किया गया है।

3.6 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों आप समझ गये होंगे कि संधि क्या है? इनके विभिन्न प्रकार क्या हैं तथा किस प्रकार से ये कार्य करती हैं। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि शरीर में जहाँ कहीं भी दो अस्थियाँ अथवा उपास्थियाँ मिलती है वहाँ जोड़ या संधि बनती है। इन संधियों को संरचना तथा गति के आधार पर मुख्य रूप से दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है। पाठकों इन संधियों के कारण ही हमारा शरीर विभिन्न प्रकार की गति करने में समर्थ हो पाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शरीर को गति करने की क्षमता प्रदान करने में संधियों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका है।

3.7— शब्दावली —

अस्थि – हड्डी
तन्तुमय – तन्तुओं से युक्त या तन्तुओं से बनी हुयी।
अचल संधियाँ – जिन संधियों में गति करने की क्षमता नहीं होती है।
अल्पचल संधियाँ – जिनमें हल्की सी गति करने की क्षमता होती है– ऐसी संधियाँ।
चल संधियाँ – जिन संधियों में स्वच्छतापूर्वक गति करने की क्षमता होती है।
लिगामेन्ट – अस्थियों को जोडने वाले तन्तु

3.8 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. संरचना तथा गति
2. तीन वर्गो
3. अभिवर्तन
4. सन्धि
5. तीन

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1.गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2.गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
3.शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।

3.10 निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न –1 संधि से आप क्या समझते है? संरचना के आधार पर संधि के प्रमुख प्रकार बताइये।

प्रश्न – 2 गति के आधार पर संधि के विभिन्न प्रकारों का विवेचन कीजिए।

प्रश्न – 3 मानव शरीर की मुख्य संधियों पर प्रकाश डालिये।

प्रश्न – 4 संधियों में होने वाली विभिन्न प्रकार की गतियों पर प्रकाश डालिये।

इकाई 4 –पेशियो की संरचना प्रकार एवं कार्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 पेशीय संस्थान

4.4 पेशियों की संरचना

4.5 पेशियों के प्रकार

4.6 पेशियों के कार्य एवं गतिया

4.7 शरीर की मुख्य पेशियां

4.8 सारांश

4.9 शब्दावली

4.10 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

4.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियो इससे पूर्व की इकाईयों में आपने शरीर की संरचना कोशिका तथा ऊतको की संरचना तथा कार्यो अस्थि संस्थान की संरचना एवं कार्य प्रणाली तथा मानव शरीर में पाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की संधियो के गठन एवं कार्य प्रणाली का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाईयों हमारे अध्ययन का विषय अस्थि संस्थान से भी और अधिक सूक्ष्म पेशीय संस्थान सूक्ष्म है यह पेशीय संस्थान क्या है किस प्रकार से यह बना है? कितने प्रकार की मांसपैशिया होती है? शरीर का कौन सा अंग किस मांसपैशी से बना है? यह मांसपेशियॉ किस प्रकार से कार्य करती है? इनकी मुख्य गतियां कौन कौन सी है इत्यादि।

तो आइयें अपने इन सभी प्रश्नो के समाधान के लिये चर्चा करते है–

4.2 उद्देश्य

प्रिय पाठको प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप पैशिय संस्थान क्या है इससे स्पष्ट कर सकेंगे।

–पेशियो की संरचना का वर्णन कर सकेंगे

– पेशियो की विभिन्न श्रैणियों का वर्गीकरण कर सकेंगे।

– पेशियो के प्रमुख कार्यो को स्पष्ट कर सकेंगे।

– पेशियो की विभन्न गतियों का वर्णन कर सकेंगे।

– मानव शरीर में पाई जाने वाली प्रमुख पेशियो को स्पष्ट कर सकेंगे।

– मानव शरीर में पेशिय संस्थन की उपयोगिता को स्पष्ट का सकेंगे।

4.3 पेशिय संस्थान (Muscular System)

मानव शरीर का ढाँचा अस्थियों से बना होता है, जिसमें अस्थियाँ लीवर की भाँति कार्य करती हैं, परन्तु पेशियाँ उन्हें गति करने की शक्ति प्रदान करती हैं। शरीर का सम्पूर्ण ढाँचा ऐच्छिक (Voluntary) या कंकालीय (Skeletal) पेशियों से ढँका रहता है तथा ये सन्धि (जोड़) पर एक अस्थि को दूसरी अस्थि से जोड़े रहती हैं। पेशियों के सिकुड़ने पर अस्थियाँ मुड़ती हैं और फैलने से सीधी हो जाती हैं। इन्हीं पेशियाँ हमें खड़ा रहने, चलने–फिरने, दौड़ने, वनज उठाने आदि में सहायता प्रदान करती हैं।

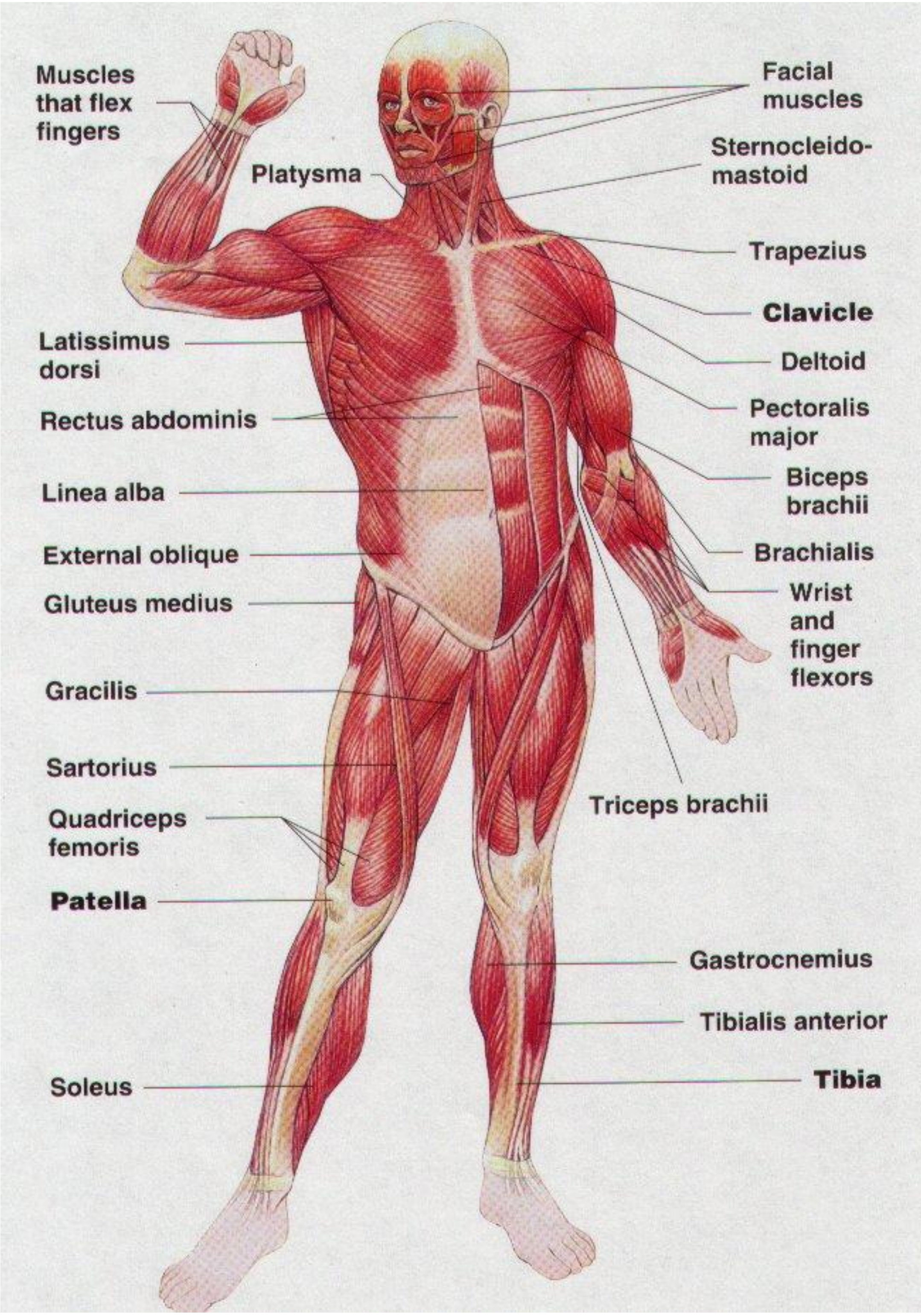
Muscles
that flex
fingers
Platysma
Facial
muscles
Sternocleido-
mastoid
Trapezius
Clavicle
Deltoid
Latissimus
dorsi
Pectoralis
major
Rectus abdominis
Biceps
brachii
Linea alba
Brachialis
External oblique
Gluteus medius
Wrist
and
finger
flexors
Gracilis
Sartorius
Triceps brachii
Quadriceps
femoris
Patella
Gastrocnemius
Tibialis anterior
Soleus
Tibia

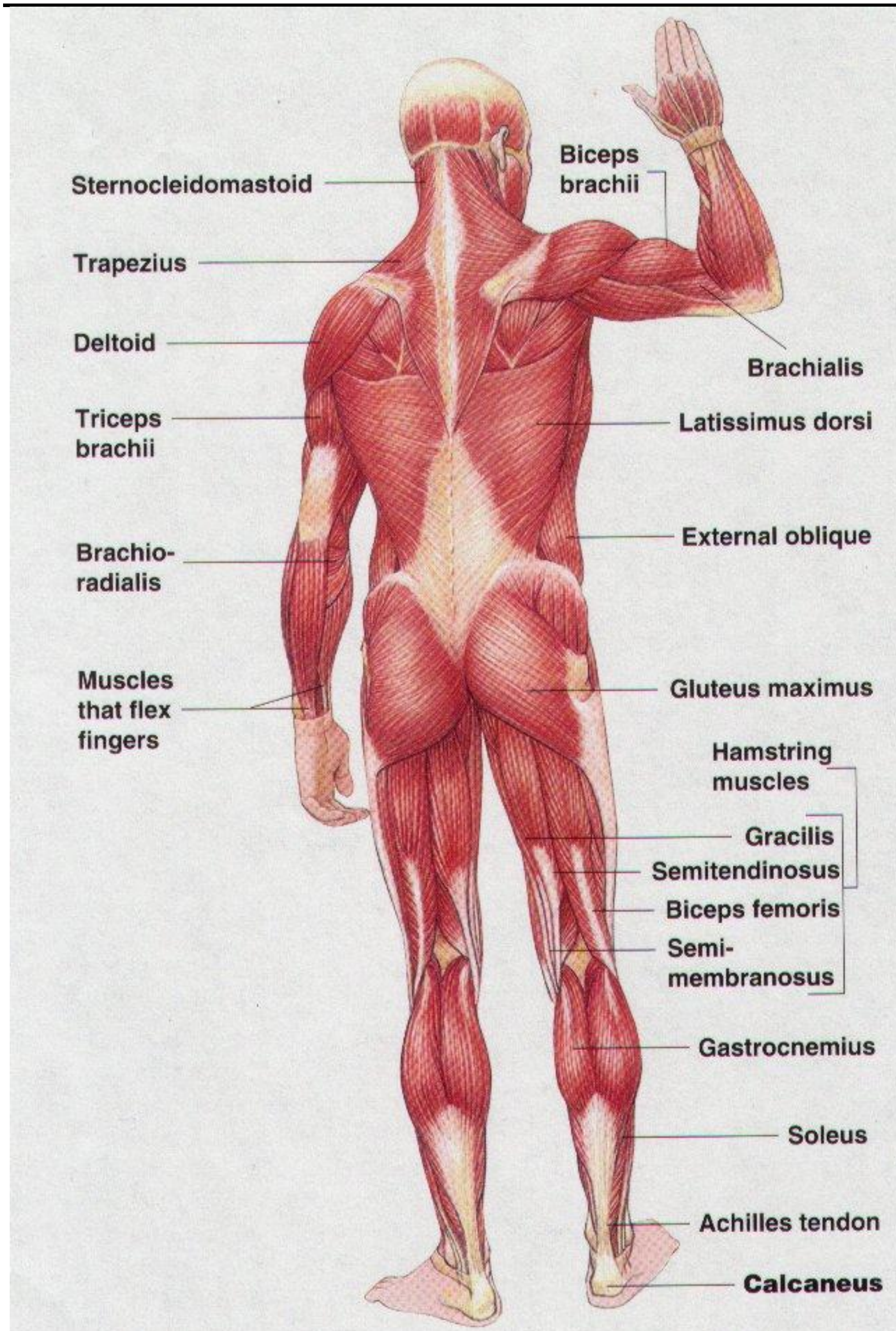
Sternocleidomastoid
Trapezius
Deltoid
Triceps brachii
Brachio-radialis
Muscles that flex fingers
Biceps brachii
Brachialis
Latissimus dorsi
External oblique
Gluteus maximus
Hamstring muscles
Gracilis
Semitendinosus
Biceps femoris
Semi-membranosus
Gastrocnemius
Soleus
Achilles tendon
Calcaneus

हमारे शरीर मे ेलगभग 600 कंकालीय पेशियाँ (Skeletal muscles) होती हैं, जिन्हें सामूहिक रूप से पेशीय संस्थान कहा जाता है। कंकालिय पेशियाँ युवकों में उनके शरीर के कुल वजन का लगभग 40 से 50 प्रतिशत तथा युवतियों में उनके शरीर के कुल वजन का लगभग 30 से 40 प्रतिशत भाग बनाती हैं।

कंकालीय पेशियाँ अस्थियों, उपास्थियों, लिगामेन्टों, त्वचा या अन्य पेशियों से टेन्डन (Tendons) और एपोन्यूरोसिस (Aponeuroses) के द्वारा जुड़ी रहती हैं। इन पेशियों का प्रत्येक तन्तु सार्कोलीमा नामक झिल्ली से ढँका होता है। ये तन्तु समूहों में संगठित होकर छोटे–छोटे, समान्तर बण्डल्स बनाते हैं जिन्हें फसीक्यूली कहते हैं। ये फेसीक्यूली एण्डोमाइसियम (Endomysium) नामक संयोजी ऊतक की पतली परत से आच्छादित रहते हैं। बण्डल या फेसीक्यूली (Fasciculae) आपस में एक और मोटी मेम्बेन पेरीमाइसियम (Perimysium) से बँधे रहते हैं। यही शरीर में कंकालीय पेशियों के समूह बनाते हैं जो एपीमाइसियम (Epimysium) नामक संयोजी ऊतक (रचना में एण्डोमाइसयिम और पेरीमाइसियम के समान) से आच्छादित रहती हैं। सभी पेशियों को आस–पास की रक्तवाहिकाओं से उचित मात्रा में रक्त मिलता है। आर्टिरियोल्स पेरीमाइसियम में कोशिकाएँ (Capillaries) फैलाते हैं, जो एण्डोमाइसियम में तन्तु के ऊपर फैली रहती हैं। रक्तवाहिकाएँ एवं तन्त्रिकाएँ पेशी में हाइलम के समीप प्रवेश करते हैं।

Anatomy of Skeletal Muscles - Gross Anatomy

अधिकांश कंकालीय पेशियाँ बीच में माँसल (Fleshy) और चौड़ी होती हैं, जिसे पेशी

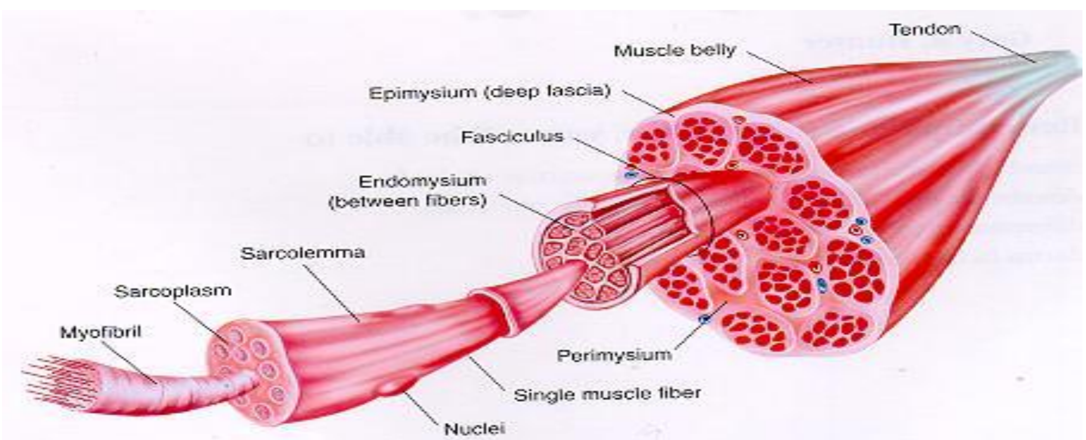

की बैली (Belly) कहा जाता है, तथा दोनों सिरों पर पतली होती है, जिन्हें टण्डन्स (Tendons) कहा जाता है, जो अन्य ऊतकों से जुड़ते हैं।

टन्डन्स (Tendons)

पेशियों के सिरे (Ends) **टेन्डन (कण्डराएँ)** कहलाते हैं, जो पेशियों को अस्थियों या उपास्थियों से जोड़ते हैं। ये सघन कोलेजन तन्तुओं या उपास्थियों से जोड़ते हैं। ये सघन कोलेजन तन्तुओं (Packed collagen fibres) से बनी संयोजी ऊतक की दृढ़ डोरी के समन

रचनाएँ होती हैं, जो गहन फैशिया (Deep fascia) अथवा पेशी के चारों ओर स्थित एपीमाइसियम का विस्तार हैं। कैल्केनियल टेन्उन शरीर में सबसे मोटा टेन्डन है, जिसे सामान्यतः एकील्स टेन्डन (Achilles tendon) कहा जाता है। यह पिण्डली की पेशी (Gastrocnemius) को एड़ी की अस्थि (Calcaneus) से जोड़ता है। टेन्डन्स में लचीलापन नहीं होता, जिससे इनमें संकुंचन नहीं होता।

एपोन्यूरोसिस (Aponeuroses)

शरीर के कुछ भागों में जैसे उदरीय भित्ति में, टेन्डन फैलकर एक चार (Flat sheet) का रूप धारण कर लेता है जिसे **एपोन्यूरोसिस (कण्डराकला)** कहा जाता है। यह प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः विभिन्न पेशी आवरणों (Muscle sheaths) एवं अस्थ्यावरण (Periosteum) से जुड़ी रहती है। जैसे हथेली की त्वचा के नीचे स्थित तन्तुमय आवरण (Fibrous sheath) जिसे पॉमर एपोन्यूरोसिस (Palmaraponeumosis) कहा जाता है। ऐसे ही उदर भित्तियों के तन्तु आपस में मिलकर नाभि के ऊपर एक नालीनुमा रचना बनाते हैं, जिसे लिनिया एल्बा (Linea alba) कहते हैं, जिसे प्रत्येक्ष रूप से देखा जा सकता है।

फैशिया (Fascia)

यह कंकालीय पेशियों को ढँकने वाला एवं उन्हें एक साथ बाँधे रखने वाला तन्तुमय संयोजी ऊतक (Fibrous connective tissue) का बना आवरण होता है, जिसे फैशिया (प्रावरणी) कहते हैं। यह उपरिस्थ (सुपरफिशियल) तथा गहन (डीप) प्रकार की होती है।

सुपरफिशियल फैशिया त्वचा की डर्मिस में गहराई में अवस्थित होती है तथा विशेशकर खोपड़ी (Scalp), हथेलियों एवं तलुवों में पायी जाती है। यह शरीर के विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग मोटाई की होती है। सामान्यतः सुपरफिशियल फैशिया ढीले संयोजी ऊतकों (Losse connective tissues) की बनी होती जिसमें रक्त वाहिकाएँ, तन्त्रिकाएँ लसीका वाहिनियाँ (Lymphatic vessels), तथा अनेक वसा कोशिकाएँ पायी जाती हैं। यह एक रक्षात्मक परत उपलब्ध कराती है तथा त्वचा को, गहराई में स्थित संरचनाओं के ऊपर उन्मुक्त रूप से गति करने में सहायता देती है।

डीप फैशिया सुपरफिशियल फैशिया के नीचे स्थित रहती है, जो घने संयोजी ऊतक (Dense connective tissue) की कई परतों से मिलकर बनी होती है और यह पेशियों को लपेटती है तथा उन्हें बाँधती है। इसमें रक्त वाहिकाएँ, तन्त्रिकाएँ, लसीका वाहिनियाँ तथा कुछ मात्रा में वसा पायी जाती है।

पेशियों का नामकरण

सामान्यतः पेशियों के नाम उनकी आकृति, उनके तन्तुओं की दिशा, पेशी की स्थिति तथा उनके कार्यों के अनुसार होते हैं, जैसे डेल्टॉइड पेशी (Deltoid muscle) का नाम उसकी त्रिकोणीय या डेल्टा की आकृति के अनुसार, रेक्टस एब्डोमिनिस पेशी (Rectus abdominis muscle) का नाम उसके तन्तुओं की दिशा के अनुसार, ग्लूटियस मैक्जिमस (Gluteus maximus) जो लम्बी होती है तथा ग्लूटियस मिनिमस (Gluteus minimus) जो छोटी होती है, के आकार के अनुसार, सुप्रास्पाइनेटस (Supraspinatus) एवं इन्फ्रास्पाइनेटस (Supraspinatus) जो स्कैपुला के ऊपर एवं नीचे स्थित होती हैं, की स्थिति के अनुसार नामकरण किया गया

है। कुछ पेशियों का नाम उनके जुड़ने के स्थान (Attachment sites) के अनुसार रखा जाता है, जैसे स्टर्नोहायॉइड (Sternohyoid) पेशी स्टर्नम एवं हायॅाइड अस्थियाँ ये जुड़ी होती है। किया अथवा कार्य के अनुसार पेशियों को आकुंचिनी (Flexor) एवं प्रसारक (Extensor) कहा जाता है।

पेशियों का उद्गम एवं निवेशन (Origin and Insertion of Muscles)

एनाटॅामी में पेशियों के लिए उद्गम (Origin) तथा निवेशन (Inawerion) शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उद्गम का अर्थ पेशी का वह सिरा है जो संकुचन (Contraction) के दौरान स्थिर रहता है। यह अस्थि के जिस स्थल से संलग्न रहता है, वह उद्गम स्थल होता है अर्थात् अस्थि के उस स्थल से पेशी का उद्गम होता है। निवेशन का अभिप्राय पेशी के गतिशील सिरे से है अर्थात् अस्थि के उस सलि पर पेशी का निवेशन होता है। समान्यतः पेशी का उद्गम अक्षीय कंकाल (Axial skeleton) के अधिक समीप (Proximal) तथा निवेशन दूरस्थ (Distal) जुड़ाव (Attachment) होता है। पेशियों की क्रिया के अनुसार इनके उद्गम एवं निवेशन स्थल भी परिवर्तित हो जाते हैं। बाइसेप्स पेशी का उद्गम स्कैपुला अस्थि से होता है तथा निवेशन रेडियस अस्थि की रेडियल ट्यूबरोसिटी पर होता है। इस प्रकार स्कैपुला अधिक स्थिर स्थल तथा रेडियस अस्थि बाइसेप्स पेशी द्वारा बनी अधिक गतिशील स्थल हुई, परन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी क्षैतिज उण्डे को हाथों से पकड़कर लटक जाय और फिर कोहनियों को मोड़ते हुए ऊपर उठ कर शरीर को बाहों के पास लाने की कोशिश करे तो इस गति में सहायता करने के लिए बाइसेप्स पेशी संकुचित होगी और तब यह उद्गम एवं निवेशन के विपरीत होते कार्य करेगी। ऐसी अवस्था में रेडियस अधिक स्थिर स्थल हो जाती है तथा स्कैपुला गतिशील स्थल हो जाती है।

4.4 पेशियों की संरचना

कंकालीय पेशियों के तन्तु (Fibres) छोटे–छोटे गुच्छों के समूह में होते हैं जिन्हें फेशिकिल्स (Fascicles) कहा जाता है। इनमें तन्तु एक–दूसरे के समान्तर होते हैं। यद्यपि विभिन्न पेशियों में ये फेशिकिल्स अलग–अलग तरह से संगठित होते हैं, जो पेशी की गति की सीमा तथा शक्ति को सुनिश्चित करते हैं। यदि पेशी का मध्य भाग (Belly) अधिक लम्बा है तो गति की सीमा भी अधिक होगी। यदि किसी पेशी में तन्तुओं की संख्या अधिक है तो पेशी द्वारा शक्ति भी अधिक उत्पन्न होगी।

फेशिकिल्स की व्यवस्था (Arrangement) तथा उनके टेन्डन्स के जुड़ाव – स्ट्रप (Strap) पेशी, तर्कुरूप या फ्यूजीफोर्म (Fusiform) पेशी, पंख के समान या पीनेट (Pennate) पेशी, तथा गोलाकार (Circular) पेशी के रूप में होते हैं।

1. स्ट्रेप पेशी (Strap muscle)- इसके फेशिकिल्स लॉग एक्सिस के समानान्तर रहते हैं, गति की रनेज काफी होती है किन्तु अधिक शक्तिशाली नहीं होती। जैसे गर्दन की स्टर्नोहायॉइड पेशी, उदरीय भित्ति की रेक्टस एब्डोमिनिस पेशी।

2. फ्यूजीफॉर्म पेशी (Fusiform muscle)- यह तकले के आकार की होती है, इनका मध्य भाग (Belly) मोटा होता है, जैसे– बाँह की बाइसेप्स पेशी।

3. पीनेट पेशी (Pennnate muscle)- इसके छोटे फेशिकिल्स टेण्डन के कोण (तिरछे) पर होते हैं अथवा पेशी की पूरी लम्बाई में टेन्डन के साथ–साथ होते हैं। ये पंख के समान दिखाई देते हैं। अधिकांश फेशिकिल्स प्रत्यक्षतः टेन्डन्स से जुड़ते है। समान्यतः अन्य तरह की पेशियों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होती है। यह तीन प्रकार की होती है–

1. यूनिपीनेट पेशी (Unipennate muscle)
2. बाइपीनेट पेशी (Bipennate muscle)
3. मल्टीपीनेट पेशी (Multipennate muscle)

यूनिपीनेट पेशी में टेन्डन के एक ओर तिरछे फेशिकिल्स होते हैं, जैसे अगूठें की फ्लेक्सर पॉलिसिस लोंगस पेशी (Flexor policis longus muscle) में बाइपीनेट पेशी में तिरछे फेशिकिल्स टेन्डन के दोनों ओर होते हैं, जिससे टेन्डन पर दोनों ओर से खिचाव पड़ता है, जैसे टांग की रेक्टस फीमोरिस पेशी में। मल्टीपीनेट पेशी में अनेकों तिरछे फेशिकिल्स कुछ टेन्डन्स के साथ–साथ व्यवस्थित रहते हैं, जैसे कन्धे की डेल्टॉइड पेशी।

4. गोलाकार पेशी (Circular muscle)- इसमें फेशिकिल्स किसी छिद्र (Opening) अथवा रचना के चारों ओर व्यवस्थित रहते हैं, जैसे मुँह की ऑर्बिकुलेरिस ओरिस (Orbicularis oris) पेशी तथा नेत्र की ऑर्बिकुलेरिस ओकुलाई (Orbicularis oculi) पेशी।

4.5 पेशियों के प्रकार

पेशियाँ तीन प्रकार की होती है–

(i) ऐच्छिक पेशी (Voluntary muscle)

(ii) अनैच्छिक पेशी (Involuntary muscle)

(iii) हृदपेशी (Cardiac muscle)

(i) ऐच्छिक पेशी (Voluntary muscle)

इसे **रेखित पेशी** (Striated muscle) भी कहते हैं। इन पेशियों को अपनी इच्छानुसार संकुचित एवं प्रसारित किया जा सकता है जिससे शरीर के विभिन्न अंगों में गति होती है अतः इन्हें ऐच्छिक पेशियाँ कहा जाता है। चूंकि ये पेशियाँ अस्थियों से संलग्न रहती हैं, इसलिए इन्हें **कंकालीय पेशियाँ** (Skeletal muscles) भी कहते हैं।

ऐच्छिक पेशी बहुत से तन्तुओं से मिलकर बनी होती हैं जो संयोजी ऊतकों द्वारा परस्पर जुड़े होते हैं। प्रत्येक पेशी तन्तुकों (Myofibrils) का बना होता है। यह साइटोप्लाज्म द्वारा निर्मित दृढ़ कोशिका कला (Cell membrane) में बन्द रहता है, जिसे सार्कोलीमा (Sarcolemma) कहते हैं। प्रत्येक पेशी तन्तु में कई अण्डाकार केन्द्रक होते हैं, जो सार्कोलीमा के ठीक नीचे स्थित रहते हैं। पेशीतन्तु में माइटोकॉण्ड्रिया तथा गाल्जी–अंगक भी रहते हैं। कोशिका पदार्थ में असंख्य अनुदैर्ध्य पेशीतन्तुक

(Myofibrils), जिन्हें सार्कोस्टाइल (Sarcostyles) कहते हैं तथा एक स्वच्छ तरल पदार्थ जिसे सार्कोप्लाज्म (Sarcoplasm) कहते हैं, विद्यमान रहते हैं।

प्रत्येक तन्तु एक–दूसरे के समान्तर होता है और जब इन्हें सूक्ष्मदर्शी में देखा जाता है, तो इन पर सुस्पष्ट एकान्तरतः (Alternately) आड़ी काली तथा सफेद पट्टियाँ होती है। जिससे ये धारीदार सी दिखायी देती हैं। प्रत्येक सफेद पट्टी की सीमा रेखा पर बिन्दुओं की क्षैतिज पंक्तियामें से, आमने–सामने वाले बिन्दुक, एक सूक्ष्म पतली रेखा से जुड़े दिखाई देते हैं। यह रेखा काली पट्टी को पार करती हुई स्थित रहती है। प्रत्येक श्वेत पट्टिका एक और रेखा, जिसे क्रॉसीज कला या डॉबीस लाइन (Krause's membrane or Dobies line) कहते हैं, के द्वारा ठीक मध्य से दो भागों में बँट जाती है। डॉबीस लाइन (Dobies line) प्रत्येक सार्कोस्टाइल को छोटे–छोटे विभागों में, जिन्हें सार्कोमीयर (Sarcomere) कहते हैं, विभक्त कर देती है।

प्रत्येक सार्कोमीयर में, इस प्रकार से एक काली पट्टिका (Asrcous element) तथा दोनों ओर की आधी–आधी श्वेत पट्टिका रहती हैं। प्रत्येक सार्कस–तत्व ठीक मध्य में एक और रेखा द्वारा विभाजित रहता है। अनुदैर्ध्य दिशा में इसमें नलियाँ रहती हैं, जिनका खुला मुख श्वेत पट्टिका में रहता है तथा बन्द पिछला सिरा काली पट्टिका की मध्य रेखा डोबी लाइन में रहता है। जब पेशी मे संकुचन होता है, तो सार्कोप्लाज्म इन नलिकाओं में भर जाता है और इस क्रिया से काली पट्टिका, साइकोप्लाज्म से भर जाने से फूल जाती है, तथा श्वेत पट्टिका सिकुड़ जाती है।

इस तरह की पेशियाँ बीच में मॉसल (मोटी) तथा दोनों सिरों पर बहुत पतली होती हैं। इन सिरों को कण्डराएँ (Tendons) कहते हैं, जो तन्तुमय ऊतक के बने होते हैं। इन्हीं कण्डराओं के द्वारा पेशी अस्थि से जुड़ी होती है। कंकालीय पेशियाँ (Skeletal muscles) दो तरह की होती हैं– जो एक दूसरे के विपरीत कार्य करती हैं। अंगों को मोड़ने वाली पेशियों को आकुंचनी (Flexor) तथा अंगों को फैलाने या उन्हें सीधा करने वाली पेशियों को प्रसारिणी (Extensor) कहा जाता है।

(ii) अनैच्छिक पेशी (Involuntary muscle)

इसे **अरेखित** (Unstriated) तथा **चिकनी** (Smooth) पेशी भी कहते हैं। इस वर्ग की पेशियाँ इच्छाधीन नहीं होती हैं। इनमें अनैच्छिक तन्त्रिका तन्त्र (Involuntary nervous system) की नियन्त्रण व्यवस्था रहती है।

इस प्रकार की पेशी का सूक्ष्मदर्शी द्वारा परीक्षण करने पर इसमें तकली के आकार के (Spindle shaped) लम्बे तन्तु पाए जाते हैं। इनके मध्य में केवल एक अण्डाकार न्यूक्लियस होता है। इस प्रकार के पेशी तन्तु में पट्टियाँ नहीं पायी जातीं जिससे इन्हें अरेखित पेशी कहा जाता है। ऐसी पेशियाँ किसी अस्थि से जुड़ी नहीं होती बल्कि किसी अन्तरांग (Viscera) से जुड़ी होती हैं, जिससे इन्हें **अन्तरांगी पेशी** (Visceral muscle) भी कहा जाता है। इस वर्ग की पेशियाँ खोखले अभ्यन्तरांग ट्यूब, ग्रन्थि की नलियों, श्वसनीय–पथ, आहारनल, मूत्राशय, मूत्र–नलियों, गर्भाशय, डिम्बवाहिनियों आदि की भित्तियों,

प्लीहा, त्वचा, नेत्रगोलक आदि में पायी जाती हैं। इस प्रकार की पेशियों की सहायता से आहारनाल में क्रमाकुंचक गति (Peristaltic movement) द्वारा भोजन का निकलना, डिम्बवाहिनियों में डिम्बों का गर्भाशय की ओर खिसकना, आदि क्रियायें स्वतः होती हैं।

संवरणी या अवरोधिनी पेशी (Sphincter muscle)

यह एक प्रकार की अनैच्छिक पेशी होती है, जो वृत्ताकार पेशी तन्तुओं की बनी होती है। यह किसी छिद्र के मुख पर अथवा किसी नली के बाह्य एवं आन्तरिक द्वारों पर विद्यमान होती है। जब यह संकुचित होती है, जो छिद्र अथवा नली के द्वार कसकर बन्द हो जाते हैं, उदाहरणतः– गुदीय संवरणी (Anal sphincter) जो गुदा को बन्द करती है; आमाशय एवं ग्रासनली के जुड़ने वाले भाग पर विद्यमान कार्डियक संरणी (Cardiac sphincter) आदि।

(iii) हृदय पेशी (Cardiac muscle)

इस वर्ग की पेशियाँकेवल हृदय की भित्तियों में ही पायी जाती है। इनमें ऐच्छिक पेशियों की तरह पट्टियाँ होती हैं परन्तु इनकी क्रिया अनैच्छिक होती है अर्थात् इच्छा को नियन्त्रण नहीं होता। ये मृत्यु पर्यन्त बिना विश्राम किए संकुचित एवं शिथिल होती रहती हैं।

हृदय पेशी का रंग लाल होता है। इसके तन्तु छोटे तथा बेलनाकार होते हैं, एवं अनुदैर्ध्य दिशा में आयताकार तथा अनुप्रस्थ दिशा में बहुतलीय होते हैं। प्रत्येक तन्तु में केवल एक न्यूक्लियस रहता है, जो प्रायः मध्य में स्थित रहता है। हृदय पेशी में अनुदैर्ध्य दिशा तथा अनुप्रस्थ दिशा, दोनों में पट्टियाँ होती हैं, परन्तु ये पट्टियाँ अधूरी एवं अस्पष्ट–सी रहती हैं। पेशी आवरण (Sarcolemma) भी अस्पष्ट एवं अधूरा रहता है। तन्तुओं में से शाखाएँ निकली रहती हैं, जो अन्य तन्तुओं से निकली शाखाओं से मिलती जाती हैं तथा इस प्रकार इनमें जीवद्रव्य का सातत्प (Protoplasmic continuity) बना रहता है।

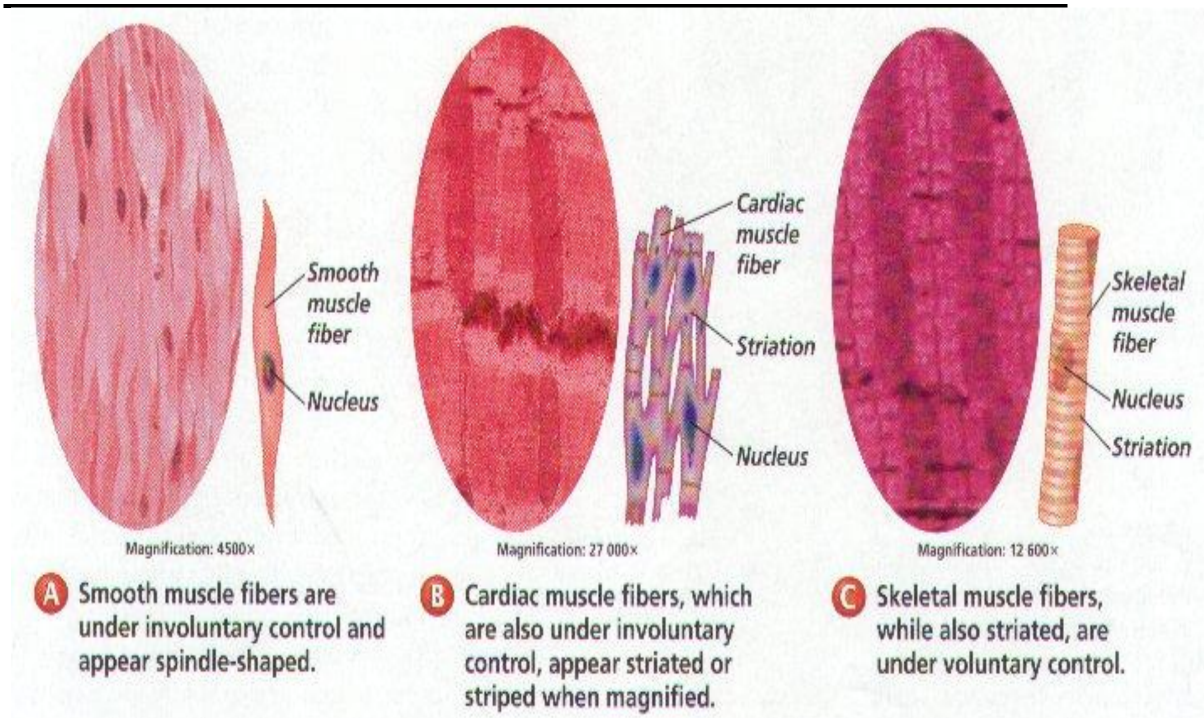

4.6 पेशियों के कार्य एवं गतियाँ

कंकालिय पेशियाँ आंकुचनी (Flexor) तथा प्रसारक (Extensor), दो वर्गों में विभाजित रहती हैं, जो एक–दूसरे के विपरीत कार्य करती हैं। अंगों को मोड़ने वाली पेशियाँ आकुंचनी तथा अंगों को फैलाने और सीधा करने वाली पेशियाँ प्रसारक होती हैं। किसी सन्धि में गति होने के लिए एक वर्ग की पेशियाँ संकुचित होती हैं, जबकि दूसरे वर्ग की पेशियाँ शिथिल होती हैं।

पेशियों की क्रियाओं से ही शरीर के विभिन्न अंगों में गति होती है, जिससे मनुष्य तरह–तरह के कार्य कर पाता है। सामान्यतः पेशियों में आकुंचन (Flexion), प्रसारण (Extension), अपवर्तन (Abduction), अभिवर्तन (Adduction), घूर्णन (Rotation) तथा पर्यावर्तन (Circumduction) गतियाँ होती हैं। इनका वर्णन पीछे किया जा चुका है।

कंकालीय पेशियाँ शरीर के विभिन्न भागों में गति लाने के लिए अकेले कार्य न करके समूहों (Groups) में कार्य कती हैं। पेशियों का प्रत्येक समूह या वर्ग अन्य समूह के विपरीत कार्य करता है और उसका विरोधी (Antagonist) कहलाता है। **अविरोधी पेशियाँ** (Agonists) शरीर के किसी भाग में गति लाने के लिए कार्यरत संकोचक पेशियाँ होती हैं, जबकि प्रतिरोधी पेशियाँ प्रतिरोधी पेशियाँ (Agonists) वे होती हैं, जो उनके विपरीत कार्य करती हैं। अपवर्तक पेशियाँ अभिवर्तक पेशियों की विरोधी होती हैं। कुछ पेशियाँ शरीर के अन्य भागों में गतियाँ होने के दौरान किसी भुजा के भागों को स्थिर रखने का कार्य करती है जिन्हें **स्थिरीकारक पेशियाँ** (Fixators) कहा जाता है। जब किसी गति को उत्पन्न करने

के लिए दो या दो से अधिक पेशियाँ मिलकर यह कार्य करती हैं, तो ऐसी पेशियों को **योगावाही पेशियाँ** (Synergists) कहा जाता है।

शरीर के किसी भी भाग में गति किसी एकल पेशी के कारण नहीं होती है। यहाँ तक कि साधारण गति भी प्रायः कई पेशियों की क्रिया द्वारा होती है, उदाहरण के तौर पर पेन उठाने के लिए उंगलियों, अंगूठे, कलाई, कोहनी और सम्भवतः कंधे तथा धड़ की गति आवश्यक होती है। क्योंकि पेन तक पहुँचने के लिए शरीर आगे की ओर झुकता है। इस क्रिया में भाग लेने वाली प्रत्येक पेशी को पर्याप्त रूप से संकुचित होना आवश्यक है, तथा प्रत्येक पेशी को पर्याप्त रूप से संकुचित होना आवश्यक है, तथा प्रत्येक गति को पूरी करने के लिए न सिर्फ सम्बन्धित पेशी का संकुचित होना आवश्यक है अपितु विरोधी पेशी का शिथिल होना भी जरूरी है। कई पेशियों की इस सम्मिलित क्रिया को **पेशीय समन्वय** (Muscle co-ordination) कहते हैं।

संवेदी तन्त्रिकाएँ **पेशिय संवेदी** (Muscle sense) पैदा करते हैं। यह संवेद बहुत तीव्र नहीं होता, केवल पेशी को संकुचन और शिथिलन की जागरूकता भर देता है। यह जागरूकता ऐच्छिक होती है अर्थात् पेशी को इच्छानुसार शिथिल अथवा संकुचित किया जा सकता है। सामान्य स्थिति में पेशी स्वयं ही कुछ तनी होती हैं, जिसे टोन (Tone) कहते हैं। टोन ही के कारण पेशियाँ बिना थके एक सी स्थिति में रहती हैं। यह क्रिया एक कार्य–प्रणाली पर आधारित है जिसके द्वारा विभिन्न समूह के पेशीह तन्तु संकुचित और शिथिल होते हैं, जो प्रत्येक समूह को आराम एवं सक्रियता की अवधि प्रदान करती है।

पेशी का संकुचन (Contraction of Muscle)

जैसा कि पहले बताया जा चुका है प्रत्येक कंकालीय पेशी में पेशी तन्तुओं एवं संयोजी ऊतकों के अतिरिक्त रक्त वाहिकाएँ एवं तन्त्रिकायें होती हैं। तन्त्रिकाएँ पेशियों और केन्द्रीय नन्त्रिका तंत्र (Central nervous system) के बीच सम्बन्ध स्थापित करती हैं। पेशियों में प्रेरक (Motor) तथा संवेदी (Sensory) दोनों प्रकार के तन्त्रिका तन्तुओं से होकर पेशी की अवस्था के विशेष में आवेग (Impulses) मस्तिष्क को संचारित होते हैं और प्रेरक तन्त्रिकाओं द्वारा मस्तिष्क से आवेग पेशी में पहुँचते हैं, जिससे वह पेशी संकुचित हो जाती है।

पेशीय तन्तुओं को संकुचित होने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है और ये ऊर्जा आहार विशेषताः कार्बोहाइड्रेट्स आक्सीकरण से प्राप्त होती है। पाचन के दौरान कार्बोहाइड्रेट्स ग्लूकोज में परिवर्तित होते हैं। ग्लूकोज, जिसकी शरीर को तुरन्त आवश्यकता नहीं रहती है, ग्लाइकोजन में परिवर्तित हो जाता है और यकृत एवं पेशियों में संचित रहता है। पेशियों में संचित ग्लाइकोजन पेशीय क्रिया के लिए उष्मा एवं ऊर्जा का स्त्रोत होता है। ग्लाइकोजन का ऑक्सीकरण होने पर कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) एवं जल (H_2O) बनते हैं तथा ऊर्जा से भरपूर एक यौगिक बनता है, जिसे एडिनोसिन ट्रोइफॉस्टेट (ATP) कहते हैं। पेशी संकुचन के लिए आवश्यक ऊर्जा ATP से प्राप्त होती है, और यह यौगिक एडीनोसिन डाइफॉस्फेट (ADP) में परिवर्तित हो जाता है। ग्लाइकोजन के ऑक्सीकरण के दौरान पाइरूविक अम्ल (Pyruvic acid) बनता है। यदि ऑक्सीजन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो तो पाइरूविक अम्ल कार्बन डाइऑक्साइड और जल में विभाजित हो जाता है, तथा इस प्रक्रिया के दौरान जो ऊर्जा मुक्त होती है उसका उपयोग और अधिक

एडिनोसिन ट्राइफॉस्फेट बनने में होता है। यदि आक्सीजन की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध न हो तो पाइरूविक अम्ल लैक्टिक अम्ल (Lactic acid) में परिवर्तित हो जाता है, जो एकत्रित होकर पेशीय थकावट (Fatigue) पैदा कर देता है।

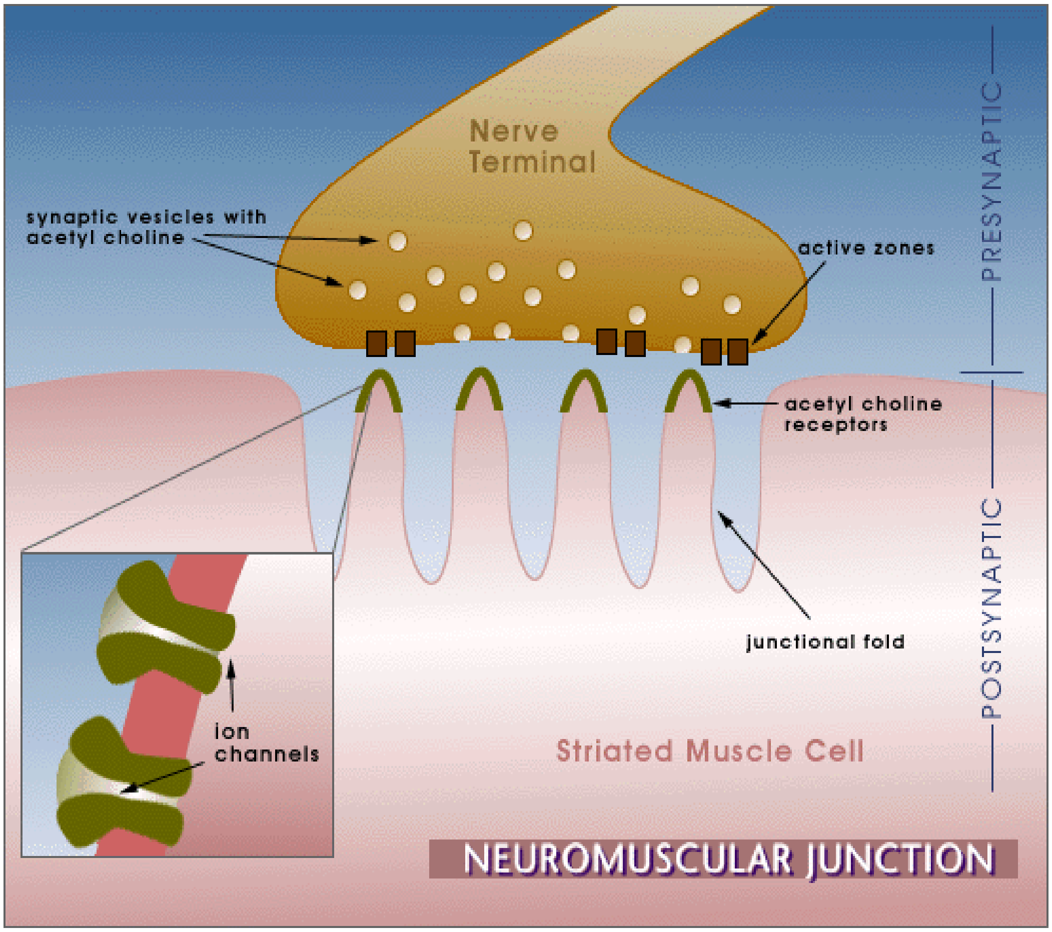

प्रतिवर्त क्रिया (Reflex action)

कॉर्टेक्स (Cortex) शरीर की प्रत्येक क्रिया को नियन्त्रित करता है। कॉर्टेक्स की कोशिकाओं में उद्दीपन उत्पन्न होते रहते हैं और कोशिकाओं से निकलने वाले तन्तुओं द्वारा पेशियों में आते हैं। पेशी के भी उद्दीपन मस्तिष्क के कॉर्टिक्स को निरन्तर प्रसारित होते रहते हैं। मस्तिष्क से पेशी में आने वाले तन्त्रिका तन्तुओं को अपवाही तन्तु (Efferent fibres) कहते हैं। कुछ तन्तु पेशी के उद्दीपन को मस्तिष्क में पहुँचाते हैं, उन्हें अभिवाही तन्तु (Afferent fibres) कहते हैं। शरीर की त्वचा, सन्धि, पेशी या अन्य अंगों में जो भी उद्दीपन होता है वह तन्त्रिका तन्तु द्वारा कॉर्टेक्स की कोशिकाओं में पहुँचता है। जिन तन्त्रिकाओं के तन्तुओं से होकर उद्दीपन मस्तिष्क को जाता है, उन्हें संवेदी तन्त्रिका संवेग पेशी में पहुँचाता

है, उन्हें प्रेरक तन्त्रिका (Motor nerve) कहते हैं। संवेदी तन्त्रिका द्वारा संवेग कॉर्टिक्स में पहुचता है। और वहाँ प्रेरक कोशिकाओं में संवेग उत्पन्न होता है।

स्पाइनल कॉर्ड में भी संवेदी एवं प्रेरक कोशिकाएँ रहती हैं। संवेदी कोशिकाएँ स्पाइनल कॉर्ड के पोस्टीरियर हॉर्न में स्थित होती हैं और उनमें पोस्टीरियर नर्वरूट द्वारा संवेग पहुँचता रहता है। प्रेरक कोशिकाएँ एण्टीरियर हॉर्न में स्थित होती हैं। इनमें संवेग उत्पन्न होते हैं और तन्तुओं द्वारा पेशियों में पहुँचते हैं। सामान्यतः कॉर्टेक्स से प्रेरक संवेग उत्पन्न होकर पेशियों में पहुँचता है। फलस्वरू॰ पेशियाँ अपना कार्य करती हैं। कभी–कभी संवेग मस्तिश्क में न जाकर स्पाइनल कॉर्ड के पोस्टीरियर हॉर्न में पहुँचता है और वहाँ से एन्टीरियर हॉर्न में पहुँचता है, जहाँ से पेशियों को प्रेरणा मिलती है। इस क्रिया को प्रतिवर्त क्रिया कहते हैं।

4.7 शरीर की मुख्य पेशियाँ

1) सिर की पेशियाँ (Muscles of head)

सिर की अधिकांश पेशियाँ चेहरे के क्षेत्र में स्थित रहती हैं। शिरोवल्क (Scalp) के नीचे कपाल का गुम्बज (Valt of skull) ऑक्सीपिटोफ्रन्टैलिस पेशी (Occipitofrontalis muscle) की एपोन्यूरोसिस से ढँका होता है, जिसे गैलीया एपोन्यूरोटिका (Galea aponeurotica) कहते हैं। इस पेशी के एन्टीरियर एवं पोस्टीरियर दो भाग होते हैं, जो क्रमशः फ्रन्टल अस्थि एवं ऑक्सीपिटल अस्थि पर स्थित रहते हैं।

2) चेहरे की पेशियाँ (Muscles of face)

चेहरे की पेशियों को उनके कार्यों के अनुसार हाव–भाव की पेशियाँ (Muscles of facial expression) तथा चबाने की पेशियाँ (Muscles of mastication) दो समूहों में विभाजित किया गया है–

हाव–भाव की पेशियाँ– भाव उत्पन्न करने वाली पेशियाँ सिर और चेहरे की त्वचा (डर्मिस) से जुड़ी रहती हैं। चेहरे की पेशियाँ अपने मूल रन्ध्रों पर खोपड़ी के सामने की अस्थियों से और अपने निवेशों पर चेहरे की त्वचा से संयोजित होती हैं। कुछ पेशियों के उद्‌गम एवं निवेशन दोनों ही त्वचा पर होते हैं। ये पेशियाँ त्वचा के भागों को विभिन्न दिशाओं में खींच सकती हैं जिसके फलस्वरूप चेहरे के हाव–भाव में परिवर्तन होता है।

नेत्र के चारों ओर एक गोलाकार पेशी (Circular muscle) रहती है, जिससे नेत्र खुलते और बन्द होते हैं। आँख के गोले को घुमाने के लिए उस पर छोटी–छोटी पेशियाँ (Small muscles) लगी रहती हैं, जिन्हें ऑर्बिकुलेरिस ऑक्यूलाई (Orbicularis oculi) कहते हैं। इन पेशियों के उद्‌गम नेत्र–गुहा की अस्थि पर और निवेशन नेत्रगोलक के संयोजी ऊतक में होते हैं। प्रत्येक नेत्र में छः पेशियाँ होती हैं। प्रत्येक पेशी नेत्रगोलक में एक पृथक् गति उत्पन्न करती हैं इसके सहारे नेत्र को ऊपर–नीचे, दाएँ–बाएँ घुमाया जा सकता है। मुँह के चारों ओर भी ऐसी ही गोलाकार पेशी रहती है, जिसे ऑर्बिकुलेरिस ऑरिस (Orbicularis oris) कहते हैं।

अन्य छोटी–छोटी पेशियाँ भोंहों और ऊपरी पलकों, तथा मुँह के कोणों को ऊपर व नीचे हिलाती हैं और नथुने को विस्तारित करती हैं।

चबाने की पेशियाँ– ये निचले जबड़े को, काटने की क्रिया में, ऊपर व नीचे तथा चबाने की क्रिया में दाएँ–बाएँ और आगे–पीछे घुमाती है। ये पेशियाँ हैं–

मैसेटर पेशी (Masseter muscle)- यय जबड़े के कोण से जाइगोमेटिक आर्च तक फैली रहती है। इससे चबाते समय निचला जबड़ा ऊपर को उठकर ऊपरी जबड़े से जा लगता है, जिससे भोजन पिस जाता है।

टेम्पोरेलिस पेशी (Temporalis muscle)- यह टेम्पोरल अस्थि के सम्पूर्ण शल्कीय भाग को ढँके रहती है तथा नीचे को जाकर जाइगोमेटिक आर्च के पीछे से गुजरकर निचले जबड़े या मेण्डीब्ल के कोरोनॉइड प्रवर्ध पर निवेशित होती हैं। यह निचले जबड़े को ऊपर को उठकर मुँह को बन्द करती है।

टेरीगॉइड पेशी (Pterygoid muscle)- यह स्फीनॉइड अस्थि के टेरीगॉइड प्रवर्ध से लेकर मेण्डीब्ल तक फैली होती है। इस पेशी से जुगाली सी होती है, जिससे भोजन की भली–भाँति चबाया जाता है। इनके अतिरिक्त अन्य छोटी–छोटी पेशियाँ खोपड़ी से निचले जबड़े (मेण्डीब्ल) तक फैली होती हैं, जो टिटेनस (Tetanus) नामक बीमारी में 'लॉक जॉ' की स्थिति पैदा करती हैं।

3) गर्दन की पेशियाँ (Muscles of the neck)- गर्दन के दोनों ओर, सामने, पार्श्व तथा पिछले भाग पर अनेक पेशियाँ लगी रहती हैं, जिनके सहारे सिर की इधर–'उधर तथा आगे–पीछे की ओर घुमाते हैं। ये पेशियाँ हैं–

स्टर्नोक्लीडोमैस्टॉइड पेशी (Sternocleidomastoid muscle)- यह पेशी गर्दन के सामने स्थित रहती है और स्टर्नम के मैन्यूब्रियम एवं क्लैविक्ल के मीडियल भाग से निकलकर तथा टेम्पोरल अस्थि के मैस्टॉइड प्रवर्ध तक फैली होती हैं। जब एक ओर की पेशी संकुचित होती है तो यह सिर को उस कन्धे की ओर खींचती है, जब दोनों ओर की पेशियाँ एक साथ संकुचित होती हैं तो ये गर्दन को झुकाती हैं।

प्लैटिज्मा मायोइड्स (Platysma myoides)- यह गर्दन की लेटरल सतह पर त्वचा के नीचे स्थित रहती है। संकुचित होने पर गर्दन की त्वचा खिंचती है और मुँह के कोण नीचे को हो जाते हैं।

ट्रैपीजियस पेशी (Trapezius muscle)- यह पेशी गर्दन और वक्ष के पीछे स्थित रहती है तथा उसकी आकृति लगभग त्रिकोणाकार होती है, जिसका आधार गर्दन और वक्ष के पीछे ऑक्सीपिटल अस्थि के उभार (नीचे) से जुड़ा रहता है। इसका नुकीला भाग कन्धे के ऊपर एवं पीछे स्कैपुला अस्थि के स्पाइनस एवं एक्रोमियन प्रर्वधों और क्लैविक्ल से जुड़ा रहता है। इसके ऊपरी भाग के संकुचन से स्कैपुला ऊपर की ओर खिंचती है, जबकि निचले भाग के संकुचन से नीचे की ओर खिंचती है। जब सम्पूर्ण पेशी में संकुचन होता है, तो यह कन्धों (स्कैपुला) को पीछे की ओर यानि मेरुदण्ड की ओर खींचती है।

इनके अतिरिक्त गर्दनि में हायॉइड अस्थि (Hyoid bone) के ऊपर एवं नीचे (Suprahyoid and Infrahyoid) कुछ पेशियाँ स्थित रहती हैं, जो हायॉइड अस्थि को, चबाते और निगलते समय ऊपर और नीचे करती हैं। ये पेशियाँ हैं **सुप्राहाया/इड पेशियाँ–**

डाइगैस्ट्रिक (Digastric), स्टाइलोहायॉइड (Stylohyoid), माइलोहायॉइड (Mylohyoid) एवं जेनियोहायॉइड (Geniohyoid)। **इन्फाहायॉइड पेशियाँ–** स्टर्नोहायॉइड (Sternohyoid), स्टर्नोथाइरॉइड (Sternothyroid), थाइरोहायॉइड (Thyrohyoid), ओमोहायॉइड (Omohyoid)।

4) धड़ की पेशियाँ (Muscles of the Trunk)-

धड़ की मुख्य पेशियों को उनके कार्यों के अनुसार निम्न समूहों में विभाजित किया गया है–

1. कन्धे को घुमाने वाली पेशियाँ
2. श्वसन की पेशियाँ
3. उदरीय भित्ति का निर्माण करने वाली पेशियाँ
4. कूल्हे को घुमाने वाली पेशियाँ
5. श्रोणि (पेल्विस) की पेशियाँ

1. कन्धे को घुमाने वाली पेशियाँ (Muscles moving the shoulder)-

ये पेशियाँ ऊर्ध्व भुजा को धड़ से जोड़ती हैं, जो निम्नलिखित है–

पेक्टोरेलिस मेजर (Pectoralis major)- यह वक्ष की एन्टीरियर भित्ति पर स्थित सुपरफीशियल पेशी है, जिसका उद्‌गम स्र्टनम, क्लैविक्ल और वास्तविक पसलियों की उपस्थियों से होता है तथा निवेशन ह्यूमरस अस्थि की बाइसिपिटल ग्रूव पर होता है। यह पेशी कन्धे को शरीर की मध्य रेखा की ओर लाती है, भुजा (बाँह) को वक्ष के सामने की ओर खींचती है एवं कन्धे का आन्तरिक घुमाव भी करती है।

पेक्टोरेलिस माइनर (Pectoralis minor)- यह पेक्टोरेलिस मेजर पेशी के नीचे स्थित दूसरी से पाँचवी पसली से शुरू होकर स्कैपुला के कॉराकॉइड प्रवर्ध तक पहुँचती है। यह स्कैपुला को नीचे और ओ की ओर को खींचती है।

लेटिसिमस डॉर्सी (Latissimus dorsi)- यह वक्ष एवं उदर के पिछले भाग को ढँकती है और लम्बर वर्टिब्री एवं इलियक क्रस्ट से ह्यूमरस तक फैली रहती है। यह बाँह को पीछे एवं नीचे की ओर खींचती है तथा कन्धे का आन्तरिक घुमाव करती है।

सीरेटस एन्टीरियर (Serratus anterior)- यय दोनों ओर ऊपर की आठ पसलियों से शुरू होकर स्कैपुला के इन्फीरियर कोएवं एवं वर्टिब्रल किनारों पर निवेशित होती है। यह वक्ष की लेटरल भित्तियों के ऊपर से लेकिन पीठ में स्कैपुला के नीचे स्थित होती है। यह स्कैपुला को आगे और बाहर की ओर खींचती है औरउसे घुमा देती है। यह ट्रैपीजियस की प्रतिरोधी पेशी है।

2. श्वसन की पेशियाँ (Muscles of respiration)

डायाफ्राम (Diaphragm)

यह वक्षीय गुहा (Thoracic cavity) एवं उदरीय गुहा (Abdominal cavity) के बीच उन्हें पृथक करने वाली गुम्बद के आकार की चौड़ी पट्‌टीनुमा पेशी है। इसकी किनार पेशी की बनी होती है, जबकि मध्य भाग तन्तुमय ऊतक या एपोन्यूरोसिस की पट्‌टी का होता है। इससे वक्षीय गुहा का तल तथा उदरीय गुहा की छत बनती हैं इस पेशी का उद्‌गम

स्टर्नम के जीफॉइड प्रवर्ध के पोस्टीरियर सर्फेस से, निचली 6 जोड़ी पसलियों की इन्टरनल सर्फेस से तथा पहले तीन लम्बर वर्टिब्री से होता है और मध्य एपोन्यूरोसिस में निवोशित रहता है। डायाफ्राम में महाधमनी (Aorta), ग्रासनली (Oesophagus) एवं निम्न महाशिरा (Inferior vena cava) के लिए तीन बड़े छिद्र होते हैं। निम्न महाशिरा का छिद्र इसके मध्य भाग में तथा महाधमनी और ग्रासनली के छिद्र इसके लम्बर प्रदेश वाले भाग में स्थित होते हैं। जब पेशीय तन्तु संकुचित होते हैं तब डायाफ्राम का उठा हुआ भाग (गुम्बद) समाट हो जाता है और नीचे की ओर दब जाता है, जिससे वक्षीय गुहा लम्बाई में (ऊपर से नीचे के गहराई) बढ़ जाती है।

बाह्य इन्टरकॉस्टल पेशियाँ (External Intercostal muscles)- ये बाहर की ओर पसलियों के बीच में स्थित रहती हैं। इनके तन्तु एक पसली से नीचे की दूसरी पसली तक नीचे एवं आगे की ओर फैले रहते हैं। ये पसलियों को आगे और ऊपर की ओर उठाती हैं, अतः श्वास लेने में पदद करती हैं।

आन्तरिक इन्टरकॉस्ट पेशियाँ (Internal intercostals muscles)- ये भीतर की ओर बाह्य इन्टरकॉस्टल पेशियों के नीचे पसलियों के बीच स्थित रहती हैं, जो इनकी प्रतिरोधी पेशियाँ होती हैं।ये पसलियों को नीचे एवं अन्दर की ओर खींचती हैं, अत श्वास बाहर निकालने में मदद करती हैं।

3. उदरीय भित्ति का निर्माण करने वाली पेशियाँ (Muscles forming the abdominal wall)-

उदरीय भित्ति का निर्माण पाँच जोड़ी पेशियों से होता है, जो सतह से भीतर की ओर निम्न कमानुसार होती हैं–

1. रेक्टस एब्डोमिनिस पेशी
2. एक्सटरनल ऑब्लिक पेशी
3. इन्टरनल ऑब्लिक पेशी
4. ट्रान्सवर्सस एब्डोमिनिस पेशी
5. क्वाड्रेटस लम्बोरम पेशी

रेक्टस एब्डोमिनिस पेशी (Rectus abdominis muscle)- यह लीनिया एल्बा (उदरमध्य रेखा) के दोनों ओर स्थित सबसे ऊपर की चौड़ी और सपाट पेशी है और प्यूबिस से ऊपर की ओर स्टर्नम एवं कॉस्टल उपस्थियों तक फैली रहती है। इसके तन्तु ऊपर से नीचे सीधे फैले रहते हैं। बीच में दोनों पेशियाँ लीनिया एल्बा (Linea alba) से जुड़ी रहती हैं। कुछ अन्तर पर यह तन्तुमय ऊतक की रेखाओं द्वारा कॉस भी होती है। ये तन्तुमय पट्टियाँ (कण्डरा) इस पेशी को मजबूत बनाती हैं। और तनने से रोकती हैं।

एक्सटरनल ऑब्लिक पेशी (External oblique muscle)- यह पेशी पार्श्व की भित्ति की बाहरी परत बनाती है। इसके तन्तु नीचे एवं आगे की ओर फैले रहते हैं। यह निचली पसलियों से आरम्भ होकर नीचे और आगे की ओर जाकर इलियक क्रेस्ट (Iliac crest) एवं इन्वाइनल लिगामेन्ट (Inguinal ligament) में निवेशित होती है। इन्वाइनल लिगामेन्ट उदर और जाँस के ऊपरी भाग के मिलने के स्थान (Groin) पर उदरीय दीवार की दृढ़ किनार बनाता है, जहाँ पेशियाँ अस्थि पर निवेशित नहीं होती तथा एक खाली स्थान छोड़ देती है, जिसमें से धड़ से पेशियाँ, रक्तवाहिकाएँ पैर तक जाती हैं। उदर के सामने यह पेशी एक

एपोन्यूरोसिस बनाती है जो रेक्टस एब्डोमिनिस के सामने से गुजरकर लिनिया पर निवेशित होती है।

इन्टरनल ऑब्लिक पेशी (Internal oblique muscle)- यह एक्सटरनल ऑब्लिक पेशी के नीचे स्थित होती है। इसके तन्तु ऊपर एवं आगे की और फैले रहते हैं। इसका उद्‌गम इलियक क्रेस्ट तथा लम्बर वर्टीब्री के स्पाइनस प्रवर्धों से होता है और ऊपर जाकर निचली पसलियों और उनकी उपास्थियाँ पर तथा एपोन्यूरोसिस के रूप में लिनिया एल्बा पर निवेशित होती है। इस पेशी के तन्तु एक्सटरनल ऑब्लिक पेशी एवं ट्रान्सवर्सस एब्डोमिनिस के एपोन्यूरोसिस से जुड़ जाते हैं।

ट्रान्सवर्सस एब्डोमिनिस पेशी (Transversus abdominis muscle)- यह इन्टरनल ऑब्लिक पेशी के नीचे स्थित उदरीय भित्ति की सबसे गहन पेशी होती है। इसके तन्तु उदरीय भित्ति के चारों ओर स्थित होते हैं। यह निचली 6 पसलियों की उपास्थियों से, इलियक क्रेस्ट एवं लम्बर फैशिया से आरम्भ होती है जिसके द्वारा यह लम्बर वर्टिब्री से जुड़ी रहती है तथा उदर के सामने रेक्टस एब्डोमिनिस पेशी के नीचे स्थित एपोन्यूरोसिस द्वारा लिनिया एल्बा पर निवेशित हो जाती है।

क्वाड्रटस लम्बोरम पेशी (Quadratus lumborum muscle)- यह उदर की पिछली भित्ति बनाती है और इलियक क्रेस्ट से बारहवीं पसली तथा ऊपरी लम्बर वर्टिब्री तक फैली रहती है। श्वसन क्रिया के दौरान यह बाहरवीं पसली को स्थिर रखती है तथा मेरुदण्ड के लम्बर वर्टिब्री वाले भाग को आकुंचित करती है।

इन्वाइनल कैनाल (Inguinal canal)

उदरीय भित्ति में नीचे की ओर दोनों रागों (Groins) से एक–एक मार्ग बनता है, जिसे इन्वाइनल कैनाल या वक्षणीय नली कहते हैं, जिसमें पुरुश में स्पर्मेटिक कॉर्ड (Spermatic cord) तथा स्त्री में गर्भाशय का राउण्ड लिगामेन्ट (Round ligament) तथा इससे सम्बन्धित रक्तवाहिकाएँ और तन्त्रिकाएँ स्थित रहती हैं। इन्वाइनल कैनाल में अवत्वचीय इन्वाइनल वलय (Subcutaneous inguinal ring) तथा गहन इन्वाइनल वलय (Deep inguinal), दो तह होती हैं। सबक्युटेनियस इन्वाइनल रिंग त्वचा के नीचे ठीक प्यूबि ट्यूबरक्ल के ऊपर स्थित होता है तथा डीप इन्वाइनल रिंग एन्टीरियर उदरीय भित्ति की पोस्टीरियर सतह पर इन्वाइनल लिगामेन्ट के मध्यम बिन्दु के ठीक ऊपर स्थित होता है।

4. कुल्हे की पेशियाँ (Muscles of the Hip)-

कूल्हे को घुमाने वाली धड़ में स्थित पेशियाँ निम्नलिखित हैं–

इलियोसोएस पेशी **(Iliopsoas muscle)-** यह रॉग (उरूसन्धि) (Groin) के सामने इन्वाइनल लिगामेन्ट के नीचे क्रॉस करती है। इसका उद्‌गम लम्बर वर्टिब्री के कायों (Bodies) तथा इलियक फोसा, दो स्थानों से होता है, और फीमर के लैसर ट्रॉकैन्टर पर निवेशित होती है। यह कूल्हे की सन्धि (Hip joint) को आकुंचित करती है और फीमर को बाहर की ओर घुमाती है लेकिन जब टॉग स्थिर होती है तब यह धड़ को सामने की ओर झुकाती है।

पिरिफॉर्मिस पेशी (Piriformis muscle)- इस पेशी का उद्‌गम सैक्रम की एन्टीरियर सतह से होता है तथा गेटर शियाटिक फोरामेन से होकर वास्तविक श्रोणि से बाहर को

निकल जाती हैं। इसका निवेशन फीमर के ग्रेटर ट्रोकेन्टर पर होता है। यह फीमर को बाहर की ओर घुमाती है।

ऑब्टफरेटर इन्टरनस पेशी (Obturator internus muscle)- इस पेशी का उद्गम ऑब्टुरेटर फोरामेन के चारों ओर से होता है तथा निवेशन फीमर के ग्रेटर ट्रॉकैन्टर पर होता है। यह लघु शियाटिक फोरामेन से होकर वास्तविक श्रोणि (True pelvis) से बाहर को निकल जाती हैं। यह भी पिरिफॉर्मिस पेशी की तरह फीमर को बाहर की ओर घुमाती है।

ग्लूटियल पेशियाँ (Gluteal muscles)- इनके अन्तर्गत तीन ग्लूटियल या नितम्ब पेशियों का समावेश होता है, जो नितम्ब का निर्माण करती हैं। ये हैं–

ग्लूटियस मैक्सिमस पेशी (Gluteus medius and Gluteus mininus muscles)- इन दोनों पशियों का उद्गम इलियम की लेटरल सतह से होता है तथा निवेशन फीमर के ग्रेटर ट्रॉकैन्टर पर होता है। ये कूल्हे के जोड़ को तानती (Extend) हैं और फीमर का अपवर्तन (Abduction) एवं पार्श्वीय घुमाव भी करती हैं।

5. मेरुदण्ड (Spine) को घुमाने वाली पेशियाँ–

इन्हें स्पाइनेलिस पेशियाँ कहा जाता है, जो मेरुदण्ड के दोनों तरफ धड़ के पीछे स्थित होती हैं। ये इलियक क्रेस्ट के पिछले भाग और सैक्रम से उगमित होती हैं और पसलियों तथा ऊपरी वर्टिब्री में निवेशित होती हैं।

6. श्रोणि तल की पेशियाँ (Muscles of the pelvic floor)-

श्रोणि तल में मुख्यतः निम्न दो पेशियाँ होती हैं–

लीवेटर एनाई पेशियाँ (Levator ani muscles)- ये श्रोणि तल का एन्टीरियर भाग बनाती हैं और श्रोणि की मध्य रेखा के दोनों ओर स्थित रहती हैं। इसका उद्गम श्रोणि की आन्तरिक सतह से होता है तथा मध्य रेखा पर आपस में मिल जाती हैं। ये आपस में मिलकर एक चौड़ी पट्टी–सी बना लेती है, जो श्रोणिय अंगों को सहारा देती है।

कॉक्सिजाई पेशियाँ (Coccygei muscles)- ये लीवेटर एनाई पेशियों के पीछे स्थित त्रिकोणीय पेशियाँ होती है, जिनका उद्गम इस्चियम अस्थि की मध्यवर्ती सतह से होता है तथा निवेशन सैक्रम और कॉक्सिक्स में होता है। स्त्रियों में इस पेशी की मध्यरेखा में तीन छिद्र होत हैं, जिनमें से मूत्रमार्ग (Urethra), योनिमार्ग (Vagina) और मलाशय (Rectum) गुजरते हैं। पुरुशों में दो छिद्र रहते हैं, जिनमें से मूत्रमार्ग और मलाशय गुजरते हैं।

7) पीठ की पेशियाँ (Muscles of the back)-

पीठ की पेशियों को निम्न दो समूहों में विभाजित किया जाता है।

1. ऊपरी भुजा की अस्थियों पर निवेशित होने वाली पेशियाँ (i) ट्रेपीजियस (ii) लैटिसीमस डॉसाई (iii) रोहम्बॉइडियस (iv) ललीवेटर स्कैपुली।
2. विशिश्ट पेशियाँ (i) सीरेटस पोस्टीरियर सुपीरियर पेशी (ii) स्प्लेनियस (iii) सैक्रोस्पाइनेलिस।

ट्रैपीजियस पेशी (Trapezius muscle)- यह पीठ के ऊपरी भाग में त्वचा के नीचे स्थित एक चौड़ी सपाट पेशी है, जिसका उद्गम ऑक्सिपीटल अस्थि, न्यूरल पेशी है, जिसका उद्गम ऑक्सिपीटल अस्थि, न्यूरल लिगामेन्ट तथा थॅरेसिक वर्टिब्री के स्पाइनस प्रवर्धों से होता है तथा निवेशन स्कैपुला के स्पाइन और क्लैविक्ल पर होता है। इस पेशी का ऊपरी भाग स्कैपुला को ऊपर को उठाता है, बीच वाला भाग स्कैपुला को वटिब्रल कॉलम की ओर खींचता है तथा निचला भाग स्कैपुला को नीचे की ओर ले जाता है। सम्पूर्ण पेशी में सकुंचन होने पर यह स्कैपुला को वर्टिब्रल कॉलम की ओर खींचती है।

लैटिसीमस डॉर्साई (Latissimus dorsi)- यह पीठ के निचले भाग में तथा वक्ष के लेटरल भाग में त्वचा के नीचे स्थित एक सपाट पेशी है जिसका उद्गम निचली छः थॅरैसिक वर्टिब्री, लम्बोडॉर्सल फैशिया तथा इलियक क्रस्ट से होता है तथा निवेशन ह्यूमरस के इन्टरटुबरकुलर सल्कस पर होता है। यह बॉह का अभिवर्तन (Adduction) करती है तथा उठी हुई बाँह को नीचे की ओर दबा देती है।

रोहम्बॉयडियस पेशी (Rhomboideus muscle)- यह ट्रैपीजियस पेशी के नीचे स्थित होती है। इसका उद्गम निचली दो सर्वाइकल वर्टिब्री तथा ऊपर की चार थोरैसिक वर्टिब्री से होता है तथा निवेशन स्कैपुला के वर्टिब्रल कॉलम की ओर के किनारे पर होता है। यह पेशी स्कैपुला को वर्टिब्रल कॉलम की ओर खींचती है।

लीवेटर स्कैपुली (Levator scapulae)- यह गर्दन की लेटरल सतह पर ट्रैपीजियस पेशी के ऊपरी भाग के नीचे स्थित रहती है तथा ऊपरी चार सर्वइकल वर्टिब्री से स्कैपुला के मीडियल कोण तक फैली होती है। यह स्कैपुला को ऊपर उठाती है।

सीरेटस पोस्टीरियर सुपीरियर पेशी (Serratus posterior superior muscle)- यह रोहम्बॉयडियस पेशी के नीचे स्थित होती है तथा निचली दो सर्वाइकल तथा ऊपरी दो थोरैसिक वर्टिब्री के स्पाइनस प्रवर्धो से उद्गमित होती है और ऊपर की दो से पाँचवीं पसलियों को दबाती है। यह पेशी श्वसन क्रिया में भाग लेती है।

स्प्लैनियस पेशी (Splenius muscle)- यह सिर तथा गर्दन की पोस्टीरियर सतह पर टैपीजियस पेशी के नीचे स्थित होती है। इस पेशी में संकुचन होने पर सिरि का प्रसारण (Extension) होता है।

सैक्रोस्पाइनैलिस पेशी (Sacrospinalis muscle)- यह पेशी वर्टिब्रल कॉलम के पार्श्व में स्थित होती है, जो सैक्रम से ऑक्सिपिटल अस्थि तक फैली होती है। यह वर्टिब्रल कॉलम को प्रसारित करती है इस पेशी को **रेक्टस स्पाइनैलिस** (Rectus spinalis) कहा जाता है।

8) स्कन्ध मेखला एवं बाँह की पेशियाँ (Muscles of the pectoral girdle and fore arm)

सुप्रास्पाइनेटस पेशी (Supraspinatus muscle)

इस पेशी का उद्गम स्कैपुला के सुप्रास्पाइनेटस फोसा से होता है तथा निवेशन ह्यूमरस के ग्रेटर ट्यूबरक्ल पर होता है। यह स्कन्ध सन्धि को स्थिर रखती है तथा बाँह को अपवर्तित (Abduct) करती है।

इन्फ्रास्पाइनेटस पेशी (Infraspinatus muscle)- इस पेशी का उद्गम स्कैपुला के इन्फ्रास्पाइनेटस फोसा से होता है तथा निवेशन ह्यूमरस के ग्रटर ट्यूबरक्ल पर होत है। यह स्कन्ध सन्धि को स्थिर रखती है तथा बाँह को बाहर की ओर घुमाती है।

सबस्कैपुलेरिस पेशी (Subscapularis mmuscle)- इस पेशी का उद्‌गम स्कैपुला के सबस्कैपुलर फोसा से होता है तथा निवेशन ह्‌यूमरस के लघु या लेसर ट्‌यूबरक्ल पर होता है। यह बाँह को भीतर की ओर (Medially) घुमाती है।

टेरीस मेजर पेशी (Teres major muscle)- यह स्कैपुला के इन्फीरियर कोण से उगमित होती है तथा ह्‌यूमरस की इन्टरट्‌यूबरकुलर ग्रूव की मीडियल क्रेस्ट पर निवेशित होती है। अभिवर्तन (Adduction) के दौरान यह ऊपरी बाँह को स्थिर रखती है तथा ह्‌यूमरस को भीतर की ओर घुमाती है।

टेरीस माइनर पेशी (Teres minor muscle)- इस पेशी का उद्‌गम स्कैपुला के लेटरल निचले किनारे से होता है तथा निवेशन ह्‌यूमरस के ग्रेटर ट्‌यूबरक्ल पर होता है। यह बाँह को बाहर की ओर घुमाती है।

डेल्टॉइड पेशी (Deltoid muscle)- यह एक त्रिकोणाकार पेशी है जिसका उद्‌गम क्लैविक्ल, स्कैपुला के स्पाइन एवं एक्रोमियन प्रवर्ध से होता है तथा निवेशन ह्‌यूमरस की डेलटॉइड ट्‌यूबरोसिटी पर होता है। इस पेशी के तीन भाग होते हैं– क्लैविक्ल वाला भाग (Clavicular part) बाँह को मोड़ता है तथा भीतर की ओर (Medially) घुमाता है; एक्रोमियन वाला भाग (Acromial part) बाँह को अपवर्तित (Abducts) करता है; स्पाइन वाला भाग (Spinous part) बाँह को तानता या प्रसारित करता है और बाहर की ओर घुमाता है।

बाइसेप्स पेशी (Biceps muscle)- यह ऊपरी बाहु में स्थित सबसे ऊपर सामने की पेशी है जिसके लोंग एवं शॉर्ट दो सिरे (Long and short heads) होते हैं। इसके लोंग हेड का उद्‌गम स्कैपुला के सुप्राग्लीनॉइड ट्‌यूबरक्ल से तथा शॉर्ट हट का उद्‌गम स्कैपुला के कोराकॉइड प्रवर्ध से होता है तथा इसका निवेशन रेडियल ट्‌यूबरोसिटी पर होता है। यह कोहनी को मोड़ती है तथा अग्रबाहु को ऊपर की ओर लाती है।

ट्राइसेप्स पेशी (Triceps muscle)- य ह पेशी बाहु में पीछे की ओर स्थित रहती है। इसके लोंग लेटरल एवं मीडियल तीन सिरे होते हैं। लोंग हेड का उद्‌गम स्कैपुला के इन्फ्राग्लीनॉइड ट्‌यूबरक्ल से; लेटरल हेड का ह्‌यूमरस के रेडियल ग्रूव के ऊपर पोस्टीरियर एवं लेटरल साइड से तथा मीडियल हेड का ह्‌यूममरस के रेडियल ग्रूव के नीचे पोस्टीरियर भाग से होता है और निवेशन कोहनी के जोड़ के पीछे अल्ना के ऑलीक्रेनॉन प्रवर्ध पर होता है। यह पेशी कोहनी को तानती (Extends) है।

ब्रैकिएलिस पेशी (Brachialis muscle)- यह पेशी बाँह के सामने बाइसेप्स पेशी की अपेक्षा कुछ नीचे स्थित रहती है। इसका उद्‌गम ह्‌यूमरस की एन्टीरियर सतह से होता है। तथा निवेशन अल्ना के कोरोनॉइड प्रवर्ध एवं ट्‌यूबरोसिटी पर होता है। यह कोहनी को मोड़ती (Flexes) है।

ब्रैकियोरेडिएलिस पेशी (Brachioradialis muscle)- यह अग्रबाहु की लेटरल सतह पर स्थित रहती है। इस पेशी का उद्‌गम ह्‌यूमरस की लेटरल सुप्राकॉण्डाइलर किनार (Ridge) से होता है तथा निवेशन रेडियस की लेटरल सतह पर स्टाइलॉइड प्रवर्ध के आधार के समीप होता है। यह पेशी कोहनी को मोड़ती है एवं रेडियस को घुमाती है।

कोरैकोब्रैकिएलिस पेशी (Coracobrachialis muscle)- इस पेशी का उद्गम स्कैपुला के कोराकॉइड प्रवर्ध से होता है तथा निवेशन ह्यूमरस पर होता है। यह बाँह को आकुंचित तथा अभिवर्तित (Frexes and adduct) करती है।

सुपीनेटर पेशी (Supinator muscle)- इस पेशी का उद्गम ह्यूरस के लेटरल एपिकॉण्डाइल एवं अल्ना की सुपीनेटर क्रेस्ट से होता है तथा निवेशन रेडियस की लेटरल सतह पर होता है। यह अग्रबाहु को ऊपर की ओर पलटती है (Supinate) अर्थात् हाथ की हथेली को आगे की ओर घुमाती है।

प्रोनेटर टेरीस (Pronator teres)- इस पेशी का उद्गम ह्यूमरस के मीडियल एपिकॉण्डाइल एवं अल्ना के कोरोनॉइड प्रवर्ध से होता है तथा रेडियस की मिडलेटरल सतह पर निवेशित होती है। यह अग्रबाहु को नीचे की ओर पलटती है तथा कोहनी को मोड़ती है।

प्रोनेटर क्वाड्रेटस (Pronator quadratus)- इस पेशी का उद्गम अल्ना के एन्टीरियर दूरस्थ सिरे से होता है तथा निवेशन रेडियस के एन्टीरियर दूरस्थ सिरे (Anterior distal end) पर होता है। यह अग्रबाहु को नीचे की ओर पलटती (Pronate) है।

9) कलाई की पेशियाँ (Muscles of the wrist) जो कलाई को आकुंचित या मोड़ती हैं।

फ्लेक्सर कर्पाइ रेडियलिस (Rexor carpiradialis)- इस पेशी का उद्गम ह्यूमरस के मीडियल एपिकॉण्डाइल से होता है तथा निवेशन दूसरी और तीसरी मेटाकार्पल अस्थियों के आधार पर होता है।

फ्लेक्सर कार्पाइ अल्नैरिस (Flexor carpi ulnaris)- इसका उद्गम ह्यूरस के मीडियल एपिकॉण्डाइल एवं अल्ना के ऑलिक्रेनन प्रवर्ध से होता है तथा निवेशन पिसिफॉर्म, हेमेट एवं पाँचवीं मेटाकार्पल अस्थि के आधार पर होता है।

एक्सटेन्सर कार्पाइ रेडिएलिस लांगस (Extensor carpi radialis longus), एक्सटेन्सर कार्पाइ रेडिएलिस ब्रेविस (Extensor carpi radialis brevis) तथा एक्सटेन्सर कार्पाइ अल्नेरिस (Extensor carpi ulnaris)- उपरोक्त तीनों पेशियाँ कलाई को तानती एवं पीछे की ओर खींचती हैं। इनका उद्गम ह्यूमरस के लेटरल एपिकॉण्डाइल से होता है परन्तु निवेशन क्रमशः दूसरी, तीसरी एवं पाँचवीं मेटाकार्पल अस्थियों के आधारों पर होता है।

10) हाथ के अंगूठें को घुमाने वाली पेशियाँ (Muscles that move the thumb)

फ्लेक्सर पॉलिसिस लॉगस (Flexor pollicis longus)- इसका उद्गम रेडियस की एण्टीरियर सतह और इन्टरओसियस मेम्ब्रेन से होता है तथा अंगूठे के दूरस्थ फैलेन्क्स (Distal Phalanx) के आधार पर निवेशन होता है। यह अंगूठे को मोड़ती है।

फ्लेक्सर पॉलिसिस ब्रेविस (Flexor pollicis brevis)- इसका उद्गम ट्रैपीजियम अस्थि से होता है तथा निवेशन अंगूठे की समीपस्थ फैलेन्क्स के आधार पर होता है। यह अंगूठे को मोड़ती है तथा अपोजीशन एवं रिपोजीशन में सहायता करती है।

एक्सेटेन्स पॉलिसिस लाँगस (Extensor Pollicis longus) एवं एक्सटेन्सर पॉलिसिस ब्रेविस (Extensor Pollicis brevis)- इन पेशियों का उद्गम क्रमशः अल्ना तथा रेडियस की डॉर्सल सतह और इन्टरओसियस मेम्ब्रेन से होता है तथा निवेशन अँगूठे की फैलेन्क्स पर होता है। ये दोनों पेशीयों अँगूठें को प्रसरित (Extend) करती हैं।

ओपेनेन्स पॉलिसिस पेशी (Abductor pollicis muscle)- इस पेशी का उद्गम ट्रैपीजियम से होता है तथा निवेशन अंगूठे की पहली मेटाकार्पल अस्थि पर होता है। यह अंगूठे को हथेली की मध्यवर्ती रेखा की ओर घुमाती है।

एब्डक्टर पॉलिसिस ब्रेविस पेशी (Abductor pollicis brevis muscle)- इसका स्कैफॉइड एवं ट्रैपीजियम अस्थियों से उद्गम होता है तथा अंगूठे की समीपसी फैलेन्क्स के आधार पर निवेशन होता है। यह अंगूठे को अपवर्तित (Abduct) करती है और अपोजीशन में सहायता करती हैं।

एब्डक्टर पॉलिसिस पेशी (Abductor pollicis muscle)- इस पेशी का उद्गम दूसरी एवं तीसरी मेटाकार्पल तथा कैपिटेट अस्थियों से होता है तथा निवेशन अंगूठे की समीपस्थ फैलेन्क्स के आधार पर होता है। यह अंगूठे की समीपस्थ फैलेन्क्स के आधार पर होता है। यह अंगूठे को प्रसारित तथा मोड़ती है।

एब्डक्टर पॉलिसिस लाँगस पेशी (Abductor Pollicis longus muscle)- इस पेशी का उद्गम अल्ना तथा रेडियस की डॉर्सल सतह से होता है तथा निवेशन प्रथम मेटाकार्पल अस्थि के आधार पर होता है। यह अंगूठे को अपवर्तित तथा प्रसरित करती है और रिपॉजीशन में सहायता करती है।

11) हाँथ की अंगुलियों को घुमाने वाली पेशियाँ (Muscles that move the fingers)

फ्लेक्सर डिजिटोरम सुपरफिशियल (Flexor digitorum superficial)- इस पेशी का उद्गम ह्यूमरस के मीडियल एपिकॉण्डाइल, अल्ना के कोरोनॉइड प्रवर्ध और रेडियस के एन्टीरीयर बॉर्डर से होता है तथा निवेशन दूसरी से पाँचवीं अंगुली की बीच की फैलेन्जीज के दोनों ओर होता है। यह अंगुलियों को मोड़ती (Flexes) है।

फ्लेक्सर डिजिटोरम प्रोफण्डस (Flexor digitorum profundus)- इस पेशी का उद्गम अल्ना की एन्टीरियर एवं मीडियल सतह से होता है तथा निवेशन दूसरी से पाँचवीं अंगुलियों की दूरस्थ फैलेन्जीज की पामर सतहों (Palmar surfaces) पर होता है। यह अंगुलियों को मोड़ती है।

इन्ट्रोसाइ पेशियाँ (Interossei muscles)- इन पेशियों के अन्तर्गत 4 डॉर्सल एवं 3 पामर इन्ट्रोसाइ पेशियाँ होती हैं। डॉर्सल इन्ट्रोसाइ पेशियाँ अंगुलियों को फैलाती या अपवर्तित (Abduct) करती हैं तथा पामर इन्ट्रोसाइ पेशियाँ अंगुलियों को अभिवर्तित या पास–पास (Adduct) करती हैं। इन दोनों तरह की इन्ट्रोसाइ पेशियों का उद्गम मेटाकार्पल अस्थियों से होता है तथा निवेशन फैलेन्जीज के समीपस्थ आधारों पर होता है।

लम्ब्रीकल पेशियाँ (Lumbrical muscles)- ये संख्या में चार होती हैं जिनका उद्गम हाथ की हथेली फ्लेक्सर डिजिटोरम प्रोफण्डस पेशी के टेन्डन्स से होता है तथा निशन डिजिट्स (Digits) के एक्सटेन्सर टेन्डन में होता है। ये मेटाकार्पोफेलेन्जियल सन्धि

(Kuncles) को मोड़ती हैं तथा समीपस्थ व दूरस्थ इन्टरफैलेन्जियल सन्धियों को प्रसारित (Extend) करती हैं।

एक्सटेन्सर डिजिटोरम (Extensor digitorum)- इसका उद्गम ह्यूमरस के लेटरल एपिकॉण्डाइल से तथा निवेशन दूसरी से पाँचवीं अंगुलियों की फैलेन्जीज की डॉर्सल सतह पर होता है। यह अंगुलियों को प्रसारित (Extend) करती है।

फ्लेक्सर डिजिट मिनिमि (Flexor digiti minimi)- इस पेशी का उद्गम हेमेट अस्थि से होता है तथा निवेशन छोटी अंगुली (Little finger) की समीपस्थ फैलेन्क्स की मीडियल साइड पर होता है। यह छोटी अंगुली की समीपस्थ फैलेन्क्स को मोड़ती (Flexes) है।

ओपोनेन्स डिजिटि मिनिमि (Opponens digiti minimi)- इसका उद्गम हेमेट अस्थि से होता है तथा निवेशन छोटी अंगुली की पामर सतह पर होता है। यह पेशी छोटी अंगुली को हाथ की मध्य रेखा की ओर घुमाती है।

एब्डक्टर डिजिटि मिनिमि (Abductor digiti minimi)- इस पेशी का उद्गम पिसिफॉर्म अस्थि से होता है तथा निवेशन छोटी अंगुली की समीपस्थ फैलेन्क्स की मीडियल साइड पर होता है। यह छोटी अंगुली को चौथी अंगुली से दूर ले जाती है।

12) निम्नांग या पैर की पेशियाँ (Muscles of the lower limb)- पैर की पेशियाँ बॉह की पेशियों की अपेक्षा अधिक बड़ी और शक्तिशाली होती हैं। इन्हें जाँघ की पेशियों, टाँग (घुटने से टखने तक का भाग) की पेशियों तथा पाँव या पाद की पेशियों में विभाजित किया जा सकता है। **जाँघ की पेशियाँ (Muscles of thigh) क्वाड्रिसेप्स फीमोरिस (Quadriceps femoris muscle)-** यह जाँच की एक बड़ी और शक्तिशाली पेशी है, जो **रेक्टस फीमोरिस** (Rectus femoris), **वास्टस लेटरेलिस** (Vastus lateralis), **वास्टस मीडिएलिस** (Vastus medialis), एवं **वास्टस इन्टरमीडियस** (Vastus intermedius), इन चारों पेशियों के मिलने से बनती है। इनमें से रेक्टस फीमोरिस का उद्गम एन्टीरियर इन्फीरियर इलियक स्पाइन से, वास्टस लैटरेलिस का फीमर के ग्रेटर ट्रॉकेन्टर व लिनिया एस्पेरा (Linea aspera) से, वास्टस इन्टरमीडियस का एन्टीरियर फीमर से तथा वास्टस मीडिएलिस का फीमर की लिनिया एस्पेरा से होता है। परन्तु इन चारों का निवेशन पटेलर टेण्डन के द्वारा टिबियल ट्यूबरोसिटी पर होता है। यह घुटने को तानती (Extend) है तथा इसका उपयोग खड़े रहने और किक लगाने की शक्तिशाली क्रिया में होता है।

1. बाईसेप्स फीमोरिस (Biceps femoris)- इस पेशी के दो सिरे होते हैं। एक लम्बा सिरा जिसका उद्गम इस्चियल ट्यूबरोसिटी से और दूसरा छोटा सिरा जिसका उद्गम फीमर लिनिया एस्पेरा से होता है तथा निवशन फिब्यूला के शीर्ष (head) एवं टिबिया के लेटरल कॉण्डाइल पर होता है। यह पेशी घुटने को मोड़ती है एवं बाहर की ओर घुमाती है तथा नितम्ब सन्धि (Hip joint) पर जाँघ को प्रसारित (Extend) करती है। यह जाँघ के पीछे बाहर की ओर स्थित रहती है।

2. **सेमीटेन्डिनॉसस (Semitendinosus)-** इस पेशी का उद्गम इस्चियल ट्यूबरोसिटी से होता है तथा निवेशन टिबिया के समीपस्थ सिरे की मीडियल सतह पर हाता है। यह

पेशी जाँघ के पीछे मध्य में स्थित रहती है तथा घुटने को मोडती है और अन्दर की ओर (Medially) घुमाती है एवं नितम्ब सन्धि पर जाँघ को प्रसारित करती है।

3. सेमीमेम्ब्रेनोसस (Semimembranosus)- इस पेशी का उद्गम इस्चियल ट्यूबरोसिटी से होता तथा टिबिया के मीडियल कॉण्डाइल पर निवेशित होती है। यह जाँघ के पीछे अन्दर की ओर स्थित रहती है। यह पेशी भी सेमीटैन्डिनोसस की तरह कार्य करती है।

सारटोरियस पेशी (Sartorius muscle)- यह जाँच में सामने की ओर शरीर की सबसे अधिक लम्बी और फीते के आकार की पेशी होती है। इसका उद्गम एन्टीरियर सुपीरियर इलियक स्पाइन से होता है तथा निवेशन टिबिया के समीपस्थ सिरे की मीडियल सतह पर होता है। यह पेशी घुटने तथा नितम्ब सन्धि को मोड़ती है।

जाँघ के अन्दर की ओर का माँसल भाग **तीन एडक्टर पेशियाँ–लाँगस, ब्रेविस एवं मैगनस तथा पेक्टिनियस** (Pectineus) **और ग्रैसिलिस** (Gracilis) बनाती हैं। एडक्टर पेशियों का उद्गम प्यूबिक और इस्चियम अस्थियों से होता है तथा निवेशन फीमर के लिनिया एस्पेरा एवं मीडियल एपिकॉण्डाइल पर होता है। ग्रैसिलिस का निवेशन टिबिया पर होता है। ये सभी पेशियाँ टाँग का अभिवर्तन (Adduction) करती है।

पोपलिटियस पेशी (Popliteus muscle)- इसपेशी का उद्गम फीमर के लेटरल कॉण्डाइल से होता है तथा निवेशन टिबिया की पोस्टीरियर सतह पर होता है। यह घुटने को मोड़ती है और टाँग को घुटने के जोड़ पर घुमाती है।

13) टाँग की पेशियाँ (Muscles of the Leg)

गैस्ट्रोनीमियस (Gastrocnemius)- यह पेशी पिण्डली का माँसल भाग बनाती है तथा सोलीयस (Soleus) के पीछे की ओर स्थित रहती है। इसका उद्गम फीमर के एपिकॉण्डाइल्स से होता है तथा निवेशन कैल्केनियस की पोस्टीरियर सतह पर होता है। यह टखने (Ankle) का प्लान्टर फ्लेक्शन (ऊपर की ओर मुड़ाव) करती है तथा घुटने को मोड़ती है।

सोलीयस (Soleus)- यह पेशी गैस्ट्रोनीमियस से मिलकर पिण्डली का माँसल भाग बनाती है तथा इसके आगे की ओर स्थित रहती है। इस पेशी का उद्गम फिब्यूला के शीर्ष (Head) एवं टिबिया के मीडियल बॉर्डर से होता है तथा निवेशन कैल्केनियस की पोस्टीरियर सतह पर होता है। यह टखने का प्लान्टर फ्लेक्शन करती है तथा खड़े होने की स्थिति में टाँग को स्थिर रखती है।

उपर्युक्त दोनों पशियाँ नीचे की ओर एक साथ जुड़कर एक शक्तिशाली टेन्डन बनाती हैं, जिसे टेन्डोकैल्केनियस (Tendocalcaneus) या एकीलिस टेन्डन (Achillis tendon) कहते हैं।

पेरोनियस लॉगस (Peroneus longus) एवं पेरोनियस ब्रेविस (Peroneus brevis)- इन पेशियों का उद्गम फिब्यूला की लेटरल सतह से होता है तथा निवेशन क्रमशः प्रथम मेटाटार्सल की प्लान्टर सतह व मीडियल क्यूनीफॉर्म (Cuneiform) तथा पाँचवीं मेटाटार्सल

की डॉर्सल सतह पर होता है। ये टखने का प्लान्टर फ्लेक्शन करती हैं और पाँव (Foot) को बहिर्नत (Evert) करती हैं।

टिबिएलिस एन्टीरियर (Tibialis anterior)- टाँग के सामने टिबिया की किनार के एकदम बाहर की ओर स्थित रहती है। इस पेशी का उद्‌गम टिबिया की सतह तथा लेटरल कॉण्डाइल से होता है और निवेशन (Insertion) प्रथम मेटाटार्सल तथा मीडियल क्यूनीफॉम अस्थि पर होता है। यह टखने का डॉर्सीफ्लेक्शन करती अर्थात् पाँव को ऊपर की ओर आंकुचित करती है। तथा पाँव को अन्दर की ओर घुमाती (Invert) भी है।

टिबिएलिस पोस्टीरियर (Tibialis posterior)- यह पेशी टाँग के पिछले भाग में स्थित रहती है तथा इसका उद्‌गम इन्टरओसियस मेम्बेन, फिब्यूला व टिबिया से होता है और निवेशन दूसरी, तीसरी व चौथी मेटाटार्सल अस्थियों के आधारों पर, नैविकुलर, क्यूनीफॉर्म, क्यूबॉइड एवं कैल्केनियस अस्थियों पर होता है। यह पेशी टखने का प्लान्टर फ्लेक्शन करती है, जिससे पाँव अन्दर की ओर मुड़ जाता है।

फ्लेक्सर डिजिटोरम लाँगस (Flexor digitorum longus) एवं फ्लेक्सर हैलुसिस लाँगस (Flexor hallucis longus)- ये दोनों पेशियाँ टाँग के पीछे की ओर स्थिति रहती है तथा अंगुलियों को आकुंचित करती हैं।

एक्सटेन्सर डिजिटोरम लाँगस (Extensor digitorum longus)- इस पेशी का उद्‌गम टिबिया के लेटरल कॉण्डाइल व फिब्यूला की एन्टीरियर सतह से होता है तथा निवेशन पैर की अंगुलियों की मध्य एवं दूरस्थ फैलेन्जीज पर होता है। यह टरखने का डॉर्सीफ्लेक्शन करती है तथा अंगुलियों को प्रसरित (Extend) करती है।

एक्सटेन्सर हैलुसिस लाँगस (Extensor hallucis longus)- इस पेशी का उद्‌गम फिब्यूला के मध्य से और इन्टरओसियस मेम्बेन से होता है तथा निवेशन पैर के अंगूठे (Great toe) की दूरस्थ फैलेन्क्स की डॉर्सल सतह पर होता है। यह टखने का डॉर्सीफ्लेक्शन करती है और अंगूठे को प्रसारित करती है।

पेरोनियस टर्शियस टर्शियस (Peroneus tertious)- इस पेशी का उद्‌गम फिब्यूला के दूरस्थ सिरे व इन्टरओसियस मेम्बेन से होता है तथा निवेशन पाँचवीं मेटाटार्सल अस्थि की डॉर्सल सतह पर होता है। यह टखने का डॉर्सीफ्लेक्शन करती है तथा पाँव को बहिर्नत (Evert) करती है।

14) पाँव की पेशियाँ (Muscles of the foot)-

पाँव को घुमाने वाली मुख्य पेशियाँ अधिकतर टाँग में ही स्थित रहती हैं, जो हाथ के समान ही होती हैं। अंगुलियों को प्रसरित करने वाली पेशियों के टेन्डन्स पाँव की डॉर्सल सतह को क्रॉस करते हैं, पाँव के अंगूठे की अलग पेशी और टेन्डन रहता है।

पाँव की मुख्य पेशियाँ चार परतों में व्यवस्थित रहती हैं। बाहर (Superficial) से अन्दर की ओर (Deep) पहली परत की पेशियाँः **एब्डक्टर हैलुसिस** (Abductor hallucis)**,** जो अंगूठे (Grea toe) को अपवर्तित (Abduct) करती है; **फ्लेक्सर डिजिटोरम ब्रेविस** (Flexor digitorum brevis)**,** जो पाँव की चारों अंगुलियों की दूसरी फैलेन्जीज को आकुंचित या मोड़ती है, **एब्डक्टर डिजिट मिनिमाई** (Abductor digiti minimi), जो छोटी अंगुली को

अपवर्तित करती है। दूसरी परत की पेशियाँः **क्वाड्रेटस प्लान्टी** (Quadratus plantae), जो चारों अंगुलियों की टर्मिनल फैलेन्जीज को मोड़ती (Flex) है। **लम्ब्रीकल्स** (Lumbricals) जो चारों अंगुलियों की समीपस्थ या प्रोक्सीमल फैलेन्जीज को मोड़ती है तथा दूरस्थ या डिस्टल फैलेन्जीज को प्रसारित या फैलाती है। तीसरी परत की पेशियाँ **फ्लेक्सर हैलुसिस ब्रेविस** (Flexor hallucis brevis), जो अंगूठे की प्रोक्सीमल फैलेन्क्स को मोड़ती है; **एडक्टर हैलुसिस** (Adductor hallucis), जो अंगूठें को अभिवर्तित (Adduct) करती है, **फ्लेक्सर डिजिटि मिनिमि ब्रेविस** (Flexor digiti minimi bravis) जो छोटी अंगुली की दूरस्थ फैलेन्क्स को मोड़ती है। चौथी परत की पेशियाँ, जो सबसे अन्दर की ओर स्थित रहती है, वे हैं– चार **डॉर्सल इन्ट्रोसाइ** (Dorsal interossei), जो दूसरी, तीसरी व चौथी अंगुलियों को अपवर्तित (Abduct) करती है तथा समीपस्थ फैलेन्क्स को मोड़ती है और दूरस्थ फैलेन्क्स को फैलाती है। तीन **प्लान्टर इन्ट्रोसाई** (Planter interossei), जो तीसरी, चौथी तथा पाँचवीं अंगुलियों को अभिवर्तित (Adduct) करती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

रिक्त स्थानो की पूर्ति कीजिये–

1 हमारे शरीर में लगभग .... कंकाली पैशियां होती है जिन्हे सामुहिक रूप से पैशिय संस्थान कहा जाता है।
2 पैशियां ....प्रकार की होती है।
3 ऐच्छिक पैशी .... पैशी भी कहलाती है।
4 हद्य पैशियां केवल............ की भित्तियों में ही पाई जाती है
4 कंकाली पैशियां.............. तथा प्रसारक दो वर्गो में विभाजित रहती है।

1 हमारे शरीर में लगभग .... कंकाली पैशियां होती है जिन्हे सामुहिक रूप से पैशिय संस्थान कहा जाता है।
2 पैशियां ....प्रकार की होती है।
3 ऐच्छिक पैशी .... पैशी भी कहलाती है।
4 हद्य पैशियां केवल............ की भित्तियों में ही पाई जाती है
5 कंकाली पैशियां.............. तथा प्रसारक दो वर्गो में विभाजित रहती है।

4.8 सारांश

प्रिय पाठको उपयुक्त विवेचन से आप जान गये होंगे की पैशिय संस्थान क्या है तथा किस प्रकार से यह कार्य करता है यदि संक्षेप में हम कहे तो अस्थि तंत्र हमारे शरीर को एक आधार तथा आकार प्रदान करता है तथा पैशिय संस्थान हमे गति करने की शक्ति देता है। मांसपैशिया के कारण ही हम विभिन्न प्रकार की गतियां करने में सक्षम होते है जैसे उठना बैठना चलना दौडना इत्यादि ।

ठसके साथ ही जोडो को मजबुत बनाये रखने में अर्थात एक अस्थि को दूसरी अस्थि से जोडे रखने में भी मांस पैशियां महत्वपूर्ण योगदान देती है। ऐच्छिक पैशी,अनेच्छिक पैशी तथा हद्य पैशी के भेद से पैशियो के मुख्यतः तीन भेद है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पेशिय संस्थान हमारे शरीर का एक महत्वपूर्ण संस्थान है।

4.9 शब्दावली

अनेच्छिक पेशी– जिन मांसपेशियों की क्रियाओं पर हमारा नियंत्रण नहीं होता है। अथवा जिनकी क्रियायें हमारे इच्छानुसार संचालित नहीं होती है।
ऐच्छिक पैशी – जिन मांसपेशियों की क्रियाओं पर हमारी इच्छा का नियंत्रण रहता है।
स्पाइलन कॉर्ड – मेरूरज्जु, शुषुम्ना मेरूदण्ड
नथुने – नासिका छिद्र
रक्त वाहिकाये – रक्तनलिकायें
उतक – कोशिकाओं का समूह

4.10 अभ्यास प्रश्नों के उतर

1 60 2 तीन 3 रेखित 4 ह्रदय 5 आकुंचनी

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2.गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
3.शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
4.पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

4.12 निबंधात्मक पश्न

प्रश्न 1 पेशीय संस्थान से आप क्या समझतें है? पेशीय संस्थान के संरचना का वर्णन कीजिए ।

प्रश्न 2 पेशीयों के प्रमुख प्रकारों का विवेचन करते हुए पेशीय के कार्य एवं गतिओं पर प्रकाश डालिये ।

प्रश्न 3 शरीर के मुख्य पेशीयों का वर्णन कीजिए।

इकाई – 5 अस्थि एवं पेशीय पर यौगिक प्रभाव

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 अस्थि एवं पेशीय तंत्र पर यौगिक प्रभाव
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उतर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों इससे पूर्व की इकाईयों में आपने अस्थि एवं पैशीय तंत्र कि संरचना एवं कार्य विधि का अध्ययन किया है, प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय है, अस्थि एवं पैशीय तंत्र पर यौगिक प्रभाव अर्थात् आसन प्राणायाम यौगिक अभ्यास के कंकाल तंत्र मांसपेशिय संस्थान को किस प्रकार से प्रभावित करते है। इन अभ्यासों को करने से इन संस्थानो की कार्य प्रणाली क्यो एवं कैसे प्रभावित होती है क्या योगाभ्यासों के निमित संस्थान से अस्थि एवं पैशीय तंत्र के अंगों की कार्य क्षमता को बढ़ाया जा सकता है, योगाभ्यासों में से भी ऐसे कौन से अभ्यास जिनका प्रत्यक्ष रूप से सर्वाधिक प्रभाव अस्थि एवं पैशीय तंत्र पर पड़ता है। तो आइये इन्हीं प्रश्नो को समाधान पाने के लिये हम चर्चा करते है– अस्थि एवं पैशाय संस्थान योगाभ्यास किस प्रकार से प्रभाव डालते हैं।

5.2 उद्देश्य –

प्रिय विद्यार्थियों प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

- अस्थि संस्थान पर योगाभ्यास किस प्रकार से प्रभाव डालते है इसे स्पष्ट कर सकेंगे ।
- मांसपेशिय संस्थान पर पडने वाले यौगिक प्रभावों का वर्णन कर सकेंगे।
- अस्थि तंत्र एवं पैशीय तत्र पर कौन – कौन से योगाभ्यास सार्वाधिक प्रभाव डालते है, इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- अस्थि एवं पैशीय संस्थान की कार्य क्षमता में किस प्रकार से अभिवृद्धि की जा सकती है। इसे स्पष्ट कर सकेंगे।

5.3 अस्थि व पेशीय तंत्र पर यौगिक प्रभाव

1. हमारे शरीर की कार्यक्षमता, कुशलता, सफलता, संधियों की मुड़ने की क्षमता, लचीले पन पर निर्भर है। संधि की अधिकतम क्षमता उसके अच्छे स्वस्थ्य का सूचक है। संधि का स्वास्थ्य उसकी मांसपेशियाँ, अस्थि बंधन, उनको मिलने वाला व्यायाम (प्रेरणा, उत्तेजन), उनका नियमित रूप से होने वाला उपयोग, पोषण इस पर अवलंबित है। योगाभ्यास से लचीलापन बढ़ता है और संधि का स्वास्थ्य अच्छी तरह से संभाला जाता है यह शास्त्रीय संशोधन में सिद्ध हो चुका है।

2. मेरुदण्ड या रीढ़ हमारे जीवन व्यवहार का प्रमुख आधार है। वह जितना स्वस्थ, सशक्त, बलवान, लचीला रहेगा उतना हमारा दैनंदिन व्यवहार सुखद और बिना कोई परेशानी से होगा। करीब–करीब सारे योगासन मेरुदण्ड से सम्बन्धित हैं। इसीलिए नियमित रूप से धीरे से, सहजता हके साथ योगासान करने वाले को कमर या पीठ की कोई परेशानी नहीं होती। जब मेरुदण्ड स्वस्थ होगा तो मानसिकता, आचरण, कार्यक्षमता यह सब उचित स्तर पर रहेगा। योग शास्त्र में इस पर विशेष ध्यान दिया गया है।

3. आसनों के कारण पेशियों का स्वाभाविक संकोच (टोन) उचित स्तर पर संतुलित रखा जाता है। इसीलिए भावनाओं का संतुलन भी अपने आप हो जाता है। शिथिलीकरण में पेशी संकोच कम किया जाता है। ऐसी स्थिति में किसी प्रकार का मानसिक तनाव नहीं रह सकता।

4. व्यक्तित्व विकास में आसनों का योगदान इसीलिए है कि वे हमें सही शारीरिक स्थिति (करेक्ट पोश्चर) और उचित या परिपूर्ण श्वास प्रश्वास और योग्य स्वाभाविक संकोच प्रदान करते हैं।

अभ्यास प्रश्न –

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1———— हमारे जीवन व्यवहार का प्रमुख आधार है।

2 ———— के कारण पेशीयों का स्वाभाविक संकोच उचित स्तर पर संतुलित रखा जाता है।

3 हमारे शरीर की कार्यक्षमता ——— मुड़ने की क्षमता तथा लचिलेपन निर्भर है।

4 ——————से लचीलापन बढ़ता है।

1 ———— में पेशीय संकुचन कम किया जाता है।

5.4 सारांश –

प्रिय पाठकों उपर्युक्त विवचन से आप समझ गये होगें कि योगाभ्यास किस प्रकार से अस्थि एवं पैशीय तंत्र की कार्य प्रणाली को प्रभावित करते है। आसन मुख्य रूप से पैशीय संस्थान को प्रभावित करते है। निमित आसन से मांसपेशियाँ सबल पुष्ट एवं सुद्रड़ बनती

है। इनमें रक्त का सुचारू रूप से संचार होने लगता है। वस्तुतः योगाभ्यासों के माध्यम से हम ब्रह्माण्ड से अधिकाधिक प्राण उर्जा को ग्रहण कर पाने में समर्थ होते है। हमारी ग्रहणशीलता बढ़ जाने के कारण धीरे – धीरे प्राणवान्त उर्जावान्त बनने लगते है अतः शरीर में न केवल अस्थि पैशीय तंत्र वरन् सभी संस्थानो का सुचारू ढ़ंग से कार्य करना स्वाभाविक ही है।

5.5 शब्दावली

सुचारू –अच्छी तरह से

पैशीय तंत्र–मांसपैशीय सस्ंथान

शिथिलीकरण– प्रयासपूर्वक कोइ भी शारीरिक क्रिया न करना तथा शुद्ध शरीर को विश्राम देना

श्वांस– प्रणवायु को अंदर खिंचना

प्रश्वास–दूषित प्राणवायु को बाहर निकालना।

संधि– जहां पर दो अस्थियां आपस में मिलती है।

5.6– अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1 मेरूदण्ड 2 आसनो 3 संधियों 4 योगाभ्यास 5 शिथिलीकरण

5.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।

2.गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

5.8 – निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 अस्थि एंव पैशिय तंत्र पर योगाभ्यासो के प्रभावों की विवेचना किजियें।

इकाई – 6 –ह्रदय की संरचना एवं कार्य

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 ह्रदय का संक्षिप्त परिचय

6.4 ह्रदय की संरचना

6.5 ह्रदय के कार्य

6.6 सारांश

6.7 शब्दावली

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना –

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पहले की इकाईयों में आपने अस्थि एवं पेशीयों की संरचना एवं कार्यविधि का अध्ययन किया है। प्रस्तुत ईकाई में हम अपने अध्ययन के इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुये शरीर के एक और महत्वपूर्ण संस्थान रक्त परिसंचरण संस्थान के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। यहाँ पर हमारे अध्ययन का प्रधान विषय है– हृदय की संरचना एवं कार्यों का अध्ययन करना। हृदय रक्त परिसंरचना संस्थान का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। शारीरिक वृष्टि से जब किसी व्यक्ति का हृदय कार्य करना बन्द कर देता है तो उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। अतः हम सभी के लिये इस बात को जानना अत आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है कि शरीर का यह अव्यन्त कोमल एवं मनुष्य अंग किस प्रकार से बना है तथा किस पद्धति से कार्य करता है, जिससे कि हम उचित ढंग से इसकी देखभाल करके अपने आपको स्वास्थ रख सकें।तो आइये, चर्चा करते है– हृदय की संरचना एवं कार्यों के बारे में।

6.2 – उद्देश्य –

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप हृदय की संरचना को स्पष्ट कर सकेंगे ।

- हृदय की कार्यप्रणाली का वर्णन कर सकेंगे।
- रक्त परिसंरचना तंत्र में हृदय की भुमिका को स्पष्ट कर सकेंग।

6.3 हृदय का संक्षिप्त परिचय

हृदय रक्त परिसंचरण तन्त्र का प्रमुख एवं विशिष्ट अंग है। यह एक पेशीय, खोखला, संकुचनशील, शंक्वाकार अंग है जो वक्ष में स्टर्नम के पीछे दोनों फेफड़ों के मध्य ऊतकों के एक भाग जिसे मीडिएस्टिनम कहते हैं, तथा कुछ बायीं ओर को हटा हुआ तिरछेपन के साथ स्थित रहता है। कुछ बायीं ओर को हटा हुआ होने के कारण इसका एक तिहाई भाग शरीर की मध्य रेखा से दायीं ओर को तथा दो तिहाई भाग बायीं ओर को स्थित रहता है। हृदय का ऊपरी भाग कुछ चौड़ा होता है जो आधार (Base) कहलाता है तथा कुछ दायीं ओर झुका रहता है। निचला नुकीला भाग शिखर (apex) कहलाता हे जो कुछ बायीं ओर को तथा थोड़ा आगे झुका और डायाफ्राम पर स्थित रहता है। शिखर की सीमा पाँचवीं एवं छठी बायीं पसिलयों के मध्य (इन्टरकॉस्टल) तक पहुँच जाती है। इसी स्थान पर हाथ रखने से हृदय स्पन्द (धड़कन) का आभास मिलता है।

इसका आकार स्वयं (व्यक्ति विशेष) की मुट्ठी के आकार का होता है। औसतन इसकी लम्बाई लगभग 12 सेमी. तथा चौड़ाई 9 सेमी. (5x3.5 इंच) होती है। इसका वजन वयस्क पुरुषों में लगभग 250 से 390 ग्राम तथा वयस्क स्त्रियों में 200 से 275 ग्राम के बीच होता है।

6.4 हृदय की संरचना (Structure of the Heart)-

हृदय भित्ति का निर्माण निम्न तीन परतों से होता है–

(i) पेरिकार्डियम (Pericardium)

(ii) मायोकार्डियम (Myocardium)

(iii) एण्डोकार्डियम (Endocardium)

(i) पेरिकार्डियम (Pericardium)- पेरिकार्डियम या हृदयावरण दो कोषों (sacs) का बना होता है। बाह्य कोष तन्तमय ऊतकों (Fibrous tissue) का बना होता है तथा अन्दर से सीरमी कला (Serous membrane) की दोहरी परत की निरन्तरता में होता है। बाह्य तन्तुमय कोष

Copyright © The McGraw-Hill Companies, Inc. Permission required for reproduction or display.

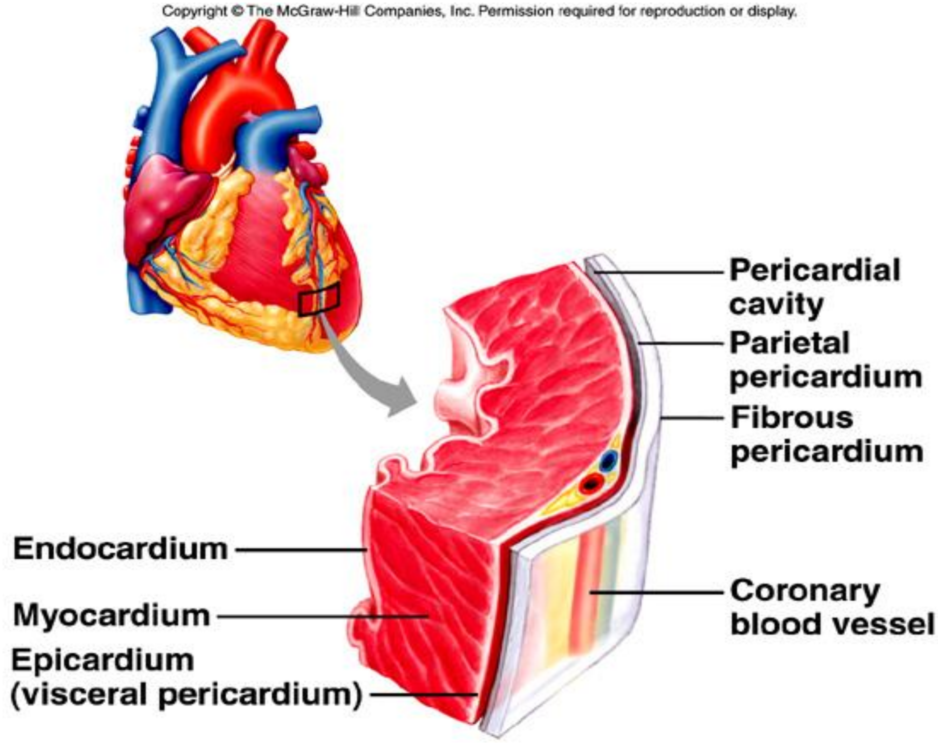

ऊपर हृदय की बड़ी रक्तवाहिकाओं के टुनिका एड्वेन्टिशिया (Tunica adventitia) के साथ निरन्तरता में रहता है तथा नीचे डायाफ्राम से सटा रहता है। तन्तुमय एवं अप्रत्यास्थ (Inelastic) प्रकृति होने के कारण यह हृदय के अत्यधिक फैलाव (Overdistension) को रोकता है। सीरमी कला की बाह्य परत, **पार्श्विक पेरिकार्डियम** (Parietal pericardium)

तन्तुमय कोष को आस्तारित करती है। आन्तरिक परत, **अन्तरांगी पेरिकार्डियम** (Visceral pericardium) अथवा **एपिकार्डियम (Epicardium)-** जो पार्श्विक पेरिकार्डियम के निरन्तरता में होती है, हृदय पेशी से चिपटी होती है।

सीरमी कला में चपटी उपकला कोशिकाओं का समावेश रहता है। ये अन्तरांगी एवं पार्श्विक परतों के बीच के स्थान में एक सीरमी द्रव (Serous fluid) स्त्रावित करती हैं जो हृदय स्पन्द के दौरान दोनों परतों के बीच घर्षण (रगड़) को रोकता है जिससे हृदय स्वच्छन्दतापूर्वक गतिशील बना रहता है।

(ii) मायोकार्डियम (Myocardium)- मायोकार्डियम विशेष प्रकार की हृदयपेशी (Cardiac muscle) की बनी होती है। जो केवल हृदय में पायी जाती है। इसमें विशेष प्रकार के तन्तु (Fibers) रहते हैं जो अनैच्छिक वर्ग के होते हैं। मायोकार्डियम की मोटाई भिन्न–भिन्न होती है, यह शिखर (Apex) पर सबसे मोटी होती है और आधार (Base) की ओर पतली होती चली जाती है। बायें निलय (Left Ventricle) में अधिक मोटी रहती है क्योंकि इसे अधिक कार्य करना पड़ता है, दाहिने निलय में पतली रहती है, क्योंकि इसे सिर्फ फेफड़ों तक रक्त प्रवाहित करना होता है तथा अलिन्दो (Atriums) में बहुत पतली रहती है।

(iii) एण्डोकार्डियम (Endocardium)- एण्डोकार्डियम हृदय में सबसे भीतर की एक पतली, चिकनी झिलमिलाती कोमल कला (Membrane) है। यह चपटी उपकला कोशिकाओं से निर्मित है जो एण्डोथीलियम के साथ निरन्तर रहकर रक्त वाहिकाओं के आन्तरिक स्तर में विलीन हो जाती है। एण्डोकार्डियम हृदय के चारों कक्षों एवं कपाटों (Valves) को आच्छादित किए रहती है।

हृदय के कक्ष (Chambers of the Heart)

हृदय आधार से शिखर तक एक पेशीय पट (Septum) द्वारा दाएँ एवं बाएँ दो भागों में विभाजित रहता है जिसका आपस में कोई सम्बन्ध नहीं होता है। हृदय का सम्पूर्ण दायाँ भाग अशुद्ध रक्त के लेन–देन से सम्बन्धित है और बायाँ भाग शुद्ध रक्त के लेन–देन से सम्बन्धित है और बायाँ भाग शुद्ध रक्त के लेन–देन से सम्बन्ध रखता है। दायाँ एवं बायाँ दोनों भाग पुनः एक अनुप्रस्थ पट (Transverse septum) द्वारा विभाजित होकर, एक ऊपर और एक नीचे का कक्ष बनाते हैं। इस प्रकार हृदय का सम्पूर्ण भीतरी भाग चार कक्षों (4 Chambers) में विभक्त रहता है। दायीं ओर का ऊपर वाला कक्ष **दायाँ अलिन्द** या **एट्रियम** (Right atrium) तथा निचला कक्ष **दायाँ निलय** या **वेन्ट्रिक्ल** (Right Ventricle) कहलाता हैं इसी प्रकार बायीं ओर का ऊपर का कक्ष **बायाँ अलिन्द** (Left atrium) तथा नीचे का कक्ष **बायाँ निलय** (Left Ventricle) कहलाता है।

बायीं ओर के दोनों कक्ष अर्थात् अलिन्द या एट्रियम एवं निलय या वेन्ट्रिक्ल एक छिद्र के द्वारा आपस में सम्बन्धित रहते हैं। इसी प्रकार दायीं ओर के दोनों कक्ष एट्रियम एवं वेन्ट्रिकल भी एक छिद्र के द्वारा आपस में सम्बन्धित रहते हैं। इन छिद्रों पर कपाट

(वाल्व) लगे रहते हैं। दोनों कक्षों के मध्य वाल्व इस प्रकार लगे रहते हैं कि रक्त केवल एट्रियम में से वेन्ट्रिक्ल में ही जा सकता है, परन्तु लौट नहीं सकता है। हृदय के सभी कक्षों में सम्बन्धित रक्त को ले आने वाली तथा ले जाने वाली नलिकाओ के मुख या छिद्र (Opening) भी उनसे सम्बन्धित कक्ष में ही खुलते हैं।

दायाँ अलिन्द या एट्रियम (Right atrium)- इस कक्ष में समस्त शरीर का भ्रमण करके लौटा हुआ अशुद्ध रक्त अर्थात् ऑक्सीजन रहित रक्त आकर संग्रहित होता है। शरीर के विभिन्न भागों से आने वाली शिराएँ मिलकर दो बृहत् शिराएँ, ऊर्ध्व महा–शिरा (Superior vena cava) तथा निम्न महा–शिरा (inferior vena cava) बनाती हैं जो दायें अलिन्द में दो अलग–अलग छिद्रों द्वारा खुलती हैं। ऊर्ध्व महाशिरा शरीर के ऊपरी भाग से तथा निम्न महाशिरा शरीर के निचले भाग से अशुद्ध रक्त (Venous blood) को लाकर दायें अलिन्द में पहुँचाती हैं।

चूँकि इस कक्ष का कार्य केवल रक्त को ग्रहण करना है तथा रक्त को पम्प करने का कार्य बहुत कम करना पड़ता है, अतः इसमें संकुचन अपेक्षाकृत कम होता है जिससे इसकी भित्तियाँ अपेक्षाकृत पतली और कमजोर होती हैं। रक्त ग्रहण करने के बाद इसे रक्त को इतना ही धक्का देना पड़ता है कि वह बीच के छिद्र को खोलकर निलय में चला जाए। रक्त का दाब अधिक रहने के कारण रक्त वेन्ट्रिक्ल की ओर ही बढ़ता है तथा महाशिराओं में वापस नहीं जाता है।

दायाँ निलय या वेन्ट्रिक्ल (right Ventricle)- दाएँ एट्रियम से अशुद्ध रक्त दाएँ एट्रियोवेन्ट्रिकुलर छिद्र से होकर दाएँ वेन्ट्रिकल में आकर गिरता है। दाएँ एट्रियम के संकुचन से रक्त को धक्का मिलता है, जिससे त्रिकपर्दी कपाट (Tricuspid valve) के पट स्वयं खुल जाते हैं और अशुद्ध रक्त वेन्ट्रक्ल में पहुँच जाता है। दूसरे ही क्षण दाएँ वेन्ट्रिक्ल में संकुचन होता है, फलस्वरूप रक्त को बाहर निकल जाने के लिए धक्का मिलता है। दाएँ वेन्ट्रिक्ल में एक छिद्र होता है, जिसे फुफ्फुसीय छिद्र (Pulmonary orifice) कहा जाता है। इससे होकर फुफ्फुसीय धमनी (Pulmonary artery) निकलती है जो आगे चलकर हृदय से बाहर निकलकर दो भागों में से होकर फुफ्फुसों में शुद्ध होने के लिए चला जाता है। वेन्ट्रिक्ल से रक्त जैसे ही फुफ्फुसीय धमनी में चला जाता है, तो इनके बीच स्थित पल्मोनरी वाल्व बन्द हो जाता है और अशुद्ध रक्त वापस लौटकर वेन्ट्रिक्ल में नहीं आ सकता है।

(यहाँ यह बताना आवश्यक है कि फुफ्फुसीय धमनी के अतिरिक्त सभी धमनियों में शुद्ध रक्त बहता है।)

दाएँ एट्रियम की अपेक्षा वेन्ट्रिक्ल की भित्तियाँ अधिक मोटी एवं मजबूत होती हैं क्योंकि इसे दायें एट्रियम की अपेक्षा अधिक संकुचित होकर रक्त को पम्प करना पड़ता है, जिससे वह शुद्ध होन के लिए फुफ्फुसों तक पहुँच सके।

बायाँ अलिन्दा या एट्रियम (Left atrium)- हृदय के बाएँ भाग का ऊपरी कक्ष, बायाँ अलिन्द (एट्रियम) कहलाता है। यह दाएँ एट्रियम से कुछ छोटा होता है। इसकी भित्तियाँ दाएँ एट्रियम की अपेक्षा कुछ मोटी होती हैं। इसमें चार छिद्रों द्वारा चार फुफ्फुसीय शिराएँ आकर खुलती हैं। इन चारों फुफुसीय शिराओं में से आती हैं और ऑक्सीजन युक्त शुद्ध रक्त को बाएँ एट्रियम तक लाती हैं।

बायाँ निलय या वेन्ट्रिक्ल (Left Ventricle)- हृदय के बाएँ भाग का निचला कक्ष बायाँ निलय (वेन्ट्रिक्ल) सबसे बड़ा कक्ष है और इसकी भित्तियाँ भी, अन्य सभी कक्षों का भित्तियों की अपेक्षा मोटी होती हैं। इसमें एक छिद्र होता है, जिसे महाधमनी छिद्र (Aortic orifice) कहते हैं। इससे होकर महाधमनी (Aorta) निकलती है जो शरीर के विभिन्न भागों तक रक्त पहुँचती है।

बाएँ पट्रियम के संकुचन के फलस्वरूप शुद्ध रक्त बाएँ वेन्ट्रिक्ल में भर जाता है। दूसरे ही क्षण बाएँ वेन्ट्रिक्ल के संकुचन की बारी आती है। इससे पहले ही बाएँ एट्रियम एवं वेन्ट्रिक्ल के मध्य का द्विकपर्दी कपाट (माइट्रल वाल्व) बन्द हो चुका रहता है। बाएँ

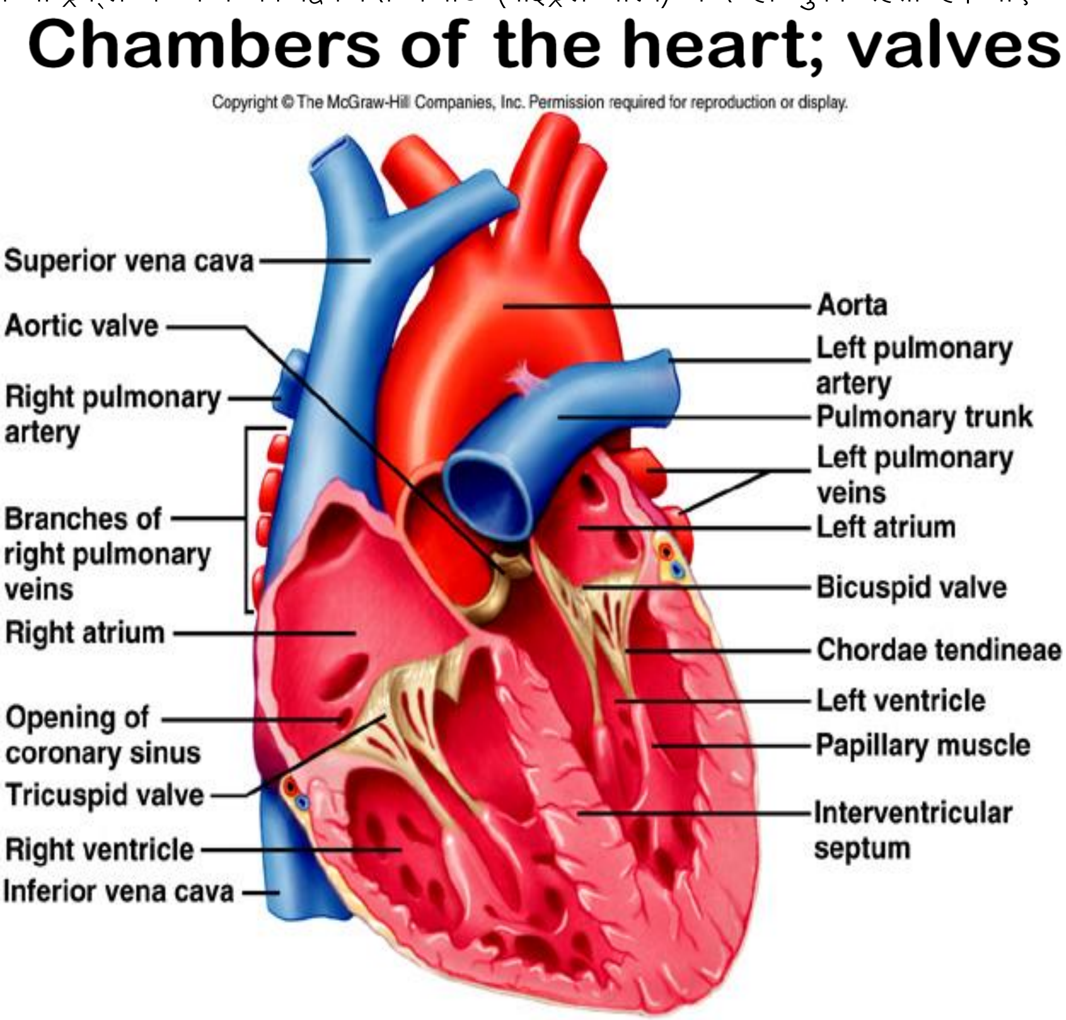

वेन्ट्रिक्ल के संकुचित होने पर शुद्ध रक्त महाधमनी (Aorta) के द्वार को धक्के से खोल देता है और उसी में से वह निकलता है। महाधमनी के मुख पर भी कपाट करते हैं जो रक्त प्रवाह को वापस लौटने से रोकते हैं। इस प्रकार बायाँ वेन्ट्रिक्ल शरीर में ऊतकों को पोषक तत्व एवं ऑक्सीजन प्रदान करने हेतु रक्त वितरित करने के लिए, वहाँ तक रक्त पहुँचाने का सबसे अधक महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित करता है।

हृदय के कपाट वाल्व्स (Valves of the Heart)- हृदय में रक्त प्रवाह गलत दिशा में होने से रोकने के लिए कपाट या वाल्व्स (Valves) होते हैं। हृदय में निम्न चार मुख्य वाल्व हैं–

1. त्रिकपर्दी कपाट या ट्राइकस्पिड वाल्व (Tricuspid Valve)
2. द्विकपर्दी कपाट या माइट्रल वाल्व (Mitral Valve)
3. फुफ्फुसीय कपाट या पल्मोनरी वाल्व (Pulmonary)
4. महाधमनी कपाट या एऑरटिक वाल्व (Aortic Valve)

त्रिकपटी कपाट या ट्राइकस्पिड वाल्व (Tricuspid Valve) - दाएँ एट्रियम तथा बाएँ वेन्ट्रिक्ल के बीच स्थित छिद्र, जिसे दायाँ एट्रियोवेन्ट्रिकुलर छिद्र (right artioventricular orfice) कहते हैं, के कपाट को **ट्राइकस्पिड वाल्व** कहते हैं। इसमें तीन त्रिकोणाकार पल्ले या कस्प्स (Cusps) होते हैं, प्रत्येक में तन्तुमय ऊतक से मजबूती प्रदान की गई है एण्डोकार्डियम की दोहरी तह होती है। कस्प्स की निचली सतह से कई पतली कण्डरीय रज्जुएँ संलग्न रहती हैं जिन्हें कण्डरा रज्जु या कॉर्डी टेन्डिनी (Chordae tendinae) कहा जाता है। ये वेन्ट्रिक्ल की अंकुरक पेशियों (Papillary muscles) से निकलती हैं। इन रज्जुओं के कारण ही वाल्व्स के कस्प्स सदैव यथास्थन रहते हैं। वाल्व्स के ये कस्प्स एट्रियोवेन्ट्रिकुलर छिद्र (द्वार) के ऊपर अपना पूरा नियन्त्रण रखते हैं। एट्रियम के संकुचन से रक्त पल्लों (कस्प्स) को धक्का दे देता है और वेन्ट्रिक्ल में आ जाता है। इसके तुरन्त बाद ही पल्ले (कस्प्स) बन्द हो जाते हैं और इसी समय पैपिलरी पेशियाँ संकुचित होकर कॉर्डी टेन्डिनी पर खिंचवा डालती हैं जिससे कस्प्स एट्रियम में को धकेले जाने से एक रूक जाते हैं तथा रक्त वापस नहीं लौट पाता है।

द्विकपर्दी कपाट या माइट्रल वाल्व (Mitral Valve)- बाएँ एट्रियम तथा दाएँ वेन्ट्रिक्ल के बीच के बाएँ एट्रियोवेन्ट्रिकुलर छिद्र के कपाट को माइट्रल वाल्व या बाइकस्पिड वाल्व कहते हैं। इसमें दो पल्ले (कस्प्स) होते हैं। रचना ट्राइकस्पिड वाल्व की तरह ही होती है। यह बाएँ वेन्ट्रिक्ल के संकुचन के समय रक्त को बाएँ एट्रियम मकें वापस नहीं जाने देता।

फुफ्फुसीय कपाट/पल्मोनरी वाल्व (Pumonary Valve)- दाएँ वेन्ट्रिक्ल एवं फुफ्फुसीय धमनी के बीच के कपाट को फुफ्फुसीय कपाट या पल्मोनरी वाल्व (Pumonary Valve) कहते हैं। इसमें तीन अर्द्धचन्द्राकार पल्ले (कस्प्स) होते हैं इसलिए इसे अर्द्धचन्द्राकार वाल्व (Semilunar Valve) भी कहा जाता है। कस्प्स अपनी मुड़ी हुई किनारों के द्वारा धमनी की भित्ति से संलग्न रहते हैं, जबकि सीधी किनार मुक्त रहती है और इस प्रकार धमनी के

सामने तीन पाकेट्स बन जाते हैं। जैसे ही रक्त बाएँ वेन्ट्रिक्स वाहिका की भित्ति से सटकर चपटे हो जाते हैं, लेकिन जब वेन्ट्रिक्ल शिथिल होता है और रक्त गलत दिशा में अर्थात् धमनी से वेन्ट्रिक्ल में बहने की कोशिश करता है तब ये पाकेट्स रक्त से भरकर फूल जाते हैं और मध्य में मिलकर छिद्र कीपूर्णरूपेण बन्द कर देते हैं।

महाधमनी कपाट या एओर्टिक वाल्व (Aortic Valve)- यह वाल्व बाएँ वेन्ट्रिक्ल एवं महाधनी (Aorta) के बीच स्थित होता है। इसकी रचना और क्रिया पल्मोनरी वाल्व के समान ही होती है।

हृदय की संचालन प्रणाली (Conduction system of the hear)- ऐच्छिक पेशियों के विपरीत हृदीय पेशियों या मायोकार्डियम में यह गुण है कि वेबिना किसी तन्त्रिका–पूर्ति के लय–ताल में संकुचित हो सकती है। संकुचन के वैद्युत आवेग मायोकार्डियम में एक विशेष स्थान, **साइनोएट्रियल नोड** (S.A. Node) जो दाएँ एट्रियम की अगली भित्ति पर **ऊर्ध्वमहाशिरा** (Superior vena cava) के छिद्र के पास स्थित एक तन्तुपेशीय रचना है, उसे उठते हैं जो पहले एट्रिया या अलिन्दों में और फिर वेन्ट्रिक्लस या निलयों में फैल जाते हैं, जिससे पहले एट्रिया में और फिर वेन्ट्रिक्लस में संकुचन होता है। एस.ए. नोड से ही हृदय–स्पन्द (धड़कन) शुरू होती है और यही धड़कनो ंकी तालबद्धता (Rhythymicity) को कायम रखता है इसीलिए इसे हृदय का गति–प्रेरक या **पेस मेंकर** (Pace maker) कहा जाता है।

एस.ए. नोड से उठने वाला आवेग **एट्रियो वेन्ट्रिकुलर नोड** (A.V. Node), जो ट्राइकस्पिड वाल्व के समीप एट्रियल सेप्टम की भित्ति में स्थित होता है, में पहुँच जाता है। कुछ क्षण के उपरान्त यह आवेग **बंडल ऑफ हिज** (Bundle of His) में फैलता है। इसकी दो शाखाएँ होती हैं, एक दाएँ और दूसरी बाएँ वेन्ट्रिक्ल को जाती हैं। ये शाखाएँ ओगे चलकर विशेष तन्तुओं में परिवर्तित हो जाती हैं जिन्हें **पर्किन्जी तन्तु फाइबर्स** (Purkinji fibers) कहते हैं, जो आवेग को वेन्ट्रिक्ल्स के सभी भागों में संचारित करते हैं।

हृदय की रक्त आपूर्ति (Blood supply of the heart)-

हृदय शरीर के विभिन्न भागों को रक्त पहुँचाने वाली रक्त वाहिनियाँ (Arteries) तथा

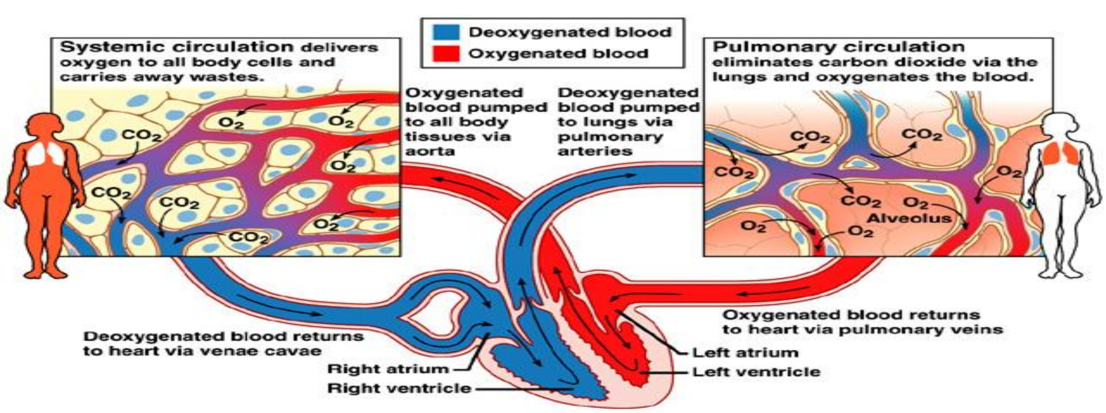

शरीर के विभिन्न भागों से रक्त को हृदय में पहुँचाने वाली रक्त वाहिनियाँ, शिराएँ (Veins) कहलाती हैं। हृदय–पेशी या मायोकार्डियम में रक्त की आपूर्ति दायीं एवं बार्यी **कॉरोनरी धमनियों** द्वारा होती है। ये ओरोही महाधमनी (Axcending aorta) के उद्‌गम स्थल पर स्थित एऑर्टिक वाल्व के दो विपरीत कस्प्स से निकलती है। कॉरोनरी धमनियाँ या इसकी शाखाएँ या इसकी शाखाएँ हृदय में फैली रहती हैं। बायीं कॉरोनरी धमनी का मुख्य भाग केवल लगभग एक इंच लम्बा होता है तथा कुछ ही दूरी पर **सरकमफ्लेक्स** (Circumflex) एवं **एन्टीरियर इन्टरवेन्ट्रिकुलर** (Anterior interventricular) शखाओं में विभाजित हो बायीं ओर फैलती है। हृदय की पोस्टीरियर सतह पर यह दायीं कॉरोनरी धमनी के साथ मिल जाती हे। बायीं कॉरोनरी धमनी के साथ मिल जाती है।

बायीं कॉरोनरी धमनी की एन्टीरियर इन्टरवेन्ट्रिकुलर शाखा हृदय की एन्टीरियर सतह पर स्थित इन्टरवेन्ट्रिकुलर सल्कस में पहुँचकर दोनों वेन्ट्रिकुलर सल्कस में पहुँचकर दोनों वेन्ट्रिक्ल्स को रँ आपूर्ति करती है। दायीं कॉरोनरी धमनी की पोस्टीरियर

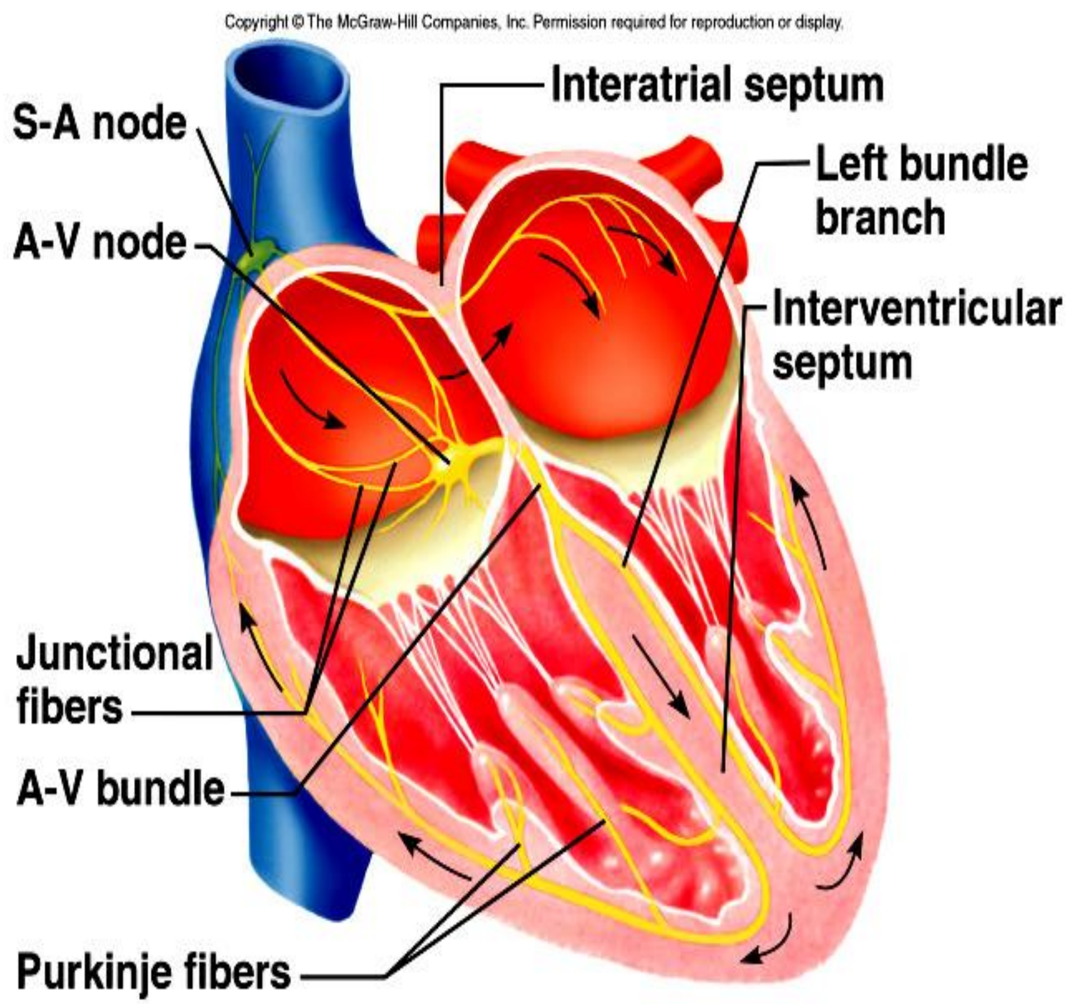

इन्टरवेन्ट्रिकुलर शाखा भी इसी प्रकार हृदय की निचली (इन्फीरियर) सतह पर इन्टरवेन्ट्रिकुलर ग्रूव में पहुँचाती है। दोनों इन्टरवेन्ट्रिकुलर शाखाएँ हृदय के निचले किनारे (Inferior horder) के चारों ओर एक–दूसरे से जुड़ जाती है। कॉरोनरी धमनियों की अतिरिक्त शाखाएँ (Marginal branch of the circumflex) जो हृदय के बायें किनारे (Border) के साथ फैली होती है, बाएँ वेन्ट्रिक्ल की रक्त आपूर्ति करती है तथा दाहिनी कॉरोनरी धमनी की मार्जिनल शाखा (Marginal branch of the right coronary), जो हृदय के निचले किनारे के साथ फैली होती है, दाएँ वेन्ट्रिक्ल को रक्त आपूर्ति करती है।

कॉरोनरी धमनियों की शाखाओं के साथ कॉरोनरी शिराएँ (Veins) भी रहती हैं। बृहद हृदीय शिरा (Great cardiac vein) एन्टीरियर इन्टरवेन्ट्रिकुलर सेप्टम में उतरती है। जैसे ही यह एट्रियोवेन्ट्रिकुलर सल्कस में पहुँचती है यह कॉरोनरी साइनस में परिवर्तित हो जाती है। मध्य हृदीय शिरा (Middle cardiac vein) पोस्टीरियर इन्टरवेन्ट्रिकुलर सल्कस में पहुँचती है तथा कॉरोनरी साइनस के मध्य भाग में रक्त को उड़ेल देती है। कॉरोनरी साइनस से रक्त दाएँ एट्रियम की ऑब्लिक शिराओं, कार्डियक शिरा एवं बाएँ एट्रियम की एन्टीरियर सतह से एन्टीरियर कार्डियक शिराएँ रक्त को सीधे दाएँ एट्रियम में को ले जाती है। कॉरोनरी कैपिलरीज से निकलने वाली वेनी कॉर्डिस मिनिमी (Venae cordis minimae) सीधे हृदय के सभी कक्षों में पहुँचाती है, परन्तु अधिकांश दाएँ एट्रियम में ही प्रवेश करती हैं। हृदय की रक्त आपूर्ति में गड़बड़ी में गड़बड़ी पैदा हो जाने से हृदय की क्रियाशीलता में परिवर्तन हो जाता है। जब कभी कॉरोनरी धमनी की किसी शाखा में पूर्ण अवरोध उत्पन्न हो जाता है तो हृदय के उस भाग का जिसकी वह रक्त आपूर्ति करती है, गल जाता है अर्थात् मायोकार्डियल इनफार्क्शन (Myocardial infarction) हो जाता है।

हृदय की तन्त्रिका आपूर्ति (Innervation of the heart)-

हृदय की तन्त्रिका आपूर्ति स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र (Autonomic nervous system) के

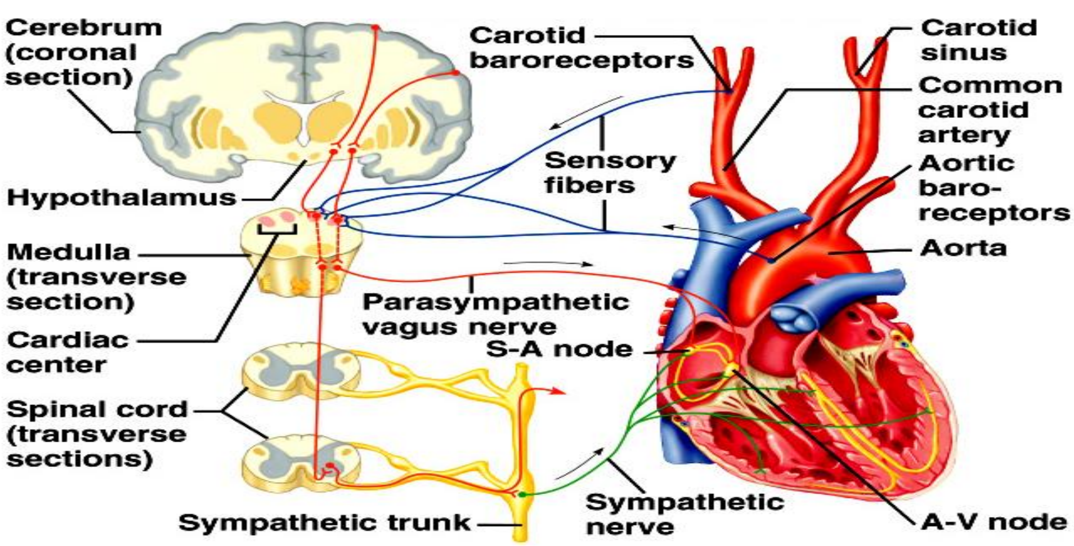

अनुकम्पी (Sympathetic) एवं परानुकम्पी (Parasympathetic) दोनों तन्त्रों के प्रेरक तन्त्रिका तन्तुओं द्वारा होती है। परानुकम्पी तन्तु वेगस तन्त्रिका (Vagus nerve) की शाखाएँ हैं। इनमें से दो शाखाएँ ग्रीवा क्षेत्र में निकलती हैं। तीसरी शाखा वक्षीय गुहा (Thoracic cavity) से होकर गुजरती है अर्थात् ये हृदय की गति को कम करते हैं। अनुकम्पी डिविजन के तन्तु हृदय में सुपीरियर, मिडिल एवं इन्फीरियर कार्डियक तन्त्रिकाओं के रूप में पहुँचते हैं। ये तन्तु हृदय की गति को बढ़ाते हैं। इस प्रकार अनुकम्पी एवं परानुकम्पी तन्त्रिकाएँ एक–दूसरे के विपरीत प्रभावी होती हैं जिससे हृदय गति सामान्य बनी रहती है। समस्त अन्तरांगी प्रेरक तन्तु आपस में मिकर कार्डियक प्लेक्सस बनाते हैं। आवेग कार्डियक प्लेक्सस से गुजरकर हृदय की संचालन प्रणाली (पर्किन्जी तन्तुओं) में पहुँचते हैं।

6.3 हृदय का कार्य

हृदय एक पम्प है जिसका कार्य रक्त को अन्दर खींचना और धमनियों के द्वारा शरीर के अन्य भागों में पहुँचाना है। हृदय शरीर के सभ भागों से ऊर्ध्व महाशिरा (Superior vena cava) एवं निम्न महाशिरा (Inferior vena cava) के करता है। जब दायाँ एट्रियम पूरी तरह भर जाता है तो वह संकुचित होता है और रक्त दाएँ एट्रियोवेन्ट्रिकुलर या ट्राइकस्पिड वाल्व से होकर दाएँ वेन्ट्रिक्ल में उतर जाता है तथा वाल्व बन्द हो जाता है। अगले क्षण जब दायाँ वेन्ट्रिक्ल संकुचित होता है तो रक्त फुफ्फुसीय (पल्मोनरी) वाल्व से होकर फुफ्फुसीय धमनी के मुख्य भाग (Trunk) में पहुँच जाता है, जो आगे चलकर दो शाखाओं में विभाजित होकर दाहिनी एवं बायीं फुफ्फुसीय धमनियों में बैट जाती है। ये धमनियाँ फुफ्फुसों तक अशुद्ध रक्त को शुद्ध होने के लिए ले जाती हैं। फुफ्फुसों से शुद्ध रक्त चार फुफ्फुसीय शिराओं के द्वारा हृदय के बाएँ एट्रियम में आ जाता है। बायाँ एट्रियम जैसे ही संकुचित होता है, रक्त धक्के के साथ बाएक्त एट्रियोवेन्ट्रिकुलर या बाइकस्पिड वाल्व से होकर बाएँ वेन्ट्रिक्ल में पहुँच जाता है। बाएँ वेन्ट्रिक्ल के रक्त से भरते ही बाइकस्पिड वाल्व बन्द हो जाता है। अगले ही क्षण बायाँ वेन्ट्रिक्ल संकुचित होता है जिसके फलस्वरूप शुद्ध रक्त महाधमनी (Aorta), जो कि शरीर की प्रमुख धमनी है, में पहुँचता है जो अपनी शखाओं–उपशाखाओं, धमनिकाओं (Arterioles) एवं कोशिकाओं (Capillaries) के माध्यम से शुद्ध रक्त को समस्त शरीर में विपरित करता है। **हृदय स्पंदन (Heart beat)-** स्वस्थ मनुष्य में हृदय एक मिनट में 72 से 75 बार स्पंदन करता है। इसे ही **दिल की धड़कन** कहते हैं। स्पंदन की यह गति कम या अधिक हो सकती है। प्रत्येक स्पंदन में, पहले दोनों अलिन्दों (एट्रिया) का संकुचन और फिर निलयों (वेन्ट्रिक्ल्स) का संकुचन होता है। पुनः दोनों का एक साथ शिथिलन होता है। यही क्रम जीवनपर्यन्त पूर्ण लय के साथ चलता रहता है।

अलिन्दों के संकुचन से रक्त निलयों में आ जाता है और एट्रियोवेन्ट्रिकुलर छिद्र बन्द हो जाता है। इसी क्षण रक्त दाब बढ़ जाता हे और उनमें संकुचन आरम्भ हो जाता है। धमनियों के मुख छिद्र पर लगे अर्द्धचन्द्राकर कपाट (Semilunar Valve) खुल जाते हैं और रक्त उनमें पम्प करके धकेल दिया जाता है। दोनों निलयों में संकुचन एक साथ होता है। निलय जैसे ही संकुचित होते हैं हृदय का शिखाग्र (Apex) वक्ष की दीवार से टकराता है।

इसी ध्वनि को हम स्पंदन (Beat) के रूप में सुनते हैं। स्टर्नम के मध्य से लगभग 3 1/4इंच बायीं ओर को, पाँचवें अन्तरापर्शुकी अवकाश (5th intercostals space) के ऊपर हाथ रखकर, इसका अनुभव किया जा सकता है। इसके तुरन्त बाद अलिन्दों का आकुंचन शुरू हो जाता है।

बच्चों में स्पंदन की गति अधिक तेजी से होती है। हृदय स्पंदन की गति व्यक्ति विशेष की आयु, शारीरिक मुद्रा, मानसिक और शारीरिक अवस्था आदि पर निर्भर रहती है। आयु के बढ़ने के साथ हृदय स्पंदन की गति घटती जाती है। व्यायाम, संवेगात्मक उद्वेग एवं कुछ रोगों की अवस्था में भी स्पंदन गति बढ़ जाती है।

हृद्पेशियों के संकुचन की प्रक्रिया, जो क्रम से पहले अलिन्दों में और फिर निलयों में होती है, प्रकुंचन या सिस्टोल (Systole) कहलाती है और यह क्रिया 0.4 सेकण्ड का समय लेती है। इसके बाद हृदय के विश्राम का समय होता है और इस समय में किसी प्रकार का भी आकुंचन नहीं होता, अर्थात् अलिन्द एवं निलय दोनों शिथिल हो जाते हैं। यह विश्राम का समय अनुशिथिलन या डायस्टोल (Diastole) कहलाता है और यह अवस्था 0.4 सेकण्ड तक रहती है। इन दोनों से ही मिलकर एक हृदय चक्र (Cardiac cycle) पूरा होता है, जिसमें 0.8 सेकण्ड का समय लगता है।

हृदय चक्र (Cardiac cycle)- मानव शरीर में रक्त की मात्रा 4–6 लीटर होती है, किन्तु हृदय एक मिनट से थोड़े से अधिक समय में रक्त को सम्पूर्ण शरीर में पम्प करके एक चक्र पूरा करता है। औसतन, वयस्क व्यक्ति का हृदय प्रतिदिन सम्पूर्ण शरीर में लगभग 7500 लीटर रक्त को पम्प करता है।

एक स्पंदन (Beat) की अवधि में जो परिवर्तन हृदय में आते हैं, उनकी पुनरावृति दूसरे स्पंदन में भी होती है। एक स्पंदन से दूसरे स्पंदन तक हृदय के इन परिवर्तनों की चक्रवद्ध पुनरावृत्ति (Cyclical repetition) ही हृदय–चक्र (Cardiac cycle) कहलाती है। प्रत्येक चक्र में अलिन्दों (एट्रिया) एवं निलयों (वेन्ट्रिक्ल्स) का संकुचन होता है जिसे प्रकुंचन (Systole) कहते हैं, तथा अलिन्दों एवं निलयों का शिथिलन होता है, जिसे अनुशिथिलन (Diastole) कहते हैं। हृदय में प्रकुंचन एवं अनुशिथिलन तालबद्ध क्रम से होते रहते हैं। एक हृदय–चक्र की अविधि 0.8 सेकण्ड होती है, अर्थात् चक्र की प्रत्येक घटना की, प्रत्येक 0.8 सेकण्ड पर पुनरावृत्ति होती है।

हृदय चक्र में निम्न चार घटनाएँ होती हैं–

1. अलिन्द प्रंकुचन
2. निलय प्रकुंचन
3. अलिन्द अनुशिथिलन
4. निलय अनुशिथिलन

अलिन्द प्रकुचन (Atrial systole), जिसकी समयावधि 0.1 सेकेण्ड होती है, के दौरान दोनों अलिन्दों (एट्रिया) में साथ–साथ संकुचन होता है जिससे रक्त ट्राइकस्पिड एवं माइट्रल वाल्व के माध्यम से दोनों निलयों (वेन्ट्रिक्ल्स) में पहुँच जाता है।

निलय प्रकुंचन (Ventricular systole), जिसकी समयावधि 0.3 सेकण्ड होती है, के दौरान दोनों निलयों में साथ–साथ संकुचन होता है जिससे रक्त दाएँ निलय में स्थित पल्मोनरी वाल्व को खोलता हुआ पल्मोनरी धमनी (Pulmonary artery) में को चला जाता है जिससे होककर यह शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में चला जाता है जिससे होकर यह शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में चला जाता है तथा बाएँ निलय में स्थित महाधमनी वाल्व (Arortic Valve) को खोलता हुआ महाधमनी (Aorta) में को चला जाता है और इसकी शाखाओं एवं उपशाखाओं से होकर रक्त फेफड़ों को छोड़कर शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँच जाता है।

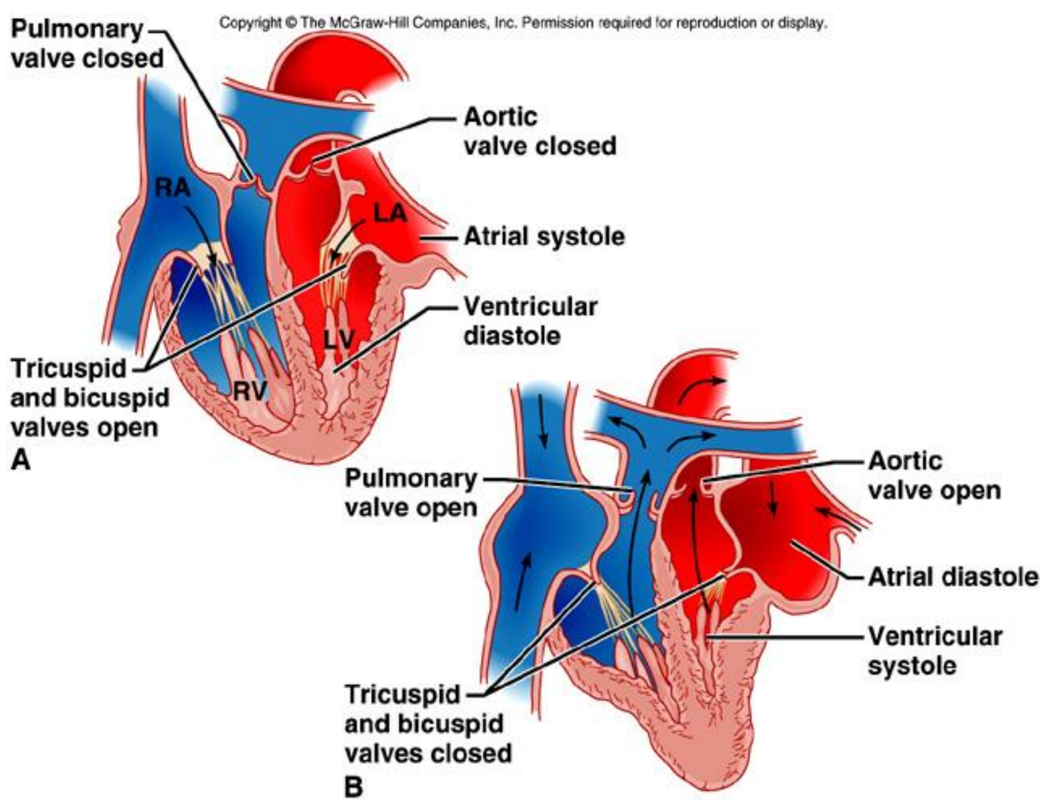

Coordination of chamber contraction, relaxation

अलिन्द अनुशिथिलन (Atrial diastole), जिसकी समयावधि 0.7 सेकण्ड होती है, के दौरान अलिन्द शिथिल (Relaxed) रहते हैं तथा निलय (वेन्ट्रिक्ल्स) संकुचित बने रहते हैं और अलिन्द (एट्रिया) शरीर से हृदय को आने वाली वृहत् शिराओं (Vana cava) से पुनः भरने लगते हैं। दायाँ अलिन्द निम्न एवं ऊर्व महाशिराओं से और बायाँ चारों फुफ्फुसीय शिराओं में रक्त प्राप्त करता है। **निलय अनुशिथिलन (Ventricular diastole),** जिसकी समयावधि 0.5 सेकण्ड होती है, के दौरान निलय शिथिल रहते हैं और निलय अलिन्दों से आये रक्त से भर जाते हैं। हृदय चक्र का शुभारम्भ अलिन्द प्रकुंचन (Atrial systole) से होता है। यह घटना 0.1 सेकण्ड में समाप्त हो जाती है और अगले ही क्षण अलिन्द अनुशिथिलन (Atrial Diastole) आरम्भ हो जाता है, जो 0.7 सेकण्ड तक चलता है। अलिन्द–अनुशिथिलन के बाद पुनः अलिन्द–चक्र (Atrial cycle) चलता रहता है, जिसकी कुल अवधि 0.8 सेकण्ड है। अलिन्द–प्रकुंचन के बाद निलय–प्रकुंचन (Ventricular systole) आरम्भ होता है, जिसकी अवधि 0.3 सेकण्ड होती है। इसके तुरन्त बाद निलय अनुशिथिलन (Ventricular diastole) आरम्भ हो जाता है, जिनकी अवधि 0.5 सेकण्ड होती है। इसकी समाप्ति पर पुनः निलय–प्रकुंचन की आवृत्ति होती है और इस प्रकार निलय चक्र (Ventricular cycle) चलता रहता ळै। इसकी भी अवधि कुल 0.8 सेकण्ड होती है। निलयों का अनुशिथिलन 0.5 सेकण्ड की समयावधि में से 0.4 सेकण्ड की अवधि अलिन्द अनुशिथिलन की समसामायिक होती है। इस प्रकार हृदय चक्र की सम्पूर्ण अविध 0.8 सेकण्ड में से 0.4 सेकण्ड की अवधि ऐसी होती है जिसमें दोनों अलिन्द एवं दोनों निलय अनुशिथिलन की अवस्था में एक साथ रहते हैं, अर्थात् हृदय 0.4 सेकण्ड तक विश्राम करता है। इस अवस्था को सामान्य विश्राम का काल (General pause) भी कहा जाता है। शेष 0.4 सेकण्ड कार्य करता है। इस प्रकार हृदय जीवन–पर्यन्त अपने कार्यकाल के केवल आधे समय में ही काम करता है और शेष आधा समय विश्राम में व्यतीत करता है।

हृदय ध्वनियाँ (Heart Sounds)- हृदय के कार्य करने पर लब–डप (Lubb-Dup) शब्दों के उच्चारण के समान ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। इन्हें हृदय के समीप सीधे वक्ष पर कान लगाकर या स्टैथेस्कोप द्वारा सुना जा सकता है। पहली ध्वनि ट्राइकस्पिड वाल्व तथा बाइकस्पिड वाल्व के बन्द होने के कारण उत्पन्न होती है। दूसरी ध्वनि एओर्टिक वाल्व तथा पल्मोनरी वाल्व के बन्द हो जाने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है।

पहली ध्वनि की उत्पत्ति निलयों के प्रकुंचन के आरम्भ होने पर निलयों में संकुचन होने पर होती है। इसीलिए इसे 'प्रकुंचनी ध्वनि' (Systolic sound) कहा जाता है। ध्वनि कुछ लम्बी, धीमी और अधिक अवधि (.12 सेकण्ड तक) रहने वाली होती है। यह 'लब' (Lubb) की ध्वनि होती है जो 'ल.....ब' के समान प्रलम्बिल होती है।

दूसरी ध्वनि निलयों के अनुशिथिलन के दौरान होते हैं, अतः इसे 'अनुशिथिलनीय ध्वनि' (Diastolic sound) कहा जाता है। यह 'डप' (Dup) की ध्वनि होती है। यह तीव्र, छोटी तथा कम अवधि (0.01 सेकण्ड तक) रहने वाली हृदय ध्वनि होती है।

पहली और दूसरी हृदय ध्वनियाँ निरन्तर उत्पन्न होती रहती हैं जिन्हें स्टैथेस्कोप द्वारा सुनने पर 'लब–डप', 'लब–डप' की ध्वनियाँ निरन्तर सुनाई देती रहती हैं। इन ध्वनियों को सुनकर ही चिकित्सक 'हृदय के रोग' का पता लगाते हैं।

What is the cardiovascular system?

The heart is a double pump

heart→arteries →arterioles

↑ ↓

veins←venules ←capillaries

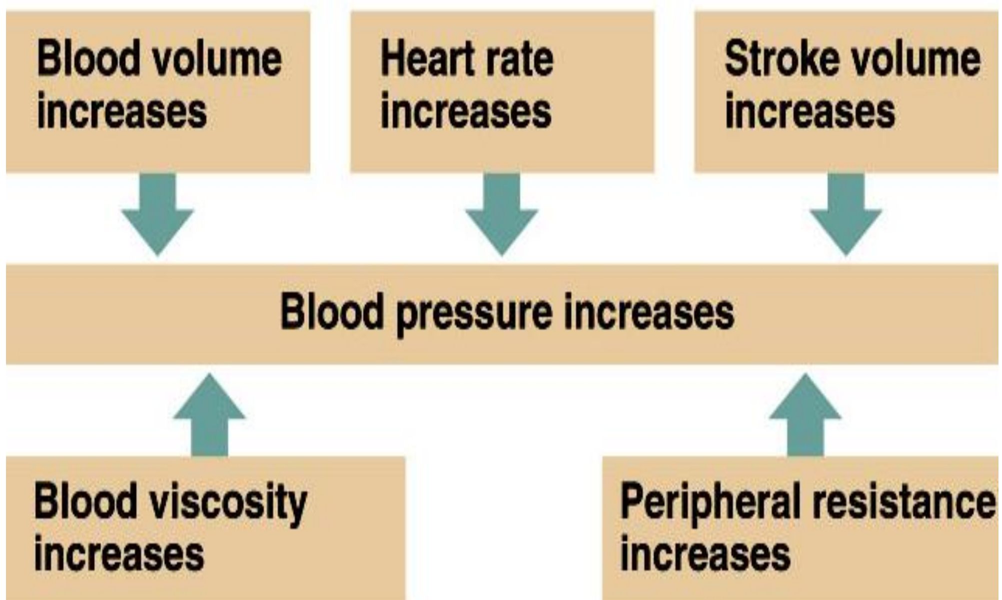

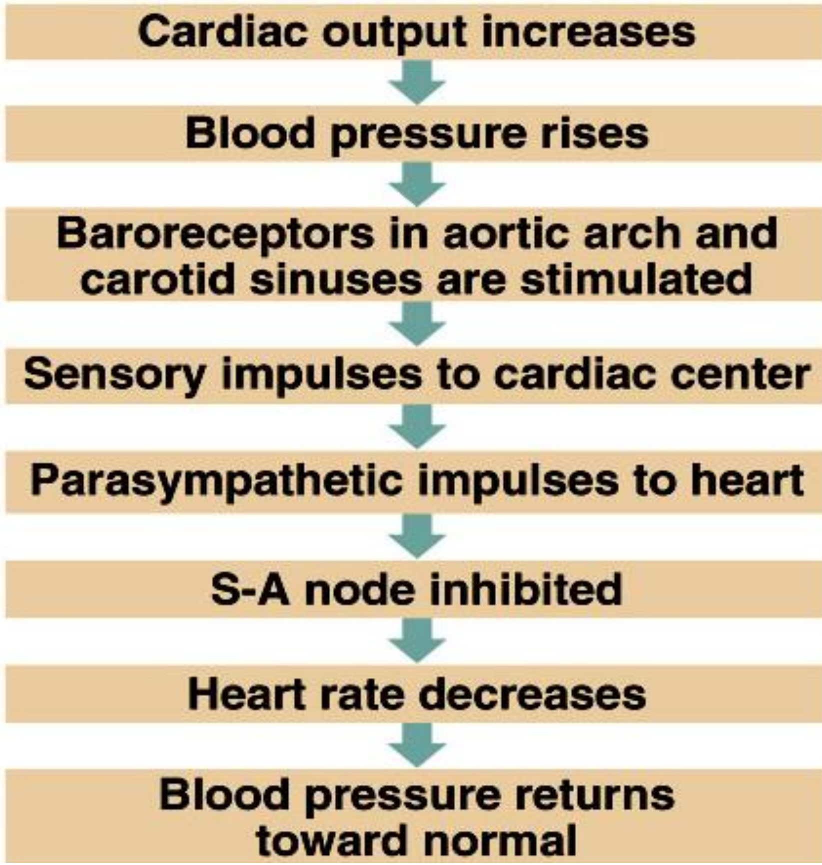

अभ्यास प्रश्न–

पाठकों, नीचे कुछ कथन दिये गये है। जो कथन सत्य हैं अनके सामने कोष्ठक में सही का तथा जो कथन अतसत्य है, अनके सामने क्रोस का निशान लगायें–

(i) ह्रदय का आकार स्वयं (व्यक्ति विशेष) की मुट्ठी के आकार का होता है। ()

(ii) ह्रदय भिति का निर्माण चार परतों से होता है। ()

(iii) वंयस्क स्त्रियों में ह्रदय का भार लगभग 250 से 390 ग्राम होता है। ()

(iv) एण्डोकार्डियम ह्रदय की सबसे बाहरी परत है। ()

(v) दाँये आलिन्द में ऑक्सीजन रहित रक्त संग्रहित होता है। ()

6.6 – सारांश

प्रिय पाठकों, उपयुक्त वर्णन से आप ह्रदय की संरचना एवं कार्यों से भलीभाँति परिचित हो चुके है। ह्रदय एक पेशीय, खोखली तथा संकुचनशील संरचना है, जो मुट्ठी के आकार के समान होती है। इसका एक तिहाई भाग दायीं ओर तथा दो तिहाई भाग बायीं ओर रहता

है। दाँये तथा बाँयें आलिन्द एवं निलय के भेद से ह्रदय के कुल चार कक्ष होते है। ह्रदय का प्रमुख कार्य रक्त को अन्दर खींचकर शुद्ध रक्त को धमनियों के माध्यम से शरीर के प्रत्येक अंग तक पहुँचाना है। रक्त के माध्यम से ही ऑक्सीजन एवं पोषक पदार्थ कोशिकाओं तक पहुँचते है तथा शरीर के सभी अंग ठीक प्रकार से अपना कार्य करने में समर्थ हो पाते है। यदि ह्रदय अपना कार्य करना बन्द कर दे तो रक्त की आपूर्ति के अभाव में शरीर के अन्य अंग भी अपना–अपना कार्य करना बन्द कर देते है, परिणामस्वरूप व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।
अतः पाठकों, आप समझ गये होंगे की रक्त परिसंचरण संस्थान में ह्रदय की कितनी महत्वपूर्ण भूमिका है।

6.7 – शब्दावली–

भित्ति – दीवार
बाह्य– बाहरी
ऊर्ध्व– ऊपरी ऊपर की ओर
अशुद्ध रक्त– ऑक्सीजन रहित रक्त
शुद्ध – ऑक्सीजन युक्त रक्त
शिरा – अशुद्ध रक्त का पदन करने वाली रक्त नलिकायें।
धमनी – शुद्ध रक्त का पदन करने वाली रक्त नलिकायें।

6.8 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(i) सत्य (ii) असत्य (iii) असत्य (iv) असत्य (v) सत्य

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2.गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
3.शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न – ह्रदय का संक्षिप्त परिचय देते हुये इसकी संरचना का विस्तार से वर्णन किजिए।

प्रश्न – ह्रदय के कार्यों का विस्तृत विवेचन कीजिए।

इकाई – 7 शिरा व धमनी की संरचना व कार्य

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 धमनियों की संरचना एवं कार्य

7.4 केशिकाओं का परिचय एवं उनसे शिरा निर्माण की प्रक्रिया

7.5 शिराओं का कार्य

7.6 सारांश

7.7 शब्दावली

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना –

प्रिय पाठकों, इससे पूर्व की ईकाई में आप ह्रदय की संरचना एवं कार्यो का अध्ययन भली भाँति कर चुके हैं, जो रक्त परिसंचरण संस्थान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग हैं, जिसके माध्यम से सम्पूर्ण शरीर में रक्त की आपूर्ति होती है किन्तु क्या आपने कभी सोचा है कि ह्रदय किस प्रकार से यह रक्तापूर्ति करता है? शरीर के विभिन्न भागों तक रक्त पहुँचाने का कार्य कौन करता है? किस प्रकार से शुद्ध रक्त अंगों तक पहुँच जाता है और शुद्ध रक्त इन अंगों से वापस आकर ह्रदय के दाँये आलिन्द में एकत्रित हो जाता है? प्रिय विद्यार्थियों, आपकी इन्हीं जिज्ञासाओं के समाधान के लिये प्रस्तुत ईकाई में हम कार्यों के बारे में अध्ययन करेंगे जिससे आप जान जायेंगे कि रक्त की आपूर्ति में इन रक्तनलिकाओं (शिरा एवं धमनी) की वचा यूमिका होती है।

7.2 उद्देश्य

जिज्ञासु विद्यार्थियों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

- धमनी की संरचना एवं कार्यो को स्पष्ट कर सकेंगे।
- कोशिकाओं से किस प्रकार शिराओं का निर्माण होता है, हमसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- शिराओं के कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।
- रक्त परिसंचरण में धमनी एवं शिरा की उपयोगिता को स्पष्ट कर सकेंगे।

7.3 धमनियों की संरचना एवं कार्य

धमनियाँ मोटी दीवार (Wall) वाली वाहिनियाँ हैं। वयस्क व्यक्तियों में फुफ्फुसीय धमनियों (Pumonary arteries) के अतिरिक्त समस्त धमनियाँ शुद्ध (ऑक्सीकृत) रक्त ले जाती हैं। दायीं एवं बायीं फुफ्फुसीय धमनियाँ दाएँ निलय (वेन्ट्रिक्ल) से अशुद्ध (डिऑक्सीजिनेटेड) रक्त को फेफड़ों में ले जाती हैं। सभी धमनियों की भित्तियाँ ऊतक की निम्न तीन स्तरों (Coats) से निर्मित होती हैं–

1. **वाह्य कंचुक या ट्यूनिका एड्वेन्टिशिया (Tunica Adventitia)-** यह धमनी का सबसे बाहरी आवरण बनाती है जो धमनी कर रक्षा भी करता है। इस स्तर का निर्माण मुख्यतया कॉलेजन तन्तुओं एवं इलास्टिक तन्तुओं से होता है।
2. **मध्य कंचुक या ट्यूनिका मीडिया (Tunica media)-** यधमनी का बीच का अस्तर होता है जो बड़ी धमनियों में सबसे मोटी परत होती है। इसका निर्माण मुख्यतया कॉलेजन तन्तुओं, संयोजी ऊतक (Connective tissue), चिकनी पेशी कोशिकाओं एवं इलास्टिक तन्तुओं से होता है।

3. **अन्तः कंचुक या ट्यूनिका इन्टिमा (Tunica intima)-** यह स्तर धमनी में सबसे भीतर की ओर रहता है। वास्तव में यह दो तहों से मिलकर बनता हे। एक भीतर वाली तह एण्डोथीलियल कोशिकाओं या सिम्पल स्क्वेमस एपिथीलियम से निर्मितरहती है और दसूरी तह इलास्टिक ऊतकों की होती है जो ट्यूनिका मीडिया एवं सबसे भीतर वाली, एण्डोथीलियल कोशिकाओं की त हके बीच में रहती है। यह अस्तर रक्त को बिना जमे बहने के लिए चिकनी सतह उपलब्ध कराती है।

धमनी की दीवारें दृढ़ एवं लचीली होती हैं, फलतः दाब पड़ने पर फैल जाती हैं और दाब घटने पर पूर्वाकार हो जाती हैं। इनमें आवश्यकतानुसार अधिक संकुचित हो जाने की क्षमता रहती है। धमनियो के संकुचन एवं शिथिलन के गुण से रक्त आगे बढ़कर सदैव प्रवाहित होता रहता है।

धमनियों की भित्तियों की रचना उनकी मोटाई पर निर्भर करती है। महाधमनी (Aorta) एवं धमनियों (Arteries) की ट्यूनिका मीडिया में इलास्टिक ऊतक अधिक रहता है और छोटी धमनियों या धमनिकाओं (Arteries) में पेशीय ऊतक अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है। जिन रक्त वाहिनियों में पेशीय ऊतक नहीं रहते हैं उनका व्यास सदैव एक–सा रहता है, क्योंकि पेशियों के कारण ही वाहिनियों का व्यास घटता–बढ़ता है।

शरीर के किसी अंग की रक्त–आपूर्ति की मात्रा पर धमनी एवं धमनिकाओं का ही प्रमुख रूप से नियन्त्रण रहता है, जबकि महाधमनी एवं धमनियों का व्यास एवं आकार स्थिर रहता है। धमनियों के रक्तप्रवाह पर तंत्रिका के 'वाहिका–प्रेरक–केन्द्र' (Vasomotor centre) का नियन्त्रण रहता है और उसके 'वाहिका–संकोचक' (Vaso-Constrictor) तथा 'वाहिका–विस्फारक'(Vaso-Dilator) तन्त्रिका–तन्तु धमनी की भित्तियों में आते हैं जिनसे भित्तियाँ सुकड़कर या फैलकर उक्तप्रवाह को क्रमशः कम या ज्यादा करती रहती हैं।

7.4 केशिकाओं का परिचय एवं उनसे शिरा निर्माण की प्रक्रिया

केशिकाएँ (Capillaries) अत्यन्त सूक्ष्म रक्त वाहिनियाँ जिनसे होकर शरीर के विभिन्न भागों के ऊतकों एवं केशिकाओं के पोषण एवं उनकी ऑक्सीजन पूर्ति के लिए शुद्ध रक्त पहुँचता है। केशिकाएँ बाल से भी बारीक होती हैं और शरीर के समस्त तन्तुओं में जाल के समान बिछी रहती हैं। इनकी भित्तियों की रचना मात्र एक कोशिका की परत या एण्डोथीलियमी स्तर से बनी होती हैं। भित्ति की केशिकाएँ आपस में छिद्रयुक्त रचना से जुड़ी रहती हैं जिससे उनके भीतर विद्यमान रक्त एवं ऊतक केशकाओं के बीच पदार्थे का आदान–प्रदान होता है। बहुत से पोषक पदार्थ, ऑक्सीजन तथा रक्त प्लाज्मा का कुछ भाग रक्त से केशिकाओं की भित्तियों से रिसकर ऊतक केशिकाओं में पहुँच जाते हैं तथा कार्बन डाइऑक्साइड एवं अन्य रासायनिक वर्ज्य पदार्थ इनमें प्रवेश पा जाते हैं। शिरिकाएँ आपस में मिलती जाती हैं, उनका आकार बढ़ता जाता है और आगे निरन्तर चलकर शिराओं (Veins) में विलीन हो जाती हैं।

7.5 शिराओं का कार्य

रक्त–परिसंचरण तंत्र में अशुद्ध (ऑक्सीजन रहित) रक्त का संवहन करने वाली वाहिकाओं को शिरा (Vein) कहते हैं। हृदय में या उसकी ओर ले जाने वाली वाहिनियों को शिरा कहा जाता है। यही कारण है कि फेफड़ों से शुद्ध हुए रक्त को लाने वाली चारों वाहिनियों को 'फुफ्फुसीय शिराएँ' (Pulmonary veins) कहते हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त शरीर की शेष समस्त शिराओं में अशुद्ध रक्त ही प्रवाहित होता है। शिराओं का उद्गम–स्थल वहीं पर होता है, जहाँ पर केशिकाओं का अन्त होता है। केशिकाएँ शुद्ध रक्त के पोषक तत्वों एवं ऑक्सीजन को, ऊतकों को दे देने के बाद, उनमें से उत्पन्न रासायनिक वर्ज्य पदार्थ, विशेषकर कार्बन डाइऑक्साइड से भर जाती हैं। यहीं पर ये अशुद्ध रक्त से भरी सूक्ष्म नलिकाएँ शिरा (Vein) में परिवर्तित हो जाती है। इस स्थान पर ये नलियाँ अति सूक्ष्म होती हैं जिन्हें '**शिरिकाएँ**' (Venules) कहते हैं। समस्त शिरिकाएँ आपस में मिलती जाती हैं और मिलकर शिराएँ (Veins) बनाती हैं जो आगे चलकर और अधिक बड़ी शिराएँ बनाती हैं जिन्हें महाशिराएँ (Vena Cavae) कहते हैं। ये महाशिराएँ, ऊर्ध्वमहाशिरा (Superior vena cava) एवं निम्न महाशिरा (Inferior vena cava), क्रमशः शरीर के ऊपरी अंगों एवं निचले अंगों से अशुद्ध रक्त को संग्रहीत करके हृदय के दाएँ अलिन्द (एट्रियम) में पहुँचाती हैं।

शरीर में शिराओं की स्थिति प्रायः त्वचा के समीप ही रहती हैं, जबकि धमनियाँ प्रायः शरीर के भीतरी भागों में ही रहती हैं। शिराओं का रक्त हृदय की ओर जाता है। अतः हृदय की ओर इनके प्रवाह को गतिशील रखने के लिए कुछ शिराओं में कपाट या वाल्व (Valve) होते हैं जो रक्त को केवल हृदय की ओर को ही प्रवाहित होने देते हैं। साधारणतः ऐसे वाल्व भुजाओं में विशेष रूप से निम्न भुजाओं में अधिक होते हैं। शरीर के भीतरी अंगों, वक्ष्वा एवं उदर ही शिराओं में वाल्वों का अभाव रहता है।

शिराओं की भित्तियों की रचना ठीक उसी प्रकार की रहती है जैसी की धमनियों की रहती है। धमनियों के समान ही शिराओं की भित्तियों में भी बाह्य कुंचक (ट्यूनिका एड्वेन्टिशिया), मध्य कुंचक (ट्यूनिका मीडिया) तथा अन्तःकुंचक (ट्यूनिका इन्टिमा) नामक तीन स्तरीय रचना होती है, परन्तु शिराओं के मध्य कुंचक या ट्यूनिका मीडिया में पेशीय एवं इलास्टिक ऊतक की कमी होने के कारण उनकी भित्तियाँ धमनियों की भित्तियों की अपेक्षा पतली (Thin) एवं पिचकने वाली (Collapsible) होती हैं तथा उनकी दृढ़ता और लचीलापन भी कम होता हे, अतः कट या फट जाने पर शिराएँ पिचक जाती हैं, जबकि धमनियाँ खुली रह जाती हैं। कुछ शिराओं में वाल्व (Valve) होते हैं जो रक्त को केवल हृदय की ओर से ही प्रवाहित होने देते हैं। अत्यधिक श्रमक रने वालों की शिराओं के वाल्व कमजोर पड़ जाते हैं जिसके कारण उनकी रक्त को आगे बढ़ाने और वापस भेजने की क्षमता समाप्त हो जाती है। ऐसी शिराएँ 'विस्फारित शिराएँ या वेरीकोज वेन्स' (Varicose veins) कहलाती हैं। इनमें रक्त स्थान–स्थन पर एकत्रित हो जाता है जिससे वे कुल जाती हैं और ऊपर से गाँठों के समान दिखाई देती हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न –

प्रिय पाठकों, नीचे कुछ कथन दिये गये है। जो कथन सत्य हो, उसके सामने कोष्टक में सही का तथा जो असत्य है, उनके सामने क्रोस का निशान लगायें।

(i) वयस्क व्यक्तियों फुफ्कुसीय धमनियों के अलावा सभी धमनियाँ शुद्ध रक्त ले जाती है। ()

(ii) दाँयी फुफ्कुसीय धमनी अशुद्ध रक्त को फेफड़ों में जाती है। ()

(iii) कोशिकायें बाल से भी बारीक सूक्ष्म रक्त बाहिनियाँ होती है। ()

(iv) ह्रदय में या उसकी ओर ले जाने वाली वाहिनियाँ को धमनी कहा जाता है।()

(v) शिराओं की भित्तियों की रचना धमनी के समान नहीं होती है।()

7.6 सारांश –

प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवरण आप भली भाँति जान गये होंगे की धमनी एवं शिराओं क्या हैं तथा रक्त परिसंचरण संस्थान में इनकी क्या भूमिका है। सामान्यता शुद्ध रक्त को ले जाने वाली वाहिनियाँ **''धमनी''** तथा अशुद्ध रक्त का वहन करने वाली रक्तवाहिनियाँ **''शिरायें''** कहलाती है। किन्तु पाठकों, एक विशेष बात जो याद रखने योग्य है, वह यह कि फुफ्कुसी धमनियाँ अशुद्ध फेफड़ो में ले जाती हैं, तथा फुफ्कुसीयरक्त शिरायें शुद्ध रक्त का वहन करती है। इनके अतिरिक्त शरीर की शेष सम्पूर्ण धमननियों में शुद्ध रक्त तथा शिराओं में अशुद्ध रक्त ही प्रषाहित होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि रक्त परिसंचरण संस्थान के महत्वपूर्ण अवयवों के रूप में शिरा एवं धमनी रक्त की आपूर्ति में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभांती है।

7.7 शब्दावली –

ऊतक – कोशिकाओं का समूह

भित्ति – दीवार

रक्तवाहिनी– रक्तनलिका

रक्त–आपूर्ति– रक्त की पूर्ति होना अर्थात् शरीर के विभिन्न अंगों तक रक्त पहुँचना

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(i) सत्य

(ii) सत्य

(iii) सत्य

(iv) असत्य

(v) असत्य

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2.गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
3.शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
4.पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
5.वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1.2.3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली
6.दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा
7.सक्सेना, ओ0पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. धमनी की संरचना एवं कार्यो का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2. कोशिकाओं की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए शिराओं के कार्यो पर प्रकाश डालिए।

इकाई–8 –श्वसन तंत्र –संरचना एवं कार्य

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 श्वसन तंत्र

8.4 श्वसन तंत्र की संरचना तथा कार्य

8.5 सारांश

8.6 शब्दावली

8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.9 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों इससे पहले की ईकाइयों में आपने रक्त परिसंचरण संस्थान के प्रमुख अवयवों जैसे कि ह्रदय, धमनी, शिरा इत्यादि के विषय में अध्ययन किया है। प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय श्वसन की संरचना एवं कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करना है। पाठकों, हम सभी इस तथ्य से भली–भाँति परिचित है कि भोजन के बिना तो हम कुछ दिनों तक अवश्य जीवित रह सकते है, किन्तु यदि हमारी श्वॉस यदि कुछ मिनट के लिये भी बन्द हो जाये तो हमारा जीवित रहना मुश्किल हो जाता है। अतः श्वसन अर्थात् ऑक्सीजन ही हमारे जीवन का आधार है। हमारे शरीर में ऑक्सीजन की पूर्ति श्वस –संस्थान के माध्यम से ही होती है। अतः श्वसन तंत्र हमारे शरीर का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्थान है। तो आइये, जाने कि कौन से है– और किस प्रकार से ये अपने कार्यो का सम्पादन करते है।

8.2 – उद्देश्य –

प्रिय पाठको प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

- श्वसन संस्थान की संरचना को स्पष्ट कर सकेंगे।
- श्वसन संस्थान के प्रमुख अंगों का वर्णन कर सकेंगे।

- श्सन संस्थान के कार्यो का विवेचन कर सकेंगे ।
- श्वसन संस्थान की उपयोगिता का स्पष्ट कर सकेंगे।

8.3 श्वसन–तंत्र (Respiratory System)-

मनुष्य बिना भोजन के कुछ सप्ताह एवं बिना जल के कुछ दिनों तक जीवित रह सकता है, किन्तु यदि श्वास–क्रिया (Breathing) 3 से 6 मिनट के लिए रुक जाय तो मृत्यु हो जाती है। शरीर के ऊतकों, विशेषकर हृदय एवं मस्तिष्क के ऊतकों को ऑक्सीजन की निरन्तर आवश्यकता पड़ती है, जिसकी आपूर्ति होना अनिवार्य है। कुछ ही मिनटों में ऑक्सीजन के अभाव से ऊतक निष्क्रिय हो जाते हैं, हृदय–स्पन्दन बन्द हो जाता है तथा मस्तिष्क की तन्त्रिकाएँ भी कुछ ही देर बाद निष्क्रिय होने लगती हैं। वस्तुतः ऑक्सीजन ही जीवन है।

वायुमण्डल से ऑक्सीजन के अन्तर्ग्रहण करने का कार्य श्वसन–संस्थान करता है। श्वसन–संस्थान के द्वारा शरीर की प्रत्येक कोशिका ऑक्सीजन की संपूर्ति (Supply) प्राप्त करती है आैर कोशिकाओं द्वारा उसका उपयोग हो जाने के पश्चात् त्याज्य पदार्थ के रूप में कार्बन डाइऑक्साइड गैस बाहर निकलती है। वस्तुतः श्वसन–क्रिया (Respiration) कोशिकाओं तथा वातावरणीय वायु के मध्य होने वाला पारस्परिक विनियम अर्थात् आदान–प्रदान ही है।

श्वसन–क्रिया वस्तुतः दो पूर्णतः भिन्न–भिन्न क्रियाओं **प्रश्वसन** (Inspiration) एवं **निःश्वसन** (Expiration) का सम्मिलित रूप है। जिस क्रिया के द्वारा वातावरणीय वायु को अन्दर लिया जात है, उसे **प्रश्वसन** (Inspiration) कहा जाता है और जिस क्रिया से त्याज्य गैसों को बाहर निकाला जाता है, **निःश्वसन** (Expiration) कहा जाता है। 'श्वसन' की एक प्रक्रिया में एक बार साँस भीतर लेना तथा पुनः सॉस बाहर निकालना सम्मिलित है।

श्वसन–संस्थान में ये दोनों प्रक्रियाएँ दो भिन्न–भिन्न स्तरों पर होती रहती हैं। पहली क्रिया कोशिकाओं और वायुकोशों (Alveoli) के मध्य होती है, जिसे **'बाह्य–श्वसन'** (External Respiration) अथवा **'फुफ्फुसीय श्वसन'** (Pulmonary Respiration) कहा जाता है तथा दूसरी क्रिया रक्त केशिकाओं (Capillaries) एवं ऊतकों के मध्य होती है, जिसे **'अन्तःश्वसन'** (Internal Respiration) अथवा **'ऊतक श्वसन'** (Tissue Respiration) कहा जाता है।

इन दोनों प्रक्रियाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन आगे गैसीय विनियम में किया गया है।

8.4 श्वसन तंत्र की संरचना एवं कार्य

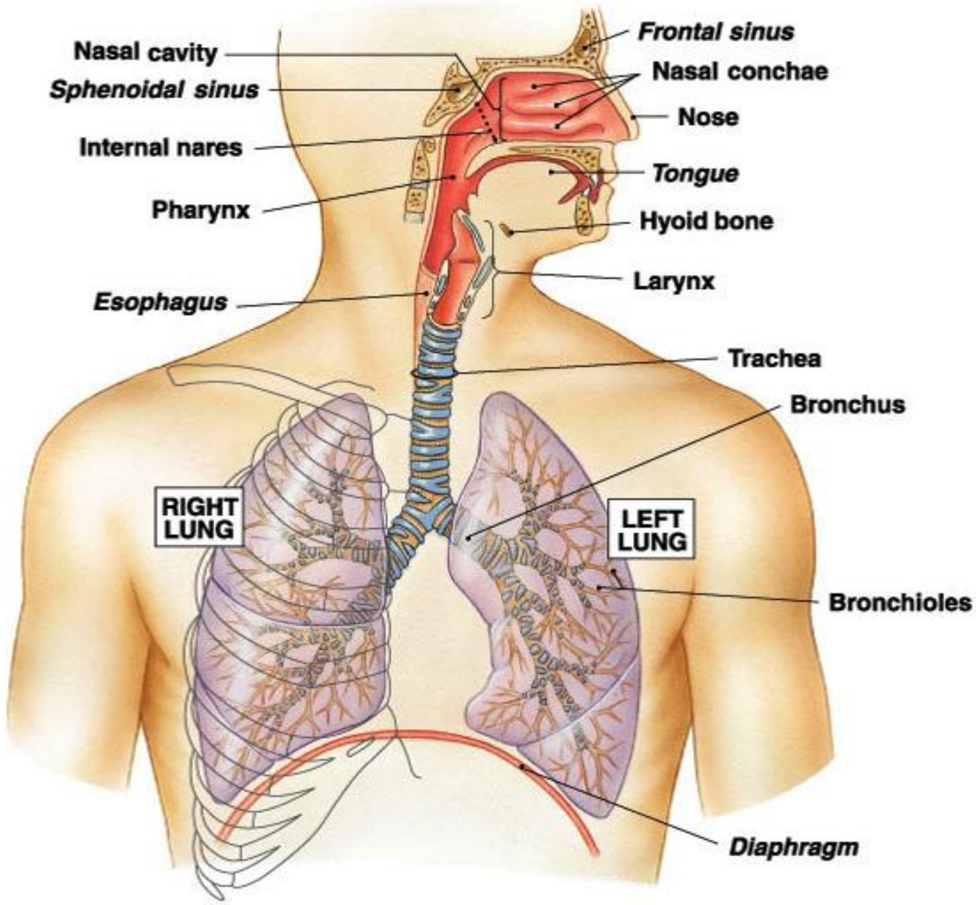

श्वास–पथ (Respiratory Tract)- नासिका से लेकर फुफ्फुसीय वायुकोशों तक निरन्तरता में स्थित श्वसनीय अंग, जिनसे होकर वायु गमन करती है, श्वास पथ का निर्माण करते हैं। ये निम्न क्रमानुसार स्थित होते हैं–

1. नासिका या नाक (Nose)
2. ग्रसनी (Pharynx)
3. स्वरयन्त्र (Larynx)
4. श्वासप्रणाल या ट्रेकिया (Trachea)
5. श्वासनली या श्वसनी (Bronchus), बहुबचन में (Bronchi)
6. श्वसनिकाएँ (Bronchioles)
7. वायुकोश (Alveoli)

8. फुफ्फुस (Lungs)

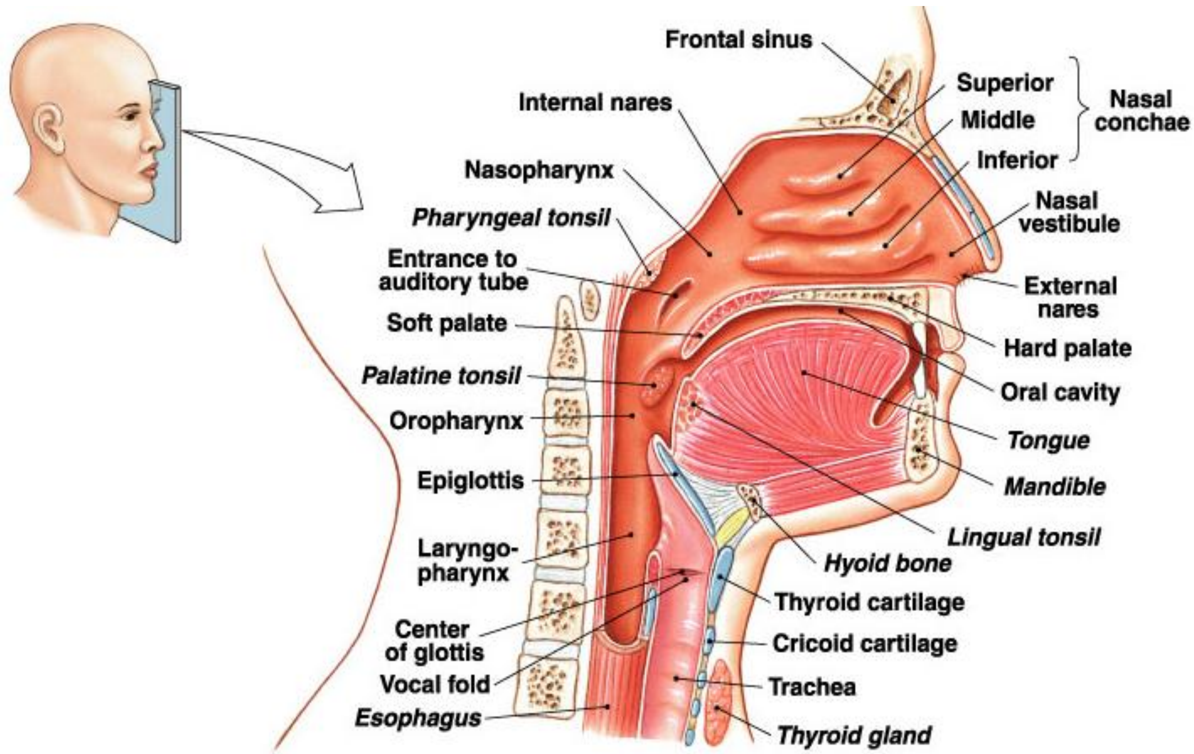

नासिका या नाक (Nose)-

वातावरण की वायु श्वास–पथ में सामान्यतः नासिका के द्वारा ही प्रविष्ट होती है। वाह्य नासिका, नाक का दृश्य भाग है जो नासिका अस्थियों (Nasal bones) और उपास्थि द्वारा बनती है इसमें एक बड़ी गुहा होती है जिसे **नासिका गुहा** (Nasal cavity) कहा जाता है, जो एक उपास्थि–निर्मित विभाजक–पट (Nasal septum) द्वारा दाहिने एवं बायें दो बराबर भागों में विभाजित रहती है। नासिका गुहा के विभाजित हो जाने पर इसके आगे (बाहर की ओर) और पीछे दो–दो (Nostrils) अथवा 'अग्र नासारन्ध्र' (Anterior nares) कहा जाता है, जो बाहर से अन्दर की ओर हवा ले जाते हैं तथा पीछे की तरफ जो छिद्र रहते हैं, उन्हें 'पश्च–नासारन्ध्र' (Posterior nares) कहा जाता है जो ग्रसनी (Pharynx) तक हवा ले जाते हैं।

नासिका–गुहा का ऊपरी भाग (Roof) इथमॉइड अस्थि को छिद्रिल प्लेट (Cribriform plate of ethmoid bone), स्फीनॉइड अस्थि तथा फ्रन्टल अस्थि द्वारा बनता है और इसका तल (Floor) मुख की छत पर स्थित कठोर एवं कोमल तालुओं से बनता है।

कठोर तालु मैक्जिला अस्थि एवं पैलाटाइन (Palatine) अस्थि से मिलकर बना होता है तािा कोमल तालु अनैच्छिक पेशी का बना होता है। इसकी पार्श्वीय भित्तियाँ मैक्जिला अस्थि, पैलाटाइन असिथ की वर्टिकल प्लेट, इथमॉइड अस्थि तथा टर्बिनेट अस्थियों (Turbinate bones) से बनती हैं।

गुहा को विभाजित करने वाले नासिका–पट (Nasal septum) का पिछला भाग इथमॉइड अस्थि की अभिलम्ब पट्टी (Perpendicular plate) एवं वोमर अस्थि के द्वारा बना होता है तथा अगला भाग काचाभा उपास्थि (Hyaline cartilage) का बना होता है। नासिका पट से नासिका–गुहा की मध्यवर्ती भित्ति बनती है।

नासिका गुहा में दोनों ओर पार्श्वीय भित्तियों में उभरी हुई तीन–तीन वक्र अस्थिल प्लेटें पायी जाती हैं, जिन्हें सुपीरियर, मिडिल एवं इन्फीरियर नासा–शुक्तिका (Nasal conchae) कहा जाता है। सुपीरियर एवं मिडिल नेजल कोन्की इथमॉइड अस्थि के उभार (Projections) होते हैं तथा इन्फीरियर नेजल कोन्की स्वयं एक अस्थि होती है, जिसे टर्बिनेट अस्थि भी कहा जाता है। इन तीनों नेजल कोन्की से नासिका गुहा का प्रत्येक अर्द्धभाग ऊर्ध्व (Upper), मध्य (Middle) एवं निम्न (Lower) तीन नासिकापथों में विभाजित हो जाता है। यही वायु मार्ग (Meatuses) होते हैं और नासा–ग्रसनी (Naso pharynx) की ओर बढ़ते हैं। इन तीनों नेजल कोन्की के कारण ही नासा–श्लैष्मिक कला का सतही क्षेत्र बढ़ जाता है और वायु, जो वहाँ से जाती है, अधिक विस्तृत क्षेत्र को पार करते– करते, पहले से अधिक गर्म (Warmed) तथा नम (Moistured) हो जाती है। नासिकापट दोनों ओर मोटी श्लेष्मिक कला (Mucous membrane) से ढँका रहता है। सुपीरियर नेजल कोन्का के ऊपर रहने वाली श्लैष्मिक कला में घ्राणेन्द्रिय के अंग (Organ of the sense of smell) अवस्थित रहते हैं। मिडिल एवं इन्फीरियर नेजल कोन्का के ऊपर वाली श्लैष्मिक कला रक्त कोशिकाओं से परिपूर्ण अति वाहिकामयी (Highly vascular) रहती है।

प्रत्येक नथुने (Nostril) के अग्र नासारन्ध्र (Anterior nasal nares) या बाह्य छिद्र, भीतर नासा–प्रघाण (Vestibule of the nose) में खुलता है। नासा–प्रघाण में स्तरित उपकला बिछी रहती है, जो बाह्य त्वचा में विलीन हो जाती है। अग्र नासारन्ध्र की सतह पर कुछ तैलीय ग्रन्थियाँ (Sebaceous glands) रहती हैं। इसी स्थान पर कुछ दृढ़ बाल भी रहते हैं। नासिका गुहा के शेष भाग की भित्तियाँ रोमक स्तम्भाकार उपकला (Ciliated columnar epithelium) से बनी श्लैष्मिक कला से अस्तरित होती हैं। इसमें श्लेष्मा स्रावी चषक कोशिकाएँ (Goblet or mucous cells) रहती हैं। जिनके स्राव से नासिका की श्लैष्मिक कला नम, चिकनी एवं चिपचिपी–सी रहती है। नथुनों में विद्यमान बाल, धूल के कण एवं सूक्ष्म जीवाणुओं आदि को अन्दर जाने से रोकते हैं और वायु को छानने का काम करत हैं। ये सूक्ष्म धूलकण तथा जीवाणु श्लेष्मा में चिपक जाते हैं। श्लैष्मिक कला के रोम श्लेष्मो को निगलने या बलगम के रूप में बाहर निकलने के लिए ग्रसनी (Pharynx) में पहुँचा देते हैं।

अग्र नासारन्ध्र एवं पश्च नासारन्ध्र के अतिरिक्त नासिका–गुहा में कुछ और छिद्र (Openings) होते हैं। जो निम्नलिखित हैं–

1. परानासा विवर (Paranasal sinuses)- ये चेहरे की अस्थियों एवं कपोलास्थियों में अवस्थित बन्द गुकहाएँ होती हैं, जिनमें वायु भरी होती है। इन्हें वायु विवर (Air sinuses) भी कहा जाता है। ये अस्थियों को हल्का करते हैं और आवाज को गुंजाने के लिए ध्वनि कोष्ठों का कार्य करते हैं। **फ्रन्टल साइनस** नेत्रगुहा के ऊपर फ्रन्टल अस्थि की मध्य रेखा की तरफ स्थित रहते हैं। **इथ्मॉइड साइनसेस** (Ethmoid sinuses) कई होते हैं और नाक से नेत्रगुहा को पृथक् करने वाले इथ्मॉइड अस्थि के भाग में स्थित रहते हैं। **स्फीनॉइड साइनस** स्फीनॉइड अस्थि के मुख्य भाग में स्थित रहते हैं। सभी वायु विवर अथवा पैरानेजल साइनसेस श्लैष्मिक कला से अस्तरित रहते हैं और सूक्ष्म छिद्रों (Foramen) द्वारा नासिका गुहा में खुलते हैं। ये नवजात शिशुओं में नहीं पाए जाते हैं। नासिका गुहा में संक्रमण जैसे जुकाम आदि हो जाता है तो ये भी संक्रमित हो सकते हैं, जिससे इनमें सूजन आ जाती है। इस रोग को साइनुसाइटिस (Sinusitis) कहते हैं।

परानासा विवरों का विस्तारपूर्ण विवरण पूर्व में कर चुके हैं।

2. नासाअश्रुवाहिनी (Nasolacrimal duct) के छिद्र–

नासाअश्रुवाहिनी प्रत्येक आँख से निकलकर नासिका गुहा में खुलती है, जिससे होकर अत्यधिक आँसू नाक में पहुँचते हैं, यही कारण है रोते समय नाक से पानी बहता है।

ग्रसनी (Pharynx)-

नासिका में से प्रवेश की हुई वायु, नाक–मार्ग को पार करके ग्रसनी में पहुँचती है। ग्रसनी का ऊपरी भाग स्फीनॉइड अस्थि के मुख्य भाग द्वारा बनता है तथा नीचे का भाग ईसोफेगस के साथ मिला रहता है। यह कपाल के आधार के समीप तथा नासिका गुहा, मुख–गुहा (Oral cavity) एवं स्वर यन्त्र के पीछे स्थित 12 से 14 सेमी. लम्बी एक पेशीय नली होती है,िजसका ऊपरी सिरा चौड़ा होता है। एनाटॉमी की दृष्टि से ग्रसनी को ऊपर से नीचे की ओर निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया गया है–

1. **नासाग्रसनी या नेजोफैरिन्क्स (Nasopharynx)-** यह ग्रसनी का नासिका गुहा के पीछे कोमल तालु के स्तर से ऊपर वाला भाग होता है जिसमें पश्च नासारन्ध्र (Posterior nsal nares) आकर खुलते हैं तथा इनके ठीक पीछे एवं पार्श्व में श्रवणीय नलियाँ (Auditory tubes) खुलती हैं, जिनमें से होकर वायु दोनों ओर के मध्य कणों (Ear drums) तक पहुँचती है। नासिका गुहा के समान नासाग्रसनी रोमयुक्त श्लैष्मिक कला से अस्तरित रहती है जो अन्दर की खींची हुई वायु को स्वच्छ करने में सहायक होती है। नासाग्रसनी की पश्च भित्ति पर इसकी छत (Roof) से लटके लसीकाभ ऊतक के उभार होत हैं जिन्हें **फैरिन्ज्यिल टॉन्सिल्स** या **एडीनॉइड्स** (Adenoids) कहा जाता है। एडीनॉइड्स के बढ़ने या प्रदाहित (सूजने) हो पर ग्रसनी

में रुकावट पैदा हो जाती है जिससे, विशेषकर बच्चे मुँह से साँस लेने लगते हैं, श्रवणीय नलियों के मुखद्वार बन्द हो सकते हैं तथा बोलने में भी कठिनाई पैदा हो सकती है।

2. **मुख–ग्रसनी या ओरोफैरिन्क्स (Oropharynx)-** यह ग्रसनीया मुख गुहा (Oral cavity) के पीछे वाला भाग होता है, जो कोमल तालु से कण्डच्छद (Epiglotties) तक होता है, जहाँ श्वसनीय एवं पाचन मार्ग (Respiratory and digestive tracts) श्वाय प्रणाल (Trachea) और ग्रासनली (Oesophagus) के रूप में अलग–अलग हो जाते हैं। ओरोफैरिन्क्स एवं लैरिन्जोफैरिन्क्स की पेशीय भित्तियाँ निगलने की क्रिया से कलामय संकीर्ण पथों के एक जोड़े जिसे गलतोरणिका या फोसेस (Fauces) कहा जाता है, से अलग होता है जो निगलने अथवा मुख द्वारा तीव्र एवं छिछले श्वसन (Panting) के दौरान खुलकर चौड़ा हो जाता है। ओरोफैरिन्क्स स्ट्रेटिफाइड स्क्वेमस एपिथीलियम से अस्तरित रहता है।

   ओरोफैरिन्क्स की पार्श्वीय भित्तियाँ कोमल तालु के साथ मिली रहती हैं। इन भित्तियों की तहों (Folds) के बीच? जिन्हें पैलेटो–ग्लॉसल आर्चेज कहते हैं, लसीकाभ ऊतक के उभार रहते हैं। इन्हें **पैलेटाइन टॉन्सिल्स** (Palatine tonsils) कहा जाता है।

3. **स्वरयन्त्रज ग्रसनी या लैरिन्जोफैरिन्क्स (Larynigopharynx)-** यह ग्रसनी का सबसे निचला भाग होता है, जो हॉयड अस्थि (Byoid bone) के स्तर से स्वरयन्त्र के पीछे तक रहता है। ग्रसनी के इसी भाग से श्वसनीय एवं पाचन संस्थान अलग–अलग हो जाते हैं। आगे की ओर से वायु स्वरयन्त्र (Larynx) में जाती है तथा भोजन पीछे की ओर से ईसोफेगस में जाता है।

स्वरयन्त्र या लैरिन्क्स (Larynx)-

स्वरयन्त्र ऊपर को लैरिन्जोफैरिन्क्स एवं नीचे की ओर श्वासनली के साथ मिला रहता है। इसके ऊपर हॉयड अस्थि एवं जिह्वा का निचला भाग रहता है। सामने गर्दन की पेशियाँ तथा पीछे लैरिन्जोफैरिन्क्स एवं सर्वाइकल वर्टिब्री रहते हैं, दोनों पार्श्वों में थाइरॉयड ग्रन्थि के खण्ड रहते हैं। यह श्वासनली का सबसे ऊपरी भाग होता है जो नीचे सातवीं सर्वाइकल वर्टिब्रा के स्तर पर श्वासप्रणाल या ट्रैकिया में खुलता है। स्वरयन्त्र से ही स्वर की उत्पत्ति हाती है। बोलते समय इसमें स्थित स्वर रज्जुओं (Vocal cords) में कम्पन होता है, जिसके फलस्वरूप ध्वनि त्पन्न होती है। सम्पूर्ण स्वरयन्त्र का निर्माण कई असमाकृति उपास्थियों से होता है, जो आपस मे ंलिगामेन्ट्स एवं झिल्लियों द्वारा संलग्न रहती हैं। ये निम्नलिखित होती हैं–

थाइरॉयड उपास्थि (Thyroid cartilage)- यह उपास्थि के दो चपट टुकड़ों या प्लेटों (Laminae) की बनी होती है, जो सामने की ओर मध्य रेखा पर आपस में जुड़कर एक तीक्ष्ण कोण (Acute angle) बनाती है, जो गर्दन में आगे की ओर एक उभरा, स्वरयन्त्रज उभार के

रूप में दिखाई देता है, जिसे **'एडम्स एप्पल'** (Adam"s apple) कहा जाता है। आम भाषा में इसे टेंटुआ काहा जाता है। इसे ऊपरी किनारे पर "V" के आकार का एक गड्ढ़ा या नॉच (Notch) होता है, जिसे थइरॉयड नॉच कहते हैं। थइरॉयड उपास्थि पीछे अपूर्ण रहती है और प्रत्येक प्लेट के पिछले किनारे से दो प्रवर्ध बनते हैं जिन्हें **ऊर्ध्व** एवं **निम्न श्रृंग** (Cornua) कहा जाता है। थाइश्रॉयड उपास्थि स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में बड़ी होती है, जिससे यह पुरुषों में अधिक स्पष्ट रूप से दिखायी देती है। ऊपरी भाग स्ट्रटिफाइड एपिथीलियम और निचला भाग सिलिएटेड एपिथीलियम से आस्तरित रहता है।

क्रिकॉयड उपास्थि (Cricoid cartilage)- यह थइरॉयड उपास्थि के नीचे स्थित रहती है तथा उसकी आकृति मुहर वाली अँगूठी या सिगनेट–रिंग (Signet ring) के समान होती है, जिसका चौड़ा भाग पीछे की ओर रहता है। यह स्वरयन्त्र की पार्श्व की एवं पिछली भित्तियाँ बनाती है तथा सिलिएटेड एपिथीलियम से अस्तरित रहती है।

एरिटीनॉयड उपास्थियाँ (Arytenoid cartilages)- ये क्रिकॉयड उपास्थि के चौड़े भाग के शिपर पर अवस्थित पिरामिड के आकार की डाइलिन उपस्थि से निर्मित दो छोटी–छोटी रचनाएँ हैं, जिनसे स्वरयन्त्र की पिछली भिति बनती है। इनसे स्वर रज्जुओं के लिगामेन्टस एवं पेशियाँ संलग्न रहती हैं।

कण्ठच्छद या एपिग्लॉटिस (Epiglottis)- यह पीत प्रत्यास्थ उपास्थि (Yellow elastic cartilage) से निर्मित पत्ती के आकार की एक प्लेट होती है, जो थाइरॉयड नॉच के ठीक नीचे थइरॉयड उपास्थि की अग्र भित्ति की आन्तरिक सतह से संलग्न रहती है। यह कुछ तिरछी होकर ऊपर जाकर जिह्वा के पीछे और स्वरयन्त्र के ऊपर अवस्थित रहती है। यह स्ट्रैटिफाइड स्क्वेमस एपिथीलियम से अस्तरित होती है। इसका मुख्य कार्य, निगलने की क्रिया केदौरान स्वरयन्त्र के द्वार (Opening), जिसे ग्लॉटिस (Glottis) कहते हैं, को ढँकना है जिससे आहार श्वसनीय पथ में नहीं जा पाता हैं श्वास क्रिया के दौरान ग्रासनली या इसोफेगस की ढँकने का कार्य भी इसी अंग द्वारा होता है।

इन सबके अतिरिक्त, स्वरयन्त्र में क्यूनिफॉर्म उपास्थि (Cuneiform cartilage) एवं कॉर्निकुलेट उपास्थि (Corniculate cartilage) भी रहती हैं। ये दोनों ही अत्यन्त सूक्ष्म रचनाएँ हैं।

स्वर–रज्जु (Vocal cords)- स्वरयन्त्र या लैरिन्क्स के आधार पर सामने की ओर थाइरॉयड उपास्थि के उभार की आन्तरिक भित्ति से आरम्भ होकर पीछे की ओर एरिटीनॉयड उपास्थियों तक फैली हुई दोनों ओर इलास्टिक संयोजी ऊतक के तन्तुओं से डोरी के समान निर्मित रचनाएँ होती हैं, जिन्हें **वास्तविक स्वर रज्जु** (True vocal cords) कहा जाता है। वास्तविक स्वर रज्जु के ऊपर एवं निकट में प्रघाणी तहों (Vestibular folds) का एक जोड़ा स्थित रहता है, जिसे प्रायः **कूट स्वर रज्जु** (False vocal cords) कहा जाता है। इनका स्वर उत्पन्न करने में कोई विशेष योगदान नहीं रहता है।

जब लैरिन्क्स की पेशियाँ संकुचित होती है तो एरिटीनॉयड उपास्थियाँ स्वर रज्जुओं को पास–पास ले आती हैं और इनके बीच की जगह संकरी हो जाती हैऔर घाटी की ददार (Rima glottides) बन जाती है। निःश्वसन (Expiration) के तो स्वर रज्जु कम्पित होत ेहैं और ध्वनि उत्पन्न होती है। जब स्वरयन्त्रज पेशियाँ शिथिल (Relaxed) हो जाती हैं तो उपास्थियाँ बाहर की ओर घूम जाती हैं, सिसे स्वर रज्जु एक–दूसरे से दूर हट जाते हैं और ददार विस्फारित हो जाती है, जिससे कोई ध्वनि उत्पन्न नहीं होती हैं। ध्वनि का तारत्व (स्व्रमान–Pitch) रज्जुओं (Cords) की लमई और उनमे ंतनाव पर निर्भर रहता है, जिससे स्वर रज्जुओं में प्रकम्पन (Vibration) होता है। बढ़ा हुआ तनाव ऊँचा स्वर तथा कम तनाव मन्द स्वर उत्पन्न करता है। विभिन्न शब्दों के रूप में ध्वनि का परिवर्तन होंठ, जीभ एवं कोमल तालु की पेशियों की गगतियों पर निर्भर रहता है।

श्वास प्रणाल या ट्रैकिया (Trachea)-

श्वास प्रणाल या श्वासनली (Windpipe) स्वरयन्त्र (Larynx) के नीचे से आरम्भ होकर फेफड़ों के शीर्ष तक पहुँचनें वाली नली होती है जहाँ पर यह दो शाखाओं, दायीं और बायीं श्वसनियों या ब्रोंकाई (Bronchi) में विभक्त हो जाती है और प्रत्येक फेफड़े में प्रविष्ट कर जाती है। यह लगभग 12 सेमी. लम्बी नली होती है। श्वास प्रणाल के ऊपरी भाग के सामने से थाइरॉइड ग्रन्थि का इस्थमस क्रास होता है और महाधमनी का आर्च निचले भाग के सामने स्थित रहता है। इसके साथ स्टर्नम का मैन्यूब्रियम भी सामने की ओर रहता है। ग्रासनली या ईसोफेगस इसके पीछे स्थित रहती है, जो इसे थॉरसिक बर्टिब्रा से पृथक् रखती है।

श्वास प्रणाल का निर्माण 16 से 20 “C” आकृति की उपास्थियों के अपूर्ण छल्लों (Rings) से होता है जो एक–दूसरे के ऊपर स्थित रहकर आपस में प्रत्यास्थ तन्तु ऊतकों (Fibroelastic connective tissues) एवं लम्बवत् चिकनी पेशी (Longitudinal smooth muscle) द्वारा जुड़े रहते हैं। छल्लों की पिछली परिधियाँ (Dorsal side), जो तन्तु ऊतकों एवं पेशियों से मिलकर बनी रहती हैं, ईसोफेगस से सटी रहती हैं। श्वास प्रणाल के इस भाग को उपास्थियों का सहारा नहीं रहता है।

श्वास प्रणाल की आन्तरिक सतह चषक कोशिकाओं (Goblet cells) से युक्त रोमक स्तम्भाकार उपकला से अस्तरित होती है। चषक कोशिकाएँ एक प्रकार का श्लेष्म स्रावित करती हैं, जिससे समस्त श्वास प्रणाल चिकनी एवं तर रहती है। इसके अस्तर (Lining) की रोमिकाएँ (Cilia) स्वरयन्त्र की ओर अर्थात् ऊपर की ओर ही गति करती हैं। साँस के साथ खिंचकर आई हुई वायु के साथ आए धूल के कण एवं सूक्ष्मजीवाणुओं (नासिका एवं ग्रसनी को पार करके) को श्वास प्रणाल रोक लेती है तथा रोमिकाओ ंकी गति से ऊपर ग्रसनी में पहुँचकर इन्हें निगल अथवा बाहर की ओर निष्कासित (Spit out) कर दिया जाता है।

श्वसनियाँ या ब्रोन्काइ (Bronchi)-

श्वास प्रणाल पाँचवें थॅरेसिक वर्टिब्रा के स्तर पर दायीं एवं बायीं दो शाखाओं में विभाजित हो जाता है, जिन्हें श्वसनियाँ या ब्रोंकाई (Bronchi) कहा जाता है। दोनों दायीं एवं बायीं श्वसन (Bronchi) प्रत्येक दाएँ एवं बाएँ फेफड़ों में प्रवेश कर जाती हैं। फेफड़ों में प्रवेश करते ही ये अनेक छोटी–छोटी शाखाओं में विभाजित हो जाती हैं। दायीं श्वसनी (Bronchus) बायीं की अपेक्षा छोटी और चौड़ी होती है और यह प्रायः श्वास प्रणाल की सीध में होती है। फेफड़े में प्रविष्ट होने के पश्चात् हाइलम पर यह तीन शाखाओं में विभाजित हो जाती है, जिनमें से एक–एक शाखा फेफड़े के ऊर्ध्व, मध्य एवं निम्न खण्डों (Lobes) में जाती है। प्रत्येक शाखा फिर अनेकों छोटी–छोटी उपशाखाओं, जिन्हें श्वसनिकाएँ (Bronchioles) कहते हैं, में विभाजित हो जाती है।

बायीं श्वसनी दायीं श्वसनी को अपेक्षा लम्बी तथा संकरी होती है। बाएँ फेफड़े में प्रविष्ट होने के पश्चात् यह दो शाखाओं में विभाजित होकर फेफड़े के ऊर्ध्व एवं निम्न खण्ड में जाती है और फिर अनकों छोटी–छोटी उपशाखाओं, श्वसनिकाओं में विभाजित हो जाती है।

श्वसनियाँ (Bronchi) की भित्तियों में उपास्थि एवं श्लैष्मिक ग्रन्थियों में उपास्थि एवं श्लैष्मिक ग्रन्थियाँ उपस्थित रहती हैं तथा रोमक स्तम्भाकार उपकला (Ciliated columnar epithelium) से अस्तरित होती हैं।

श्वसनिकाएँ या ब्रोन्कियोल्स (Bronchioles)-

प्रत्येक श्वसनी (Bronchus) फेफड़ें के खण्ड में प्रवेश करने के उपरान्त अनेकों सूक्ष्म शाखाओं–प्रशाखाओं में विभाजित हो जाती है, जिन्हें **श्वसनिकाएँ या ब्रोन्कियोल्स** कहते हैं। इनमें उपास्थि नहीं होती लेकिन ये पेशीय, तन्तुमय एवं लचीले ऊतक की बनी होती हैं। इनमें भी श्वसनी की भाँति रोमक स्तम्भाकार उपकला का अस्तर (Lining) रहता हैं जैसे–जैसे ब्रोन्कियोल्स छोटे होते जाते हैं, वैसे–वैसे पेशीय एवं तन्तुमय ऊतक समाप्त होते जाते हैं और बहुत ही छोटी नलिकाएँ, जिन्हें **टर्मिनल ब्रोन्कियोल्स** (Terminal bronchioles) कहते हैं, ये चपटी–पतली उपकला की कोशिकाओं की एक तह की बनी होती है।

वायुकोषीय नलिकाएँ एवं वायुकोषिकाएँ (Alveolar ducts and Alveoli)-

टर्मिनल ब्रोन्कियोल्स निरन्तर कई शाखाओं में विभाजित होकर अनेकों सूक्ष्म नलिकाएँ, जिन्हें वायुकोषीय नलिकाएँ (Alveolar ducts) कहते हैं, बनती हैं जो अति सूक्ष्म वायुकोषों (Air sadcs) जिन्हें वायुकोषिकाएँ (Alveoli) कहते हैं, में खुलती हैं। वायुकोष फूले–फूले और अंगूर के गुच्छों के समान रहते हैं, जिससे फेफड़ों के आन्तरिक तल का क्षेत्रफल अत्यधिक बढ़ जाता है। जहाँ गैसों का विनिमय आदान–प्रदान होता है। इनकी भित्तियाँ सिम्पल एक्वेमस एपिथीलियम से आस्तरित रहती हैं।

फेफड़े या फुफ्फुस (Lungs)-

फेफड़े या फुफ्फुस श्वसन संस्थान के मुख्य स्पन्जी अंग होते हैं। ये संख्या में दो हैं– एक दायाँ और एक बायाँ, जो अधिकांश वक्षीय–गुहा में समाये रहते हैं। फेफड़े शरीर की मध्य रेखा दोनों पार्श्वे में अवस्थित होते हैं तथा मीडियास्टाइनम द्वारा एक–दूसरे से पृथक् रहते हैं। मीडिया स्टाइनम या मध्यस्थानिका दोनों फेफड़ों के बीच का अवकाश होता है, जिसमें हृदय एवं बड़ी रक्त वाहिकाएँ, श्वास प्रणाल (Trachea), इसोफेगस, थॉरेसिक उक्ट तथा थाइमस ग्रन्थि आदि रहती हैं। फेफड़े गर्दन के निचले भाग से डायाफ्राम तक फैले होते हैं तथा मोटे रूप से शंक्वाकार (Conical) के होते हें, जिनका शिखर (Apex) ऊपर की ओर क्लैविक्ल अस्थि से कुछ ऊपर रहता है तथाआधार (Base) नीचे की ओर, वक्षीय गुहा के तल में डायाफ्राम पर स्थित रहता है। फेफड़ों की उभरी हुई बाह्य या पर्शुकी सतहें (External or costal surfaces) पसलियों एवं पसलियों के बीच की पेशियों (Intercostal muscles) का संस्पर्श करती हैं। इनकी मध्यवर्ती (Medical) सतह कुछ धँसी हुई–सी (अवतल) होती है, जिसमें पाँच से सातवें थॉरेसिक वर्टिब्री के स्तर पर एक त्रिकोणीय क्षेत्र **हाइलम** (Hilum) होता है। हाइलम से होकर श्वसनी (Broncus), पल्मोनरी धमनी, पल्मोनरी शिराएँ, पल्मोनरी तन्त्रिकाएँ एवं लसीकीय वाहिकाएँ फेफड़ों में आ जाती हैं। फेफड़ों के आधार की डायाफ्राम पर स्थित रहने वाली सतह डायाफ्रैग्मेटिक सतह कहलाती है। फेफड़ों का अग्र या एन्टिरियर किनारा हृदय के अग्र भाग को ढँके रहता है तथा पश्च या पोस्टीटियर किनारा वर्टिब्रल कॉलम के सम्पर्क में रहता है।

प्रत्येक फेफड़ा गहरे विदर अथवा ददारों (Deep fissures) के द्वारा खण्डों (Lobes) में विभाजित रहता है। बाएँ फेफड़े में दो खण्ड होते हैं, जो तिरछी विदर (Oblique fissure) द्वारा पृथक् रहते हैं। ऊपरी खण्ड निचले खण्ड के ऊपर एवं सामने की ओर रहता है। निचला खण्ड शंक्वाकार का होता है। दाएँ फेफड़े में तीन खण्ड रहते हैं। इसका निचला खण्ड तिरछी विदर द्वारा तथा बचा हुआ शेष भाग आड़ी विदर (Transverse fissure) द्वारा ऊपरी एवं मध्य खण्ड में विभक्त रहता है। प्रत्येक खण्ड फिर छोटे–छोटे खण्डों में विभाजित रहता है, जिन्हें ब्रॉन्को–पल्मोनरी खण्ड कहा जाता है। ये खण्ड संयोजी ऊतक को भित्ति द्वारा एक–दूसरे से पृथक् रहते हैं और प्रत्येक में धमनी तथा शिरा होती है। प्रत्येक छोटा खण्ड भ्भी कई इकाइयों में विभक्त रहता है, जिन्हें खण्डक या लोब्यूल्स (Lobules) कहते हैं।

इन खण्डकों में श्वसनिकाएँ एवं वायुकोष भरे रहते हैं। असंख्य संख्या में विद्यमान वायुकोष फेफड़ों के श्वसनीय भाग होत हैं। साँस के साथ ग्रहण की गई वायु श्वसनीय पथों से होती हुई वायुकोषों में हपुँचती है, जहाँ इनकी एवं कोश्किाओं की भित्तियों के बीच गैसों का विनिमय (Exchange) होता है।

फुफ्फुसावरण या प्लूरा (Pleura)-

फुफ्फुसावरण (Pleura) एक दोहरी परत व9ाली सीरमी कला (Double serous membrane) है, जो प्रत्येक फुफ्फुस या फेफड़े को घेरे रहती है। इसकी एक परत या तह **'अन्तरांगी फफ्फुसावरण'** (Visceral pleura) फेफड़ों से बिल्कुल सटी (Closely inserted) रहती

है और फेफड़ों के विदरों (Fissures) में घुसकर खण्डों को पृथक् करती है एवं उनसे चिपकी रहती है। फेफड़ों के तल के समीप पहुँचकर यह (विसरल प्लूरा) परावर्तित होकर दूसरी परत '**पार्श्विक फफ्फुसावरण**' (Parietal pleura) बनाती है, जो वक्षीय भित्ति की आन्तरिक सतह का अस्तर बनाती है और डायाफ्राम की ऊपरी सतह को ढँके रहती है। इसके पसलियों को आस्तारित करने वाले भाग को 'कॉस्टल प्लूरा', गर्दन के समीप वाले भाग को 'सर्वाइकल प्लूरा' तथा मीडियास्आइनम को ढँकने वाले भाग को 'मीडियास्टाइनल प्लूरा' कहा जाता है।

प्लूरा या फफ्फुसावरण की दोनों परतों के मध्य नाम–मात्र के निक्त स्थान को '**फुफ्फुसावरणी–गुहा**' (Pleural cavity) कहा जाता है। इसमें थोड़ा–सा पतला सीरमी द्रव (Serous fluid) भरा होता है, जो प्लूरा की सतहों का स्नेहन करता है, अर्थात् उन्हें नम एवं चिकना बनाए रखता है। सामान्यतः प्लूरा की दोनों परतें एक–दसरे के संस्पर्श में रहती है, परन्तु इनके मध्य द्रव की उपस्थिति से श्वसन के दौरान एक–दूसरे के ऊपर बिना किसी घर्षण के फिसलती (Glide) हैं तथा बाहरी आघात से भी सुरक्षित रहती है। प्लूरिसी (Pleurisy) नामक रोग में प्लूरा या फुफ्फुसावरण का शेष (सूजन) हो जाता है, जिसके कारण सीरमी द्रव, जिसे प्लूरल फ्ल्यूड भी कहते हैं, की मात्रा अत्यधिक बढ़ जाते हैं तथा प्लूरल गुहा अधिक बढ़ जाती है।

फेफड़ों की रक्त आपूर्ति (Blood supply of the Lungs)-

फुफ्फुसीय या पल्मोनरी धमनी हृदय के दाएँ निलय (Ventricle) से अशुद्ध अर्थात् ऑक्सीजन रहित रक्त को फेफड़ों में ले जाती है। यहाँ दो शाखाओं में विभाजित होकर, श्वसनी (Bronchus) के साथ–साथ आगे बढ़ती हैं। इसके बाद श्वसनिका (Bronchiole) के साथ बढ़ते–बढ़ते अनेकों सूक्ष्म तथा अतिसूक्ष्म धमनिकाओं में विभाजित होती जाती है और अन्त में इनसे वायुकोषों (Alveoli) की भित्तियों के चारों ओर कोशिकाओं का एक सघन जाल बन जाता है। वायुकोषों एवं कोशिकाओं की भित्तियाँ चपटी उपकला कोशिकाओं की मात्र एक परत की बनी होती हैं, जो अत्यन्त पतली होती हैं। वायुकोष एवं कोशिकाएँ सटी हुई एवं चिपकी रहती हैं। इसलिए ऑक्सीजन और कार्बन डाइऑक्साइड गैसों इनकी भित्तियों के आर–पर होने में सफल हो जाती हैं। गैसों के विनिमय अर्थात् आदान–प्रदान की यह क्रिया विसरण (Diffusion) के भौतिक नियमों पर आधारित होती है। यहाँ पर लाल रक्त कोशिकाओं का हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन ग्रहण कार लेता है एवं रक्त का कार्बन डाइऑक्साइड बाहर छोड़ दिया जाता हैं रक्त के शुद्ध हो जाने के बाद सभी फुफ्फुसीय या पल्मोनरी कोशिकाएँ मिलकर शिरिकाओं (Venules) के रूप में आपस में जुड़ती जाती हैं और कुछ इससे बड़ी शिराएँ बनाती हैं। अनेक शिराएँ मिलकर और अधिक बड़ी शिराएँ बनाती हैं और अन्त में प्रत्येक फेफड़े में दो–दो पल्मोनरी शिराएँ (Pulmonary veins) बन जाती हैं। ये पल्मोनरी शिराएँ फेफड़ों के हाइलम से होकर बाहर निकलती हैं और शुद्ध (ऑक्सीजन युक्त) रक्त को हृदय के बाएँ अलिन्द (Atrium) में पहुँचाती हैं, जहाँ से रक्त बाँ निलय या

वेन्ट्रिक्ल में चला जाता है और यहाँ से यह महाधमनी (Aorta) एवं उसकी शाखाओं के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है।

श्वसन की पेशियाँ (Muscles of Respiration)-

प्रश्वसन (Inspiration) के दौरान वक्ष का फैलाव ऐच्छिक एवं अनैच्छिक पेशियों की मिली–जुली कियाशीलता के फलस्वरूप होता है। सामान्य शान्त श्वसन–क्रिया में अन्तरापर्शुकी पेशियाँ (Intercostal muscles) तथा मध्यच्छद्र पेशी (Diaphragm) मुख्य श्वसनीय पेशियाँ होती हैं। कठिन अथवा गहरी श्वसा–क्रिया के दौरान गर्दन, कन्धे एवं उदर की पेशियाँ भी भाग लेती हैं।

अन्तरापशुकी पेशियाँ (Intercostal muscles) - 11जोड़ी इन्टरकॉस्टल पेशियाँ होती हैं, जो 12 जोड़ी पसलियों के बीच के स्थ्यानों को धेरे रहती हैं। ये दो परतों में, बाह्य एवं आन्तरिक इन्टरकॉस्टल पेशियों के रूप में व्यवस्थित होती हैं।

मध्यच्छद पेशी (Diaphragm) - यह वक्षीय एवं उदरीय गुहाओं को पृथक् करने वाली गुम्बद की आकृति की एक पेशीकलामय (Musculomembranous) भित्ति होती है जिसकी उत्तलता (Convexity) वक्ष की ओर रहती है तथा अवतल सतह (Concavity) उदर की ओर रहती है। यह वक्षीय गुहा का तल (Floor) तथा उदरीय गुहा की छत (Roof) बनाती है एवं इसमें एक केन्दीय टेण्डन (Central tendon) रहता है, जिससे पेशी तन्तु विकेन्द्रित होकर निचली पसलियों, स्टर्नम एवं वर्टिब्रल कॉलम से जुड़ जाते हैं।

श्वसनतंत्र की किया–विधि (Mechanism of Respiration)-

श्वसन क्रिया दो भागों में होती है– प्रश्वसन (Inspiration) एवं निःश्वसन (Expiration) |

प्रश्वसन (Inspiration)- के दौरान इन्टरकॉस्टल पेशियाँ एवं डायाफ्राम दोनों, तन्त्रिकाओं से उद्दीपन होकर साथ–साथ संकुचित होते हैं, जिससे वक्षीय गुहा का आयतन बढ़ जाता है और फेफड़े, जो प्रतस्थपूर्ण होते हैं, इस बढ़े हुए खाली स्थान को भरने के लिए फैलते हैं। इनके फैलने से वायु पथों और फेफड़ों में विद्यमान वायुकोषों (Alveoli) में दाब बाह्य वातावरणीय वायु के दाब से कम हो जाता है, जिससे बाह्य वातावरणीय वायु खिंचकर वायु पथों से होकर फेफड़ों के वायुकोषों में प्रविष्ट हो जाती है। यही किग्रा **'प्रश्वसन'** (Inspiration) कहलाती है, क्योंकि इसी के द्वारा बाह्य वायु फेफड़ों के भीतर खिंच आती है।

निःश्वसन (Expiration)- के दौरान इन्टरकॉस्टल पेशियाँ एवं डायाफ्राम दोनां शिथिल हो जाते हैं। इनके शिथिल होने से वक्षीय गुहा संकुचित हो जाती है, जिससे फेफड़ों पर दबाव पड़ता है और फेफड़ों के भीतर की कार्बन डाइऑक्साइड से युक्त वायु श्वास पथों से होकर बाहर निकल जाती है। वायु का बाहर निकलना ही निःश्वसन कहलाता है।

उपर्युक्त दोनों क्रियाओं अर्थात् प्रश्वसन और निःश्वसन का क्रम जीवनपर्यन्त चलता रहता है। यह एक स्वतःप्रेरित क्रिया हैं इसी के कारण हर एक श्वास के साथ वायु का भीतर खिंच आना और फिर बाहर निकलना, जीवनपर्यन्त निरन्तर चलता रहता है।

गैसीय विनिमय (Gaseous Exchange)- शरीर के अन्दर गैसों का विनिमय या आदान–प्रदानन केकड़ों में विद्यमान वायुकोषों (Alveoli) एवं इनके चारों ओर स्थि रक्त कोशिकाओं के बीच, जिसे **बाह्य–श्वसन** (External respiration) कहते हैं तथा रक्त कोशिकाओं एवं शरीर की ऊतक कोशिकाओं (Cells) के बीच, जिसे **आन्तरिक श्वसन** (Internal respiration) कहते हैं, दोनों स्थानों पर होता है। गैसों का विसरण (Diffusion) भौतिकी के प्रारम्भिक नियम के अनुसार सर्वथा उच्च बदाव से कम दबाव की ओर होता है।

श्वास के साथ अन्दर ली हुई (प्रश्वसित) वायु में कई गैसें रहती हैं, जिसकी संरचना निम्न हैं–

नाइट्रोजन	–	79 प्रतिशत
ऑक्सीजन	–	21 प्रतिशत
कार्बन डाइऑक्साइड	–	0.04

जल वाष्प एवं अन्य गैसें अत्यल्प मात्रा में।

बाह्य श्वसन या फुफ्फुसीय श्वसन (External respiration or pulmonary respiration)- जब प्रश्वसित वायु वायुकोषों में पहुँचती है तब यह वायुकोषों चारों ओर स्थित पल्मोनरी धमनियों के कोशिकीय जाल में विद्यमान रक्त के नजदीकी सम्पर्क में रहती है। 100 मिमी. पारे के दाब पर वायुकोषों में विद्यमान ऑक्सीजन 40 मिमी. परे के दाब पर शिरीय रक्त में विद्यमान ऑक्सीजन के सम्पर्क में आती है। इसलिए जब तक दोनों दाब बराबर नहीं हो जाते, गैस रक्त में विसरित होती रहती है। इसी समय रक्त में उपस्थित कार्बन डाइऑक्साइड 46 मिमी. पारे के दाब पर वायुकोषीय कार्बन डाइऑक्साइड के सम्पर्क में 40 मिमी. पारे के दाब पर आती है और गैस रक्त के बाहर विसरित होकर वायुकोषों में आ जाती है। इस प्रकार निःश्वसित वायु की गैसीय संरचना परिवर्तित हो जाती है, अर्थात् इसमें ऑक्सीजन कम और कार्बन डाइऑक्साइड अधिक रहीत है। नाइट्रोजन कम और कार्बन डाइऑक्साइड अधिक रहती है। नाइट्रोजन की मात्रा बराबर रहती है। निःश्वसित वायु की संरचना निम्न प्रकार होती है–

नाइट्रोजन	–	79 पतिशत
ऑक्सीजन	–	16 प्रतिशत
कार्बन डाइऑक्साइड	–	4.5 प्रतिशत

आन्तरिक या कोशिकीय श्वसन (Internal or cellular respiration)- बाह्य श्वसन में वायुकोषों (Alveoli) में विद्यमान ऑक्सीजन विसरण (Diffusion) द्वारा धमनियों की कोशिकाओं के रक्त में मिल जाती है। कुछ ऑक्सीजन रक्त प्लाज्मा में घुल जाती है तथा शेष हीमोग्लोबिन से संयुक्त हो जाती है, जिसे अब ऑक्सीहीमोग्लोबिन कहते हैं। यह रक्त शुद्ध माना जाता है। शुद्ध रक्त पल्मोनरी शिराओं द्वारा हृदय के बाएँ अलिन्द में पहुँचता है और फिर बाएँ निलय में पहुँचकर महाधमनी एवं इसकी शखाओं एवं उपशाखाओं में होता हुआ सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है। शरीर की ऊतक कोशिकाओं एवं धमनीय रक्त कोशिकाओं में ऑक्सीजन का दाब कम रहता है,जिससे विसरण द्वारा रक्त की ऑक्सीजन कोशिकाओं के रक्त के बीच गैसों का आदान–प्रदान होता है। यहाँ ऊतक कोशिकाओं में ऑक्सीजन का दाब कम रहता है, जिससे विसरण द्वारा रक्त की ऑक्सीजन कोशिकाओं की भित्तियों को पार करके ऊतक कोशिकाओं में चली जाती है, इसकी मात्रा ऊतकों की सक्रियता पर निर्भर करती है। इसी समय, ऊतकों में निर्मित कार्बन डाइऑक्साइड (कार्बोहाइड्रट एवं वसा के चयापचय का एक त्याज्य पदार्थ) विसरण द्वारा कोशिकाओं के बीच गैसों का आदान–प्रदान या विनियम अर्थात् आन्तरिक श्वसन होता है। इन कोशिकाओं का कार्बन डाइऑक्साइड युक्त अर्थात् अशुद्ध रक्त क्रमशः बड़ी शिराओं से होता हुआ अन्त में ऊर्ध्व एवं निम्न महाशिराओं द्वारा हृदय के दाएँ अलिन्द में पहुँचता है।

श्वसन–दर (The rate of respiration)-

सामान्य श्वसन में प्रश्वसन (Inspiration) के तुरन्त बाद निःश्वसन (Expiration) होता है, जिसके पश्चात् पुनः प्रश्वसन होने से पूर्व कुछ क्षणों के लिए विराम हो जाता है जिसे विराम काल (Pause) कहते हैं। इस प्रकार प्रश्वसन, निःश्वसन तथा विराम काल, तीनों के द्वारा श्वसन का एक चक्र (Cycle) बनता है। एक मिनट में जितने श्वसन–चक्र सम्पन्न हो जाते हैं, वह श्वसन–दर कहलाती है।

वयस्क व्यक्तियों में विश्राम के समय श्वसन–दर एक मिनट में 16 से 20 बार होती है। छोटे बच्चों की श्वसन–दर प्रति मिनट 25 से 40 बार होती है। स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा श्वसन–दर कुछ अधिक होी है। अधिक परिश्रम, भाग दौड़ आदि के समय श्वसन–दर बढ़ जाती है।

सामान्यतः श्वसन–क्रिया की दर, शरीर की आक्सीजन सम्बन्धी आवश्यकता के अनुसार घटती–बढ़ती रहती है। शारीरिक श्रम के समय श्वसन–दर के बढ़ने का यही कारण है, क्योंकि इस समय ऊतकों एवं कोषों को अधिक ऊर्जा के लिए अधिक मात्रा में ऑक्सीजन की आवश्यकता पड़ती है। ऑक्सीजन की आवश्यकता घटने पर, जैसा कि विश्राम की अवस्था में होता है, यह दर पुनः सामान्य हो जाती है।

श्वसन का नियन्त्रण (Control of respiration)-

श्वसन क्रिया का नियन्त्रण एवं नियमन अग्रांकित दो तरह से होता है–

तन्त्रिकीय नियन्त्रण (Nervous control) मस्तिष्क के मेड्यूला आब्लांगेटा में स्थित श्वसन केन्द्र (Respiratory centre) द्वारा श्वसन–क्रिया नियमित एवं नियन्त्रित रहती है। श्वसन केन्द्र के प्रश्वसनीय (Inspiratory) एवं निःश्वसनीय (Expiratory), दो भाग होते हैं, जिनका क्रमशः प्रश्वसन एवं निःश्वसन से सम्बन्ध रहता है। पोन्स में स्थित न्यूमोटैक्सिक केन्द्र भी निःश्वसन में भाग लेता हे। जब प्रश्वसनीय भाग उद्दीप्त होता है, तो इससे आवेग (Efferent impulses) उठते हैं जो स्पाइनल कॉर्ड में पहुँचते हैं और फिर वहाँ से इन्टरकॉस्टल एवं फ्रेनिक तन्त्रिकाओं द्वारा क्रमशः इन्टरकॉस्टल पेशियों एवं फ्रेनिक तन्त्रिकाओ द्वारा क्रमशः इन्टरकॉस्टल पेशियों एवं डायाफ्राम में पहुँचते हैं। इन आवेगों के फलस्वरूप इन्टरकॉस्टल पेशियाँ तथा डायाफ्राम संकुचित होते हैं जिससे वक्षीय गुहा का आयतन बढ़ जाता है और वक्षीय गुहा में विद्यमान वायु का दाब बाह्य वातावरणीय वायु वक्षीय गुहा में विद्यमान वायु का दाब बाह्य वातावरणीय वायु के दाब से कम हो जाता है, जिससे श्वास के साथ बाह्य वायु खिंचकर फेफड़ों में आ जाती है और इस प्रकार प्रश्वसन सम्पन्न हो जाता है। प्रश्वसन हो जाने पर फेफड़ों के वायुकोष (Alveoli) वायु से भर जाते हैं, जिससे फेफड़ों में विद्यमान फेफड़ों के फैलने के प्रति संवेदनशील तन्त्रिकाओं के सिरे (Nerve endings) उद्दीप्त हो जाते हैं। इनके उद्दीप्त हो जाने से उत्पन्न अभिवाही आवेग (Affrent impulses) वेगस तन्त्रिका (Vagus nerve) के द्वारा मेड्यूला ऑब्लांगेटा के निःश्वसनीय भाग तथा पोन्स के न्यूमोटैक्सिक केन्द्र में पहुँचते हैं जहाँ से अपवाही तन्त्रिका आवेग (Efferent impulses) श्वसन–पेशियों में पहुँचते हैं, जिससे श्वसन पेशियाँ शिथिल हो जाती हैं। इसके फलस्वरूप वक्षी गुहा का आयतन घट जाता है और फेफड़े पिचक कर वायु को बाहर निकाल देते हैं, और इस प्रकार निःश्वसन की क्रिया सम्पन्न हो जाती है।

रासायनिक नियन्त्रण (Chemical control)- श्वसन क्रिया की दर पर रक्त में कार्बन डाइऑक्साइड की सान्द्रता का प्रभावशाली किन्तु अप्रत्यक्ष प्रभाव होता है। कार्बन डाइऑक्साइड जल में घुलने पर कार्बोनिक एसिड बनाती है, जो बाइकार्बोनेट आयन्स एवं हाइड्रोजन आयन्स में अलग–अलग हो जाता है। यदि कार्बन डाइऑक्साइड कीसान्द्रता सामान्य स्तरों से ऊपर हो जाती है तो हाइड्रोजन आयन्स की सान्द्रता बढ़ जाती है अर्थात् pH घट जाता है। घटा हुआ pH मस्तिष्क में स्थित श्वसन केन्द्र को प्रत्यक्षतः प्रभावित करता है, जिससे श्वसन क्रिया की दर बढ़ जाती है। घटे हुए रक्त pH का संवेदन महाधमनी (Aorta) एवं कैरोटिड धमनियों के साइसेस में अवस्थित कैरोटिड एवं एओर्टिक बॉडीज (Carotid or aortic bodies) में विद्यमान रसायन ग्रहियों (Chemoreceptors) द्वारा भी होता है। इन रसायनग्राहियों में उत्पन्न तन्त्रिका आवेग श्वसन केन्द्र में पहुँचते हैं। रक्त में कार्बन डाइऑक्साइड के बढ़ जाने से रसायनग्राही एवं श्वसन केन्द्र उद्दीप्त हो जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप प्रश्वसन (Inspiration) होता है। प्रश्वसन के दौरान फेफड़े फैलते हैं, जिससे उनके ऊतक विद्यमान वेगस तन्त्रिका के अन्त उद्दीप्त हो जाते हैं। रसायनग्राहियों में उत्पन्न उत्तेजन वेगस तन्त्रिका द्वारा श्वसन केन्द्र में पहुँचता है और उसकी क्रिया को रोकता (Inhibit) है, जिसके फलस्वरूप निःश्वसन होता है। निःश्वसन में अतिरिक्त कार्बन डाइऑक्साइड शरीर से बाहर निकल जाती है और रक्त में इसकी सान्द्रता घट जाती है

अगला प्रश्वसन रक्त में पुनः कार्बन डाइऑक्साइड की पर्याप्त मात्रा होने पर होता है। इस प्रकार श्वसन स्वतः नियमन (Auto-Regulated) होने वाली क्रिया है।

अभ्यासार्थ प्रश्न–

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

(i) जिस क्रिया द्वारा वातावरणीय वायु को अन्दर लिया जाता है। उसे ---- कहा जाता है।

(ii) जिस क्रिया से व्यास्य गैसों को बाहर निकाला जाता है, उसे------कहते है।

(iii) बाँये फेफड़े में ------ खण्ड होते है।

(iv) पल्मोनरी धमनी ह्रदय के ------- से अशुद्ध रक्त को फेफड़ो में ले जाती है।

(v) हीमोग्लोबिन से संयुक्त ऑक्सीजन ------- कहलाती है।

8.5 सारांश –

प्रिय विद्यार्थियों, उपयुक्त विवेचन से आप श्वसन संस्थान की संरचना एवं कार्यो से भली–भाँति परिचित हो गये होंगे। पाठकों, जैसे रक्त परिसंचरण संस्थान शरीर में रक्त पूर्ति का कार्य करता है, वैसे ही श्वसन संस्थान शरीर के विभिन्न अंगों तथा ऑक्सीजन पहुँचाने का कार्य करता है। इस कार्य में अनेक अंग सहयोग करते है, जैसे नाक, ग्रसनी, स्वरयन्त्र, ट्रेकिया, श्वासनली, वायुकोष फेफड़े स्वसन की एक प्रक्रिया में एक बार सौज भीतर लेना तथा बाहर छोड़ना, दोनों शामिल होता है, जिन्हें क्रमशः प्रश्वसन एवं निःश्वसन कहा जाता है। यदि प्राणी का श्वसन संस्थान ठीक प्रकार से कार्य न करें, तो वह जीवित नहीं रह सकता। अतः स्पष्ट है कि स्वस्थ जीवन के लिए श्वसन संस्थान का सुचारू ढंग से कार्य करना अत्यावश्यक है।

8.6 – शब्दावली

प्रश्वसन – सौस भीतर लेना

निःश्वसन – सौस बाहर छोड़ना या निकालाना ।

नासा – नाक नासिका

फ्रन्टल – सामने

श्रवणीय – सुनने वाली

नासारन्ध्र – नाक के छिद्र

8.7 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(i) प्रश्वसन (ii) निःश्वसन (iii) दो(iv) दाँये निलच (v) ऑक्सीजन हीमोग्लाबिन

8.8 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
5. गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
6. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
7. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

8.9 – निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. श्वसन संस्थान का सामान्य परिचय देते हुये इसकी संरचना एवं कार्यो का वर्णन कीजिए।

इकाई–9 – परिसंचरण एवं श्वसन तंत्र पर यौगिक प्रभाव

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 परिसंचरण एवं श्वसन तंत्र पर यौगिक प्रभाव

9.4 सारांश

9.5 शब्दावली

9.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.8 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

जिज्ञासु विद्यार्थियों, इससे पहले की ईकाईयों में आप रक्त परिसंचरण एवं श्वसन तंत्र की संरचना एवं क्रियाविधि का विस्तृत अध्ययन कर चुके है तथा इन संस्थानों की उपयोगिता को भी भलि–भाँति समझ चुके है। पाठकों जब हम इस तथ्य से सुपरिचित है कि ये संस्थान हमारे शरीर की गति विधियों के सुचारू संचालन के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण है, तो हमारा कर्तव्य है कि हम उन पद्धतियों, विधियों के बारे में भी जानकारी प्राप्त करें जिनके माध्यम से हम इन संस्थानों को अधिक स्वास्थ एवं सुदृढ़ बना सकें। सर्वप्रथम तो हमें यही सोचना होगा कि क्या कोई ऐसी विधि है जिनके द्वारा इन तंत्रों की कार्यक्षमता में अभिवृद्धि की जा सकती है। तो पाठकों , हम प्रश्न का उत्तर है– हाँ । हमारे प्राचीन ऋषियों ने , जो योगविद्या के मर्मज्ञ से अनेक ऐसे योगाभ्यासों का प्रतिपादन किया है, जिनका यदि कोई व्यक्ति नियमित रूप से सावधानी पुर्वक अभ्यास करे तो वह निश्चित् रूप से आश्चर्यजनक लाभ प्राप्त कर सकता है।

पाठकों, अब आपके मन में अनेक जिज्ञासायें उत्पन्न हो रही होगी । जैसे कि–

- ऐसे योगाभ्यास कौन –कौन से हैं।
- किस प्रकार से इनका अभ्यास किया जा सकता है।
- ये अभ्यास किस प्रकार से शरीर कखे कार्यक्षमता को प्रभावित करते है, इत्यादि ।

तो आइये, इन्हीं जिज्ञासाओं के समाधान के लिये हम चर्चा करते हैं– रक्त परिसंचरण एवं श्वसन संस्थान पर योगाभ्यासों के प्रभावों के विषय में

9.2 – उद्‌देश्य –

प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

- योगाभ्यासों के रक्त परिसंचरण संस्थान पर पड़ने वाले के प्रभावों का वर्णन कर सकेंगे।
- विविध प्रकार के योगाभ्यास किस प्रकार से श्वसन संस्थान पर अपना प्रभाव डालते है, इसे स्पष्ट सकेंगे
- योगाभ्यासों की व्यावरिक जीवन में उपयोगिता को स्पष्ट कर सकेंगे।

9.3 परिसंचरण एवं श्वसन तंत्र पर यौगिक प्रभाव

1. कुछ आसन जैसे– सर्वागासन, विपरीतकरणी, शीर्षासन, हलासन, मयूरासन और भस्त्रिका जैसे प्राणायाम, उड्डियान, जालंधर बंध इनका विशेष सम्बन्ध रक्त संवहन तंत्र से है। इसीलिए इन अभ्यासों को योग्य योग शिक्षक द्वारा सीखना या उनके सामने करना उचित होगा।
2. जिन्हें उच्च रक्तभार की शिकायत है उन्हें ऊपर निर्दिष्ट योगाभ्यास नहीं करना चाहिए।
3. आसन करते समय हृदयगति बहुत बढ़ना अपेक्षित नहीं है।
4. पद्‌मासन, वज्रासन में हृदय व रक्त संवहन प्रणाली पर कम से कम कार्य भार रहता है।
5. शरीर और मन अच्छी तरह से शिथिल हो जाये तो मानसिक समाधान एवं शांति मिल सकती है। तब स्नायविक तान भी कम हो जायेगा। इससे रक्त वाहिनियाँ भी शिथिल हो जाती हैं और रक्तभार तथा हृदयगति भी कम हो सकती है। ऐसी मनोकायिक शांति एवं प्रसन्नता सर्वदा कायम रखना योगाभ्यास से ही संभव है।

योग की दृष्टि से विचार

1. हर व्यक्ति के मनोशारीरिक व्यवहार, बर्ताव, आदतें, चयापचय क्रिया इन बातों का श्वसनचक्र (रस्पिरेटरी सायकल) और उसकी गति, पेट या छाती की हलचल, श्वसन का तरीका आदि पर प्रभाव होता है। इसी कारण व्यक्तिनुसार भिन्नता पायी जाती है।
2. हम हमारे शरीर में कहीं भी प्राणवायु इकट्‌ठा या जमा करके नहीं रख सकते। शरीर को जब, जितना प्राणवायु आवश्यक है उतना वातावरण से वह ले लेता है। यह कार्य स्वतः होता रहता है अतः हमें उस ओर ध्यान देने की कोई जरूरत भी नहीं होती।

3. हम किसी एक सीमा तक श्वास को दीर्घ कर सकते हैं, छोड़ सकते हैं या रोक सकते हैं। गति बढ़ा भी सकते हैं। छाती या पेट इनमें से कोई भी एक या दोनों का इच्छानुसार श्वसन के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं।
4. प्राणवायु प्रदान करने के अलावा नाड़ीतंत्र की जागृति, सजगता, ध्यान या लक्ष्य इनके सम्बन्ध में भी श्वास प्रणाली का योगदान है। इच्छा से किये गये श्वास का और मन का नजदीकी सम्बन्ध है और प्राणायाम में इसी का उपयोग कर लिया गया है।
5. हम हमेंशा या तो बांयी या तो दाहिनी नाक (नासिका) से श्वास प्रश्वास करते हैं। एक नासिका करीब–करीब बंद होती है तो दूसरी पूर्णतया खुल जाती है। यह चक्र बार–बार 1 से 4 घंटों के बीच चलता रहता है। हमारा ध्यान इस नासिका चक्र (नेझल सायक) की ओर नहीं जाता क्योंकि यह अनैच्छिक रूप से अपने आप होता है। दोनों नासिका बराबर–बराबर खुली हैं यह बहुत कमबार या समय दिखाई देता है। योगशास्त्र ने इसका भरपूर लाभ उठाया है।
6. श्वसन तंत्र एक ओर हमारे प्राण से जुड़ा है और दूसरी ओर मन से जुड़ा है इसीलिए कहते हैं कि 'श्वसन' हमारे आध्यात्मिक मार्ग की सीढ़ी है या प्राण और मन की बीच एक पुल (बीज) की तरह है।

9.4 सारांश –

प्रिय विद्यार्थियों, उपर्युक्त विवेचन से आप जान गये होंगे कि योगाभ्यास किस प्रकार से हमारे रक्त परिसंचरण संस्थान एवं श्वसन तंत्र को प्रभावित करते है। वास्तुतन आसन –प्राणायाम कि क्रियायेंक रने से प्राण क अवरोध हटने लगते हैं, दूषित प्राण बाहर निकालने लगता है, परिणारूवरूप शुद्ध प्राण के बढ़ने से रक्त का सुचारू संचार होने लगता है, सभी अंगों तथ्य पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन एवं पोषक पदार्थ पहुँच जाते है। परिणामस्वरूप सभी संस्थान सक्रिय होकर ठाक ढंग से अपना–अपना कार्य करने लगते है।

पाठकों योगाभ्यास करते समय सावधानी रखनी चाहिए कि प्रारंभ में कोई भी अभ्यास किसी योग प्रशिक्षक के निर्देशन में ही प्रारंभ करना चाहिये तथा प्रत्येक योगाभ्यास के लिये जो आवश्यक शर्तें बतायी गयी है, उन्हें पूरा करना चाहियें सावधानी पूर्वक किये गये नियमित योगाभ्यास से ही हम अपेक्षित परिणाम प्राप्त कर सकते है।

9.5 शब्दावली

शिथिल – प्रयासपूर्वक शारीरिक क्रिया न करना या न होना।

मनोशारीरिक – मानसिक एवं शारीरिक

वज्रासन – भोजन करने क बाद किया जाने वाला एकमात्र आसन

बंध प्राणवायु को शरीर के विशेष क्षेत्र या हिस्से में बांध देना ।

दीर्घ –लम्बा

9.6– अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(i) सत्य

(ii) सत्य

(iii) असत्य

(iv) सत्य

(v) असत्य

9.7– सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2.गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
3.शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
4.पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
5.वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1.2.3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली
6.दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा
7.सक्सेना, ओ0पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।
8-Chaurasis's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

9.8–निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न.2 श्वसन तत्र पर यौगिक प्रभावों की विवेचना कीजिए

प्रश्न.2 योगाभ्यास रक्तपरिसंचरण तंत्र को किस प्रकार से प्रभावित करते हैं, स्पष्ट कीजिए।

इकाई 10 पाचन तन्त्र की संरचना व कार्य

इकाई की संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 पाचन तंत्र की संरचना

10.3.1 दांत एवं जीभ

10.3.2 कंठ नली या भोजन नलिका

10.3.3 आमाशय

10.3.4 छोटी आंत

10.3.5 बड़ी आंत

10.4 भोजन पाचन की क्रिया विधि

10.4.1 मुख में पाचन

10.4.2 आमाशय में पाचन

10.4.3 छोटी आंत में पाचन

10.5 बड़ी आंत में अवशोषण

10.6 भूख

10.7 संक्षिप्त तालिका

10.8 सारांश

10.9 शब्दावली

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना–

मनुष्य शरीर को विभिन्न आन्तरिक एवं बाह्य कार्यो को करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है जिसे यह शरीर आहार से ग्रहण करता है किन्तु जो आहार इस शरीर द्वारा ग्रहण किया जाता है वह उस रूप में शरीर के लिए उपयोगी नहीं होता है अपितु इसे शरीर के अनुकूल बनाने के लिए इसमें कुछ परिवर्तन करने पड़ते है।

''वे सभी भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन (क्रियाएं) जिनके फलस्वरूप आहार शरीर द्वारा ग्रहण करने योग्य बनाया जाता है, पाचन (Diagestion) कहलाती है, जो–जो अंग इन क्रियाओं में भाग लेते हैं, पाचन अंग (Diagestive organ) तथा जिस संस्थान के अर्न्तगत ये सभी क्रियाएं की जाती है, पाचन संस्थान (Diagestive system) कहलाता है।''इस संसार में अलग–अलग जीवों में उनके भोजन के आधार पर पाचन तन्त्र देखने को मिलता है। शाकाहारी जीवों के भोजन का मुख्य द्रव्य कार्बोहाइड्रेट होता है जिसका पाचन एवं शोषण आँतों में होता है इस कारण इन जीवों की आंतें लम्बी (शरीर के अनुपात में 9 गुणी से 10 गुणी बड़ी) होती है। मांसाहारी जीवों में भोजन का मुख्य द्रव्य प्रोटीन होता है जिसका पाचन आमाशय में होता है अतः इन जीवों का आमाशय बड़ा तथा लम्बा जबकि आँतें छोटी (शरीर के अनुपात में तीन गुणी बड़ी) पायी जाती है। मनुष्य एक सर्वाहारी जीव है जिसमें आमाशय का आकार तथा आंतों की लम्बाई मध्यम ;शरीर के अनुपात में पाच से छह गुणी बड़ीद्ध पायी जाती है। प्रस्तुत इकाई में मनुष्य के पाचन तन्त्र की संरचना एवं कार्यविधि का वर्णन किया गया है।

10.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- पाचन तंत्र को समझा सकेंगे
- विभिन्न पाचन अंगों एवं पाचन क्रियाओं को बता सकेंगे
- पाचक रसों की क्रियाविधि को समझा सकेंगे।

10.3 पाचन तंत्र की संरचना–

मनुष्य में पाचन तंत्र का प्रारम्भ दांत तथा जीभ से हो जाता है जो कंठ नली, आमाशय, छोटी आंत एवं बड़ी आंत के अंतिम भाग गुदा तक फैला होता है। इस पूरी रचना की लम्बाई लगभग 30 फीट होती है जिसका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है –

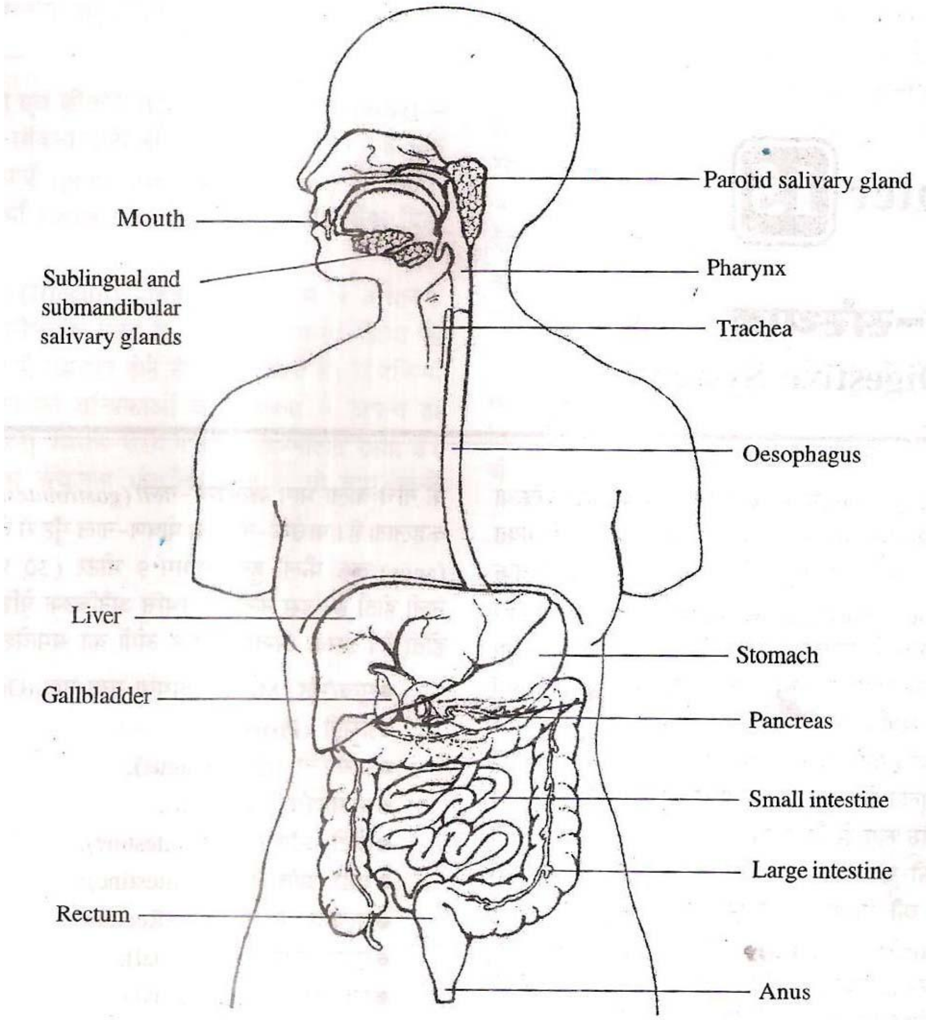

10.3.1 दांत एवं जीभ–

बाल्यावस्था में दांतों की संख्या 20 तथा बड़े होकर यह संख्या 32 हो जाती है। हमारे मुंह का निचले दांतों वाला जबड़ा ही इधर–उधर गति कर सकता है। दाँत के ऊपर हमारे शरीर का सबसे कठोर पदार्थ इनेमल का लेप चढ़ा होता है। दांतों की सफाई न करने तथा नुकीले, तेज पदार्थो को दांतों पर प्रयोग करने से ये इनेमल का स्तर दांतों से हट जाता है जिससे ठण्डा गर्म पानी लगना और दांतों में दर्द प्रारम्भ हो जाता है।

हमारी जीभ पाचन में बहुत महत्वपूर्ण भाग निभाती है। यह स्वाद का पता लगाने के अलावा और भी कई महत्वपूर्ण कार्य करता है। जैसे–

- यह मुंह के अन्दर भोजन को चलाने का कार्य करती है
- भोजन को चबाने हेतु दांतों के मध्य लाती है।
- दांतों को साफ करने के कार्य करती है।

- भोजन के बारिक होने पर निगलने में मदद करती है।
- मुंह के अन्दर स्थित तीन जोड़ी लार ग्रन्थियाँ भोजन में मिलकर उसे गीला कर निगलने योग्य बनाती है। लार ग्रन्थियां प्रतिदिन 1 से 1.5 लीटर ये लार का स्रावण करती है।

10.3.2 कण्ठ नली या भोजन नलिका–

मुख से आमाशय तक दस इंच लम्बा एक इंच व्यास वाली रचना भोजन नलिका लचीली मॉस पेशियों की बनी होती है। इसके मुख पर एक ढक्कन होता है जिस समय आहार मुख से के छिद्र में प्रविष्ट होता है, उस समय यह श्वास मार्ग को बंद कर देती है जिसके कारण आहार श्वास नली में ना जाकर सीधा चला जाता है

10.3.3 आमाशय–

यह बाई पसलियों के नीचे नौ इंच लम्बी एक थैले के आकार की रचना होती है। जिसकी सामान्य क्षमता एक से डेढ़ लीटर तक भोज्य सामग्री ग्रहण करने की होती है। इसके अन्दर वास्तविक खाली स्थान नहीं होता है और सामान्य अवस्था में भोजन से खाली होने पर इसकी दोनों दीवारें आपस में मिली रहती है जो आहार के आने पर फैल जाती है। आमाशय में भोजन चार से पांच घंटे तक रूकता हें यहां पर म्यूकस उत्पन्न करने वाली गोबलेट सेल्स उपस्थित होती है। आमाशय में भोजन का आंशिक पाचन हो जाता है। तथा यह लुगदी के रूप में छोटी आंत में फेंक दिया जाता है और कुछ ही घंटों में आमाशय पुनः खाली हो जाता है तब उसमें पैदा होने वाले संकोचों से हमें भूख की अनुभूति होने लगती है।

10.3.4 छोटी आँत–

बड़ी आँत की तुलना में परिधि में छोटी होने के कारण यह छोटी आंत कहलाती है जिसके तीन भाग होते हैं।

प्रारम्भिक भाग जो सी के आकार का होता है डयूडिनम (पक्वाशय) कहलाता है। इसके आगे के दूसरा भाग इलियम और जेजुनम है। इनमें डयूडिनम (पक्वाशय) पाचन की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण भाग होता है यही पर लीवर से आने वाला पित्त तथा प्रेन्क्रियाज से आने वाला पेन्क्रियेटिक स्राव आकर गिरता है इन स्रावों के द्वारा ही प्रोटीन, स्निग्ध पदार्थो एवं कार्बोज का पाचन होता है। भोजन के आवश्यक तत्व निर्मित करना पकवाश्य की पाचन क्रिया का स्वरूप है। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि भोजन में अत्यन्त तीक्ष्ण, अम्लीय पदार्थ अग्नाश्य एवं यकृत पित्त रस के क्षार से भी निष्प्रभावी न होने पर पक्वाशय की झिल्लीयों पर घातक प्रभाव डाल के घाव पैदा कर देते हैं जिसे अल्सर रोग कहा जाता है। छोटी आंत का अन्तिम सिरा बड़ी आंत में स्थित आंत्रपुच्छ से मिलता है। छोटी आंत पाचन और शोषण के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ पर ही भोजन पाचन और शोषण होता है और कई प्रकार की गतियाँ पायी जाती है जिनके अर्न्तगत आंतों का संकोच एवं विस्तार से महत्वपूर्ण है। यहां पर तौलिए के रोए के समान आकार की एक विशेष रचना विलाई उपस्थित होती है जिनकी संख्या लाखों में होती है। ये

आंतों के अन्दर की सतह को कई गुणा बढ़ा देती है इनके माध्यम से ही आहार का शोषण होता है।

10.3.5 बड़ी आँत–

ठसे कोलोन कहा जाता है। यह लगभग दो मीटर लम्बी होती है। यह पहले ऊपर की ओर फिर क्षैतिज के समानान्तर तथा फिर नीचे की ओर आती है।

ठसका पहला भाग सीकम कहलाता है। यह छोटी आंत से जुड़ा होता है। जिसके नीचे की ओर उंगुली के समान आकार की एक रचना होती है जिसे आंतपुच्छ (एपेन्डिक्स) कहा जाता है। यह आंतों में होने वाले संक्रमण को रोकने का कार्य करता है किन्तु कई बार इसमें भी संक्रमण हो जाता है जिसके कारण बहुत तीव्र वेदना होती है, जिसे एपैन्डिक्स का दर्द कहा जाता है इस दशा में इसका आपरेषन कर उसे निकाल दिया जाता है। इस बड़ी आंत के ऊपर ही आमाशय टिका होता है। यही कारण है कि कुछ लोगों को भोजन करने के एकदम बाद मल त्याग की इच्छा होती है क्योंकि आहार करने से आमाशय पर दबाव पर पड़ता है और बड़ी आंत के गतिशील होने से मल त्याग की इच्छा होती है।

बड़ी आंत का अन्तिम भाग मलाशय कहलाता है जिसमें आहार का शेष भाग इकट्ठा होता रहता है तथा मलत्याग के समय बाहर निकलता है।

बड़ी आंत में पाचन का विशेष कार्य नहीं होता। यहां पर मुख्य रूप से पानी के शोषण का कार्य होता है। जिसके परिणाम स्वरूप मल का द्रव भाग कम जाता है और मल ठोस आकार लेने लगता है। यहां पर मल काफी देर तक पड़ा रहता है इसीलिये आहार के अपचित अंशों पर आंतों में स्थित जीवाणुओं द्वारा क्रिया भी यहां पर होती है। जिसके परिणाम स्वरूप अनेक विषैली गैसे जैसे सल्फाइड डाई आक्साइड, कार्बन डाई आक्साइड, अमोनिया आदि पैदा होती है। ये गैसे आँत में जाकर विकार उत्पन्न करती है तथा शोषित होकर रक्त में भी पहुंच जाती है और शरीर में रोग उत्पन्न करती है।

इसके अतिरिक्त आंत के जीवाणु कुछ लाभकारी पदार्थो को भी पैदा करते हैं जिनमें विटामिन बी मुख्य है। इसलिये बार–बार विरेचक पदार्थो का प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि इसमें आंतों में स्थित ये जीवाणु नष्ट होते है जिसमें विटामिन की उत्पत्ति कम एवं शरीर में इनकी कमी से रोग उत्पन्न होते हैं।

10.4 भोजन पाचन की क्रियाविधि–

आहार का पाचन तीन स्थानों पर होता है– मुख में, आमाशय में एवं छोटी आंत में।

इन स्थानों पर आहार के भिन्न–भिन्न अंशों का पाचन होता है।

10.4.1 मुख में पाचन–

आहार सबसे पहले मुख में चबाया जाता है और चबाने की इस क्रिया के अर्न्तगत मुख की लार ग्रन्थियों से पैदा होने वाली लार इस आहार में मिल जाती है। इसी समय जिह्वा में स्थित स्वाद कलिएकाएं स्वाद का ग्रहण करती है। इसके साथ–साथ आहार का ठोस रूप भी यही पर नष्ट हो जाता है और आहार निगलने योग्य हो जाता है। इस अवस्था में लार में पाये जाने वाला टायलिन नामक एन्जाइम कार्बोहाइड्रेट पर क्रिया करके उसे सरल रूप में बदल देता है। यही कारण है कि यदि आहार को कुछ अधिक देर तक चबाया जाये तो वह मीठा लगने लगता है। मुख में कार्बोहाइड्रेट का आंशिक पाचन होता है।

10.4.2 आमाशय में पाचन–

आमाशय में आहार का पाचन आमाशयिक रस द्वारा होता है। यह रस अनेक पदार्थो का मिला जुला रूप है, इसमें आमाशय आक्सेन्टिक सैल्स से पैदा होना वाला हाइड्रोक्लोरिक अम्ल तथा एन्जाइम उपस्थित होते है। एसिड की उपस्थिति के कारण यहां पर आकर आहार अम्लीय स्वभाव वाला हो जाता हैं आमाशय में स्थित म्यूकस आमाशय की दिवारों पर एक पतला आवरण बनाकर रखती है, जिसके कारण आमाशय में स्थित एसिड आमशय की दीवारों को हानि नहीं पहुंचा पाता है।

आमाशय में उत्पन्न होने वाले एसिड का एक कार्य यह भी होता है कि यह भोजन के साथ आने वाले जीवाणुओं को भी नष्ट कर देता है और इसके साथ–साथ यह आहार के पाचन में महत्वपूर्ण काम लेता है। इसमें प्रोटीन को पचाने वाला एन्जाइम पेप्सिन पाया जाता है। यह पेपसिन एन्जाइम हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के साथ मिलकर एक तेज मिश्रण बनाता है जो कि प्रोटीन पर क्रिया करके उन्हें पेप्टिोन्स में बदल देता है। इस प्रकार यहां आमाशय में प्रोटीन का आंशिक पाचन होता है। यही पर एक दूसरा एन्जाइम रेनिन मिल्क प्रोटीन को पचाता है यह कैल्शियम में मिलाकर कैशिनेट बनाता हैं यही पर स्थित पेप्सिन नामक एन्जाइम को थोड़ी सी मात्रा में पचाता है। यह फैट को फैटी एसिड में बदल देता है। इसके बाद यहां से यह आहार छोटी आंत में भेज दिया जाता है जहां पर इसका पूर्ण पाचन एवं शोषण होता है।

10.4.3 छोटी आँत में पाचन–

छोटी आंत में इस आहार में तीन स्राव मिलते है–

(A) यकृत से निकलने वाला स्राव – पित्त रस

(B) अग्नाशय से निकलने वाला स्राव – आग्नाश्यिक रस

(C) पाचक स्राव (एन्जाइमस)

(A) पहला स्राव यकृत (लीवर) से निकलता है जो गालब्लेडर में इकट्ठा होता है और पक्वाशय में आकर मिलता है। आहार के पाचन में सहायता करता है।

(लीवर) यकृत– मानव शरीर की सबसे बड़ी ग्रंन्थि है, जिसका वजन 1.5 कि0ग्राम होता है। यह प्रतिदिन एक लीटर तक हरे पीले रंग का पचक द्रव पित्त को उत्पन्न करता है। सामान्य अवस्था में इसे अनुभव नहीं किया जा सकता, किंतु रोगी होने पर जब इसमें वृद्धि हो जाती है तो इसे अगुलियों के द्वारा अनुभव किया जा सकता है। इस लीवर में पाये जाने वाले हिपेटिक सैल्स पित्त (बाइल) को उत्पन्न करते है। यह लीवर शरीर का बहुत महत्वपूर्ण अंग है। यह लीवर ग्लूकोज को ग्लाइकोजन के रूप में संचित करते रखता है तथा आवश्यकता पड़ने पर (शरीर में ऊर्जा कम होने पर) यह इस ग्लाइकोजन को पुनः ग्लूकोज के रूप में बदल देता है। इस प्रकार यह रक्त में ग्लूकोज की मात्रा को नियन्त्रित करता है। यह लीवर ही आहार के साथ आने वाले विषैले पदार्थो एवं अन्य मार्गो से आने वाले विषैले पदार्थो को अपने अन्दर जमा कर लेता है। कालान्तर में यह इन विषैले पदार्थो को या तो बाइल के द्वारा बाहर निकाल देता है या फिर ये विष लम्बे समय तक लीवर में ही पड़े रहते है। यह रक्त के मृत कणों को तोडकर, हिमोग्लोबिन को पित्त वर्ण का बनाकर, लौह तत्व को पुनः कार्य क्षम बनाता है। इस कारण बीमारी की स्थिति में जब अधिक संख्या में रक्त कण टूटते हैं तब इस यकृत का आकार बढ़ जाता है। यह यह यकृत लीवर फैट में घुलनशील विटामिन्स को भी स्टोर करता है। यह रक्त को जमाने में सहायता करने वाली पोथोम्बीन नामक प्रोटीन को विटामिन के की सहायता से पैदा करता है और इसके साथ–साथ रक्त को जमा देने वाले हिपेरिन नामक पदार्थ को भी यह उत्पन्न करता है गर्भावस्था में यह लीवर ही लाल रक्त कणों को पैदा करने का कार्य भी करता है।

उपरोक्त तथ्य शरीर के लिये लीवर की महत्वपूर्णता सिद्ध करते है। इस लीवर में बहुत अच्छी पुनरूधभवन क्षमता (Greatest Power of regeneration) पायी जाती हैं इसके सैल्स बहुत जल्दी से पुनः बन जाते है किन्तु ना समझी में जब मनुष्य नशीली अथवा उत्तेजक दवाईयों का अत्यधिक सेवन करता है तो यह लीवर शरीर पर इनके कुप्रभावों को नष्ट करने के चक्कर में स्वयं अपनी क्षमता को नष्ट कर बैठता है शराब के दुष्प्रभाव से भी शरीर को बचाने में इसे अत्यधिक श्रम करना पड़ता है जिससे इसके सैल्स नष्ट तथा धीरे–धीरे बनने बंद होकर लाइलाज हो जाते है।

यकृत के निकलने वाला पित्त 24 घन्टे यकृत के अन्दर पैदा होता रहता है और बाहर आता रहता तथा गाल ब्लैडर (पित्त की थैली) में एकत्र होता रहता है यहां पर एकत्र पित्त छोटी आंत में जाकर गिरता है यह पित्त पाचन के दृष्टि कोण से बहुत महत्वपूर्ण नहीं होता क्योंकि इसमें कोई भी एन्जाइम नहीं पाया जाता। इसका सबसे बड़ा कार्य आहार के माध्यम को परिवर्तित करके आहार के माध्यम को अम्लीय से क्षारीय बनाना होता है ताकि आंत के एन्जाइम इस आहार पर कार्य कर सके। इसका दूसरा कार्य आंतों की गति को उत्तेजित करना होता है ताकि आहार आगे बढ़ सके।

फैट के पाचन में यह पित्त सहायता करता है और फैट के साथ मिलकर एक साबुन जैसा धोल बनाता है जिसके परिणाम स्वरूप फैट का शोषण शीघ्रता से होता है। पित्त का एक कार्य अनेक भोज्य पदार्थो के शोषण में मदद देना भी है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि पित्त स्वयं पाचन नहीं करता अपितु भोजन के पाचन में सहायता प्रदान करता है।

बी – अग्नाशय से निकलने वाला स्राव – अग्नाशयिक रस

यह स्राव अग्नाशय द्वारा उत्पन्न होता है।

अग्नाशय या क्लोम ग्रन्थि (Pancrease) – यह आमाशय के नीचे सत्तर ग्राम वजन की सात इंच लम्बी दो इंच चौड़ी ग्रन्थि होती है। यह एक प्रकार की दोहरी ग्रन्थि होती है जो अन्तः और बाह्रय दो प्रकार के स्राव पैदा करती है इस प्रेन्क्रियाज के अन्दर टापू के आकार की अनेक रचनाएं जिन्हें लैगरहैंस की दीपिकाए (Inslects of Langer Han's) कहा जाता ग्लूकेगान तथा इन्सूलिन नामक हार्मोन पैदा करती है इन्सूलिन नामक हार्मोन की उपस्थिति में रक्त में उपस्थित शर्करा का दहन होता है जिससे ऊर्जा प्राप्ति होती है। जबकि इस इन्सूलिन नामक हार्मोन के अभाव में कोषिका रक्त में उपस्थित शर्करा (Glucose) को जला नहीं पाती तथा रक्त में शर्करा का रक्त धीरे–धीरे बढ़ना शुरू हो जाता है यही अवस्था लम्बे समय तक बने रहने पर बिना जली शर्करा काफी मात्रा में अनेक उपयोगी लवणों एवं पानी के साथ मूत्र के साथ शरीर से बाहर निकलने लगती है। शरीर की इस अवस्था को डायाबिटिज मेलिटस नामक रोग से जाना जाता है। इस रोग की अधिकता से शरीर दुबला पतला एवं निस्तेज होता जाता है।

ग्लूकागोन हार्मोन ग्लूकोज तथा चिकनाई सोखने के क्षमता तथा उपभोग की योग्यता में सन्तुलन बनाये रखने में नियन्त्रण करता है इस प्रकार से दोनों हार्मोन्स रक्त में (Blood sugar) को नियन्त्रित करते है।

पेन्क्रियाज से उत्पन्न होने वाला पेन्क्रियेटिक स्राव भी छोटी आंत के इसी भाग में आकर गिरता है इसमें प्रोटीन फैट और कार्बोहाइड्रेट को पचाने वाल एन्जाइम उपस्थित होते है। प्रोटीन को पचाने वाला मुख्य एन्जाइम ट्रिप्सन इस में रहता है। यह एन्जाइम प्रोटीन पर कार्य करता है तथा प्रोटीन को शीघ्रता से पचाता है।

इस स्राव में में फैट को पचाने वाला एन्जाइम होता है जो फैट को फैट एसिड एवं ग्लूकोराल में तोड देता है और ये इसी रूप में शोषित हो जाते है।

सी – पाचक रस (एन्जाइमस)

यह छोटी आंत से निकलता है। यह पाचक रस सबसे तीव्र एवं महत्वपूर्ण स्राव होता है इसमें पाये जाने वाले एन्जाइम आहार के सभी अंशों का पूर्ण पाचन करते है तथा उन्हें सरल तम रूप में बदल देते है।

इस स्राव रू॰ में प्रोटीन को पचाने वाले दो एन्जाइम में जाते है। पहला एन्टीरोकानेज जो कि ट्रिपसीनोजन को ट्रिपसीन में बदलता है और दूसरा इरीपसीन जो कि अर्द्व पचित प्रोटीन का पूर्ण पाचन करके इसे अन्तिम उत्पाद अमीनों अम्ल के रूप में बदल देता है। फैट को पचाने वाला एन्जाइम लाइपेज भी यहां पर होता है और फैट का पाचन भी हो जाता है। इसमें कार्बोहाइड्रेट को पचाने वाले अनेक एन्जाइम पाये जाते है। जो कार्बोहाइड्रेट को ग्लूकोज में बदल देते हैं।

छोटी आंत में अवशोषण– इस समय जो आहार हमने ग्रहण किया वह उस रूप को ग्रहण कर चुका होता है जिस रूप में शरीर उसे ग्रहण कर सके। कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन एवं फैट अपने (अन्तिम उत्पाद) के रूप में छोटी आंत के अगले भाग जुजेनम में आते हैं। इस समय ये सभी पदार्थ घुलनशील अवस्था में होते है। ये कोशा कला (Cell Membre) के आर–पार आ जा सकते है। छोटी आंत के इस भाग में उंगुली के समान उठी हुई अनेक रचनाएं विलाई इस भोजन को अवशोषित करने का कार्य करते हैं।

पचा भोजन आंत की अर्द्धपारगम्य झिल्ली से विसरित होकर रूधिर एवं लसिका कोशिका में पहुंच जाता है। छोटी आंत में इस अवशोषण की क्रिया में दो से चार घंटे का समय लगता है।

10.5 बड़ी आँत में अवशोषण एवं उत्र्सजन–

पोषक तत्व निकलने के पश्चात अब ये गाढ़ा भोजन बड़ी आंत में आँत में आ जाता है। बड़ी आँत के क्लोन हिस्से में अनेक विघटनकारी सहजीवी जीवाणु होते है जो इस भोजन पर किण्वन की क्रिया कर उसे सड़ाते है। इस क्रिया से कार्बन डाई आक्साइड, मिथेन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन तथा अमोनिया आदि गैसे बनती है। इसके बाद यह मल भाग आगे की ओर बढ़ता है तथा इसमें से जल की मात्रा का अवशोषण यहां पर किया जाता है अब यह शरीर के लिये अनुपयोगी मलभाग मलाशय (Rectum) नामक स्थान में आकर इकठ्ठा होने लगता है जो बड़ी आंत के अन्तिम भाग गुदा (Anus) के द्वारा शरीर के बाहर निकाल दिया जाता है।

क्रमांक भोजन पदार्थ पाचन प्रारम्भ पाचन पूर्ण

10.6 भूख–

यह भोजन लेने के प्रति शरीर का एक उद्दीपन होता है। जब आमाशय खाली हो जाता है तो वहां पर उपस्थित ज्ञान तन्तु (Receptors) इसकी सूचना मस्तिष्क में स्थित केन्द्र हाइपोथेलमस को देते है। शरीर में ग्लूकोज का स्तर कम होने पर भी शरीर को भोजन की आवश्यकता महसूस होती है।

10.7 संक्षिप्त तालिका

क्रमांक	भोजन पदार्थ	पाचन प्रारम्भ	पाचन पूर्ण
1.	Carbohydrate	Buccal Cavity	Ileum
2.	Protein	Stomach	Ileum
3.	Fat	Duodenum	Ileum
	भोजन पदार्थ	अन्तिम उत्पाद	शरीर में अवशोषण

1.	Carbohydrate	Glucose + Fruchose + Glactose	though Blood Vesseles in Ileum
2.	Protein	Amino Acids	though Blood Vesseles in Ileum
3.	Fat	Fatty acids & Glycerols	though Lymph Vesseles in Ileum

	पचक रस	नियंत्रण
	Diagestive Juice	Controlled by
1.	Saliva	Nervous Controlled
2.	Gastric Juice	Hormonal Controlled
3.	Pancreatic Juice	Hormonal Controlled
4.	Intestinal Juice	Hormonal Controlled

10.8 सारांश

मनुष्य में पाचन तन्त्र मुख से प्रारम्भ होकर बड़ी आँत के अन्तिम भाग गुदा तक जाता है। मुख में दांतों द्वारा चबाने से लेकर भिन्न–भिन्न प्रकार के भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन आहार में किए जाते हैं। आमाशय में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का मिलना, लीवर से पित्त का मिलना तथा पेन्क्रियाज से पैन्क्रिएटिक जूस के मिलने से भोजन के स्वरूप एवं प्रकृति में परिवर्तन होता है तथा यह जटिल रूप के स्थान पर सरल रूप में परिवर्तित हो जाता है।

छोटी आँत में चूसक कोशिकाएं विलाई पायी जाती है जो आहार के इस सरल रूप को पोषक द्रव्य के रूप में ग्रहण कर लेती है। यहां से यह पोषक रस रक्त के माध्यम से सम्पूर्ण शरीर को वितरित किया जाता है। पोषक रस निकलने के बाद आहार का मलीय अंश बड़ी आँत में फेंक दिया जाता है। बड़ी आँत में इस अंश से जल के अवशोषण की क्रिया होती है। इसके अतिरिक्त इस अंश पर बड़ी आंत में उपस्थित जीवाणु क्रिया करके कुछ विटामिन्स का सश्लेषण भी करते हैं। और अन्त में यह बेकार अंश ;मलद्ध बड़ी आँत के अन्तिम भाग में गुदा द्वारा शरीर से बाहर फेंक दिया जाता है। जब तक यह तंत्र सही रूप में कार्य करता जता है तब तक शरीर को पूर्ण पोषण एवं ऊर्जा प्राप्त होती रहती है जबकि इस तंत्र के भली–भांति कार्य न करने की अवस्था में शरीर में विकृति अथवा रोग उत्पन्न हो जाता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न–

सत्य/असत्य

1.विटामिन्स और खनिज लवणों का कोई पाचन नहीं होता है

2.आमाशय की सामान्य क्षमता 5 से 10 लीटर भोज्य पदार्थ ग्रहण करने की होती है।

3.छोटी आँत पाचन और शोषण के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण होती है।

4.विलाई की संख्या हजारों में होती है।

5.आँत में स्थित जीवाणु कुछ विटामिन्स का सश्लेषण करते हैं।

बहुविकल्पीय प्रश्न–

6 मनुष्य की गणना किस श्रेणी के जीवों में की जाती है–

क. शाकाहारी ख.दुग्धाहारी ग.मांसाहारी घ.सर्वाहारी

7. शरीर का सबसे कठोर पदार्थ है–

क.इनेमल ख.कैल्शियम ग.आयरन घ.फास्फोरस

8.एच.सी.एल. को उत्पन्न करने वाली कोशिकाएं है–

क. आक्सेन्टिक सैल ख. ब्लड सैल ग. गोबलेट सैल घ. नर्व सैल

9.छोटी आँत के कितने भाग होते है–

क.दो ख.तीन ग.पाँच घ.दस

10.इन्सूलिन, पैन्क्रियाज की कौन सी कोशिकाओं से निकलता है–

क.एल्फा सेल्स से ख.बीटा सैल्स से ग.डेल्टा सैल्स से घ.गामा सैल्स से

10.9 शब्दावली

पुनरूधभवन	दोबारा ठीक होने की अवस्था
दुष्प्रभाव	गलत प्रभाव
लाइलाज	जिसका इलाज सम्भव न हो
उपभोग करना	प्रयोग करना

उद्दीपन	एक प्रेरणा अथवा उत्तेजना
वितरित करना	बांटना
संश्लेषण	निर्माण

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.	सत्य	1.	घ
2.	असत्य	2.	क
3.	सत्य	3.	क
4.	असत्य	4.	[k
5.	सत्य	5.	[k

10.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, सुमित प्रकाशन आगरा

2. डा. राजेश दीक्षित, शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा

3. डा. ओ.पी. सक्सैना, एनाटमी एण्ड फिजियोलॉजी भाषा भवन, मथुरा

4. K. Sembulingam, Prema Sembulingam Essentials of Medical Physiology, Jaypee Brothers Medical Publishers (P) Ltd. New Delhi

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. पाचन से आप क्या समझते हो? भोजन का पाचन समझाइये
2. मनुष्य के पाचन तन्त्र का सचित्र वर्णन किजिए
3. छोटी आँत में भोजन के पाचन एवं अवशोषण को लिखिए
4. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
    1. लीवर
    2. पेन्क्रियाज
    3. आमाशय
    4. बड़ी आँत

इकाई 11 उत्सर्जन तंत्र की संरचना व कार्य

इकाई की संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 उत्सर्जन तंत्र की संरचना

11.3.1 वृक्कों की संरचना

11.3.2 मूत्र वाहिनी

11.3.3 मूत्राशय

11.3.4 मूत्र मार्ग

11.4 उत्सर्जन तंत्र की क्रिया विधि

11.5 मूत्र निर्माण

11.6 मूत्र त्याग

11.7 सारांश

11.8 शब्दावली

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना–

प्रिय पाठकों पिछली इकाई में आपने जाना कि मनुष्य जो आहार लेता है, पाचन तंत्र में उसका पहले पाचन किया जाता है। पाचन क्रिया के उपरान्त शरीर इससे ऊर्जा प्राप्त करता है। इस ऊर्जा का उपयोग विभिन्न कार्यो में किया जाता है जिसे चयापचय (मेटाबोलिज्म) कहा जाता है। इस चयापचय क्रिया के परिणामस्वरूप शरीर में कुछ उत्सर्जी पदार्थो की उत्पत्ति होती है जो शरीर में किसी भी रूप में उपयोगी नहीं होते बल्कि इन पदार्थो का शरीर से बाहर निकलना अत्यन्त अनिवार्य होता है यदि ये उत्सर्जी पदार्थ शरीर से बाहर ना निकले तो शरीर की विभिन्न क्रियाओं में बाधाएं उत्पन्न होने लगती है तथा शरीर में विकृतियां अथवा रोग उत्पन्न होने लगते हैं।

''वह तंत्र जो शरीर में स्थित उत्सर्जी पदार्थो को बाहर निकालने का कार्य करता है, उत्सर्जन तंत्र कहलाता है तथा जो–जो अंग इस क्रिया में भाग लेते है उत्सर्जी अंग कहलाते है।''

हमारे शरीर में ठोस उत्सर्जी पदार्थो को बड़ी आँत के द्वारा मल के रूप में बाहर निकाला जाता है, द्रवीय उत्सर्जी पदार्थो को वृक्क एवं त्वचा के माध्यम से मूत्र एवं पसीने के रूप में बाहर निकाला जाता है जबकि गैसीय उत्सर्जी पदार्थो को फेफड़ों के द्वारा प्रश्वास के रूप में बाहर निकाला जाता है। इस प्रकार उत्सर्जी अंग के अर्न्तगत बड़ी आँत, वृक्क त्वचा एवं फेफड़ों का वर्णन आता है क्योंकि ये सभी अंग शरीर से विभिन्न अविशिष्ट उत्सर्जी पदार्थो को बाहर निकालने का कार्य करते हैं परन्तु इन सभी अंगों में सबसे अधिक क्रियाशील रूप में वृक्क हर समय उत्सर्जी पदार्थो को रक्त से छानकर बाहर निकालने का कार्य करते रहते हैं इस कारण मुख्य उर्त्सजी अंग के रूप में वृक्क की संरचना एवं कार्य का वर्णन आता है।

यह तन्त्र शरीर की सफाई का महत्वपूर्ण कार्य करता है जिसके भली–भाँति कार्य करने से रक्त एवं त्वचा आदि अंग स्वच्छ एवं स्वस्थ रहते हैं जबकि इस तंत्र के भली–भांति कार्य नहीं कर पाने पर उत्सर्जी पदार्थो का शरीर से निष्कासन नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप रक्त में यूरिक एसिड का बढ़ना, जोड़ों में दर्द सूजन, बहुमूत्र, अल्प मूत्र, आदि रोग उत्पन्न होते है।

11.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- उत्सर्जन तंत्र की रचना एवं कार्य विधि बता सकेंगे।
- समझा सकेंगे कि उर्त्सजन तंत्र का शरीर में महत्व क्या है?
- उर्त्सजन तंत्र के कार्यो की व्याख्या कर सकेंगे।

- मूत्र निर्माण प्रक्रिया को समझाने में सक्षम हो सकेंगे।

11.3 उत्सर्जन तंत्र की संरचना–

इसका प्रारम्भ वृक्क की संरचना से होता है–

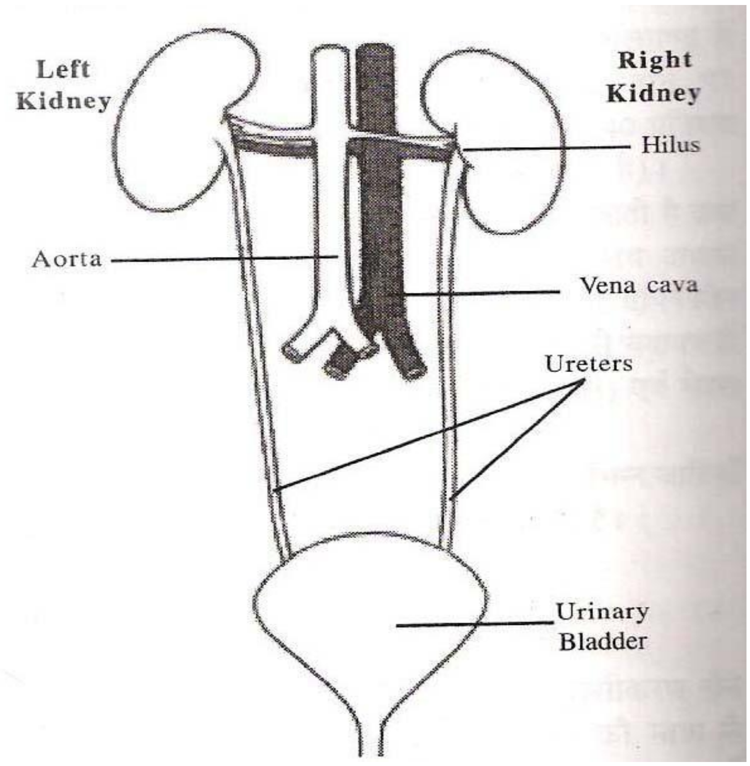

11.3.1 वृक्क की संरचना

मानव शरीर में रीढ की हड्डी के दाहिनी एवं बाँयी ओर कटि कशेरूकाओं के मध्य एक जोड़ी वृक्क की रचना पायी जाती है जो देखने में सेम के बीज की आकृति के समान होती है। इनमें से दाहिनी ओर वृक्क बायें वृक्क की तुलना में कुछ नीचे की ओर होता है सामान्य रूप में प्रत्येक वृक्क का आकार 11 सेमी. लम्बा 6 सेमी. चौड़ा तथा 3 सेमी. चौड़ा होता है। वृक्क के ऊपरी सिरे को उर्ध्व ध्रुव तथा निचले सिरे को निम्न ध्रुव कहा जाता है। प्रत्येक वृक्क के उर्ध्व ध्रुव पर एक अधिवृक्क ग्रन्थि पायी जाती है। वृक्क का बाहरी किनारा उभरा हुआ (उन्तल) तथा अन्दर की ओर से दबा हुआ (अवतल) होता है। इस दबी हुई ओर के मध्य में एक गड्डा हाइलम होता है। इस हाइलम से होकर वृक्कीय धमनी, शिरा, तन्त्रिकाए तथा मूत्रनलिया वृक्क में प्रविष्ट होती है तथा बाहर निकलती है।

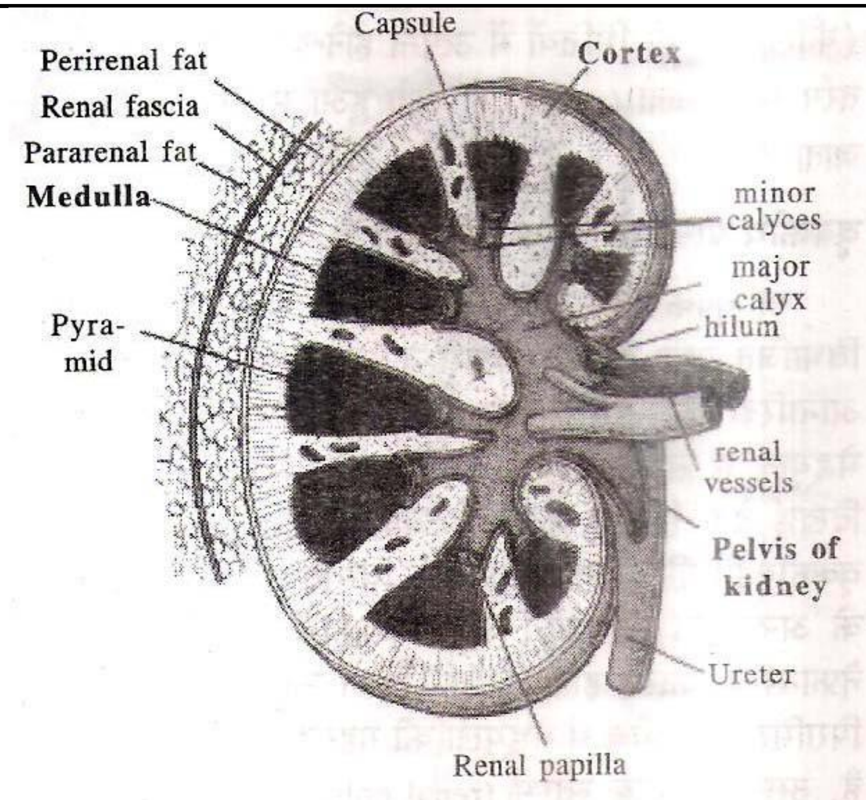

प्रत्येक वृक्क में निम्न लिखित तीन परत पायी जाती है–

वृक्क की सबसे अन्दर की परत तन्तुमय होती है इसे वृक्कीय सम्पुट Renal Capsule कहा जाता है, इसकी मध्य परत परिवृक्कीय वसा की बनी होती है जिसे वसीय सम्पुट (Adipose Capsule) कहा जाता है। इसमें वसा उपस्थित होने के कारण यह वृक्कों को चोटों तथा तेज झटकों से सुरक्षित रखने का कार्य करती है, तथा सबसे बाह्रय परत वृक्कीय प्रावरणी (Renal Fascia) कहलाती है। यह वृक्क को घेरने का कार्य करती है तथा वृक्क को उदर के साथ बाँधे रखती है।

वृक्क की आन्तरिक संरचना में वृक्क के तीन अलग–अलग भाग होते हैं। सबसे बाहर वृक्कीय श्रोणि (Renal Pelvis) नामक भाग होता है। यही से मूत्र नलिया (Ureters) निकलती है। वृक्क के बीच का भाग वृक्कीय अन्तस्था (Renal medulla) कहलाता है। इसमें शंकु के समान आकार की संरचना पायी जाती है जिन्हें वृक्कीय पिरामिड्स (Renal pyramids) कहा जाता है। प्रत्येक वृक्क में 8 से 18 की संख्या में वृक्क पिरैमिड पाये जाते है। इन पिरैमिड के अन्दर वृक्क की क्रियात्मक एवं रचनात्मक कोशिकाएं वृक्काणु पाये जाते हैं।

वृक्क का सबसे आन्तरिक भाग वृक्कीय प्रान्तस्था (Renal Corfex) कहलाता है।

वृक्काणु – वृक्क की मूल रचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई वृक्काणु कहलाती है। प्रत्येक वृक्क में इनकी संख्या 10 से 12 लाख के मध्य होती है। इन वृक्काणुओं की संख्या पर उम्र का प्रभाव भी पड़ता है तथा प्रायः 45 से 50 वर्ष की आयु के उपरान्त ये लगभग एक प्रतिशत प्रतिवर्ष कम होने लगते हैं जिसका सीधा प्रभाव वृक्कों की कार्यक्षमता पर पड़ता है एवं वृक्कों की क्रियाशीलता घटने लगती है। इनकी रचना इतनी सुक्ष्म होती है कि इन्हें सूक्ष्मदर्शी के द्वारा ही देखा जा सकता है। और इसीलिए इन्हें सूक्षमदर्शी इकाई कहा जाता है।

प्रत्येक वृक्काणु रक्त को छानकर मूत्र निर्माण की क्रिया में भाग लेता है। ये वृक्काणु दो प्रकार के होते है। इनका एक प्रकार कार्टिकल नेफ्रान कहलाता है जो वृक्क के आरम्भिक दो तिहाई भाग में रहते है तथा सामान्य अवस्थाओं में कार्य करते रहते है जबकि वृक्क के आन्तरिक भाग में स्थित एक तिहाई नैफ्रान जक्स्टामेडयूलरी नेफ्रॉन कहलाते है। इनकी विशेषता यह होती है कि ये अधिक दबाव की स्थिति में ही क्रियाशील होते हैं।

नेफ्रान को दो भागों में बाँटा जाता है–

1. केशिका गुच्छीय भाग
2. वृक्कीय नलिका

ये दोनों भाग मिलकर रक्त को छानने का कार्य करते हैं।

11.3.2 मूत्र वाहिनी–

प्रत्येक वृक्क के मध्य भाग हाइलम से एक मूत्र वाहिनी निकलकर मूत्राशय तक जाती है प्रत्येक मूत्र नली वाहिनी 25 से 35 सेमी. लम्बी होती है जिसका निर्माण अनैच्छिक चिकनी पेशियों द्वारा होता है इन वाहिनियों के द्वारा वृक्क से मूत्र मूत्राशय तक पहुँचता है।

11.3.3 मूत्राशय–

यह एक थैलीनुमा रचना होती है जिसका निर्माण पेशियों के द्वारा होता है। वृक्कों में उत्पन्न हुआ मूत्र वाहिनियों के द्वारा इस मूत्राश्य में इकट्ठा होता रहता हैं इसकी क्षमता 300 से 400 एम.एल. मूत्र ग्रहण करने की होती है तथा इस मूत्राश्य में इकट्ठे होने वाले मूत्र की संवेदना मस्तिष्क तक पहुँचायी जाती है तथा इसके भर जाने पर अनैच्छिक पेशियों को शिथिल करने पर यह मूत्र मार्ग के द्वारा आगे बढ़ने लगता है।

11.3.4 मूत्र मार्ग–

मूत्राशय से एक मूत्र नली नली के रूप में शरीर से बाहर निकलती है जिसका कार्य मूत्राश्य में स्थित मूत्र को बाहर निकालना होता है। स्त्रियों में इसकी लम्बाई केवल 4 सेमी. जबकि पुरूषों में यह 20 सेमी. तक लम्बी होती है। इस पर ओटोनोमिक तन्त्रिका तन्त्र का नियन्त्रण होता है।

11.4 उत्सर्जन तंत्र वृक्क की क्रिया विधि–

वृक्कों में बहुत तीव्रता से रक्त की आपूर्ति की जाती है। शरीर में सबसे अधिक रक्त की आपूर्ति यकृत को जबकि यकृत के बाद दूसरे स्थान पर वृक्कों में इस रक्त की आपूर्ति होती है। वृक्कों में प्रति मिनट **1,300 ml** रक्त आता है। वृक्कों में रक्त की यह आपूर्ति वृक्कीय धमनी **(Renal Artery)** द्वारा की जाती है। वृक्क के अन्दर जाकर यह वृक्कीय धमनी अनेक शाखाओं में बंट जाती है तथा ये शाखाऐं सम्पूर्ण वृक्क में फैल जाती है। एक बार छनने के उपरान्त इस छने हुए रक्त का पुर्न अवशोषण किया जाता है तथा आगे चलकर वृक्कीय शिरा द्वारा इस रक्त को इकट्ठा कर लिया जाता है।

वृक्कों के कार्य– वृक्कों का सबसे मुख्य कार्य रक्त से उत्सर्जित पदार्थो को छानना तथा इन छने हुए पदार्थो में से शरीर उपयोगी पदार्थो का पुर्नः अवशोषण कर शेष पदार्थो को मूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकालना है। इन उत्सर्जित पदार्थो के अन्तर्गत यूरिया, यूरिक एसिड, अतिरिक्त शर्करा, प्रोटीन विषैले पदार्थ एवं विषैली औषधियां आदि होते है।

(A) अम्ल–क्षार सन्तुलन बनाना– शरीर में उपापचय क्रिया में अनेक अम्ल बनते अथवा बिगड़ते रहते है जिनसे रक्त में इनकी मात्रा घटती अथवा बढ़ती रहती है। इन अम्लों को क्षारीय स्वरूप में बदलने का कार्य यकृत कोशिकाओं द्वारा होता है तथा शरीर से इन अम्लों का निष्कासन वृक्कों द्वारा किया जाता है इस प्रकार वृक्क शरीर में अम्ल–क्षार के सन्तुलन को बनाये रखने में मद्द करते है।

(B) जल सन्तुलन– वृक्क का एक प्रमुख कार्य जल सन्तुलन करना है शरीर में जल की अधिकता होने पर अतिरिक्त जल को वृक्कों द्वारा मूत्र के रूप में बाहर निकाल दिया जाता है इसी कारण अधिक जल पीने पर मूत्र की मात्रा स्वतः ही बढ़ जाती है जबकि पसीना अधिक होने पर मूत्र की मात्रा कम होती है।

(C) परासरणीय दाब को बनाये रखना– शरीर में स्थित तरल पदार्थो के परासरणीय दाब पर वृक्क नियन्त्रण स्थापित करते हैं।

(D) वृक्क रक्त में स्थित अनावश्यक पदार्थो जैसे अतिरिक्त शर्करा प्रोटीन तथा विषैली औषधियों को मूत्र के माध्यम से बाहर निकालने का कार्य करते है।

मानव शरीर में वृक्क प्रतिक्षण रक्त को निस्यंदित **(Filter)** करते रहते हैं। प्रति मिनट रक्त निस्यंदित करने की यह दर गुच्छीय निस्यद दर **(Glomerular filteration)** कहलाती है। स्वस्थ मनुष्य में प्रतिदिन 180 लीटर रक्त को छानने की इस क्रिया के परिणामस्वरूप मूत्र **(urine)** की उत्पत्ति होती है।

11.5 मूत्र निर्माण –

एक सामान्य स्वस्थ मनुष्य प्रतिदिन एक से 1.5 लीटर मूत्र का उत्सर्जन करता है इसमें 95 प्रतिशत मात्रा जल की होती है शेष 2 प्रतिशत अनावश्यक लवण, 2.6 प्रतिशत यूरिया, 0.3 प्रतिशत क्रिटीनीन, सूक्ष्म मात्रा में यूरिक एसिड व अन्य पदार्थ होते है। मूत्र में यूरोक्रोम नामक पदार्थ की उपस्थिति के कारण इसका रंग हल्का पीला होता है।

मूत्र

कार्बनिक पदार्थ	अकार्बनिक पदार्थ
यूरिया	सोडियम
यूरिक एसिड	पोटोशियम
क्रिएटीनीन	कैल्शियम
अमोनिया	क्लोराइड
	फास्फेट
	सल्फेट

मूत्र में अपनी एक विशेष प्रकार की गंध (एरोमैटिक) होती है। यदि मूत्र को कुछ समय रखा जाए तो उसमें जीवाणुओं की क्रिया होनी शुरू हो जाती है तथा मूत्र की गंध तीव्र हो जाती है। मूत्र अम्लीय स्वभाव (4.5 से 6 पी.एच.) का होता है। शरीर में मूत्र की मात्रा पर बहुत सारे कारणों का प्रभाव पड़ता है।

मूत्र की मात्रा पर जल पीने की मात्रा का भी प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त लिए हुए भोजन, दवाईयाँ, हारमोन्स तथा संवेदनात्मक परिस्थितियों का प्रभाव भी पड़ता है। भोजन में उत्तेजक पदार्थो जैसे– चाय, कॉफी, एल्कोहल तथा मिर्च मसालों का प्रयोग करने पर मूत्र का आयतन बढ़ जाता है तथा इसके विपरीत तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, पान मसाला तथा निकोटीन युक्त पदार्थो का सेवन मूत्र की मात्रा को कम कर देता है।

शरीर में मूत्र की उत्पत्ति के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन क्रियाऐं होती है–

A. निस्यांदित क्रिया **(Filteration)**

B. पुर्नअवशोषण **(Reabsorbition)**

C. उत्सर्जन **(Excertion)**

A. निस्यंदित क्रिया–

इस क्रिया के अन्तर्गत रक्त वृक्राणुओं में भर जाता है तथा वृक्राणुओं में छलनी के समान रचना पायी जाती है जिसके अन्दर से जब यह रक्त गुजरता है तो इसमें उपस्थित यूरिया, यूरिक एसिड आदि हानिकारक पदार्थ आदि छानकर अलग कर लिए जाते है। इस क्रिया में रक्त को शु(बनाने का कार्य किया जाता है। शरीर में यह निस्यंदित क्रिया प्रतिक्षण चलती रहती है तथा इसकी गति भी बहुत तीव्र होती है एक स्वस्थ मनुष्य में इस क्रिया के अन्तर्गत प्रतिदिन 180 ली0 रक्त छानने का कार्य किया जाता है।

B. पुर्नअवशोषण–

रक्त के एक बार छनने के बाद छने हुए पदार्थो का एक बार पुर्नः अवशोषण किया जाता है यह क्रिया पुर्नअवशोषण क्रिया कहलाती है। इस क्रिया के अन्तर्गत शरीर के उपयोगी पदार्थो को पुनः अवशोषित कर लिया जाता है। पुर्नः अवशोषित होने वाले पदार्थो में जल, ग्लूकोज, एमीनो अम्ल, प्रोटीन, सोडियम तथा पोटैशियम होता है। पुर्नः अवशोषण की क्रिया में यूरिया, यूरिक एसिड, अमोनिया, आदि का अवशोषण नहीं किया जाता बल्कि इन पदार्थो को छने हुए रक्त से अलग करते हुए उत्सर्जन के लिए अलग कर दिया जाता है।

C. उत्सर्जन–

वृक्राणुओं द्वारा रक्त में स्थित अधिकांश उपयोगी पदार्थो का शोषण कर लिया जाता है। किन्तु वे उत्सर्जित पदार्थ जो शरीर के लिए किसी भी रूप में उपयोगी नहीं होते तथा जिनका शरीर में बने रहना हानिकारक सिद्ध होता है ऐसे पदार्थो को द्रव रूप में मूत्र के रूप में उत्सर्जित करने की क्रिया उत्सर्जन कहलाती है।

उत्सर्जन की इस क्रिया में सबसे मुख्य पदार्थ यूरिया होता है एक स्वस्थ व्यस्क मनुष्य द्वारा 25–30 ग्राम यूरिया का प्रतिदिन मूत्र के रूप में उत्सर्जन किया जाता है उत्सर्जन की इस क्रिया में पोटैशियम, हाइड्रोजन, अमोनिया, नाइट्रोजन के साथ–साथ अतिरिक्त रक्त शर्करा आदि का उत्सर्जन किया जाता है, इसके अतिरिक्त कुछ विशेष अवस्थाओं में मूत्र में निम्नलिखित पदार्थो की मात्रा बढ़ जाती है–

मूत्र में रक्त शर्करा (ग्लूकोज) की बढ़ी हुई मात्रा मधुमेह **(Diabities)** रोगों को प्रदर्शित करती है।

मूत्र में प्रोटीन की बढ़ी हुई मात्रा एल्ब्यूमिनेरिया **(Albumenoria)** रोग का लक्षण है।

मूत्र में सोडियम व पोटेशियम के कण (क्रिस्टल) गुर्दे की पथरी **(Kidney Stone)** को प्रकट करते हैं।

मूत्र में पित्त की बढ़ी मात्रा पीलिया **(Joince)** रोग का लक्षण है।

मूत्र में रक्त का आना संक्रमण **(Infection)** का लक्षण है।

11.6 मूत्र त्याग–

वृक्कों से छनने के उपरान्त उत्सर्जित पदार्थ मूत्र के रूप में वृक्कों से मूत्र नलियों के द्वारा मूत्राश्य में लाये जाते है मूत्राशय में 600–800 मिली0 मूत्र को ग्रहण करने की

क्षमता पायी जाती है। मूत्राशय में जब 300 मिली0 मूत्र संचित हो जाता है तब इसकी सूचना मस्तिष्क में दी जाती है मस्तिष्क में इसे नियंन्त्रण करने का केन्द्र सेरिबरल काटैक्स में होता है। इस केन्द्र के उत्तेजित होने पर आन्तरिक मूत्रीय मार्ग छिद्र खुल जाता है तथा वहाँ पर स्थित संकुचनी मांसपेशी के शिथिल होने पर मूत्र बाहर निष्कासित होने लगता है।

बच्चों में मस्तिष्क का पूर्ण विकास नहीं होने के कारण मूत्राश्य में स्थित संकोचनी मांसपेशी पर पूर्ण नियन्त्रण नहीं होता जिस कारण बाल्य अवस्था में मूत्र उत्सर्जन की क्रिया पर बच्चों का नियन्त्रण नहीं पाया जाता परन्तु उम्र बढ़ने के साथ–साथ जैसे–जैसे मस्तिष्क का विकास होता है, वैसे–वैसे ही संकुचनी पेशी पर नियन्त्रण प्राप्त होने से मूत्र त्याग पर भी नियन्त्रण होने लगता है। मनुष्य मूत्र की उत्पत्ति पर ए.डी.एच नामक हारमोन्स का सीधा प्रभाव पड़ता है इस हारमोन का स्रावण कम होने पर मूत्र पतला हो जाता है तथा मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है। इस अवस्था में बार–बार मूत्र त्याग की इच्छा होती है। इस अवस्था को बहु मूत्र रोग कहा जाता है। जबकि इसके विपरीत शरीर में मूत्र का कम निर्माण अथवा ना बनना एन्यूरिया कहलाता है।

अभ्यास प्रश्न

सत्य / असत्य

1. वृक्क की मूल रचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई न्यूरान कहलाती है।
2. एक स्वस्थ मनुष्य के वृक्क प्रतिदिन 100 लीटर रक्त को निस्यंदित करने का कार्य करते है।
3. ए.डी.एच. हार्मोन की मात्रा कम होने पर मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है।
4. प्रत्येक वृक्क के उर्ध्व ध्रुवों पर एक–एक अधिवृक्क ग्रन्थि पाई जाती है।
5.एक वृक्क में वृक्क पिरौमिडों की संख्या 8 से 18 होती है।

बहुविकल्पीय प्रश्न–

6.उत्सर्जन तंत्र का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है–

क. शरीर को ऊर्जा प्रदान करना।
ख. शरीर को दृढता प्रदान करना।
ग. शरीर की शुद्ध करना।
घ. शरीर की रक्षा करना।

7.वृक्काणुओं की संख्या होती है–

क. 2 हजार से 5 हजार
ख. 10 हजार से 12 हजार
ग. 2 लाख से 5 लाख
घ. 10 लाख से 12 लाख

8.किस पदार्थ के कारण मूत्र का रंग पीला होता है–

क. ग्लूकोज के कारण
ख. यूरोक्रोम के कारण
ग. यूरिक ऐसिड के कारण
घ. प्रोटीन के कारण

9.मूत्र में जल की मात्रा कितनी होती है–

क. 99 प्रतिशत
ख. 95 प्रतिशत
ग. 75 प्रतिशत
घ. 50 प्रतिशत

10.निम्न में से सही नहीं है–

क. जाड़ों में मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है।
ख. गर्मी में मूत्र की मात्रा घट जाती है।
ग. चाय–काफी का सेवन से मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है।
घ. निकोटिन युक्त पदार्थो के सेवन से मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है।

11.7 सारांश–

इस इकाई में आपने वृक्कों की संरचना एवं क्रिया विधि का अध्ययन किया। उत्सर्जन क्रिया वह महत्वपूर्ण क्रिया है जिसके माध्यम से शरीर चय–अपचय क्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न हानिकारक पदार्थो का उत्सर्जन करता है। यह शरीर के शु(िकरण की एक ऐसी क्रिया है जिसके माध्यम शरीर की गन्दगियों को द्रव रूप ;मूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकाला जाता है। जब तक यह तंत्र कार्य भलि–भाँति करता रहता है तब तक शरीर विकारों से मुक्त रहता है किन्तु जब यह तंत्र अपना कार्य ठीक से नहीं कर पाता, ऐसी अवस्था में शरीर में गन्दगियों की मात्रा (यूरिया, यूरिक एसिड) बढ़ जाती है और शरीर में रोग उत्पन्न होने लगते है।

11.8 शब्दावली

उदर	पेट
रचनात्मक	रचना करने वाली
क्रियात्मक	क्रिया करने वाली
संवेदना	एक उत्तेजना

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.	सत्य	6.	ग
2.	असत्य	7.	?k
3.	सत्य	8.	[k
4.	सत्य	9.	[k

5. सत्य 10. ?k

11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, सुमित प्रकाशन आगरा

2.डा. राजेश दीक्षित, शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा

3.डा. ओ.पी. सक्सैना, एनाटमी एण्ड फिजियोलॉजी भाषा भवन, मथुरा

4. K. Sembulingam, Prema Sembulingam Essentials of Medical Physiology, Jaypee Brothers Medical Publishers (P) Ltd. New Delhi.

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.उत्सर्जन तंन्त्र की संरचना का विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।

2.उत्सर्जन तंन्त्र की क्रियाविधि का वर्णन करते हुए किडनी के कार्यो की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।

इकाई 12 – पाचन तंत्र एवं उत्सर्जन तन्त्रों पर यौगिक प्रभाव

इकाई की संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 पाचन तंत्र पर यौगिक प्रभाव

12.3.1 पाचन तंत्र पर षटकर्मो का प्रभाव

12.3.2 पाचन तंत्र पर आसनों का प्रभाव

12.3.3 पाचन तंत्र पर मुद्राओं व बन्धों का प्रभाव

12.3.4 पाचन तंत्र पर प्राणायाम का प्रभाव

12.3.5 पाचन तंत्र पर प्रत्याहार का प्रभाव

12.3.6 पाचन तंत्र पर ध्यान का प्रभाव

12.4 उत्सर्जन तंत्र पर यौगिक प्रभाव

12.4.1 उत्सर्जन तंत्र पर षटकर्मो का प्रभाव

12.4.2 उत्सर्जन तंत्र पर आसनों का प्रभाव

12.4.3 उत्सर्जन तंत्र पर मुद्राओं व बन्धों का प्रभाव

12.4.4 उत्सर्जन तंत्र पर प्राणायाम का प्रभाव

12.4.5 उत्सर्जन तंत्र पर प्रत्याहार का प्रभाव

12.4.6 उत्सर्जन तंत्र पर ध्यान का प्रभाव

12.5 सांराश

12.6 शब्दावली

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.9 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना :

जिज्ञासु पाठकों पिछली इकाई में आपने पाचन तंत्र एवं उत्सर्जन तंत्र का अध्ययन किया। पाचन तंत्र के द्वारा शरीर भोज्य पदार्थो से ऊर्जा प्राप्त करता है। वही उत्सर्जन तंत्र शरीर में स्थित अविशिष्ट वर्ज्य पदार्थो को बाहर निकालने का कार्य करता है। पाचन तंत्र के माध्यम से ही सम्पूर्ण शरीर ऊर्जा प्राप्त करता है। इस कारण यह अत्यन्त महत्वपूर्ण तंत्र है। जब तक यह तंत्र अपने कार्य को भलीभाँति करता रहता है तब तक शरीर में ऊर्जा एवं स्फूर्ति बनी रहती है। इसी कारण ''पेट का स्वास्थ्य, आपका स्वास्थ्य व पेट स्वस्थ', आप स्वस्थ, पेट रोगी आप रोगी ' जैसी अनेकों लोकोक्ति समाज में प्रचलित है। वही उत्सर्जन तंत्र के भलीभाति कार्य ना करने से शरीर की सफाई भलीभाति नही हो पाती और गन्दगिया शरीर में ही एकत्र होने लगती है जिससे आगे चलकर अनेकों प्रकार के रोग पैदा हो जाते है। यद्यपि योग एक चिकित्सा पद्यति ना होकर एक जीवन शैली है इसका अर्थ यह है कि योग केवल बीमार व्यक्तियों द्वारा ही नही अपनाया जाता अपितु यह स्वस्थ व्यक्तियों के जीवन का एक अंग हे। योग के विभिन्न अंगो जैसे षटकर्म, आसन, प्राणायाम तथा ध्यान आदि का इन दोनों ही तंत्रों पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्रस्तुत इकाई में हम पाचन तंत्र एवं उत्सर्जन तंत्र पर इन यौगिक क्रियाओं के प्रभावों का अध्ययन करेंगें।

12.2 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- पाचन तंत्र पर यौगिक क्रियाओं के प्रभाव को समझा सकोगे।
- उत्सर्जन तंत्र पर यौगिक क्रियाओं के प्रभाव की व्याख्या कर सकोगे।
- पाचन तंत्र एवं उत्सर्जन तंत्र के रोगों की यौगिक चिकित्सा को जान सकोगे।

12.3 पाचन तन्त्र पर यौगिक अभ्यासों का प्रभाव :

योग का प्रारम्भ शुद्ध सात्विक आहार से होता है इस सन्दर्भ में गीता में योगिराज श्री कृष्ण कहते हैं।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

(गीता 6/17)

अर्थात जिस व्यक्ति के आहार–विहार ठीक है, जिसके कार्यो की निश्चित दिनचर्या है। जिसका सोना और जागना निश्चित है, ऐसे योगी व्यक्ति को किसी प्रकार का

दुःख नहीं होता। तात्पर्य है कि जो व्यक्ति अपने जीवन को योगमय शैली में व्यतीत करता है वह सभी प्रकार के दुःखो, कष्टों व बिमारियों से मुक्त जीवन व्यतीत करता है। योग के ग्रन्थों में अत्याहार को (अधिक आहार का सेवन करना) को एक बाधक तत्व माना गया है तथा इसके स्थान पर मिताहार का उल्लेख किया गया है। मिताहार की व्याख्या करते हुए महर्षि घेरण्ड कहते है कि यदि आमाश्य के चार भाग किये जाते तो दो भाग अन्न के लिए एक भाग जल के लिए तथा एक भाग वायु संचालन के लिए खाली रखना मिताहार कहलाता है। अर्थात योग के ग्रन्थों में भरपेट भोजन के स्थान पर केवल आधे पेट भोजन सेवन को निर्देशित किया गया है। विभिन्न चिकित्सक अपने अनुभवों के आधार पर इस तथ्य को स्वीकारते हैं कि अधिक आहार लेने से अपच, कब्ज, गैस, एसिडिटी, अम्लपित्त तथा अल्सर जैसे रोग उत्पन्न होते हैं। वही कम भोजन लेने से पाचन तंत्र भली–भाँति सक्रिय और क्रियाशील रहता है।

पाचन तंत्र पर यौगिक अभ्यास भी बहुत सकारात्मक प्रभाव डालते है, जिनका वर्णन इस प्रकार है :–

12.3.1 पाचन तंत्र पर षटकर्मो का प्रभाव :– षटकर्म के अन्तर्गत धौति, बस्ति, नेति, नौलि, त्राटक और कपालभाँति, नामक छः शोधन क्रियाओं का वर्णन आता है। ये शोधक क्रियायें पाचन तंत्र की सफाई करती है।

धौति क्रिया का सम्बन्ध आमाश्य से है यह क्रिया सम्पूर्ण आमाश्य अर्थात पेट की सफाई करती है। इस क्रिया के अन्तर्गत वमन तथा वस्त्र के माध्यम से पाचन संस्थान की सफाई की जाती है। वमन करने से अम्लपित्त, एसीडिटी, पेट में गैस बनना, पेट में जलन, पेट में भारीपन आदि रोगों में विशेष लाभ प्राप्त होता है।

वस्त्र धौति के अभ्यास से पाचन नली की सफाई होती है तथा आमाश्य में पाचक रसों के स्राव की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे भूख भली–भाँति लगती है तथा भोजन का पाचन भी अच्छी प्रकार होने लगता है।

धौति क्रिया के अन्तर्गत ही शंखप्रक्षालन क्रिया का वर्णन भी यौगिक शास्त्रों में किया जाता है। इस क्रिया के अन्तर्गत गर्म नमकीन पानी को पीने के उपरान्त कुछ निश्चित आसन किये जाते है, जिन्हें करने से यह पानी पूरे पाचन संस्थान की सफाई करता हुआ अधोमार्ग से बाहर निकल जाता है। इस क्रिया के अभ्यास से पूरे पाचन तंत्र की सफाई तथा कब्ज जैसा खतरनाक रोग दूर होता है।

षटकर्म की दूसरी क्रिया बस्ति क्रिया है। इस क्रिया का पाचन संस्थान पर गहरा प्रभाव पड़ता है। आयुर्वेद में वात का मुख्य स्थान बड़ी आत माना गया है यहाँ पर स्थित वायु यदि कुपित हो जाती है तो भिन्न–भिन्न प्रकार के वात रोग पैदा होते है। इस वात को वस्ति कर्म के अभ्यास से बड़ी आसानी से शान्त किया जा सकता है। अतः पेट में गैस बनना, डकारे आना, पेट में दर्द, अफारा तथा कब्ज आदि रोग में भी वस्ति क्रिया लाभ पहुँचाती है। यह उदर की वायु मस्तिष्क में जाकर सिर दर्द का कारण बनती है। वस्ति क्रिया के अभ्यास से इस रोग में भी लाभ मिलता है, तथा अल्सर, बवासीर आदि रोग नहीं होते।

नेति क्रिया का पाचन तंत्र से सीधा–सीधा सम्बन्ध नहीं होता है। नौलि क्रिया का पाचन तंत्र पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। नौलि क्रिया से पेट के आन्तरिक अंग हष्ट–पुष्ट तथा मजबूत होते है। नौलि क्रिया में जब पेट की मांसपेशियों का संचालन किया जाता है। तब पेट की अच्छी तरह मालिश होती है तथा जठराग्नि, प्रदिप्त होती है। परिणाम स्वरूप भोजन का पाचन अच्छी प्रकार होने लगता है तथा भूख भली–भाँति लगने लगती है।

त्राटक कर्म का सम्बन्ध मानसिक एकाग्रता से है, जिसका प्रभाव तंत्रिका तंत्र पर पड़ता है तथा इससे शरीर के सभी तंत्र सुव्यवस्थित होते है।

कपालभाँति का अभ्यास प्रश्वास के साथ शरीर के हानिकारक पदार्थो को बाहर निकालता है। कपालभाँति के अभ्यास से सभी पाचन अंगों जैसे आमाश्य, आँत, लीवर, पेन्क्रियाज आदि पर प्रभाव पड़ता है तथा ये अंग क्रियाशील बनते हैं।

12.3.2 पाचन तंत्र पर आसनों का प्रभाव :–

आसनों का सीधा प्रभाव पाचन तंत्र पर पड़ता है। यद्यपि आसन में यह सावधानी विशेष रूप से रखी जाती है कि आसन सदैव खाली पेट ही किये जाने चाहिये। किन्तु व्रजासन का प्रभाव अभ्यास भोजन करने के तुरन्त बाद किये जाने से भोजन का पाचन अच्छी प्रकार होता है। आसन करते समय पाचन अंगों पर पोजेटिव और निगेटिव दबाव (दबाव और खिंचाव) उत्पन्न होता है। जिस समय इन अंगों पर दबाव पड़ता है उस समय इन अंगों की ओर रक्त संचार बन्द हो जाता है तथा जैसे ही यह दबाव हटता है उस समय बहुत तेजी के साथ रक्त उस अंग में भर जाता है, जिससे उस अंग की गन्दगियाँ हटती है तथा उसे ज्यादा मात्रा में शुद्ध ऑक्सीजन एवं पोषक पदार्थो की प्राप्ति होती है। इस प्रकार ऐसे आसनों का अभ्यास करने से पाचन तंत्र स्वस्थ सक्रिय एवं मजबूत होता है।

धुनरासन, हलासन, पवनमुक्तासन, उत्तानपादासन, योग मुद्रासन, मण्डूकासन, शंशाकासन, उष्ट्रासन, अर्द्धमत्सेद्रासन, वज्रासन, सुप्त वज्रासन तथा मयूरासन ऐसे आसन है जिनका प्रभाव पूरे पाचन तंत्र पर पड़ता है।

नियमित आसनों के अभ्यास करने से अपच, गैस, भूख ना लगना, कब्ज, अल्सर, एसिडिटी, मधुमेह आदि रोग नहीं होते है तथा इन आसनों का अभ्यास पाचन तंत्र को वज्र के समान मजबूत बना देता है। शास्त्र का यह भी कथन है कि मयूरासन का अभ्यास विष को पचाने की क्षमता प्रदान करने वाला होता है। इस प्रकार आसनों का अभ्यास पेट की मांसपेशियों को मजबूती प्रदान करते हुए पाचन तंत्र को स्वस्थ, सक्रिय एवं मजबूत बनाता है।

आसनों के क्रम में बारह (12) आसनों को सम्मिलित अभ्यास सूर्य नमस्कार कहलाता है। इस सूर्य नमस्कार का अभ्यास पाचन तंत्र को स्वस्थ एवम सक्रिय बनाता है। साथ ही साथ कब्ज, मोटापा, मधुमेह, गैस, पेट दर्द, भूख न लगना आदि पाचन सम्बन्धित रोगों को दूर करता है।

12.3.3 पाचन तंत्र पर मुद्राओं व बन्धों का प्रभाव :–

पाचन तंत्र पर विभिन्न मुद्राओं एवं बन्धों का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यद्यपि मुद्राओं का मूल प्रभाव शरीर को स्थिरता प्रदान करता है। किन्तु इन मुद्राओं का अभ्यास अप्रत्यक्ष रूप में शरीर के सभी तंत्रों को प्रभावित करता है।

मुद्राओं में मुख्य रूप से तड़ागी मुद्रा, माण्डुकी मुद्रा, अश्वनी मुद्रा, पाशिनि मुद्रा, भुजडिग्नी मुद्रा पाचन तंत्र को विशेष रूप से प्रभावित करती है। बन्धों का भी पाचन तंत्र पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। मूल बन्ध का अभ्यास बड़ी आंत को विशेष रूप से सक्रिय एवं क्रियाशील बनाता है तथा पाचन तंत्र के रोगों को भी दूर करता है। उड्डियानबंध उदर प्रदेश में विपरीत दबाव पैदा करता है। उड्डियानबंध का अभ्यास पेट की मांसपेशियों को लचीली तथा क्रियाशील बनाता है। यह लीवर, आमाश्य तथा आंतों को क्रियाशील बनाता है। उड्डियान बंध के अभ्यास से विभिन्न पाचक रस अधिक मात्रा में स्रावित होते है, जिससे भोजन का पाचन भली–भाँति होता है।

महाबंध का अभ्यास पेट के आन्तरिक अंगों की मालिश करता है। इसका अभ्यास करने से सम्पूर्ण पाचन तंत्र उत्तेजित क्रियाशील एवं विकार रहित होता है।

12.3.4 पाचन तंत्र पर प्राणायाम का प्रभाव :–

प्राणायाम से तात्पर्य प्राण तत्व का विस्तार करने से है। प्राणायाम का अभ्यास करने से शुद्ध प्राण वायु (ऑक्सीजन) अधिक मात्रा में शरीर को प्राप्त होती है, जिससे शरीर की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। इसी कारण प्राणायाम का अभ्यास करने से शरीर की चयापचय दर (मैटाबोलिक रेट) संतुलित होता है तथा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

शरीर का शोधन करने वाले एवं शरीर में उष्मा उत्पन्न करने वाले प्राणायाम का पाचन तंत्र पर विशेष प्रभाव पड़ता है। नाड़ी शोधन प्राणायाम का अभ्यास करने से नाड़ियों की शुद्धि होती है। भूख अच्छी लगती है, कब्ज आदि रोग नहीं होते एवं पाचन तंत्र भली–भाँति क्रियाशील रहता है।

सूर्यभेदी, उज्जायी तथा भस्त्रिका प्राणायाम का अभ्यास पाचन तंत्र को सक्रिय एवं ऊर्जावान बनाता है। इन प्राणायामों के अभ्यास से पाचन तंत्र सक्रिय एवं उर्जावान होता है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है एवं पाचन तंत्र सम्बन्धित रोग नही होते।

भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास अन्तःस्रावी ग्रन्थियों को प्रभावित करता है। जिसका सकारात्मक प्रभाव पाचन तंत्र पर भी पड़ता है।

12.3.5 पाचन तंत्र पर प्रत्याहार का प्रभाव :–

प्रत्याहार से तात्पर्य इंद्रियो पर संयम करने से है। प्रत्याहार का पालन करने से पाचन तंत्र सुव्यवस्थित रूप में कार्य करता है। जबकि इंद्रियों पर असंयम भिन्न–2 प्रकार के रोगों एवं व्याधियों को पैदा करता हैं। प्रत्याहार के अन्तर्गत व्यक्ति राजसिक एवं तामसिक आहार के स्थान पर केवल सात्विक आहार ही ग्रहण करता है। साथ ही साथ अत्यधिक मिर्च मसाले एवं नमक का त्याग करता हुआ प्राकृतिक आहार का सेवन करता है। जिसका सकारात्मक प्रभाव पाचन तंत्र पर पड़ता है। प्रत्याहार का अभ्यासी साधक

मिताहार का भी पालन करता है अर्थात वह निश्चित समय पर अल्प मात्रा में आहार ग्रहण करता है, ऐसा करने से कब्ज, एसीडिटी, अल्सर तथा गैस आदि रोग नही होते एवं पाचन तंत्र सुव्यवस्थित रूप में अपना कार्य करता है।

12.3.6 पाचन तंत्र पर ध्यान का प्रभाव :–

ध्यान से तात्पर्य शरीर एवं मन की एक रूपता से होता है। ध्यान का अभ्यास मानसिक एकाग्रता को उत्पन्न करता है, यह एकाग्रता अन्तःस्रावी तंत्र को प्रभावित करती है। ध्यान के अभ्यास से पिटयूटरी ग्रन्थि प्रमुख रूप से प्रभावित होती है। जिसका प्रभाव पाचन तंत्र पर भी पड़ता है। ध्यान के अभ्यास से वे पाचक रस एवं अन्तःस्रावी हार्मोन्स प्रभावित होते हैं जो भोजन के अच्छी प्रकार पाचन के लिए आवश्यक होते है।

ध्यान की प्रक्रिया के फलस्वरूप आमाशय का आकार, आंतो का आकार, लीवर तथा पैन्क्रियाज पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत क्रोध, आवेश, भय तथा चिन्ता आदि का पाचन तंत्र पर दुष्प्रभाव पड़ता है। भोजन के पाचन में बाधा उत्पन्न होती है तथा कब्ज, अर्जीण, अपच, मधुमेह आदि रोगों की उत्पत्ति होती है। इन सभी रोगों में ध्यान करने से अच्छा प्रभाव पड़ता है।

12.4 उत्सर्जन तंत्र पर यौगिक प्रभाव :–

यौगिक क्रियाए मुख्य रूप से शरीर शोधन का कार्य करती है शोधन का अर्थ यह है कि ये क्रियाएं शरीर में स्थित गन्दगियों, विषाक्त पदार्थो एवं अविशिष्ट पदार्थो को बाहर निकालने का कार्य करती है, जबकि उत्सर्जन तंत्र का भी मूल कार्य शरीर में स्थित इन उत्सर्जित पदार्थो को बाहर निकालने का होता है अर्थात इन क्रियाओं का उत्सर्जन तंत्र पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इन क्रियाओं के अभ्यास से उत्सर्जन तंत्र पर वंर्ज्य पदार्थो को शरीर से बाहर निकालने का भार कम होता है। जिससे यह तंत्र अधिक कुशलता एवं आसानी से अपना कार्य करता है। इन क्रियाओं का अभ्यास उत्सर्जन तंत्र के रोगों को भी दूर करता है।

उत्सर्जन तंत्र पर यौगिक क्रियाओं के प्रभाव का अवलोकन इस प्रकार है :–

12.4.1 उत्सर्जन तंत्र पर षटकर्मो का अभ्यास :–

धौति, बस्ति, नेति, नौली एवं त्राटक नामक षटकर्म उत्सर्जन तंत्र को भली–भाँति प्रभावित करते हैं। इन षटकर्मो की दूसरी संज्ञा शोधन कर्म ही है। अर्थात ये क्रियाऐं शरीर की शुद्धि करती है, जिनका सकारात्मक प्रभाव उत्सर्जन तंत्र पर पड़ता है।

धौति क्रिया में अधिक जल का सेवन किया जाता है। अधिक जल पीने से वृक्कों की क्रियाशीलता बढ़ती है एवं मूत्र निर्माण की क्रिया भी तीव्र होती है। इस क्रिया के तीव्र होने से उत्सर्जन तंत्र के रोग भी दूर होते है।

बस्ति क्रिया बड़ी आंत से सम्बन्धित है चूँकि बड़ी आंत शरीर के ठोस मल पदार्थो को उत्सर्जित करती है। अतः यह क्रिया इसकी क्रियाशीलता बढ़ाती हुई उत्सर्जन तंत्र को स्वस्थ एवं मजबूत बनाती है।

नेति कर्म का अच्छा प्रभाव उत्सर्जन तंत्र पर पड़ता है। नौली कर्म से वृक्कों की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। नौली क्रिया के अन्तर्गत उदर में स्थित आन्तरिक अंगों की मालिश होती है। अतः इससे वृक्क की कोशिकाएं (वृक्काणु) भी प्रभावित होती है एवं अधिक क्रियाशील होकर अपना कार्य करती हैं।

त्राटक कर्म का प्रत्यक्ष प्रभाव उत्सर्जन पर नहीं पड़ता। कपालभाँति क्रिया वायु एवं जल के द्वारा शरीर का शुद्धिकरण करती है, जिससे शरीर में स्थित विषाक्त उत्सर्जित पदार्थ बाहर निकालते है। इससे उत्सर्जन तंत्र भी विकार रहित स्वस्थ बनता है।

12.4.2 उत्सर्जन तंत्र पर आसनों का प्रभाव :-

आसन उत्सर्जन तंत्र पर बहुत अच्छा प्रभाव रखते हैं कुछ आसनों पर तो विशेष रूप से अनुसंधान करके पाया गया कि इन आसनों का उत्सर्जन तंत्र पर तथा उत्सर्जन तंत्र से सम्बन्धित रोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। उष्ट्रासन, शलभासन, मत्यस्य आसन, धुनरासन, भुजंग आसन, उत्तानमण्डुक आसन (सुप्त वज्रासन) इसी क्रम के आसन हैं। अर्थात ये आसन उत्सर्जन तंत्र को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित तंत्र को स्वस्थ, मजबूत, क्रियाशील एवं विकार रहित बनाते हैं।

सूर्य नमस्कार के अभ्यास का भी उत्सर्जन तंत्र पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि सूर्य नमस्कार का अभ्यास करने से पहले एक गिलास गुनगुना अथवा गर्म पानी पीने से उत्सर्जन तंत्र की क्रियाशीलता बढ़ती है एवं कम मूत्र की उत्पत्ति, वृक्क शोथ (किडनी में सूजन), वृक्क प्रदाह (किडनी में जलन), किडनी स्टोन (पथरी) आदि रोगों पर नियन्त्रण प्राप्त होता है।

12.4.3 उत्सर्जन तंत्र पर मुद्रा एवं बन्धों का प्रभाव :-

उत्सर्जन तंत्र पर मुद्रा एवं बंध सकारात्मक प्रभाव रखती है। मुद्राओं में महामुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा, माण्डूकी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा एवं अश्वनी मुद्रा मुख्य रूप से उत्सर्जन तंत्र को प्रभावित करती है। इन मुद्राओं के नियमित अभ्यास से वृक्कों की क्रियाशीलता बनी रहती है तथा उत्सर्जन तंत्र स्वस्थ रहता है।मूलबन्ध तथा उड्डियान बंध का प्रभाव भी उत्सर्जन तंत्र पर पड़ता है। मूलबंध का अभ्यास करने से वृक्कों प खिंचाव पड़ता है, जिससे ये स्वस्थ तथा मजबूत होती है। इस अंग से सम्बन्धित रोग नहीं होते हैं। जबकि उड्डियान बंध का सीधा प्रभाव वृक्कों पर पड़ता है। उड्डियान बंध का अभ्यास वृक्कों पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दबाव उत्पन्न करता हुआ वृक्कों की क्रियाशीलता को बढ़ाता है। उड्डियान बंध का अभ्यास इन वृक्कों में स्थित गन्दगियों को भी तेजी के साथ बाहर निकालने में सहायता प्रदान करता है। इन बंधों के अभ्यास से वृक्क अल्पमूत्रता, बहुमूत्रता, संक्रमण, पथरी, आदि रोगों से मुक्त रहते हुए अपने कार्यो को भली भाँति करते रहते हैं। जालंधर बंध का प्रत्यक्ष प्रभाव इस तंत्र पर नहीं पड़ता है।

12.4.4उत्सर्जन तंत्र पर प्राणायाम का प्रभाव :

प्राणायाम के संदर्भ में महर्षि मनु, मनुस्मृति में लिखते हैं –

दहयन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यान्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात।।

अर्थात जैसे अग्नि आदि में तपाने से स्वर्ण आदि धातुओं के मल, विकार नष्ट हो जाते हैं। वैसे ही प्राणायाम से इन्द्रियों एवं मन के दोष दूर होते हैं। प्राणायाम का अभ्यास शरीर एवं मन को स्थिर करता है। प्राणायाम के अभ्यास से प्रॉस्ट्रेट ग्लैण्ड एवं किडनी आरोग्यता को प्राप्त होती है नियमित प्राणायाम का अभ्यास वृक्कों को ऊर्जावान बनाए रखता है एवं बहुमूत्र, अल्पमूत्र, किडनी फेल, किडनी में सूजन एवं किडनी में जलन आदि रोग दूर होते हैं। प्राणायाम के अभ्यास क्रम में अनुलोम–विलोम, नाड़ी शोधन, भ्रामरी एवं शीतली आदि का अच्छा प्रभाव पड़ता है।

12.4.5 उत्सर्जन तंत्र पर प्रत्याहार का प्रभाव :

प्रत्याहार से अर्थ इन्द्रियों एवं मन पर संयम से है। इन्द्रियों एवं मन पर संयम से आहार–विहार में अनुशासन शीलता एवं सात्विकता बढ़ती है जिसके प्रभाव से शरीर में कम उत्सर्जी पदार्थो की उत्पत्ति होती है एवं उत्पन्न उत्सर्जी पदार्थ भली प्रकार शरीर से निकलते हैं।

12.4.6 उत्सर्जन तंत्र पर ध्यान का प्रभाव :

ध्यान का सीधा सम्बन्ध अतः स्राव से है ध्यान के अभ्यास से अन्तः स्रावी ग्रन्थियों के स्राव (हारमोन्स) व्यवसथित रूप में स्रावित होते है, जिससे उत्सर्जन तंत्र भी सुव्यवस्थित रूप में कार्य करता है। वृक्कों के ऊपर स्थित अधिवृक्क ग्रंथि पर ध्यान का प्रभाव पड़ता है साथ ही ध्यान का प्रभाव सभी उत्सर्जन अंगों पर भी पड़ता है तथा ध्यान के अभ्यास से सभी उत्सर्जी अंग जैसे किडनी, मूत्राशय, मूत्र नलिका इत्यादि स्वस्थ रूप में अपना कार्य करते हैं।

अभ्यास प्रश्न–

सत्य असत्य

(1) वज्रासन का अभ्यास भोजन के तुरन्त बाद नहीं करना चाहिए।

(2) प्राणायाम का अभ्यास करने से शरीर की चयापचय दर (मेटाबोलिक रेट) सन्तुलित होता है।

(3) ध्यान के अभ्यास से पिटयूटरी पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

(4) नेति कर्म का प्रत्यक्ष प्रभाव उत्सर्जन तंत्र पर नहीं आता।

(5) प्रत्याहार से अर्थ इन्द्रियों एवं मन की स्वतंत्रता से है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

6. योग के ग्रन्थों में अत्याहार को माना गया है :–

(d) साधक तत्व ([k) बाधक तत्व

(x) रोग (?k) विक्षिप्त अवस्था

(7) विष को पचाने की क्षमता प्रदान करने वाला आसन है :–

(d) मयूरासन ([k) शीर्षासन

(x) हलासन (?k) सर्वागासन

(8) अधिक जल पीने से वृक्कों की क्रियाशीलता :–

(d) बढ़ती है ([k) घटती है।

(x) कभी बढ़ती तथा कभी घटती है। (?k) कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(9) बस्ति क्रिया का सीधा सम्बन्ध है :–

(d) आमाशय से ([k) बड़ी आँत से

(x) लीवर से (?k) वृक्कों से

(10) निम्न में से कौन सा आसन प्रत्यक्ष रूप से उत्सर्जन तंत्र को प्रभावित नहीं करता :–

(d) उष्ट्रासन ([k) शलभासन

(x) मत्स्यासन (?k) पश्चिमोन्तानासन

12.5 सारांश :–

इस प्रकार यह तथ्य स्पष्ट होता है कि यौगिक अभ्यासों का पाचन एवं उत्सर्जन तंत्र पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। नियमित रूप से इन क्रियाओं का अभ्यास करने से मनुष्य का पाचन तंत्र एवं उत्सर्जन तंत्र सदैव स्वस्थ बना रहता है एवं किसी भी प्रकार के रोगों से ग्रस्त नहीं होता। इसके विपरीत विकृत आहार–विहार के परिणाम स्वरूप यदि किसी का पाचन तंत्र एव उत्सर्जन तंत्र किसी प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है तो इस अवस्था में भी ये यौगिक अभ्यास तंत्र से सम्बन्धित उस रोग को दूर करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

यौगिक अभ्यासों में यौगिक षटकर्म के साथ विभिन्न आसनों के साथ–साथ प्राणायामों का अभ्यास पाचन तंत्र एवं उत्सर्जन तंत्र को स्वस्थ एवं क्रियाशील बनाते हैं। इन क्रियाओं का अभ्यास पाचन तंत्र से सम्बन्धित अंगों एवं उत्सर्जी अंगों की क्रियाशीलता को बढ़ाता है। इससे भोजन का पाचन, अवशोषण एवं मलों का निष्कासन व्यवस्थित होता है। यौगिक क्रियाओं का नियमित अभ्यास करने से भूख अच्छी लगती है तथा ग्रहण किया गया आहार अच्छी प्रकार पचता है। पचे हुए भोजन का अवशोषण भली प्रकार होता है तथा शेष मल पदार्थो का शरीर से अवशोषण भी अच्छी प्रकार होता है। पाचन तंत्र के अनुरूप इन यौगिक अभ्यासों का प्रभाव उत्सर्जन तंत्र पर भी पड़ता है। इन क्रियाओं के अभ्यास से उत्सर्जी अंगों जैसे बड़ी आंत, वृक्क, फेफड़ों एवं त्वचा की क्रियाशीलता बढ़ती है, जिससे उत्सर्जित पदार्थो का निष्कासन अच्छी प्रकार होता है तथा सम्पूर्ण शरीर स्वस्थ रहता हुआ अपने कार्यो को भली प्रकार करता है। अतः हमें चाहिए कि हम चित्त को काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं ईर्ष्या, द्वेष आदि विकारों से रहित करके सात्विक आहार–विहार करते हुए नियमित

ध्यान का भी अभ्यास करें। ऐसा करने से हम स्वस्थ शरीर और मन के साथ सुख एवं शान्तिपूर्वक अपने जीवन को सही दिशा एवं दशा में जी सकें।

12.6 पारिभाषिक शब्दावली :—

अविशिष्ट = अनुपयोगी।
वर्ज्य = त्यागने योग्य।
सकारात्मक = अच्छे रूप में।
अधोमार्ग = बड़ी आँत का अन्तिम भाग।
कुपित = विकृत अवस्था।
जठराग्नि = पेट में स्थित अग्नि जो भोजन पचाने का कार्य करती है।
प्रदिप्त = तीव्र अथवा तेज।
प्रत्यक्ष = सीधे।

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर :—

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

6.ख 7. क 8.क 9.ख 10.ख

12.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची :—

1. प्रो0 अनन्द प्रकाश गुप्ता, मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. डॉ0 राजेश दीक्षित, शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन मथुरा।
3. आरोग्य अंक, गीता प्रेस, गोरखपुर।

12.9 निबन्धात्मक प्रश्न :—

1. पाचन तंत्र पर यौगिक प्रभाव का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
2. उत्सर्जन तंत्र पर पड़ने वाले यौगिक प्रभाव का अवलोकन कीजिए।
3. पाचन तंत्र पर आसनों एवं प्राणायामों के प्रभाव की व्याख्या कीजिए।
4. उत्सर्जन तंत्र पर पड़ने वाले षटकर्मो एवं मुद्रा व बन्धों का प्रभाव लिखिए।

इकाई– 13 पिट्यूटरी, पीनियल, थाइरॉइड, पैराथाइरॉइड

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 पिट्यूटरी ग्रन्थि
13.3.1 अग्र खण्ड के हार्मोन एवं उनका प्रभाव
13.3.2 पश्च खण्ड के हार्मोन एवं उनका प्रभाव
13.4 पीनियल ग्रन्थि
13.4.1 पीनियल ग्रन्थि के कार्य
13.5थाइरॉइड ग्रन्थि
13.5.2थाइरॉइड ग्रन्थि के कार्य
13.5.2 थाइरॉइड ग्रन्थि के स्रावण की कमी एवं अधिकता से पड़ने वाले प्रभाव
13.6 पैराथाइरॉइड ग्रन्थि
13.6.1पैराथाइरॉइड के कार्य
13.6.2ग्रन्थि की सक्रियता से प्रभाव
13.7 सारांश
13.8 शब्दावली
13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1प्रस्तावना

आपने पिछली इकाईयों में शारीरिक संस्थानों के विषय में पढ़ा–सुना होगा। जिसमें आपने शरीर में उपस्थित तंत्रों की जानकारी प्राप्त की होगी। इस इकाई में आप अन्तःस्रावी तंत्र के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे। तंत्रिका तंत्र के प्रभाव से प्रभावित होने वाले ऐसे बहुत से शारीरिक तंत्र हैं जो शरीर में विद्यमान हैं। अन्तःस्रावी तंत्र इन्हीं का एक अति महत्वपूर्ण संस्थान है। यह तंत्र तनिका तंत्र के साथ मिलकर शरीर की विभिन्न क्रियाओं का नियमन करता है। अन्तःस्रावी संस्थान अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से मिलकर बनता है। ग्रंथिय संस्थान शरीर के रखरखाव और वृद्धि के लिये उत्तरदायी कई प्रकार की ग्रन्थियों से मिल कर बना होता है। ये ग्रन्थियाँ निम्न दो प्रकार की होती हैं –

1. बहिस्रावी (Exocrine)
2. अन्तःस्रावी (Endocrine)

बहिस्रावी ग्रन्थियाँ रासायनिक पदार्थों का स्रावण करती हैं, जैसे पसीना, अश्रु और लार आदि ये नलिकामय ग्रन्थियाँ भी कही जाती हैं (duct gland)। इन नलिकाओं से होकर स्राव उपयुक्त स्थान पर पहुँचता है। ये ग्रन्थियाँ लार ग्रन्थियाँ, श्वेद ग्रन्थियाँ, यकृत एवं अग्नाशय आदि हैं।अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का स्राव सीधे रक्त में मिल जाता है, और रक्त के साथ घूमते हुए शरीर के उस भाग में पहुँच जाते हैं जहाँ उसकी क्रिया होती है। अन्तःस्रावी संस्थान उत्तकों या अंगों, जिन्हें अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ (Endocrine gland) कहा जाता है, से मिलकर बनता है। इस प्रकार की ग्रन्थियों में वाहिकायें नहीं होती हैं, अतः इन्हें वाहिकाविहीन ग्रन्थियाँ (Ductless gland) भी कहा जाता है। इनमें उत्पन्न स्राव हॉर्मोन (Hormone) कहलाता है, जो ग्रन्थियों से निकलकर सीधे रक्त में मिल जाता है और रक्त के साथ भ्रमण करते हुए target cell तक पहुँच जाता है।

हॉर्मोन – हॉर्मोन शब्द ग्रीक भाषा Hormao से बना है, जिसका अर्थ to exite or arouse है।

हॉर्मोन अन्तःस्रावी ग्रन्थि से उत्पन्न हो कर target cell तक पहुँचने वाला वह रासायनिक संदेश वाहक (Chemical Messenger) है, जो उस अंग या उत्तक पर क्रिया कर के उसकी क्रियाशीलता को बढ़ा अथवा घटा देता है। प्रत्येक हॉर्मोन का एक निश्चित कार्य होता है एवं हॉर्मोन की सूक्ष्म मात्रा ही पर्याप्त होती है।

स्वरूप –

- हॉर्मोन जैविक पदार्थ हैं जो अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से स्रावित होते हैं।
- लोकल हॉर्मोन के अलावा जैसे सेक्स हॉर्मोन, एड्रिनलीन आदि ये रक्त में स्रावित होते हैं।
- ये विशेष अंगों के लिये स्रावित होते हैं जिन्हें टारगेट अंग कहा जाता है।
- ये साम्यावस्था को बनाये रखते हैं।

कार्य – Scharrer and Scharre, 1963 के अनुसार –

1. जनन सम्बन्धी कार्य–गेमिटोजेनिसिस को नियन्त्रित करना।
2. हॉर्मोन शरीर की वृद्धि में सहायक होते हैं।
3. ये उपापचयी दर तथा साम्यावस्था (Homeostasis) को बनाये रखकर शरीर को स्वस्थ बनाते हैं।
4. हॉर्मोन पाचन, श्वसन, रक्त परिभ्रमण तंत्र, लसिका संस्थान को नियन्त्रित व नियमित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
5. हॉर्मोन व्यवहार को भी प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा कर मानव जीवन को सामन्जस्यपूर्ण एवं तनावग्रस्त दोनों बना सकते हैं।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ - (Endocrine glands) – मानव शरीर में निम्नलिखित अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं –

1. पीयूष (Pitutary gland)
2. पीनियल (Pineal gland)
3. थाइरॉइड (Thyroid gland)
4. पैराथाइरॉइड (Parathyroid gland)
5. अधिवृक्क या एड्रीनल या सुप्रारीनल ग्रन्थि (Adrenal or Suprarenal gland)
6. अग्नाशयिक दीपिकायें (Islets of Langerhans in Pancreas)
7. थाइमस ग्रन्थि (Thymus gland)
8. जनन ग्रन्थियाँ (Gonads)

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप –

- अन्तःस्रावी तंत्र के विषय में जानेंगे।
- हॉर्मोन के विषय में जानेंगे।
- अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के बारे में जानेंगे।
- पिट्यूटरी ग्रन्थि के विषय में जानेंगे।
- पीनियल ग्रन्थि का परिचय प्राप्त करेंगे।
- थाइरॉइड, पैराथाइरॉइड के विषय में जानेंगे।

13.3 पीयूष ग्रन्थि (Pituitary Gland)

मानव शरीर रचना में पीयूष ग्रन्थि या Hypophysis एक मटर के आकार की अंतःस्रावी ग्रन्थि है। मनुष्यों में इसका वजन 0.5 ग्राम (0.02 ओंस) होता है। यह सेला टर्निका (Sella Turnica) या हाइपोफाइसियल फोसा (Hypophysial Fosa) में हाइपोथैलेमस के नीचे स्थित होती है। पीयूष ग्रन्थि एक अति महत्वपूर्ण अंतःस्रावी ग्रन्थि है जिसे मास्टर ग्रन्थि (Master Gland) भी कहा जाता है क्योंकि इससे उत्पन्न हॉर्मोन्स (Hormones) अन्य अंतःस्रावी ग्रन्थियों की सक्रियता को उद्दीप्त करते हैं।पीयूष ग्रन्थि शरीर के विकास में तथा शरीर में पानी के संतुलन को बनाये रखने में सहायता करती है।

पीयूष ग्रन्थि दो खण्डों में विभाजित होती है। पहले खण्ड को अग्रखण्ड (anterior lobe or adenohypophysis) कहा जाता है और दूसरे खण्ड को पश्च खण्ड

(posterior lobe or neurohypophysis) कहा जाता है। इन दोनों खण्डों की संरचना एवं कार्यों में अंतर है।

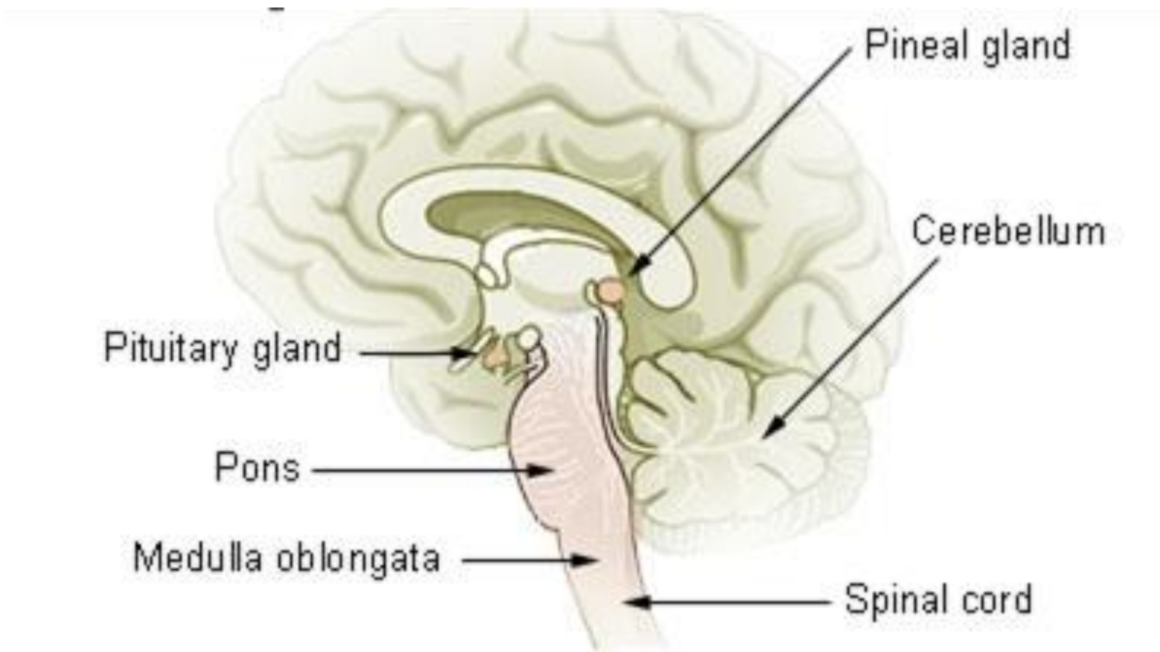

अग्रखण्ड उपकला कोशिका (Epithelial cell) का समूह है जो रक्त चैनलों से विभाजित होता है। इसके विपरीत पश्च खण्ड मस्तिष्क से सम्बन्धित होता है और तन्त्रिका तंत्र से निर्मित होता है एवं प्रत्यक्ष रूप से हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) से जुड़ा रहता है।

अग्रखण्ड व पश्च खण्ड से अलग–अलग हॉर्मोंस का स्राव होता है जो विभिन्न कार्यों के लिए उपयोगी होते हैं।

13.3.1 **अग्र खण्ड** (Anterior Pituitary or Adenohypophysis)

अग्रखण्ड निम्न सात हॉर्मोन्स का निर्माण करता है –

1. **वृद्धि हॉर्मोन** (Growth Hormone GH) **या सोमेटोट्रॉपिक हॉर्मोन** (Somatotropic Hormone)

- यह हॉर्मोन शरीर के किसी विशिष्ट लक्ष्य अंग को प्रभावित करने के बजाय, शरीर के उन समस्त भागों को प्रभावित करता है जो भाग वृद्धि से सम्बद्ध होते हैं।
- यह वृद्धि दर को बढ़ाता है और परिपक्वता की स्थिति निर्माण के बाद वृद्धि को बनाए रखता है।

- इससे शरीर की वृद्धि और विशेषकर लम्बी अस्थियों की वृद्धि का नियमन होता है।
- यह एक प्रोटीन पर आधारित पेप्टॉइड हॉर्मोन है। यह मनुष्यों और अन्य जानवरों में वृद्धि, कोशिका प्रजनन और पुनर्निर्माण को प्रोत्साहित करता है।

बच्चों और किशोरों में ऊँचाई बढ़ाने के अलावा वृद्धि हॉर्मोन के शरीर पर कई अन्य प्रभाव भी होते हैं –

- कैल्शियम के धारण में वृद्धि करता है और हड्डी के खनिजीकरण को बढ़ाता व उसको मजबूत करता है।
- वसा अपघटन को बढ़ावा देता है।
- प्रोटीन संश्लेषण बढ़ाता है।
- मस्तिष्क को छोड़कर सभी आंतरिक अवयवों के विकास को प्रोत्साहित करता है।
- यकृत में ग्लुकोज के जमाव को कम करता है।
- यकृत में ग्लाइकोजन उत्पादन को बढ़ावा देता है।
- अग्नाशय की द्वीपीकाओं के रख रखाव और कार्यकलाप में मदद करता है।
- रोगप्रतिरोधक प्रणाली को प्रोत्साहित करता है।

वृद्धि हॉर्मोन की कमी के प्रभाव

- बच्चों में वृद्धि लोप growth failure और छोटा कद (short structure) वृद्धि हॉर्मोन की कमी के मुख्य लक्षण हैं।

Diagram – 2

पीयूष ग्रन्थि (Pituitary Gland)

अग्रखण्ड (Anterior lobe or Adenohypophysis)	पश्च खण्ड Posterior lobe or Neurohypophysis
1. वृद्धि हॉर्मोन (Growth Hormone or Somatotropic hormone)	1. ऑक्सीटोसिन (Oxytocin)
2. थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन (Thyroid stimulating hormone, TSH)	2. वैसोप्रैसिन (Vassopressin or Antidiuretic Hormone ADH)
3. एड्रीनोकॉर्टिकोट्रॉपिक हॉर्मोन (Adrenocorticotropic Hormone ACTH)	
4. ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन (lutinizing Hormone LH)	
5. प्रोलैक्टिन (Prolactin)	
6. फॉलिकल उद्दीपक हॉर्मोन (Follicle Stimulating	

Hormone FSH)

7. मैलेनोसाइट उद्दीपक हॉर्मोन (Melanocyte Stimulating Hormone MSH)

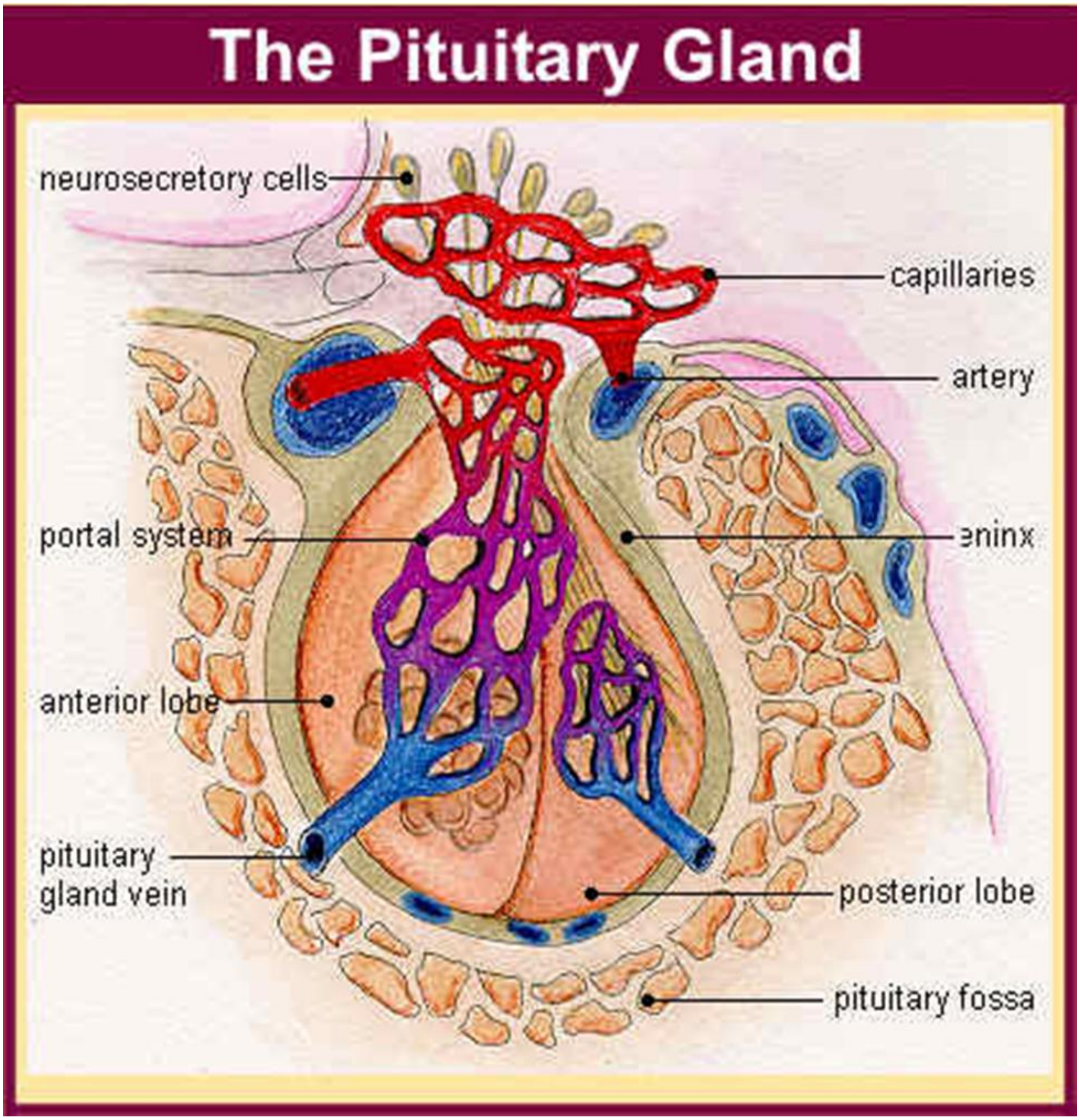

वृद्धि हॉर्मोन की अधिकता के प्रभाव :–

- वृद्धि हॉर्मोन के बाहुल्य के कारण जबड़े, हाथ व पैरों की हड्डियाँ मोटी हो जाती है। इसे एक्रोमिगेली (Acromegaly) कहते हैं।
- साथ में होने वाली समस्याओं में पसीना आना, नाडियों पर दबाव, पेशियों की शिथिलता, यौन क्रिया में कमी आदि हैं।

2. **थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन (Thyroid Stimulating Hormone TSH)**

- पीयूष ग्रन्थि द्वारा स्रावित यह एक महत्वपूर्ण हॉर्मोन है। थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन थाइरॉइड ग्रन्थि तक यात्रा करता है और थाइरॉइड ग्रन्थि को दो थाइरॉइड हॉर्मोन उत्पन्न करने के लिए उद्दीप्त करता है। यह दो थाइरॉइड हार्मोन एल–थाइरॉक्सिन (L-Thyroxine T4) और ट्राईआयोडोथायरोनिन (Triiodothyronine T3) हैं।
- पीयूष ग्रन्थि यह अनुभव कर सकती है कि कितना हॉर्मोन रक्त में है और उसके अनुसार कितना उत्पन्न करना है। अगर किसी कारण से इनका स्राव कम या अधिक हो जाए, तो यह विभिन्न रोगों के जन्म का कारण बनती है।

थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन की कमी के प्रभाव (Effect of Hypothyroidism) –

- उतकों में कमी, गलगंड (Goiter), वजन बढ़ना, माँसपेशियों में अकड़न आदि थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन की कमी के लक्षण हैं।

थाइरॉइड उद्दीपक की अधिकता के प्रभाव (Effect of Hyperthyroidism) –

- थाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रियता से अथवा थाइरॉइड ग्रन्थि से अत्यधिक मात्रा में हॉर्मोन का स्रावण होने से हाइपर थाइरॉडिस्म (Hyperthyroidism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में नेत्रोत्सेधी गलगण्ड (Exophthalmic goitre) हो जाता है। इस रोग के लक्षणों में आँखें बाहर को उभर जाती हैं नाड़ी गति बढ़ जाती है, त्वचा मुलायम और नम रहती है तथा रोगी को गर्मी का अनुभव अधिक होता है। अधिक भूख के बावजूद वजन कम होने लगता है। अंगुलियों में कंपन और हृदय गति तीव्र हो जाती है। वास्तव में थाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रियता 'आयोडीन' की कमी के कारण होती है।

3. **एड्रीनोकोर्टिकोट्रॉपिक हार्मोन** (Adrenocorticotropic Hormone ACTH)

- यह भी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण हॉर्मोन है जो पीयूष ग्रन्थि से स्रावित होता है। एड्रीनोकोर्टिकोट्रॉपिक हॉर्मोन अधिवृक्क प्रांतस्था (adrenal cortex) की

कोशिकाओं पर कार्य करता है और उसे ग्लूकोकोर्टिकोइड (glucocorticoid) जैसे कोर्टिसोल (cortisel), मिनरेलोकोर्टिकोइड (mineralocorticoid) जैसे एल्डोस्टेरोन (aldosterone), एन्ड्रोजन (androgen) जैसे पुरुष सैक्स हॉर्मोन टेस्टोस्टेरोन (testosterone) आदि उत्पन्न करने के लिए उत्तेजित करता है।

- इसकी अधिकता से कुशिंग रोक (cushing syndrome) हो जाता है।

4. **ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन** (Luteinizing Hormone LH)

- यह बड़े प्रोटीन हॉर्मोन हैं जो सामान्य परिसंचरण द्वारा गोनाडोट्रोप कोशिकाओं (Gonadotropic cells) में उत्पन्न होते हैं। एल.एच. (LH) वृषण की लेडिग कोशिकाओं (Leydig cells) को पुरुषों में टेस्टोस्टेरोन (testosterone) बनाने के लिए उत्तेजित करता है तथा स्त्रियों में नब्ज में वृद्धि के साथ–साथ योनि की थेका कोशिकाओं (Theca cells) को टेस्टोस्टेरॉन (testosterone) और उससे कुछ कम मात्रा में प्रोजेस्टेरॉन (Progesterone) उत्पन्न करने के लिए उत्तेजित करता है।

- Ovulation में सहायता करता है।

5. **प्रोलैक्टिन** (Prolactin)

- इसका लक्ष्य अंग mammary glands होते हैं तथा यह स्तनों को दूध उत्पादन के लिए उत्तेजित करता है। प्रोलैक्टिन प्रजनन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- प्रोलैक्टिन चयापचय के लिए भी महत्वपूर्ण है।
- प्रोलैक्टिन गर्भावस्था के दौरान गर्भावस्था के अंत में भ्रूण के फेफड़ों को सरफेक्टेंट संश्लेषण (surfactant synthesis) प्रदान करता है तथा भ्रूण की प्रतिरक्षा सहनशीलता में भी योगदान देता है।

6. **फॉलिकल उद्दीपक हॉर्मोन** (Follicle stimulating Hormone FSH)

- यह पुरुषों और महिलाओं दोनों में ही बनता है।
- महिलाओं में इस हॉर्मोन से अंडों का उत्पादन व पुरुषों में शुक्राणुओं का उत्पादन उत्तेजित होता है।

7. **मेलेनोसाइट उद्दीपक हॉर्मोन** (Melanocyte Stimulating Hormone MSH)

- यह हॉर्मोन त्वचा एवं बालों में मेलेनोसाइट (melanocyte) द्वारा मेलेनिन (melanin) के उत्पादन को उत्तेजित करता है।
- यह भूख एवं कामोत्तेजना पर भी प्रभाव ड़ालता है।

- MSH में वृद्धि से रंग बदलाव होता है।

- गर्भावस्था के दौरान यह हॉर्मोन बढ़ जाता है तथा गर्भवती महिलाओं में पिगमेन्टेशन (pigmentation) वृद्धि का कारण बनता है।

13.3.2 पश्च खण्ड (Posterior Pituitary or Neurohypophysis)

पश्च खण्ड निम्न दो हॉर्मोन्स का निर्माण करता है –

1. **ऑक्सीटोसिन** (Oxytocin)
   - यह हॉर्मोन महिला प्रजनन में भूमिका के लिए जाना जाता है। यह प्रसव के दौरान योनि और गर्भाशय के फैलाव के समय बड़ी मात्रा में उत्पन्न होता है और स्रावित होता है।
   - गर्भाशय संकुचन में सहायता करता है।
2. **वैसोप्रेसिन** (Vassopressin or Antidiurctic Hormone)
   - वैसोप्रेसिन एक पेप्टाइड हॉर्मोन है जो गुर्दों के tubules में अणुओं के reapsorption को नियंत्रित करता है और ऊतक पारगम्यता को बनाए रखता है।
   - यह परिधीय संवहनी प्रतिरोध को बढ़ाता है, जिससे धमनियों में रक्तचाप बढ़ जाता है (Vasoconstruction)
   - यह समावस्था (Homeostasis) में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और पानी, ग्लूकोज व रक्त लवण के विनियमन में भी सहायता करता है।

13.4 पीनियल ग्रन्थि (Pineal Gland)

- पीनियल ग्रन्थि (Pineal Gland) को पीनियल बॉडी (Pineal Body) तीसरी आँख (Third Eye) भी कहा जाता है। यह मस्तिष्क में एक छोटी अंतःस्रावी ग्रन्थि है। यह एक हॉर्मोन सेरोटोनिन (Serotonin) व्युत्पन्न मेलेटोनिन (Melatonin) उत्पन्न करती है जो कि निद्रा व चेतनावस्था के पैटर्न (Pattern) को प्रभावित करता है।
- इसका आकार एक छोटे पाइन कोन (Pine cone) जैसा होता है इसलिये इसका नाम पीनियल पड़ा है।
- यह मस्तिष्क के मध्य, दोनों गोलार्द्धों (hemispheres) के बीच स्थित होती है।
- पीनियल ग्रन्थि (Pineal gland) एक चावल के दाने के आकार (5-8mm) का होता है। इसका रंग लाल भूरा होता है।
- यह सुपीरियर कॉलीकुलस (superior colliculus) से रॉस्ट्रो–डॉर्सल (Rostro-dorsal) और स्ट्रिया मैडुलैरिस (Stria Medullasis) के नीचे स्थित होता है।
- यह एपीथैलेमस (Epithalamus) का एक भाग है और थैलमिक बॉडी (Thalmic Bodies) के बीच लैटरली (laterally) तैनात रहता है।

- पीनियल ग्रन्थि एक मिडलाइन (midline) संरचना है और अक्सर खोपड़ी के एक्स–रे (X-Ray) में देखी जा सकती है क्योंकि यह अक्सर कैल्सीफाइड (Calcified) होती है।

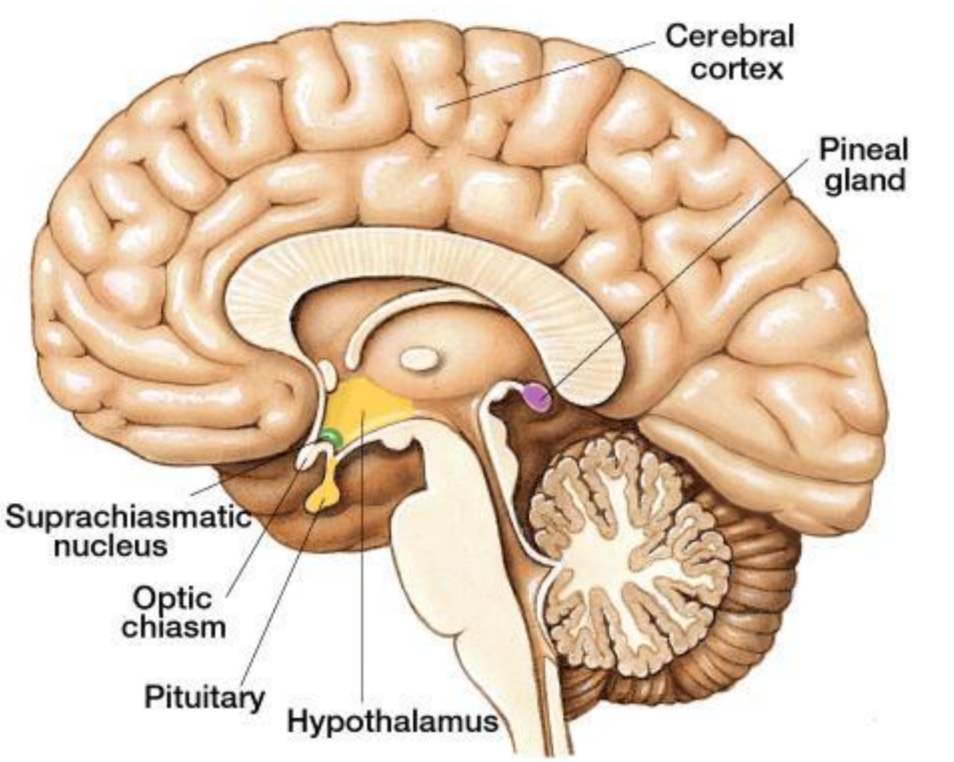

13.4.1 कार्य

1. तंद्रा का कारण बनती है।
2. तंत्रिका तंत्र संकेतों को अंतःस्रावी संकेतों में बदलती है।
3. अंतःस्रावी ग्रन्थियों के कार्यों पर नियंत्रण करती है।
4. मेलेटॉनिन हॉर्मोन स्रावित करती है।

13.5 थाइरॉइड ग्रन्थि (Thyroid Gland)

थाइरॉइड ग्रन्थि ग्रीवा में श्वास प्रणाल (Trachea) के सामने निचले सर्वाइकल और प्रथम थोरेसिक वर्टिब्रा के स्तर पर स्थित रहती है। यह दो खण्डों में विभक्त रहती है जो लेरिक्स (स्वर यंत्र) और ट्रेकिया (श्वास प्रणाल) के मध्य जोड़ के दोनों तरफ स्थित रहती

है। एक सामान्य वयस्क में थाइरॉइड ग्रन्थि का वजन लगभग 25–40 ग्राम तक होता है। थाइरॉइड ग्रन्थि के दोनों लोब (खण्ड) उतक के एक ब्रिज से जुड़े होते हैं, जिसे इस्थामस (Isthmus) कहते हैं।

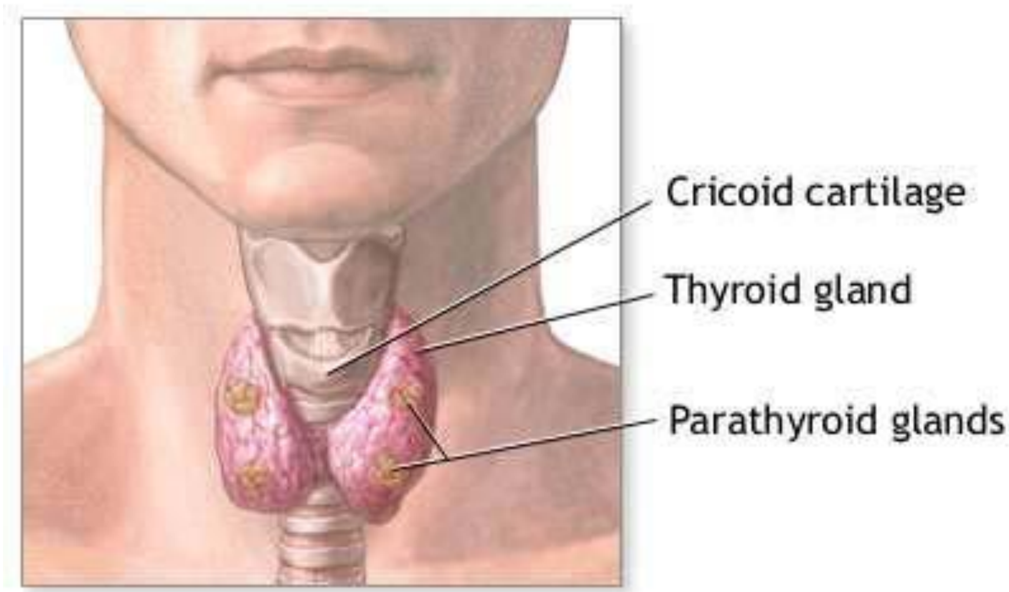

थाइरॉइड ग्रन्थि की कार्यात्मक इकाई बहुत सारे आपस में जुड़े हुए फॉलिकल (follicles) होते हैं। इन फॉलिकल में एक गाढ़ा चिपचिपा प्रोटीन पदार्थ भरा होता है जिसे कोलाइड कहते हैं। इस कोलाइड में थाइरॉइड हॉर्मोन संचित रहते हैं। थाइरॉइड ग्रन्थि दो तरह की कोशिकाओं फोलीक्यूलर और पैराफोलीक्यूलर कोशिकाओं से निर्मित होती है। फोलीक्यूलर कोशिकायें (follicular cells) चारों ओर फैली हुई रहती हैं। यह थाइरॉइड हॉर्मोन थाइरॉक्सिन और ट्राइआयडो थायरोनिन का निर्माण एवं स्रावण करती हैं, जो शरीर की अधिकांश कोशिकाओं में उपापचय (Metabolism) को बढ़ाते हैं। पैराफालिक्यूलर कोशिकायें फोलिक्यूलर कोशिकाओं की अपेक्षा कम और आकार में बड़ी होती हैं। इन्हें c-cells भी कहते हैं। यह कोशिकायें फोलिकल्स के मध्य समूह में पाई जाती हैं तथा केलिस्टोनिन नामक हॉर्मोन का निर्माण एवं स्रावण करती हैं।

13.5.1 कार्य –

थाइरॉइड निम्नलिखित तीन हॉर्मोन्स का स्रावण करता है –

1- T3

2- T4

3- TSH

T3 **हॉर्मोन अथवा ट्राईआयडो थाइरॉक्सीन** (Tri iodothyroxine)

(i) विकास एवं वृद्धि को प्रभावित करता है।

(ii) सामान्य उपापच्य दर को नियन्त्रित करता है।

(iii) कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, उपापच्य को सम्पन्न करता है।

(iv) शारीरिक भार को नियन्त्रित करता है।

(v) मूत्र निर्माण में सहायक है।

(vi) कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज के अन्तःग्रहण को बढ़ाता है।

(vii) हृदय गति एवं श्वसन दर को नियन्त्रित करता है।

T4 **हॉर्मोन अथवा थाइरॉक्सीन या टैट्राआयडोथाइरॉक्सीन** (Tetraiodothyroxine)

इसके कार्य T3 हॉर्मोन के समान ही हैं, परन्तु यह थाइरॉइड स्राव का लगभग 90 प्रतिशत होता है जबकि T3 अधिक सांद्र और अधिक सक्रिय होता है।

TCT **अथवा थायरोकैल्सिटोनिन** (Thyrocalcitonin)

यह रक्त में कैल्शियम की सान्द्रता को कम करता है एवं boon mineral metabolism का नियन्त्रण करता है।

13.5.2 थाइरॉइड स्रावण की कमी एवं अधिकता का शरीर पर प्रभाव

अधिकता से पड़ने वाला प्रभाव – थाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रियता से अथवा थाइरॉइड ग्रन्थि से अत्यधिक मात्रा में हॉर्मोन का स्रावण होने से हाइपर थाइरॉडिस्म (Hyperthyroidism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में नेत्रोत्सेधी गलगण्ड (Exophthalmic goitre) हो जाता है। इस रोग के लक्षणों में आँखें बाहर को उभर जाती हैं, नाड़ी गति बढ़ जाती है, त्वचा मुलायम और नम रहती है तथा रोगी को गर्मी का अनुभव अधिक होता है। अधिक भूख के बावजूद वजन कम होने लगता है। अंगुलियों में कंपन और हृदय गति तीव्र हो जाती है। वास्तव में थाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रियता 'आयोडीन' की कमी के कारण होती है।

कमी से शरीर पर पड़ने वाला प्रभाव – थाइरॉइड ग्रन्थि के अल्प सक्रियता से अथवा ग्रन्थि से कम मात्रा में हॉर्मोन के स्रावण से 'हाइपो थाइरॉडिस्म' (Hypothyrodism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति के कारण गर्भ में शिशु के विकास अथवा शैशवावस्था के दौरान थाइरॉइड अल्पक्रिया से 'क्रेटिनिज्म' (जड़मानवता) नामक रोग हो जाता है। इस रोग में बुद्धि का ह्रास हो जाता है। बच्चों का विकास रुक जाता है। कंकालीय वृद्धि रुक जाती है, पेट बाहर को अधिक बढ़ जाता है। माँसपेशीय कमजोरी हो जाती है। आहारनाल की motility कम हो जाने के कारण कब्ज हो जाता है। दाँत देर से निकलते हैं, अस्थियों एवं

पेशियों का विकास अतिक्रमित हो जाता है। वयस्कों में थाइरॉइड ग्रन्थि की अल्प सक्रियता से 'मिक्सीडीमा' (Myxedema) नामक रोग होने से त्वचा पीली, सूखी, रूक्ष हो जाती है। चेहरा फूला–फूला सा लगता है। वजन बढ़ जाता है। शरीर का तापमान सामान्य से कम हो जाता है जिससे ठण्ड सहन नहीं हो पाती। बाल शुष्क, खुर्दरे और पतले हो जाते हैं, सुस्ती, थकान होती है। महिलाओं में या तो मासिक स्राव नहीं होता अथवा बहुत अधिक होता है। याद्दाश्त में कमजोरी एवं मानसिक क्षमता का ह्रास होने लगता है।

13.6 पैराथाइरॉइड ग्रन्थि (Parathyroid Gland)

पैराथाइरॉइड ग्रन्थि मसूर के दाने के आकार की चार छोटी–छोटी ग्रन्थियों का समूह है, जिनमें से प्रायः दो–दो थाइरॉइड ग्रन्थि के प्रत्येक खण्ड की पोस्टीरियर (पिछली सतह) में स्थित रहती है। ये लगभग 3–4 मि0मी0 व्यास की होती है और पीले भूरे रंग की होती है। जिन कोशिकाओं से ये बनी होती है, वे spherical होती हैं और columns में व्यवस्थित होती हैं। इनका वजन 0.05 से 0.3 ग्राम तक होता है।

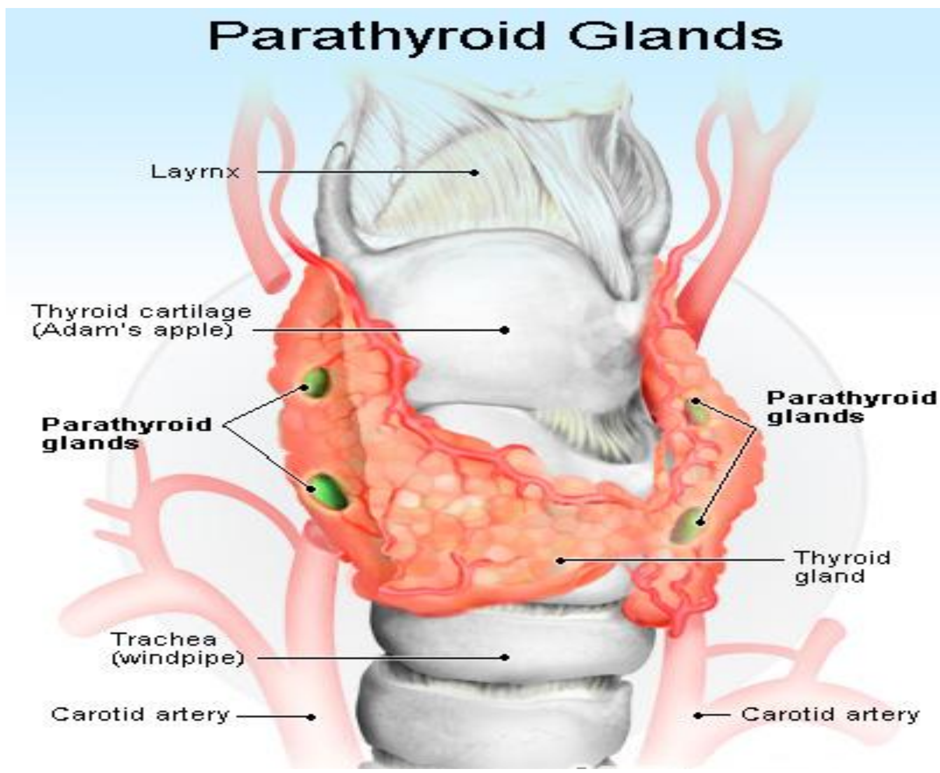

13.6.1 कार्य –

यह ग्रन्थि शरीर में कैल्शियम के स्तर का संचलान करती है। इसका तात्पर्य यह है कि रक्त में कैल्शियम की अधिकता और कमी का नियन्त्रण इसी के द्वारा सम्पादित होता है। यह कार्य निम्न प्रकार से सम्पादित होता है –

रक्त में कैल्शियम के नियन्त्रण हेतु यह शरीर के तीन अंगों पर प्रभाव ड़ालता है –

1. अस्थि
2. वृक्क / किडनी
3. आंत

- जब रक्त में कैल्शियम की कमी होती है तो पैराथाइरॉइड कैल्शियम को बढ़ाने का कार्य करता है।
- जब कैल्शियम अधिक होता है तो यह उसे कम करने का कार्य करता है।

यह विभिन्न अंगों पर प्रभाव निम्न तरीके से करता है –

पैराथाइरॉइड हॉर्मोन अस्थि से कैल्शियम रक्त में खींचता है।

पैराथाइरॉइड हॉर्मोन किडनी पर तीन प्रकार से असर करता है –

(i) पेशाब में Ca बहने से रोकता है।
(ii) पेशाब में फॉसफोरस को बहने देता है।
(iii) एक प्रकार का विटामिन 'डी' बनाता है, जिसे Calcitriol कहते हैं।

कैल्सिट्रिओल कैल्शियम और फॉसफोरस को छोटी आँत के खण्डों से रक्त में खींच लेता है।

कैल्सिट्रिओल अस्थि से कैल्शियम (Ca) रक्त में खींच लेता है।

पैराथाइरॉइड ग्रन्थि से स्रावित होने वाला हॉर्मोन

इस ग्रन्थि से पैराथोर्मोन नामक हॉर्मोन स्रावित होता है, जिसका प्रमुख कार्य कैल्शियम और फॉस्फेट के मेटाबोलिज़्म को नियन्त्रित करना होता है। अस्थियों में जहाँ कैल्शियम और फॉस्फेट मिलकर अस्थि का निर्माण करते हैं, वहीं यह हॉर्मोन कैल्शियम और फॉस्फेट को अस्थि से रक्त में ले जाने का कार्य करता है।

किडनी में यह फॉस्फेट के निकलने को बढ़ाता है। साम्यावस्था बनाये रखने में यह हॉर्मोन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जैसे

- यह शरीर के मेम्ब्रेनस पारगम्यता को बनाये रखता है। (Membranus permeability)
- तंत्रिक, पेशीय एवं ह्रदीय कार्यों को सुचारू रूप से चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- हाइपर कैल्शिमिया को नियन्त्रित करता है।

13.6.2 ग्रन्थि की सक्रियता से प्रभाव

अधिकता से शरीर पर प्रभाव – पैराथाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रियता से अथवा ग्रन्थि से अधिक मात्रा में हॉर्मोन के स्रावण से हाइपर पैरेथाइरॉडिस्म (Hyperparathyroidism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में रक्त में फॉस्फोरस की मात्रा कम हो जाती है, परन्तु Ca की मात्रा अधिक हो जाती है। ऐसी स्थिति में अस्थियों से अधिक Ca का पुनः अवशोषण (reabsorption) हो जाता है और रक्त में Ca की मात्रा बढ़ जाती है। अस्थियों में Ca की कमी हो जाने से वह छिद्रमय और भुरभुरी हो जाती है। Ca की वृद्धि से पेशी और तंत्रिका उत्तेजनशीलता कम हो जाती है जिससे पेशियों में स्फूर्ति कम हो जाती है। मूत्र में फॉस्फोरस और कैल्शियम निकलने लगता है तथा गुर्दों में पथरी (renal calculi or stones) बन जाती है।

कमी से शरीर पर प्रभाव – पैराथाइरॉइड ग्रन्थि की अल्प सक्रियता से अथवा ग्रन्थि से कम मात्रा में हॉर्मोन के स्रावण से हाइपोपेराथाइरिडिस्म (Hypoparathyroidism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति के कारण रक्त में Ca की मात्रा कम हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप टिटेनी (Tetany) नामक रोग हो जाता है। इस रोग में पेशीय कड़ापन और ऐंठन होती है, हृदय की गति बढ़ जाती है, श्वास की गति बढ़ जाती है और बुखार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

इस स्थिति में रक्त में Ca आयन स्तर 10mg/100ml से घटकर 7mg/100ml हो जाता है। यदि यह स्तर और अधिक घट जाये, तो गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जैसे–जैसे रक्त में Ca की मात्रा घटती जाती है, पेशाब में भी कमी होती जाती है। यह स्थिति बच्चों में अधिक पाई जाती है।

अभ्यास प्रश्न

<u>सही / गलत</u>

(i) पीयूष ग्रन्थि को मास्टर ग्रन्थि भी कहा जाता है।
(ii) वृद्धि हार्मोन की कमी के कारण एक्रोमिगेली नामक रोग हो जाता है।
(iii) पैराथाइराइड ग्रन्थि शरीर में कैल्शियम के स्तर का संचालन करती है।
(iv) पीयूष ग्रन्थि के पश्च खण्ड से प्रोलैक्टीन व ल्यूटिनाइजिंग हार्मोन स्रावित होते हैं।
(v) हाइपरथाइराइडिस्म की अवस्था में वयस्कों में मिक्सीडीमा नामक रोग उत्पन्न हो जाता है।
(vi) वैसोप्रेसिन हार्मोन समावस्था बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

<u>रिक्त स्थानों की पूर्ति</u>

(i) थाइराइड स्रावण की कमी से.........................एवं अधिकता से...........................नामक रोग हो जाते हैं।

(ii) पीयूष ग्रन्थि के अग्रं खण्ड को.................................तथा पश्च खण्ड को........................... भी कहा जाता है।

(iii) एड्रिनोकोर्टिकोट्रोपिक हॉर्मोन के अधिक स्रावण से..................................रोग उत्पन्न हो जाता है।

(iv) पीनीयल ग्रन्थि को ....भी कहा जाता है।

(v) हाइपोपैराथाइराइडिस्म की स्थिति में..नामक रोग हो जाता है।

(vi) ....हॉर्मोन गर्भवती महिलाओं में पिगमेंन्टेशन वृद्धि का कारण बनता है।

13.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने शरीर क्रिया विज्ञान में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले तंत्र, अन्तःस्रावी तंत्र के कुछ प्रमुख ग्रन्थियों का अध्ययन किया। आपने जाना कि पिट्यूटरी, पीनियल थाइरॉइड व पैराथाइरॉइड किस प्रकार हमारे शरीर व मन को प्रभावित करते हैं।पिट्यूटरी ग्रन्थि के स्राव वृद्धि हॉर्मोन, एड्रिनोकार्टिकोट्रापिक, ल्यूटिनाइजिंग, प्रोलेक्टिन, फॉलिकल उद्दीपक हॉर्मोन, मैलेनोसाइट, ऑक्सीटोसिन, वैसोप्रोसिन शरीर के अन्य तंत्रों को भी पूर्ण एवं आंशिक रूप से प्रभावित करते हैं। पीनियल ग्रन्थि तंद्रा, तंत्रिका तंत्र के संकेतों को बदलने वाली, मेलेटॉनिन हॉर्मोन का स्रावण आदि प्रमुख कार्यों का सम्पादन एवं नियन्त्रण करती है। थाइरॉइड व पैराथाइरॉइड ग्रन्थियाँ उपापचय अथवा चयापचय को किस प्रकार प्रभावित करती है, यह आपने पढ़ा। इस प्रकार अन्तःस्रावी तंत्र के कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थियों के विषय में आपने महत्वपूर्ण जानकारी अर्जित की।

13.8 शब्दावली

1.	हाइपोफाइसिस	–	पिट्यूटरी ग्रन्थि का एक नाम
2.	मास्टर ग्रन्थि	–	नियन्त्रक ग्रन्थि
3.	हॉर्मोन	–	एक प्रकार के जैविक पदार्थ जो विशेष अंगों से स्रावित होते हैं, जिन्हें ग्रन्थि कहते हैं।
4.	एक्रोमिगेली	–	अतिकायता
5.	उपापचय	–	चयापचय, मेटाबॉलिज़्म, भोजन का पाचन एवं उपयोग, अपचय एवं उपचय का सम्मिलित रूप

13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

<u>सही /गलत</u>

(i) सही (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत (v) गलत (vi) सही

रिक्त स्थानों की पूर्तिः–

(i) क्रेटिनिज्म, नेत्रोत्सेधी गलगण्ड

(ii) एडिनोहाइपोफाइसिस, न्यूरोहाइपोफाइसिस

(iii) कुशिंग (iv) तीसरी ऑख (v) टिटैनी (vi) मेलेनोसाइट उद्दीपक हॉर्मोन

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, प्रा0 अनन्त प्रकाश गुप्ता (2010), सुमित प्रकाशन (आगरा)

2. Principles of Anatomy & Phisiology, Geroard J. Tortora and Bryan H. Derrickson (2008), John Wiley & Sons (India)

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न –

1. पिट्यूटरी ग्रन्थि के अग्र खण्ड से स्रावित हॉर्मोनों का प्रभाव शरीर पर किस प्रकार पड़ता है, उदाहरण सहित समझाइये।
2. पीनियल ग्रन्थि के कार्यों की चर्चा कीजिये।
3. थाइरॉइड ग्रन्थि की संरचना समझाते हुए इसके कार्यों की चर्चा कीजिये।
4. पैराथाइरॉइड ग्रन्थि की संरचना एवं कार्य समझाइये।

इकाई– 14 एड्रीनल, पैंक्रियाज़ व गोनेड्स

इकाई की संरचना

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 एड्रीनल ग्रन्थि –
14.3.1 एड्रीनल कॉर्टेक्स एवं स्रावित हॉर्मोन
14.3.2 एड्रीनल मेड्यूला एवं स्रावित हॉर्मोन
14.4 पैंक्रियाज़
14.4.1 बहिस्रावी ग्रन्थि के रूप में पैंक्रियाज़
14.4.2 अन्तःस्रावी ग्रन्थि के रूप में पैंक्रियाज़
14.5 गोनेड्स/जनन ग्रन्थियाँ
14.5.1 वृषण
14.5.2 अधिवृषण
14.5.3 शुक्राणु
14.5.4 वृषण के कार्य एवं हॉर्मोन
14.6 डिम्ब ग्रन्थियाँ
14.6.1 डिम्ब ग्रन्थियों के हॉर्मोन एवं उनके कार्य
14.7 सारांश
14.8 शब्दावली
14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.3 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाई में आपने अन्तःस्रावी तंत्र के सम्बन्ध में पढ़ा। आपने अन्तःस्रावी तंत्र की मुख्य इकाई अंतःस्रावी ग्रन्थि होती है यह जाना। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में पिट्यूटरी, जो कि मास्टर ग्रन्थि है, के सम्बन्ध में पढ़ा, पीनियल जो कि बच्चों में विकसित होती है एवं युवावस्था तक बढ़ने के बाद सिकुड़ने लगती है, थाइरॉइड ग्रन्थि एवं पैराथाइरॉइड ग्रन्थि शरीर पर किस प्रकार प्रभाव डालती है, यह जाना। अब आप अन्तःस्रावी तंत्र की अन्य प्रमुख ग्रन्थियों एड्रीनल, पैंक्रियाज़ व गोनेड्स के विषय में प्रस्तुत इकाई में जानेंगे। एड्रीनल ग्रन्थि वृक्कों के ऊपर अवस्थित रहती है, इसलिये इसे अधिवृक्क ग्रन्थि भी कहा जाता है। पैंक्रियाज़ ग्रन्थि अन्तःस्रावी और बहिस्रावी दोनों प्रकार के कार्यों का सम्पादन करती है। जनन ग्रन्थियों में पुरुषों में वृषण एवं स्त्रियों में डिम्ब ग्रन्थियाँ होती हैं। आगे आप उपरोक्त वर्णित ग्रन्थियों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई से आप –

- एड्रीनल ग्रन्थि की संरचना एवं कार्यों के विषय में जानेंगे।
- पैंक्रियाज़ ग्रन्थि के बहिस्रावी ग्रन्थि के रूप में कार्यों को जानेंगे।
- पैंक्रियाज़ ग्रन्थि के अन्तःस्रावी नामों के विषय में जानेंगे।
- वृषण से स्रावित हॉर्मोनों के विषय में जानेंगे।
- डिम्ब ग्रन्थि की संरचना एवं कार्यों के विषय में जानेंगे।

14.3 एड्रीनल/अधिवृक्क ग्रन्थि (Adrenal Glands)

हमारे शरीर में दो अधिवृक्क ग्रन्थियाँ होती हैं तथा दोनों गुर्दों की चोटी पर स्थित होती है। यह कनेक्टिव टिश्यू कैप्सूल (connective tissue capsule) से घिरी होती हैं और आंशिक रूप से वसा के एक द्वीप में दबी रहती हैं। अधिवृक्क ग्रन्थि को सुपरारीनल ग्रन्थि (Suprarenal Glands) भी कहा जाता है।

अधिवृक्क ग्रन्थि (Adrenal Gland)

एड्रीनल कॉर्टेक्स	एड्रीनल मैड्यूला
(Adrenal Cortex)	(Adrenal Medulla)
↓	↓

1. मिनरलोकॉर्टीकोइड (Mineralocorticoid)	1. एपीनेफ्रीन (Epinephrine)
2. ग्लूकोकॉर्टीकोइड (Glucocorticoid)	2. नॉरएपीनेफ्रीन (Norepinephrine)
3. गोनाडोकॉर्टीकोइड (Gonadocorticoid)	

यह दोनों दो भागों में विभाजित होती हैं –

- पहली एड्रीनल कॉर्टेक्स (Adrenal Cortex) जो कि बाहरी क्षेत्र होता है और दूसरे को एड्रीनल मैड्यूला (Adrenal Medulla) कहा जाता है, जो कि आंतरिक क्षेत्र है।
- एड्रीनल कॉर्टेक्स और एड्रीनल मैड्यूला दोनों अलग–अलग कार्य करती हैं।

14.3.1 एड्रीनल कॉर्टेक्स

यह वजन में 5–7 ग्राम की ग्रन्थि है जो एड्रीनल ग्रन्थि का लगभग 90 प्रतिशत भाग बनाती है। यह कई स्टेरॉइड हॉर्मोन उत्पन्न करती है, जिन्हें कार्टिकोस्टेरॉइड (Corticosteroid) कहा जाता है। कार्टेक्स के तीन क्षेत्र होते हैं –

पहला क्षेत्र – बाह्य क्षेत्र (outer zone) से मिनीरेलोकॉर्टिकॉइड (Mineralocorticoid) स्रावित होते हैं।

द्वितीय क्षेत्र – मध्य क्षेत्र (middle zone) से ग्लूकोकॉर्टिकॉइड (glucocorticoid) स्रावित होते हैं।

तृतीय क्षेत्र – आन्तरिक क्षेत्र (inner zone) से सेक्स हॉर्मोन या gonadocorticoid स्रावित होते हैं।

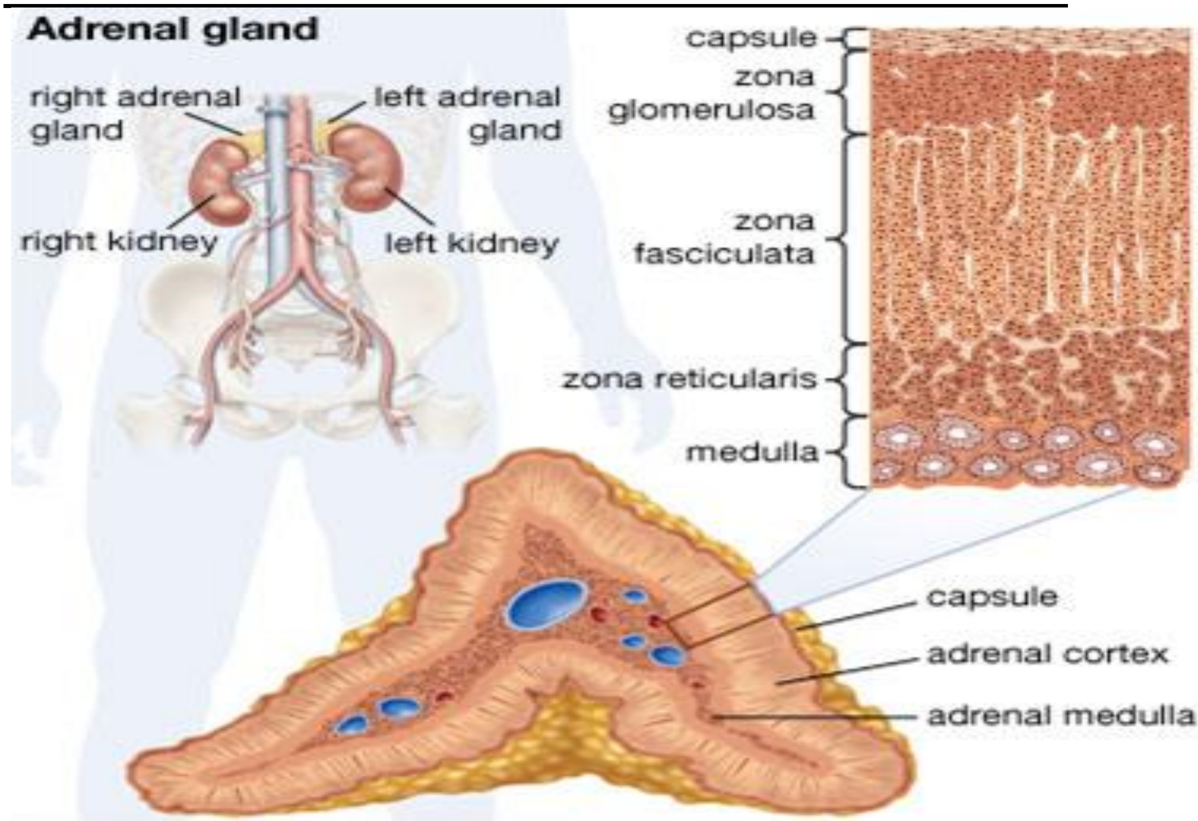

मिनरेलोकॉर्टिकॉयड (Mineralocorticoid)

इसके अन्तर्गत एल्डोस्टेरॉन (aldosterone) तथा डिहाइड्रोएपिएन्ड्रोस्टेरॉन (dehydroepiandrosteron) समाहित होते हैं, जिसमें एल्डोस्टेरॉन (aldosterone) प्रमुख हॉर्मोन है। मिनरेलोकॉर्टिकॉयड एड्रीनल कॉर्टेक्स के बाह्य क्षेत्र की कोशिका द्वारा उत्पन्न होने वाले स्टेरॉइड हॉर्मोनों का एक समूह (group) है, जो खनिजों (minerals) की सान्द्रता (density) को नियन्त्रित करता है।

एल्डोस्टेरॉन (aldosterone) शरीर में सोडियम (Na) और पोटेशियम (K) के सन्तुलन को बनाये रखने में सहायता करता है। यह वृक्कीय नलिकाओं (kidney tubule) द्वारा रक्त में सोडियम के पुनः अवशोषण में वृद्धि करता है जिससे मूत्र में सोडियम का उत्सर्जन कम होने लगता है। और पोटैशियम का उत्सर्जन बढ़ जाता है। यह श्वेद ग्रन्थियों (sweat glands) पर भी क्रिया करता है, जिससे शरीर द्रव्यों (body fluid) में इलेक्ट्रोलाइट्स (electrolytes) का संतुलन सामान्य बना रहे।

एल्डोस्टेरॉन की अधिकता से (अधिक स्राव होने पर) उच्च रक्तचाप (high blood pressure) हो जाता है, और रक्त में पोटैशियम की कमी (हाइपोकेलीमिया) हो जाती है, जिससे शरीर में झुनझुनी, सुई सी चुभन, कमजोरी, चक्कर आना आदि अपसंवेदनायें उत्पन्न हो जाती हैं।

ग्लूकोकॉर्टिकॉयड (Glucocorticoid)

यह एड्रीनल कॉर्टेक्स के मध्य क्षेत्र से स्रावित होने वाला हॉर्मोन है। यह रक्त शर्करा (blood glucose) की सान्द्रता को नियन्त्रित करने में सहायता करता है। यह दो तरह के होते हैं –

A. कॉर्टिसोल या हाइड्रोकॉर्टिसोन (cortisol or hydrocortisone)

B. कॉर्टिकोस्टेरॉन (corticosterone)

ग्लूकोज़ सान्द्रता का नियमन करने के अलावा यह ग्लूकोकॉर्टिकॉयड सभी तरह के भोज्य पदार्थों जैसे कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन एवं वसा आदि के उपापचय (metabolism) को प्रभावित करते हैं। यह एण्टीइन्फ्लेमेट्री एजेण्ट (anti-inflammatory agent) की तरह भी कार्य करते हैं। ये वृद्धि को भी काफी हद तक प्रभावित करते हैं। ये शारीरिक अथवा मानसिक तनाव (stress) के प्रभावों को कम करने में सहायक होते हैं। यह यकृत द्वारा संग्रहीत प्रोटीन को ग्लाइकोजन में परिवर्तित करता है, जिसे ग्लूकोनियोजेनेसिस की प्रक्रिया कहा जाता है। यह कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज के उपयोग को भी कम करता है, जिसके परिणामस्वरूप शरीर में रक्त शर्करा (blood sugar) का स्तर बढ़ जाता है। परन्तु यह अग्नाशय (pancreas) द्वारा स्रावित insulin से प्रायः सन्तुलित हो जाता है।

ग्लूकोकॉर्टिकॉयड के अधिक मात्रा में स्रावित होने के कारण 'कुसिंग्स रोग' (Cushing's syndrome) होता है। जो प्रायः कॉर्टेक्स में ट्यूमर का कारण बनता है। 'कुसिंग रोग' में हाथ–पैर सामान्य रहते हैं, परन्तु चेहरा, वक्षस्थल एवं उदर क्षेत्र की चर्बी बढ़ जाती है। उदर पर धारियाँ बन जाती हैं। मधुमेह होने की सम्भावना अधिक बढ़ जाती है। त्वचा का रंग बदल जाता है। रक्तचाप बढ़ जाता है। कमर दर्द रहने लगता है। पुरुषों में नपुंसकता तथा स्त्रियों में मासिक धर्म बन्द हो जाता है।

गोनेडोकॉर्टिकॉयड्स (Gonadocorticoid)

यह सेक्स हॉर्मोन (sex hormone) भी कहलाता है। यह एड्रीनल कॉर्टेक्स के आन्तरिक क्षेत्र से स्रावित होने वाला हॉर्मोन है। इनका नियमन एडिनोकॉर्टिकोट्रॉपिक हॉर्मोन द्वारा होता है। सेक्स अंगों पर इसका प्रभाव बहुत कम मात्रा में होता है। इसके अन्तर्गत एण्ड्रोजन (Androgen), ईस्ट्रोजन (Oestrogen) तथा प्रोजेस्टेरोन (Progesterone), इन तीन लिंग हॉर्मोन्स का समावेश होता है, जिनका सम्बन्ध जनन तथा लैंगिक विकास से होता है। इनका प्रभाव वृषण (testis) एवं डिम्बाशय (ovum) द्वारा स्रावित हॉर्मोन के समान ही होता

है। ये पुरुष एवं स्त्रियों के प्रजनन अंगों के कार्य को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा उनकी शारीरिक एवं स्वभावगत विशेषताओं को भी प्रभावित करते हैं।

इस हॉर्मोन के अतिस्रावण से बच्चों में समय पूर्व लैंगिक परिपक्वता (sexual maturity) हो जाती है और स्त्रियों में द्वितीयक पुरुष लिंग विशिष्टतायें, जैसे आवाज में भारीपन, स्तनों के आकार में कमी, दाढ़ी–मूंछ का आना आदि लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।

इसकी अल्पसक्रियता से 'एडीसन' रोग (Addison's disease) उत्पन्न हो जाता है। इस रोग में कमजोरी एवं अति थकावट महसूस होती है, त्वचा का रंग ताँबे जैसा हो जाता है। रक्ताल्पता (anaemia), रक्त में पोटेशियम (K) स्तर बढ़ जाता है तथा सोडियम का स्तर घट जाता है। रक्तचाप कम हो जाता है, रक्त शर्करा (blood sugar) का स्तर कम हो जाता है। इस रोग का नियन्त्रण कॉर्टिसोन एवं एल्डोस्टीरॉन की नियमित मात्रायें देकर किया जा सकता है।

14.3.2 एड्रीनल मेड्यूला (Adrenal Medulla)

यह एड्रीनल ग्रन्थि का आन्तरिक भाग होता है और पूरी तरह से कॉर्टेक्स से ढँका रहता है। इससे कैटेकॉलेमाइन्स (Catecholemines) अर्थात एड्रीनलीन (Adrenaline) या इपीनेफ्रीन (epinephrine) तथा नॉरएड्रीनलिन (Noradrinalin) या नॉरएपीनेफ्रीन (Norepinephrine) नामक दो हॉर्मोन का स्रावण होता है।

नॉरएपीनेफ्रीन एपीनेफ्रीन की अपेक्षा कम प्रभावी होता है और यह बहुत कम मात्रा में उत्पन्न होता है। इस हॉर्मोन का प्रभाव सिम्पेथेटिक तंत्रिका तंत्र के समान ही होता है, जैसे श्लेषमा का स्रावण कम होना, पाचक द्रव्यों का स्रावण कम होना, ह्रदय गति तीव्र होना, श्वास नली का फैल जाना, लार का गाढ़ा व चिपचिपा हो जाना, रक्त वाहिकाओं का संकुचन हो जाना, पसीना बढ़ जाना आदि। यह हॉर्मोन किसी उद्दीपन से तुरन्त प्रतिक्रिया करते हैं और कुछ स्थितयों में जिसमें 'लड़ो या भागो प्रतिक्रिया' के लिये शरीर को तैयार करती है।

एड्रीनेलिन (adrenaline) **या इपीनेफ्रीन** (epinephrine) **के कार्य**

- ह्रदय की रक्त वाहिनियों (coronary vessels) को विस्फारित करना।
- ह्रदय की धड़कन की दर एवं शक्ति को बढ़ाना।
- ह्रदय से कॉर्डिएक आउटपुट (Cardiac output) बढ़ाना।
- कंकालीय पेशियों (skeletal muscles) की रक्तापूर्ति करने वाली धमनियों (arterials) को विस्फारित करना एवं उनमें होने वाली थकान की दर को कम करना।
- श्वास नलिकाओं को विस्फारित करना व श्वास दर (respiratory rate) को बढ़ाना।
- पाचन संस्थान की चिकनी पेशियों (smooth muscles) के संकुचन को रोक कर शिथिलता उत्पन्न करना।

- चयापचयी दर (metabolic rate) को बढ़ाना।
- यकृत (liver) एवं पेशियों (muscles) में स्थित ग्लाईकोजन (glycogen) को ग्लूकोज़ (glucose) में बदलकर रक्त में शर्करा का स्तर बढ़ाना व पेशियों में लैक्टिक एसिड (lactic acid) के स्तर को बढ़ाना।

नॉरएड्रीनेलिन (noradrenaline) **या नॉरएपीनेफ्रीन** (norepinephrine) **के कार्य**

- परिसरीय वाहिका संकुचन कर के रक्तचाप (blood pressure) बढ़ाना।
- लिपिड चयापचय को बढ़ाना।
- वसा ऊतक (adipose tissue) से उन्मुक्त वासीय अम्लों (free fatty acids) को स्वतंत्र करना है।

14.4 पैंक्रियाज़ (Pancreas)

अग्नाशय या पैंक्रियाज़ (Pancreas) एक 12 से 15 से.मी. लम्बा माँसल अंग है। पैंक्रियाज़ मनुष्यों की पाचक एवं अन्तःस्रावी तंत्र में स्थित अंग है। यह अंग आमाशय के पीछे पश्च उदरीय भित्ति के सहारे आड़े रूप (transversely) में स्थित होती है। यह ड्यूडिनम (deudenum) से प्लीहा (spleen) तक फैली हुई होती है। यह तीन भागों में बँटी है –

1. शीर्ष (head)
2. काय (body)
3. पुच्छ (tail)

1. **शीर्ष भाग** (Head)

   यह Pancreas का सबसे चौड़ा भाग होता है। यह उदरगुहा में दाईं ओर ड्योडिनम की 'C' आकृति की अवतलता (concavity) में स्थित होता है।

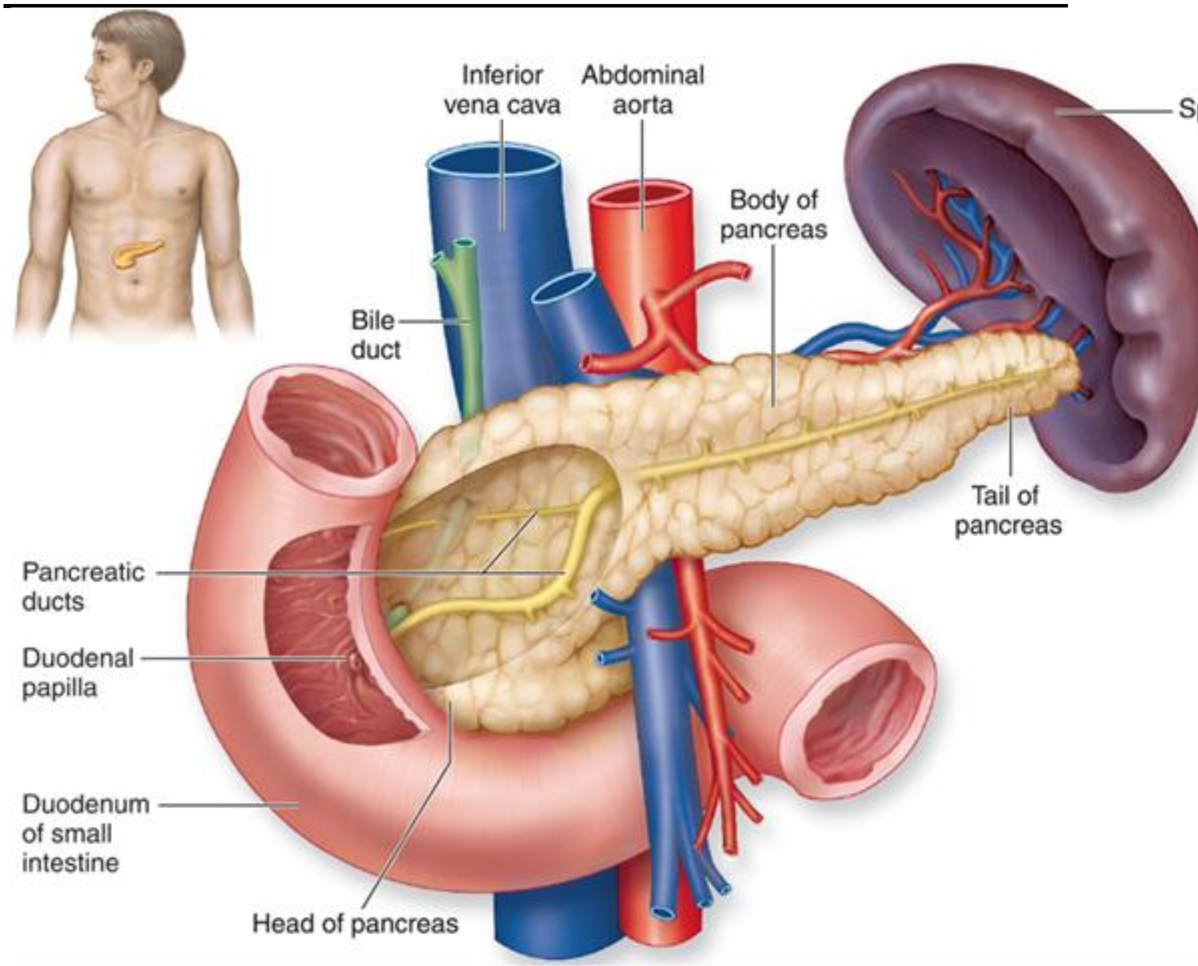

2. **काय** (Body)

यह pancreas का मुख्य भाग होता है। यह आमाशय के पीछे तथा दूसरी एवं तीसरी (lumbar vertebrae) के सामने स्थित होता है। यह शीर्ष भाग एवं पुच्छ के बीच का भाग होता है।

3. **पुच्छ** (Tail)

यह pancreas का बाईं ओर जाने वाला संकरा व नुकीला भाग होता है, जो बायें वृक्क के सामने स्थित होता है और प्लीहा तक फैला रहता है।

पैंक्रियाज़ एक मिश्रित ग्रन्थि है क्योंकि यह बहिस्रावी और अन्तःस्रावी ग्रन्थि दोनों के रूप में कार्य करती है।

14.4.1 बहिस्रावी ग्रन्थि (Exocrine gland) – बहिस्रावी ग्रन्थि (Exocrine gland) के रूप में यह पाचक ग्रन्थि (Digestive gland) का कार्य करती है क्योंकि पाचक एन्जाइम्स एवं क्षरीय खनिजों का स्रावण एक वाहिका में होता है, जो छोटी आँत में पहुँचता है। बहिस्रावी कोशिकायें कोशिकाओं का समूह बनाती हैं, जिन्हें एसीनाई (Acini) कहा जाता है। ये अंगूरों के गच्छों की तरह दिखाई देते हैं, इनसे छोटी आँत में पाचक एन्जाइम स्रावित होते हैं। अग्नाशय प्रतिदिन लगभग 1.5 लीटर पाचक रसों का उत्पादन करता है। बहिस्रावी (एसिनस) कोशिकायें अग्नाशय में पुच्छ से शीर्ष की ओर गुजरने वाली सूक्ष्म वाहिकाओं के चारों ओर गुच्छों में रहती है। प्रत्येक 'एसिनस' (Acinus) में एक केन्द्रीय ल्यूमन होता है जो मुख्य अग्नाशयिक वाहिका (main pancreatic duct or duct of wirsung) से जुड़ती है। यह पाच्य एन्जाइम्स को ड्येडिनम के अवरोही भाग की ओर ले जाती है। अनुषंगी अग्नाशयिक वाहिका (accessory pancreatic duct or duct of santorini) मुख्य वाहिका के लगभग एक इंच ऊपर, ड्योडिनम में अग्नाशयिक एन्जाइम्स की थोड़ी सी मात्रा को डालती है। मुख्य अग्नाशयिक वाहिका अपनी अन्तर्वस्तुओं को सीधे ड्योडिनम में नहीं डालती, बल्कि यह उभय पित्त वाहिका (common bile duct) से जुड़ती है और अन्ततः ड्योडिनम के भित्ति में प्रवेश करने से ठीक पहले एक वाहिका जिसे हिपेटोपेंक्रियेटिक एम्प्यूला या एम्प्यूला ऑफ वेटर (Hepatopancreatic ampulla or ampulla or Vater) कहते हैं।

एसिनर (बहिस्रावी) कोशिकायें एक स्वच्छ क्षरीय तरल निर्मित एवं स्रावित करती है, जिसे अग्नाशयिक रस (pancreatic juice) कहते हैं। इसमें जल एवं लवण होते हैं जो प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट एवं वसा का अन्तिम पाचन करते हैं।

कार्य

एसिनर कोशिकाओं द्वारा स्रावित रस जो कि अग्नाशयिक रस कहलाता है, निम्नलिखित एन्जाइम्स का स्रावण करता है जो कि प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और वसा का पाचन करते हैं।

1. **लाइपेज** (Lipase)

   यह वसा के बड़े–बड़े कणों (ट्राइग्लिसराइड्स) को सूक्ष्म कणों में विभाजित करके, ग्लिसरॉल एवं मुक्त वसीय अम्लों में परिवर्तित करता है जिससे ये सहज ही अवशोषित हो जाते हैं।

2. **एमाइलेज़** (Amylase)

   यह पॉलीसैकेराइड्स (स्टार्च) को मोनोसेकेराइड्स एवं डाइसेकेराइड्स, विशेषकर माल्टोज़ में परिवर्तित करता है, जिन पर लार के एमाइलेज़ का कोई प्रभाव नहीं होता है। माल्टोज़ पर माल्टेज़ एन्जाइम की क्रिया होने पर यह ग्लूकोज़ में परिवर्तित हो जाता है।

3. **ट्रिप्सिनोजन** (Trypsinogen)

यह अग्नाशयिक रस में सक्रिय रूप से घुला रहता है। पक्वाशय अथवा ड्योडेनम में पहुँचने के बाद यह छोटी आंत वृत स्रावित एन्ट्रोकाइनेज़ (enterokinase) नामक एन्जाइम के प्रभाव से सक्रिय ट्रिप्सिन (trypsin) में परिवर्तित हो जाता है। ट्रिप्सिन अपने सक्रिय रूप में पेपटोन्स और प्रोटीन्स को अमीनो अम्लों में परिवर्तित करता है जिसे रक्त अवशोषित कर के सम्पूर्ण शरीर में जहाँ–जहाँ इसकी आवश्यकता होती है, वहाँ–वहाँ ले जाता है।

अग्नाशयिक रस का स्रावण

जब मुख में स्थित स्वाद कलिकायें (taste buds) भोजन के सम्पर्क में आती हैं, तो वे आवेगों को मस्तिष्क में पहुँचाती हैं, जो फिर वेगस तंत्रिका के माध्यम से अग्नाशय को उद्दीप्त करता है। जब आंशिक रूप से पचा हुआ भोज्य पदार्थ जिसे काइम भी कहते हैं, आमाशय से पक्वाशय में पहुँचाता है तो आंतों द्वारा स्रावित दो हॉर्मोन–सेक्रीटिन और केलिस्टोकाइनिन द्वारा अग्नाशय की क्रियाशीलता बढ़ जाती है, जिससे अग्नाशयिक रसों का स्राव बढ़ जाता है। अग्नाशयिक रस केवल पाचन के समय ही स्रावित होते हैं।

14.4.2 अन्तःस्रावी ग्रन्थि (Endocrine gland) के रूप में पैंक्रियाज़

पैंक्रियाज़ अन्तःस्रावी ग्रन्थि के रूप में हॉर्मोन्स का स्रावण सीधे रक्त धारा में करता है। पैंक्रियाज़ का अन्तःस्रावी भाग इस ग्रन्थि के कुल वजन का लगभग एक प्रतिशत होता है। यह भाग, जिसे अग्नाशयिक द्वीपिकायें या लैंगरहैंस की द्वीपिकायें (Islets of Langerhans) कहा जाता है। ये कोशिकाओं के गुच्छे होते हैं जो हार्मोन्स का उत्पादन, संचय एवं स्रावण करते हैं। ये कोशिकायें एसिनाई के बीच–बीच में समूह में पाई जाती हैं।

एक स्वस्थ वयस्क व्यक्ति के पैंक्रियाज़ में 2,00,000 से 20,00,000 के बीच अगनाशयिक द्वीपिकायें विद्यमान रहती हैं। ये द्वीपिकायें सम्पूर्ण ग्रन्थि में फैली हुई रहती हैं। लैंगरहैन्स की द्वीपिकाओं में चार प्रकार की विशेष कोशिकायें पाई जाती हैं –

1. एल्फा (α) cells
2. बीटा (β) cells
3. डेल्टा (δ) cells
4. एफ F cells

1. **एल्फा कोशिकायें** (α cells) – 15 से 25 प्रतिशत, एल्फा कोशिकायें (alpha cell) ग्लूकागॉन (glucagon) नामक हॉर्मोन का उत्पादन और स्रावण करती है। ग्लूकागॉन हॉर्मोन यकृत को उद्दीप्त कर के ग्लाइकोजन को ग्लूकोज़ में परिवर्तित कर देता है, जिससे रक्त में ग्लूकोज़ का स्तर बढ़ जाता है। पैंक्रियाज़ ग्लूकागॉन तब स्रावित

करती है, जब रक्त में शर्करा का स्तर सामान्य से कम हो जाता है। उपरोक्त तथ्य से यह बातें सामने आती हैं कि ग्लूकागॉन का स्तर रक्त में तब बढ़ता है जब –

a. प्लाज़्मा ग्लूकोज़ में कमी आती है।

b. नोरएपीनेफ्रीन और एपीनेफ्रीन का स्तर बढ़ जाता है।

c. प्लाज़्मा एमीनो एसिड का स्तर बढ़ जाता है।

d. जब सिम्पेथेटिक (Sympethetic) तंत्रिका तंत्र सक्रिय होता है।

ग्लूकागॉन का स्रावण कम होने के कारण –

a. सोमेटोस्टैटिन (somastostatin) हॉर्मोन का स्राव

b. इन्सुलिन (insulin) का स्राव

c. रक्त में मुक्त वसीय अम्ल की वृद्धि

d. यूरिया उत्पादन की वृद्धि

ग्लूकागॉन के अन्य कार्य –

- कार्बन उपापचय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- शारीरिक आवश्यकता के अनुसार समय–समय पर ग्लाइकोजन को ग्लूकोज में परिवर्तित कर के ऊर्जा प्रदान करता है।
- कैल्शियम के कम स्तर के लिये भी यह उत्तरदायी होता है।
- बढ़ी हुई हृदय गति के लिये भी यह उत्तरदायी है।

2. बीटा कोशिकायें (β-cells) – 70–80 प्रतिशत

बीटा कोशिकायें इन्सुलिन नामक अति उपयोगी हॉर्मोन का स्रावण करती है। यह हार्मोन रक्त में विद्यमान ग्लूकोज को ग्लाइकोजन के रूप में परिवर्तित कर देता है और यह ग्लाइकोजन यकृत एवं पेंशियों में एकत्र होकर संचित हो जाता है।

इन्सुलिन (Insulin) के कार्य

यह ग्लूकोज को ग्लाइकोजन के रूप में परिवर्तित कर यकृत व मांसपेशियों में एकत्रित एवं संचित कर देता है।

i. कार्बोहाइड्रेट का चयापचय करता है जो कि निम्न प्रकार होता है –

ग्लूकोज के चयापचय के स्तर को बढ़ाना

↓

रक्त शर्करा की सान्द्रता को घटाना

↓

ऊतकों में ग्लाइकोजन संचयन को बढ़ाना

ii. इन्सुलिन का उपरोक्त कार्य अति महत्वपूर्ण होता है यदि किसी कारणवश इन्सुलिन ग्लूकोज़ का मेटाबोलिज़्म करने में असमर्थ हो जाता है तो डाईबिटीज़ मेलाइटस नामक रोग उत्पन्न हो जाता है। इस रोग के लक्षण निम्नवत् हैं –

- उच्च रक्त शर्करा स्तर (hyperglycemia)
- पेशाब में शर्करा का आना
- पेशाब का अधिक आना (Diuresis)
- इस रोग में लीवर ग्लाइकोजन स्तर सामान्य से कम, पेशीय ग्लाइकोजन स्तर सामान्य व हृदीय पेशियों में ग्लाइकोजन स्तर सामान्य से अधिक हो जाता है जो अन्य असमानताओं का कारण बनता है।
- इस रोग में कार्बोहाइड्रेट का वसा में परिवर्तन कम हो जाता है।
- प्रोटीन से ग्लूकोज का बनना बढ़ जाता है, जिससे रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है।

टाईप 1 डायबिटीज

इस अवस्था में इन्सुलिन उत्पन्न एवं स्रावण करने वाले β cells कम बनते हैं या β cell स्वतः नष्ट होने लगते हैं, जिस कारण इन्सुलिन की मात्रा भी रक्त में बहुत कम या न के बराबर हो जाती है। यह अवस्था बच्चों में अधिक देखी जाती है। इस अवस्था में इन्सुलिन के इन्जेक्शन लगातार लगाने पड़ते हैं।

लक्षण

a. बार–बार पेशाब आना (Polyuria)
b. अधिक प्यास (Polydepsia)
c. अधिक भूख (Polyphagia)
d. वजन में कमी (Weight loss)

टाइप – 2 डायबिटीज़

यह आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग की सामान्य बीमारी बनती जा रही है, परन्तु इसके दीर्घकालीन दुष्प्रभाव पड़ते हैं, जिनमे हृदयाघात, kidney failure, stroke आदि शामिल हैं।

इसके लक्षण उपरोक्त के समान ही हैं एवं यह अवस्था इन्सुलिन के कम उत्पादन के कारण उत्पन्न होती है।

iii. इन्सुलिन वृद्धि के लिये भी आवश्यक है।

3. डेल्टा कोशिकायें (δ-cells) **– 3 से 10 प्रतिशत**

Delta cells सोमेटोस्टेटिन (Somatostatin) नामक हॉर्मोन का स्रावण करती है।

कार्य – इस हॉर्मोन का मुख्य कार्य अवरोधक कार्य है जो कि निम्न ग्रन्थियों में होता है –

(A) अग्र पिट्यूटरी (Anterior Pituitory) **में होने वाले कार्य –**

- वृद्धि हॉर्मोन के स्राव को अवरूद्ध करता है।
- TSH थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन के स्राव को अवरूद्ध करता है।
- पैराइटल कोशिकाओं में adenylyl cyclase के स्राव को भी अवरूद्ध करता है।

(B) **पाचन नलिका** (Gastrainstestinal Tract) **में होने वाले कार्य –**

- गेस्ट्रीन, सेक्रीटीन, मोटीलीन, वेसोएक्टिव इनटेस्टाइनल पेप्पटॉयड, गेस्ट्रिक इनहिबिट्री पौलीपेप्टाइड इन GST हॉर्मोनों को अवरूद्ध करता है।
- चिकनी मांसपेशीय संकुचन (smooth muscle) को अवरूद्ध करता है।
- आंत्र में रक्त प्रवाह को कम करता है।
- पैंक्रियास के हॉर्मोन जैसे इंसुलिन और ग्लूकागॉन के स्रावण को भी अवरूद्ध करता है।
- बहिस्रावी ग्रन्थियों (पेंक्रियास के) की दर को कम करता है।

4. एफ कोशिकायें (F-cells) **– 3 से 5 प्रतिशत**

पेंक्रियाज़ में अवस्थित ये कोशिकायें अग्नाशयिक पॉलीपेप्टाइड (Pancreatic polypeptide) स्रावित करती है। ये पॉलीपेप्टाइड भोजन करने के बाद रक्त में पहुँचता है। इन F cell से स्रावित होने वाले पॉलीपेप्टाइड के विषय में जीव विज्ञानी अधिक जानकारी अर्जित नहीं कर पाये हैं एवं इस पर शोध कार्य जारी है। ज्ञात कार्यों में F cell का मुख्य कार्य पैंक्रियास ने अन्तःस्रावी व बहिस्रावी ग्रन्थियों के स्राव को नियमित करना है।

14.5 गोनेड्स/जनन ग्रन्थियाँ (Gonads)

जनन ग्रन्थियों का सम्बन्ध जनन (reproduction) से होता है। इन ग्रन्थियों के अन्तर्गत पुरुष एवं स्त्री के जननांगों का समावेश होता है। पुरुष में वृषण ग्रन्थियाँ (Testes) और स्त्री

में डिम्बा ग्रन्थियाँ (ovaries) जनन ग्रन्थियाँ या लिंग ग्रन्थियाँ (sex glands) कहलाती हैं। ये हॉर्मोन का स्राव करती हैं जो प्रजनन कार्यों (reproductive functions) के नियमन में सहायता करते हैं। वृषभ एवं डिम्ब ग्रन्थियों का विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार है –

14.5.1 वृषण (Testes)

वृषण पुरुष की प्रजनन ग्रन्थियाँ हैं। ये ग्रन्थि शुक्राणु का उत्पादन करती है जो कि जनन के दौरान मुख्य भूमिका निभाता है। भ्रूणीय विकास के दौरान वृषण उदर श्रेणि गुहा के भीतर वृक्कों (kidney) के ठीक नीचे निर्मित होते हैं। तीन माह का भ्रूण होने पर प्रत्येक वृषण अपनी वास्तविक जगह से नीचे उतरकर इन्वाइनल केनाल (inguinal canal) में आ जाता है। सातवें माह के पश्चात ये inguinal canal से गुजरकर वृषणकोष या अण्डकोश में आ जाता है। वृषणकोष शिशनमूल के नीचे एवं जांघों के बीच में लटकने वाली त्वचा की एक थैली होते हैं। टेस्टीज वृषणकोष में जन्म के पश्चात या थोड़ी ही पहले पूर्णतया उतरते हैं। Inguinal canal वृषण के गुजरने के पश्चात प्रायः बन्द हो जाती है। यदि केनाल बन्द नहीं हो पाती, तो inguinal हॉर्निया हो जाता है। यदि टेस्टीज ठीक से नहीं उतरते हैं या उदरगुहा में ही रह जाते हैं, तो प्रायः प्रारम्भिक बाल्यावस्था में ही ऑपरेशन द्वारा उन्हें अपने स्थान पर लाया जाता है। यदि यह दशा ठीक नहीं की जाती तो टेस्टीज द्वारा टेस्टोस्टीरॉन नामक हॉर्मोन उत्पन्न तो होता है, परन्तु शुक्राणु उत्पन्न नहीं होते, जिसके परिणामस्वरूप बांझपन या बन्ध्यता (sterility) की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। इसके अतिरिक्त इस अवस्था के परिणामस्वरूप टेस्टीकुलर केंसर होने की सम्भावना बढ़ जाती है। बांया वृषण दायें के तुलना में कुछ नीचे होता है जिससे सामान्य क्रियाओं में ये आपस में नहीं टकराते हैं। वृषण शरीर के बाहर वृषणकोष में रहते हैं। अतः इनका तापमान शरीर के ताप से लगभग 3^0F कम होता है। यह कम तापमान शुक्राणुओं की उत्पत्ति तथा उनके जीवित रहने के लिये आवश्यक होता है।

संरचना

वृषण शरीर के बाहर वृषणकोष में स्थित रहते हैं। वृषणकोष का आन्तरिक भाग एक तन्तुमय मीडियन सेप्टम द्वारा दो भागों में विभाजित होता है। प्रत्येक भाग या कक्ष में एक वृषण रहता है। मीडियन सेप्टम की दीवार वृषणकोष पर बाहर की ओर त्वचा के उभार (रेखा), पेरीनियल रेफी (perineal raphe) के रूप में दिखाई देती है, जो आगे चलकर शिशन के नीचे स्थित मध्य रेखा तथा पीछे perineum से गुदा तक स्थित मध्य रेखा में विलीन हो जाता है।

वयस्कों में प्रत्येक वृषण अण्डाकार आकृति का होता है तथा लगभग 4.5 सेमी0 लम्बा तथा 2.5 सेमी0 चौड़ा होता है। ये वृषणकोष में दोनों ओर वृषणरन्जुओं द्वारा लटके रहते हैं। प्रत्येक वृषण एक तन्तुमय थैली (fibrous sac) जिसे ट्यूनिका एल्ब्यूजीनिया (Tunica albuginea) कहते हैं, में बन्द रहता है। Tunica albuginea में वृषण में भीतर की ओर

को कई पट (septae) निकलर इसे कई कक्षों में जो कि lobules कहलाते हैं, में विभाजित करता है।

अधिवृषण या एपिडिडायमस (Epididymis)

शुक्रजनन नलिकायें वृषण के मध्य पश्च भाग में आकर मिलती हैं। यह क्षेत्र 'मीडिएस्टीनम टेस्टीज़' कहलाता है। शुक्रजनन नलिकायें सीधी होगी सीधी नलिकायें (tubuli recti) बन जाती हैं जो सूक्ष्म नलिकाओं के जाल, जिसे रेती टेस्टीज़ कहा जाता है, में खुलती हैं। इसके ऊपरी सिरे पर 15–20 अपवाही नलिकायें (efferent ducts) खुलती हैं।

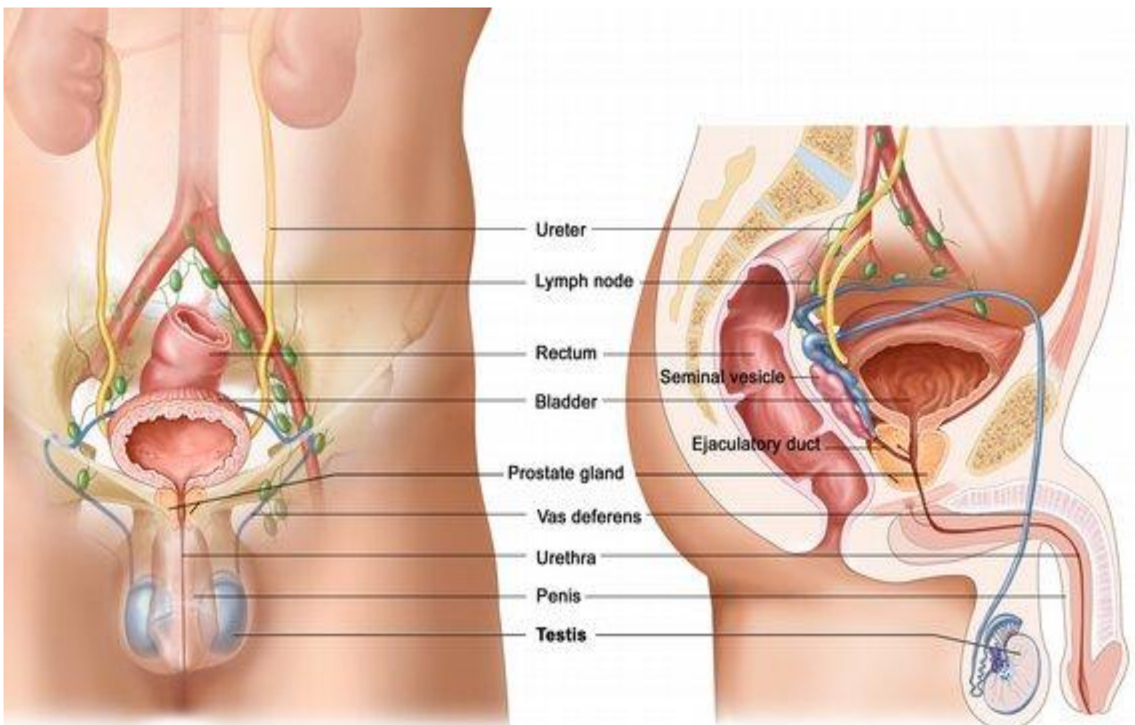

अधिवृषण के कार्य

1. यह शुक्राणुओं के परिपक्व होने तक एवं स्खलित होने तक इनको संचित रखता है।
2. वृषण से स्खलनीय वाहिकाओं तक शुक्राणुओं को पहुँचाता है।
3. शुक्राणुओं को आगे शिश्न की ओर धकेलता है। इसमें वृत्ताकार चिकनी पेशी कार्य करती है।

प्रत्येक अधिवृषण में सिर, काय और पुच्छ होती है। सिर वृषण के शीर्ष भाग पर स्थित रहता है। काय वृषण में पार्श्वीय एवं पुच्छ वृषण के तल तक फैला रहता है।

शुक्राणु (Sperm)

एक परिपक्व शुक्राणु सिर, ग्रीवा और काय में बंटा होता है। सिर में केन्द्रक होता है, जिसमें गुणसूत्र रहते हैं। ग्रीवा में कुण्डलित माइटोकॉण्ड्रिया रहते हैं, जो गतिशीलता के लिये ऊर्जा प्रदान करते हैं। पुच्छ की सहायता से शुक्राणु गति करते हैं। Tunica celbuginea ट्यूनिका वैस्कुलोसा (tunica vasculosa) में अस्तरित होती है तथा ट्यूनिका वैजाइनेलिस (tunica vaginalis) से अच्छादित रहती है।

ट्यूनिक वैस्कुलौसा वाहिलामाय (vascular) परत होती है, जिसमें कोशिकाओं का जाल विद्यमान होता है तथा ट्यूनिका वैजाइनैलिस दो परतों वाली सीरमी कला होती है, जो उदर श्रोणि गुहा को आस्तरित करती है एवं विलीन हो जाती है।

प्रत्येक वृषण में 800 से अधिक कसी हुई कुण्डलित सूक्ष्म नलिकायें होती हैं, जिन्हें शुक्रजनक नलिकायें (seminiferous tubules) कहते हैं। ये नलिकायें एक स्वस्थ वयस्क व्यक्ति में प्रति सेकेण्ड में हजारों शुक्राणु उत्पन्न करती हैं। दोनो वृषणों में विद्यमान शुक्रजनक नलिकाओं की कुल लम्बाई लगभग 225 मीटर होती है। इनकी भित्तियाँ जर्मिनल (germinal) ऊतक द्वारा आस्तरित होती हैं, जिसमें दो तरह की कोशिकायें शुक्राणुजनक कोशिकायें (spermatogenic cells) एवं सहारा देने वाली सर्तोली (sertoli) कोशाऐं रहती हैं। शुक्राणुजनक कोशिकायें शुक्राणुओं में रूपान्तरित हो जाती हैं। शुक्राणु का विकास अथवा शुक्राणुजन का अध्ययन आप प्रजनन संस्थान में विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे। सर्तोली कोशाऐं जर्मिनल शुक्राणुओं के परिपक्वन के लिये पोषण उपलब्ध कराती हैं। ये कोशिकायें नलिकाओं के भीतर एक प्रकार का तरल स्राव भी स्रावित करती है, जो विकासशील शुक्राणुओं के बाहर की ओर बहने के लिये एक तत्व माध्यम का कार्य करता है। ये कोशिकायें एण्ड्रोजन – बाइडिंग प्रोटीन का स्रावण करती हैं, जो टेस्टोस्टीरॉन एवं ईस्ट्रोजन दोनों को बांधती है तथा इन हॉर्मोन को शुक्रजनन नलिकाओं के भीतर के तरल में पहुँचाती हैं। यहाँ ये परिपक्व होते हैं।

शुक्राणु वृषण की शुक्रजनन नलिकाओं में उत्पन्न होने वाली पुरुष जनन कोशिकायें होती हैं। इनकी लम्बाई लगभग 0.05 मि.मी. होती हैं। प्रत्येक शुक्राणु 2 माह में पूर्णतया विकसित होता है। इनकी परिपक्वता अधिवृषण में होती है।

वृषण के हार्मोन व उनके कार्य

वृषण (testes) का अंतःस्रावी भाग कोशिकाओं के एक समूह से बना होता है, जिन्हें इन्टरस्टीशियल कोशिकायें (Interstitial cells) कहते हैं। यह कोशिकायें वृषण के सेमिनीफैरस ट्यूब्यूल्स (seminiferous tubules) के मध्य स्थित कनेक्टिव ऊतकों (connective tissues) में पाई जाती हैं। इन इंटरस्टीशियल कोशिकाओं से पुरुष सेक्स हॉर्मोन

टेस्टोस्टीरोन (testosterone) व एंड्रोस्टीरोन (Andosterone) स्रावित होते हैं जो कि सेकेण्ड्री सैक्सुअल कैरेक्टर्स (secondary sexual characters) के लिए उत्तरदायी होते हैं। इनका वर्णन निम्न है –

a. **टेस्टोस्टीरोन** (Testosterone)

- सेकेण्ड्री सेक्स अंग (secondary sex organs) जैसे एपीडीडाइमिस (epididymis), पोस्ट्रेट ग्रन्थि (Postrate gland), सेमिनल वैसिकल (seminal vesicle) के वृद्धि एवं विकास को नियंत्रित करता है।
- पुरुष की सेकेण्ड्री सेक्सुअल विशेषताओं (secondary sexual characters) जैसे दाढ़ी, मूँछ, आवाज में भारीपन, कंधों का चौड़ा, लम्बाई आदि के विकास के लिए उत्तरदायी होता है।
- सहवास उद्दीपन के लिय उत्तरदायी होता है।
- शुक्राणुओं (sperms) की परिपक्वता के लिए उत्तरदायी होता है।

b. **एण्ड्रोस्टीरोन** (Androsterone)

- यह द्वितीयक सेक्स लक्षणों को उभारने में सहायक होता है, परन्तु यह टेस्टोस्टीरोन की तुलना में कम प्रभावी रहता है।

डिम्ब ग्रन्थियाँ (Ovaries)

स्त्रियों में दो डिम्ब ग्रन्थियाँ होती हैं, जो डिम्ब (ova) एवं स्त्री हॉर्मोन (hormone) उत्पन्न एवं स्रावित करती है। ये बादाम के आकार की हल्के भूरे रंग की ग्रन्थियाँ हैं, जो उदर के निचले भाग में गर्भाशय के दोनों ओर डिम्बवाहिनिकाओं के पीछे एवं नीचे स्थित रहती हैं। प्रत्येक डिम्ब ग्रन्थि डिम्बग्रन्थियोजनी या मीजोवैरियम (Mesovarium) द्वारा ब्रॉड लिगामेण्ट की ऊपरी सतह से संलग्न रहती है। मीजोवेरियम के बॉर्डर में मोटापन डिम्बाशयी लिगामेण्ट (ovarian ligament) कहलाता है, जो डिम्बग्रन्थि से गर्भाशय तक फैला रहता है। मीजोवेरियम में शिराऐं, धमनियाँ, लसीका वाहिकाऐं एवं तंत्रिकायें विद्यमान होती हैं, जो डिम्बा ग्रन्थि के छिद्र (Hylum) से होकर आती एवं जाती हैं। डिम्ब ग्रन्थियाँ सस्पेन्सरि लिगामेण्ट द्वारा श्रोणि की पार्श्वीय भित्तियों से लटकी होती हैं।

संरचना

डिम्ब ग्रन्थियाँ विशिष्ट उपकला कोशाओं की एक परत से आच्छादित रहती हैं, जिसे बीज या जननिक परत (germinal layer) कहा जाता है। इस परत के नीचे संयोगी ऊतक (connective tissue) का एक पिण्ड होता है जिसे स्ट्रोमा (stroma) कहते हैं। इसी स्ट्रोमा (stroma) में डिम्ब (ova) परिपक्व होता है। डिम्ब ग्रन्थि निम्न दो भागों में बंटी होती है –

1. कॉर्टेक्स भाग
2. वाहिकामय मेड्यूला भाग

कॉर्टेक्स में गोलाकार एपिथीलियमी पुटक होते हैं, जिन्हें फॉलिकल्स (follicles) कहा जाता है। इनमें डिम्ब की उत्पत्ति एवं विकास (oogenesis) होता है। प्रत्येक फॉलिकल में एक अपरिपक्व डिम्ब होता है, जिसे प्राथमिक डिम्ब कोशिका (primary oocyte) कहा जाता है तथा ये फॉलिकल्स हमेशा विकास की कुछ एक अवस्थाओं में विद्यमान रहते हैं।

कॉर्टेक्स के बाहरी भाग अर्थात एपिथीलियमी परत के नीचे संयोगी ऊतक की सफेद परत होती है, जिसे 'टयूनिका एल्ब्यूजीनिया' (tunica albuginea) कहा जाता है। जन्म के समय कन्या शिशु की प्रत्येक डिम्ब ग्रन्थि में हजारों की संख्या में प्रीमोर्डीयल फॉलीकल्स होते हैं। 12 से 16 वर्ष की आयु में इनकी maturity शुरू हो जाती है। किसी स्त्री के सम्पूर्ण जीवन काल में लगभग 500 फॉलिकल्स ही परिपक्व हो पाते हैं। शेष विघटित हो जाते हैं। जब फॉलिकल्स परिपक्व होते हैं, तो इसकी भित्ति का निर्माण करने वाली कोशिकाओं की संख्या में अत्यधिक वृद्धि होने से फॉलिकल का परिवर्धन हो जाता है और उसके भीतर बनने वाले द्रव से गुहा भर जाती है। इस द्रव को 'पुटक द्रव' (liquor follicali) कहते हैं। प्रतिमाह ऋतुस्राव (menses) समाप्त होने के अगले दिन से एक डिम्ब ग्रन्थि में एक आदिपुटक का विकास होना आरम्भ हो जाता है। पूर्ण विकसित या परिपक्त फॉलिकल को वेसिक्यूलर ओवेरियन फोलिक्यूल (Vesicular ovarian follicle) या ग्राफियन फॉलिकल (Graafian follicle) कहते हैं। ग्राफियन फॉलिकल में पुटक द्रव की मात्रा बढ़ती जाती है, जिससे इसका आकार भी बड़ता जाता है और वह डिम्ब ग्रन्थि की सतह पर एक उभार के रूप में उभर आता है। लगभग 14 वें दिन इसमें तनाव बढ़ने से यह फट जाता है। फटने से आन्तरिक भाग में स्थित डिम्ब डिम्ब ग्रन्थि से बाहर निकल कर पर्युदर्या गुहा (peritoneal cavity) में आ जाता है। इस प्रक्रिया को डिम्बोत्सर्जन (ovulation) कहते हैं।

यह डिम्ब डिम्बवाहिनी के कीपाकार द्वार (infundibulum) से होता हुआ डिम्बवाहिनी में प्रवेश कर जाता है। डिम्बोत्सर्जन के उपरान्त फॉलिकल को आस्तरित करने वाली कोशिकायें अन्दर की ओर वृद्धि कर के कार्पस ल्यूटियम (corpus luteum) या पीत पिण्ड (yellow body) में परिवर्तित हो जाती है। यदि कॉर्पस ल्यूटियम के निर्मित होने के बाद 14 दिनों के अन्दर निषेचन नहीं होता है, तो ये विघटित (नष्ट) हो जाती है। और इसके स्थान पर तन्तुमय ऊतक का एक पिण्ड बन जाता है, जिसे कॉर्पस एल्बिकन्स (corpus albicans) कहा जाता है। इसके तुरन्त बाद प्रायः ऋतुस्राव (menstruation) होता है। यदि निशेषण होता है तो corpus lutium गर्भावस्था के प्रथम 2 से 3 माह तक सक्रिय रहती है। इसके पश्चात यह विघटित होकर प्लेसेन्टा का रूप ले लेती है।

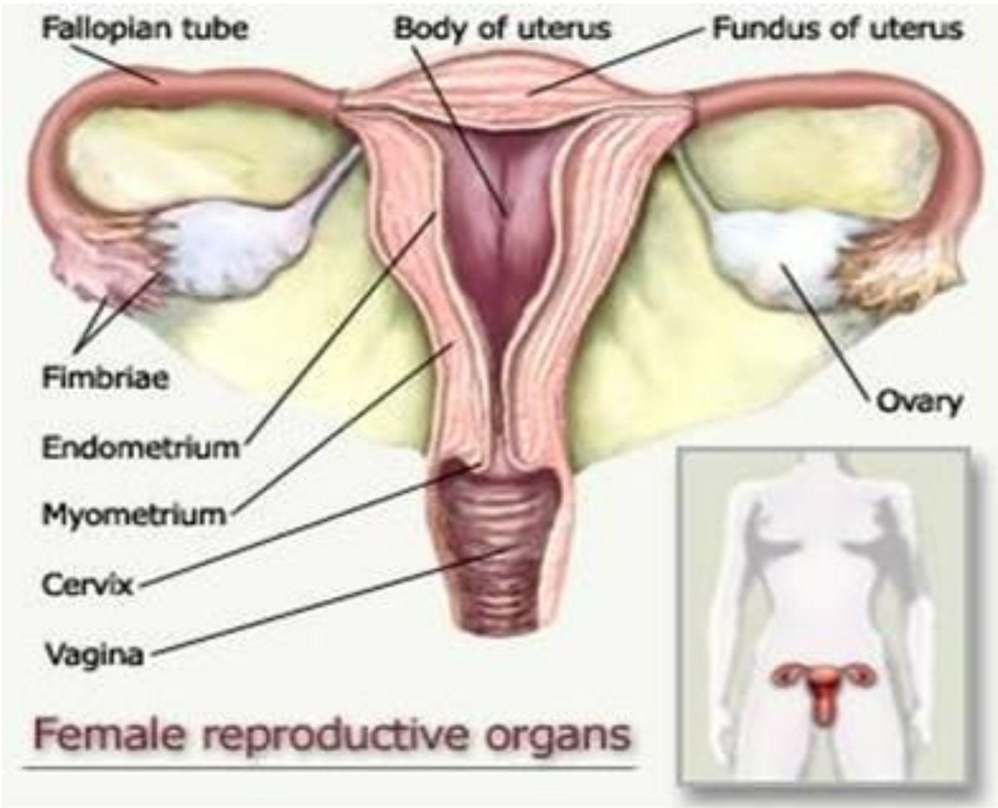

डिम्ब ग्रन्थि के हॉर्मोन एवं उनके कार्य

वृषण की भांति ही डिम्ब ग्रन्थि के अन्तःस्रावी भाग से तीन हॉर्मोनों का स्राव होता है, जिनका वर्णन निम्नवत् है –

a. **ईस्ट्रोजन** (Estrogen) – ये स्टेरॉयड हॉर्मोन का समूह होता है। यह डिम्बोत्सर्जन से पहले विकासात्मक फॉलिकल के थीकाइन्टर्ना (Theca interna) द्वारा स्रावित होता है और डिम्बोत्सर्जन के बाद Theca lutin cell द्वारा स्रावित होता है। यह गर्भवती महिलाओं में placenta के द्वारा भी स्रावित होता है।

- यह स्त्री जनन अंग जैसे फेलोपीन ट्यूब, यूट्रस, वेजाइना की वृद्धि और सामान्य कार्यक्षमता के लिये उत्तरदायी है।

- स्त्री द्वितीयक लक्षणों (Female secondary sexual characters) जैसे स्तनों का विकास, पेल्विक क्षेत्र का विकास, प्यूबिक बालों की वृद्धि, मासिक धर्म की शुरूआत आदि को नियन्त्रित करता है।
- सहवास उद्दीपन के लिये उत्तरदायी है।

b. **प्रोजेस्ट्रॉन** (Progestrone) – यह कॉर्पस ल्यूटियम द्वारा स्रावित होने वाला हॉर्मोन है।

- यह गर्भावस्था के दौरान डिम्बोत्सर्जन की क्रिया पर अंकुश रखता है ताकि गर्भधारण की प्रक्रिया में कोई बाधा उत्पन्न न हो।
- Uterine wall में foetus को अवस्थित करता है।
- Placenta formation को सहयोग करके आगे बढ़ाता है।
- गर्भ में foetus विकास के लिये उत्तरदायी होता है।
- गर्भावस्था के दौरान दुग्ध ग्रन्थियों के विकास के लिये उत्तरदायी है।
- गर्भाशय (uterus) के संकुचन को अवरूद्ध करता है ताकि गर्भस्थ शिशु पूरे विकास को प्राप्त करे अर्थात पूरी तरह निर्बाध रूप से विकसित हो सके।

c. **रिलैक्सिन हॉर्मोन** (Relaxin Hormone) – यह हॉर्मोन गर्भाधान के अन्त में कॉर्पस ल्यूटियम द्वारा स्रावित होता है। इसका कार्य पेल्विक लिगामेंट को शिथिलता प्रदान करना है ताकि प्रसव ठीक से हो सके।

अभ्यास प्रश्नः–

सही / गलत

(i) एड्रीनल कॉर्टेक्स एड्रीनल ग्रन्थि का लगभग 50 प्रतिशत भाग बनाती है।
(ii) हमारे शरीर में दो अधिवृक्क ग्रन्थियां होती हैं।
(iii) अधिवृक्क ग्रन्थियों को सुप्रारीनल ग्रन्थि भी कहा जाता है।
(iv) अधिवृक्क ग्रन्थि के मेड्यूला भाग से मिनरलोकॉर्टीकॉयड नामक हार्मोन का स्राव नहीं होता है।
(v) एड्रीनल कॉटेक्स दो भागों अथवा क्षेत्रों में विभाजित की जा सकती है।
(vi) ग्लूकोकॉर्टिकॉयड ग्लूकोज सान्द्रता के नियमन से सम्बन्धित है।

अभ्यास प्रश्न –
रिक्त स्थानों की पूर्तिः–

(i) एड्रीनल कॉर्टेक्स.......................ग्राम की ग्रन्थि है।

(ii) सेक्स हॉर्मोन का कॉर्टेक्स भाग के .... क्षेत्र से स्रवित होता है।

(iii) मूत्र में सोडियम के उत्सर्जन को कम करने के लिये.....................नामक हॉर्मोन उत्तरदायी है।

(iv) गोनेडोकॉर्टिकॉयड.................................. हॉर्मोन भी कहलाता है।

(v) कमजोरी व अति थकावट................... रोग की सामान्य पहचान है।

(vi) ईस्ट्रोजन........................... हॉर्मोन का समूह है।

(vii) प्रोजेस्ट्रॉन.................................. से निकलने वाला हॉर्मोन है।

14.7 सारांश

हमारे शरीर में खनिज लवणों की सान्द्रता को नियन्त्रित करने वाला, उच्च रक्तचाप, उपापचय का नियन्त्रण, शारीरिक अथवा मानसिक तनाव को प्रभावित करने वाली ग्रन्थि हमारे शरीर में वृक्क के ऊपरी सिरे पर एक जोड़ी रूप में रहती है। अन्तः एवं बहिस्रावी दोनों रूपों में कार्य करने वाली एक ही ग्रन्थि जिसे पैंक्रियाज़ नाम से जाना जाता है। शारीरिक प्रभावों पर नियन्त्रण रखने वाली ग्रन्थि है। यह अवरोधक हॉर्मोनों का स्राव कर के महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। गोनेड्स ग्रन्थियाँ पुरुष सेक्स हॉर्मोन एवं स्त्री सेक्स हॉर्मोन का स्रावण करती है।

14.8 शब्दावली

कुशिंग रोग – एक प्रकार का रोग जिसमें चेहरे, वक्ष एवं उदर की चर्बी बढ़ जाती है। हृदय गति तीव्र हो जाती है।

एडिसन रोग – गोनेडोकार्टिकॉयड हॉर्मोन के अल्प सक्रियता से उत्पन्न रोग

सिम्पेथेटिक तंत्रिका तंत्र – तंत्रिका तंत्र का विभाग

एसिनर कोशिकायें – बहिस्रावी कोशिकायें

यूट्रस – गर्भाशय

फीटस – भ्रूण

14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तरः–

सही / गलत

(i) गलत (ii) सही (iii) सही (iv) सही (v) गलत (vi) सही

रिक्त स्थानों की पूर्तिः–

(i) 5-7 ग्राम

(ii) तृतीय क्षेत्र आन्तरिक क्षेत्र

(iii) एल्डोस्टीरॉन

(iv) सेक्स

(v) एडीसन रोग

(vi) स्टेरॉयड

(viii) डिम्ब ग्रन्थि

14.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, प्रा0 अनन्त प्रकाश गुप्ता (2010), सुमित प्रकाशन (आगरा)

2.गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

3.शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।

4.पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

5-Principles of Anatomy & Phisiology, Geroard J. Tortora and Bryan H. Derrickson (2008), John Wiley & Sons (India)

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. एड्रीनल कॉर्टेक्स से स्रावित होने वाले हॉर्मोन्स का वर्णन कीजिये।
2. एड्रीनल मेड्यूला से स्रावित होने वाले हॉर्मोनों के कार्यों को समझाइये।
3. अन्तःस्रावी ग्रन्थि के रूप में पैंक्रियाज़ के कार्यों की चर्चा कीजिये।
4. गोनेड्स की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिये।

इकाई 15– पीयूष, पीनियल, थाइरॉइड, पैराथॉइराइड, एड्रीनल, पैन्क्रियाज ग्रन्थियों पर यौगिक प्रभाव

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 पीयूष ग्रन्थि एवं योग

15.3.1 पीयूष ग्रन्थि का सूक्ष्म परिचय

15.3.2 योग का प्रभाव

15.4 पीनियल ग्रन्थि एवं योग

15.4.1 पीनियल ग्रन्थि का सूक्ष्म परिचय

15.4.2 योग का प्रभाव

15.5 थॉइराइड, पैराथाइरॉइड ग्रन्थि एवं योग

15.5.1 थॉइराइड ग्रन्थि का सूक्ष्म परिचय

15.5.2 पैराथाइराइड का सूक्ष्म परिचय

15.5.3 योग का प्रभाव

15.6 एड्रीनल ग्रन्थि एवं योग

15.6.1 एड्रीनल ग्रन्थि का सूक्ष्म परिचय

15.6.2 योग का प्रभाव

15.7 पैंक्रियाज ग्रन्थि एवं योग

15.7.1 पैन्क्रियाज ग्रन्थि का सूक्ष्म प्रभाव

15.7.2 योग का प्रभाव

15.8 सारांश

15.9 शब्दावली

15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

15.12 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना–

अन्तः स्रावी ग्रन्थियों के अंतर्गत आपने पिट्यूटरी, पीनियल, थायरॉइड, पैराथायरॉइड, एड्रीनल, पैन्क्रियाज व गोनेड्स ग्रन्थियों की संरचना एवं इनसे स्रावित हॉर्मोन का शरीर की समस्थिति बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका है, यह आपने जाना व समझा। योग के अंतर्गत षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, मुद्राएं, बंध, यम–नियम, ध्यान उपरोक्त अंतःस्रावी ग्रन्थियों के स्रावों को प्रभावित करते हैं, इसी बात की पुष्टि करती हुई यह इकाई प्रस्तुत है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान सकेंगे कि योग किस प्रकार अंतःस्रावी ग्रन्थियों से स्रावित हॉर्मोन्स के अल्पश्रावण व अतिश्रावण से उत्पन्न रोगो को ठीक करता है व शरीर की समस्थिति को बनाए रखता है।

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई से आप जानेंगे कि

- एडिनोहाइपोफासिस से निकलने वाले हॉर्मोन के अति और अल्प श्रावण से उत्पन्न रोगों पर योग का प्रभाव कैसे पड़ता है।
- न्यरोहाइपोफाइसिस से निकलने वाले हॉर्मोन पर यौगिक क्रियाओं का प्रभाव जानेंगे।
- पीनियल ग्रन्थि पर आसन, प्राणायाम, ध्यान का क्या प्रभाव पड़ता है यह जान सकेंगे।
- थायरॉइड और पैराथायरॉइड से संबंधित रोगों पर आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध का प्रभाव जान सकेंगे।
- एड्रीनल ग्रन्थि के रोगों पर एवं उसे स्वस्थ बनाए रखने में योग की भूमिका जान सकेंगे।
- पैंक्रियाज से संबंधित रोगों पर योग का प्रभाव जान सकेंगे।
-

15.3 पीयूष ग्रन्थि एवं योग–

अब आप पीयूष ग्रन्थि का सूक्ष्म परिचय और उस पर योग के प्रभाव का अध्ययन करेंगे।

15.3.1 पीयूष ग्रन्थि का सूक्ष्म परिचय–

अंतः स्रावी ग्रन्थियों के अंतर्गत पीयूष ग्रन्थि एक अति महत्वपूर्ण ग्रन्थि है। पीयूष ग्रन्थि अथवा हाइपोफाइसिस मस्तिष्क के क्रेनियल कैविटी में अवस्थित रहता है। इसके दो खण्ड होते हैं जिन्हें अग्र और पश्च पिट्यूटरी कहा जाता है। अग्र पिट्यूटरी के स्रावों को हाइपोथैलेमस नियंत्रित करता है। हाइपोथैलेमस से कुछ रासायनिक स्राव निकलते हैं जो कि अग्र पिट्यूटरी से हॉर्मोन के स्रावण को उत्तेजित करते हैं। अग्र पिट्यूटरी से वृद्धि हार्मोन, प्रोलेक्टिन हार्मोमोन, थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन, फॉलिकल उद्दीपक हॉर्मोन, एडिनोकॉर्ट्रिकोट्रोपिक हॉर्मोन, ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन तथा मैलेनोसाइट उद्दीपक हॉर्मोन,

निकलते हैं। पश्च खण्ड से ऑक्सीटॉसिन और वैसोप्रैसिन नामक महत्वपूर्ण स्राव निकलते हैं।

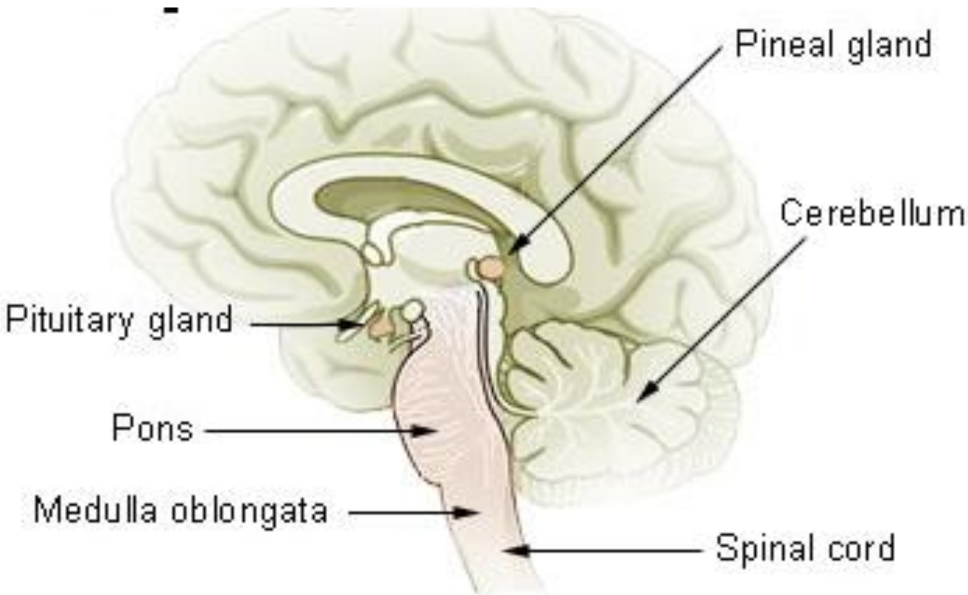

Hormone	Target	Function
Adrenocorticotropic hormone (ACTH)	adrenal cortex	stimulates secretion of cortisol and aldosterone by the adrenal cortex
Antidiuretic hormone (ADH)	kidney tubules	stimulates reabsorption of water by kidneys, reducing the concentration of solutes in the blood
Follicle-stimulating hormone (FSH)	ovaries in females; testes in males	stimulates egg production in females; stimulates sperm production in males
Growth hormone (GH)	muscle and bone	regulates development of muscles and bones
Luteinizing hormone (LH)	ovaries in females; testes in males	stimulates progesterone and estrogen production; initiates ovulation in females; stimulates testosterone production
Oxytocin	mammary glands and uterine muscles	initiates uterine contractions during childbirth; stimulates flow of milk from breasts during lactation
Prolactin (PRL)	mammary glands	stimulates milk production in breasts during lactation
Thyroid-stimulating hormone (TSH)	thyroid gland	regulates secretion of the thyroid hormones—thyroxine and triiodothyronine

15.3.2 योग का प्रभाव–

A. षट्कर्मों का प्रभाव– त्राटक एवं कपालभाति पिट्यूटरी ग्रन्थि पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। षट्कर्मों के द्वारा हाइपोथैलेमस प्रभावित होता है जिसके परिणामस्वरूप पीयूष ग्रन्थि से निकलने वाले हॉर्मोन नियमित एवं नियंत्रित होते हैं।

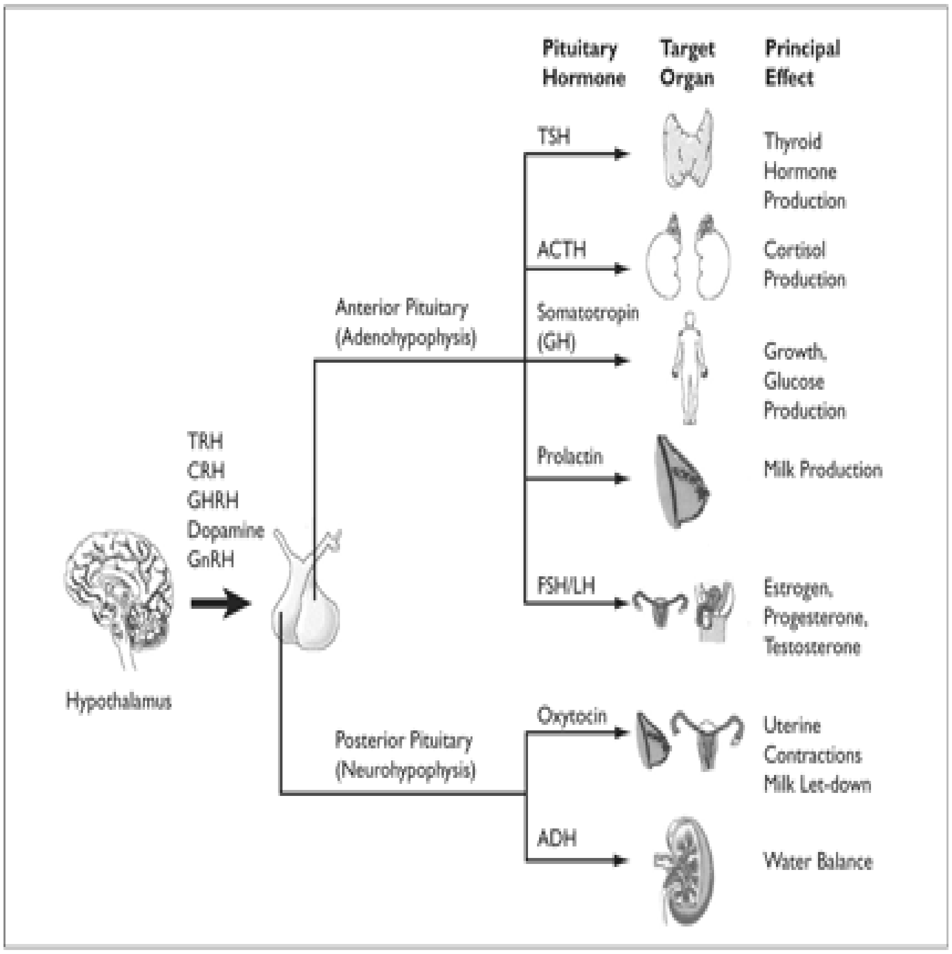

B. आसनों का प्रभाव– शीर्षासन, सर्वांगासन, हलासन, कर्णपीड़ासन, अर्धहलासन, विपरीतकरणी, सूर्य नमस्कार एवं संतुलन प्रदान करने वाले सभी आसन पिट्यूटरी ग्रन्थि को प्रभावित करते हैं। हलासन, जानु शीर्षासन जैसे आसन अतिकायता जैसे रोगों के लिए अति महत्वपूर्ण आसन है। आसन ग्रन्थियों एवं आंतरिक अंगों की मालिश करते हैं और उन में दबाव डालते हैं जिससे जमा हुआ अशुद्ध रक्त बाहर चला जाता है तथा शुद्ध रक्त को संचरण का अवसर मिलता है जिससे ग्रन्थियों को नई शक्ति मिलती है।

सूर्य नमस्कार

C. प्राणायाम का प्रभाव– प्राणायाम के अंतर्गत कपालभाति, नाड़ी शोधन, अनुलोम–विलोम, उज्जायी, एवं अन्य प्राणायाम पिट्यूटरी ग्रन्थि को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। प्राणायाम के द्वारा साम्यावस्था बनाए रखने में सहायता मिलती है। प्राणायाम से रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है। भ्रामरी प्राणायाम के फलस्वरूप उच्च रक्तचाप नियंत्रित होता है जो कि अग्र पिट्यूटरी से निकलने वाले हॉर्मोन वैसोप्रेसीन से सम्बन्धित है।

D. योग निद्रा– योगनिद्रा मन के अवचेतन तल पर कार्य करती है। योग निद्रा के प्रभाव की व्याख्या करते हुए कई शोधकर्ताओं ने पाया कि Electroencephalograph (EEG) योगनिद्रा का सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। यह इस बात की ओर संकेत है कि योग निद्रा करने से मस्तिष्क की एल्फा तरंगें, जो कि शान्त अवस्था का प्रतीक है, बढ़ जाती है।

E. **आहार का प्रभाव–** वृद्धि हॉर्मोन, प्रोलेक्टिन हॉर्मोन पर आहार का सीधा प्रभाव पडता है। संतुलित आहार न लेने के कारण शरीर कुपोषण का शिकार हो जाता है। आहार में सम्मिलित प्रोटीन, वसा, कैल्शियम, मिनरल का संश्लेषण वृद्धि हॉर्मोन की उपस्थिति के कारण ही सम्भव है।

F. धारणा, ध्यान का प्रभाव– आध्यात्मिक दृष्टि से पिट्यूटरी का सम्बन्ध सहस्रार चक्र से मााना जाता है। योग साधना में धारणा, ध्यान के अभ्यास के परिणाम स्वरूप पिट्यूटरी ग्रन्थि पर प्रभाव प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से पड़ता देखा गया है। पूर्व में वर्णित योग निद्रा के प्रभाव से आप परिचित हो गये है। एल्फा तरंगों पर धारणा, ध्यान का प्रभाव पड़ता है। ध्यान के फलस्वरूप एल्फा तरंगें बढ़ जाती है जो कि गहरी शान्ति का प्रतीक है।

15.4 पीनियल ग्रन्थि एवं योग–

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के अन्तर्गत तीसरी आंख कही जाने वाली ग्रन्थि पीनियल है।इस पर निम्नानुसार योग का प्रभाव पडता है।

15.4.1 पीनियल ग्रन्थि का सूक्ष्म परिचय–

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के अन्तर्गत तीसरी आंख कही जाने वाली ग्रन्थि पीनियल है। पाइन कोन होने के कारण इसका नाम पीनियल पड़ा। दोनों मस्तिष्कीय गोलार्द्धों के बीच लाल–भूरे रंग की, चावल के दाने के आकार की ग्रन्थि है। यह ग्रन्थि बाल्यावस्था में सक्रिय रहती है, एवं जैसे–जैसे बाल्यावस्था बढ़ती है यह कैल्सीफाइड होती जाती है। एक्स–रे में यह मिडलाइन संरचना देखी जा सकती है। यह एपीथैलेमस का एक भाग है जो थैलमिक बॉडी के बीच लैटरली स्थित रहती है।

15.3.2 योग का प्रभाव–

यह ग्रन्थि मस्तिष्क के मध्य में स्थित होती है, मेडिकल शोधकर्ताओं के अनुसार इस अंग में रक्त आपूर्ति शरीर के अन्य अंगों की तुलना में अधिक होती है तो निश्चित हो यह कहा जा सकता है कि यह अंग अन्य अंगों की तुलना में महत्वपूर्ण है और यह रक्त आपूर्ति निश्चित ही महत्वपूर्ण कार्यों में ही खर्च होती होगी। अभी तक बहुत अधिक इस ग्रन्थि के विषय में ज्ञात नहीं हो पाया है। यह ग्रन्थि मेलेटोनिन नामक हॉर्मोन का नियमन करती है जो कि सैक्स हॉर्मोन है। अतः यौन विकास में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बच्चों में पीनियल ग्रन्थि के सक्रिय होने से ही यौन क्रियाएं नियन्त्रित रहती हैं। आध्यात्मिक रूप से यह ग्रन्थि आज्ञा चक्र से सम्बन्धित है। त्राटक के अभ्यास से पीनियल ग्रन्थि सक्रिय होती है, चित्त एकाग्र होता है और उच्च स्थिति प्राप्त होती है। महर्षि घेरण्ड ने त्राटक के अभ्यास से दिव्य दृष्टि की प्राप्ति की बात कही है (G.H.S. 1/54) दिव्य दृष्टि अर्थात् चित्त की शान्त और एकाग्र अवस्था। चित्त की एकाग्रता से पीनियल ग्रन्थि खुलती है।

तर्क संगत कार्यों को नियमित करने वाला हॉर्मोन सीरोटोनिन भी इसी ग्रन्थि के द्वारा नियंत्रित होता है। अतः पीनियल के व्यावस्थित होने से बुद्धि एकाग्र होनी है। स्मरण शक्ति बढ़ती है। यह दृष्टि से सम्बन्धित संवेदनाओं को भी नियन्त्रित करती है। शरीर नियन्त्रण, निद्रा एवं ऐसे बहुत से कार्यों में पीनियल का नियन्त्रण है जो कि शरीर और मन दोनों के द्वारा संचालित होते हैं। योग की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण ग्रन्थि है।

15.5. थॉइराइड, पैराथॉइराइड ग्रन्थि एवं योग–

15.5.1 थॉइराइड ग्रन्थि का सूक्ष्म परिचय– 25 ग्राम वजन वाले यह वाहिकीय ग्रन्थि, श्वास प्रणाल के सामने निचले सर्वाइकल और प्रथम डॉर्सल वर्टिब्री के स्तर पर गले में स्थित होनी है इसके दो खण्ड होते है। यह चारों ओर से तन्तुमय केप्सूल द्वारा घिरी होती है। प्रत्येक खण्ड उपकला उत्तकों द्वारा बनता है, जिसके अन्दर

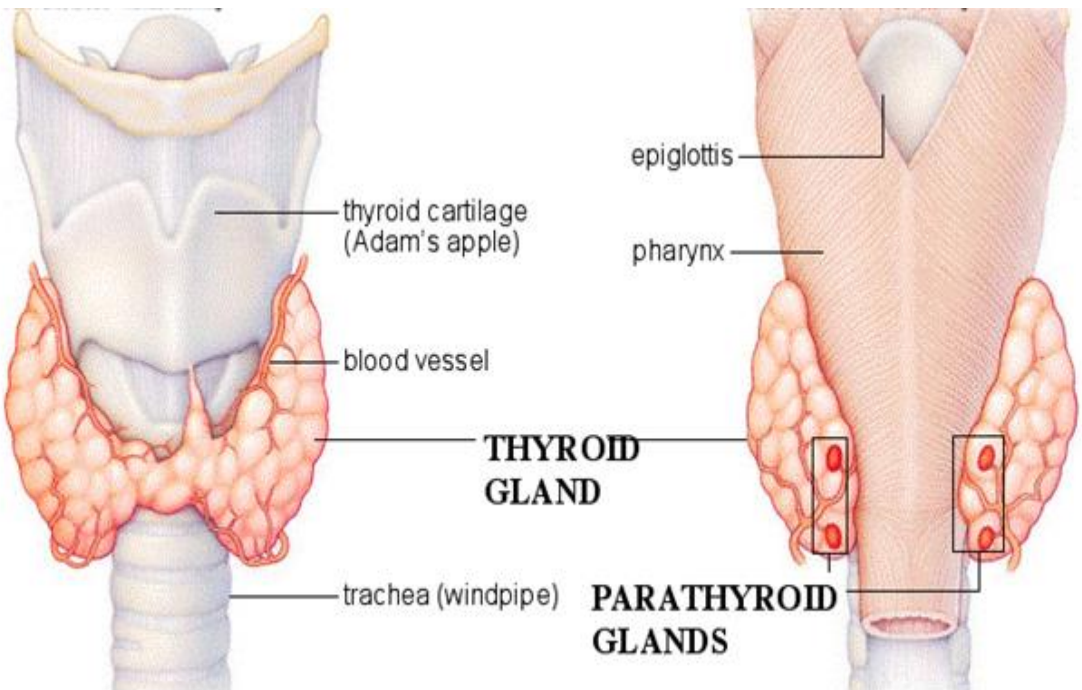

गाढ़ा, चिपचिपा प्रोटीन पदार्थ भरा होता है, जिसे कोलॉयड (Colloid) कहते हैं। इसी में थॉइरॉइड हॉर्मोन इकट्ठा होता है। यह ग्रन्थि चयापचय से सम्बन्धित होती है।

15.5.2 पैराथाइरॉइड ग्रन्थि का सूक्ष्म परिचय–

थाइरॉइड ग्रन्थि की पिछली सतह में मसूर के दाने के आकार की चार ग्रन्थियां पैराथाइरॉइड ग्रन्थियां हैं। यह थॉइराइड ग्रन्थि के दोनों खण्डों पर एक–एक जोड़ी स्थित होनी हैं। ये ग्रन्थियां पैराथॉर्मोन नामक हॉर्मोन का स्रावण करती हैं जो कि शरीर में कैल्शियम एवं फॉस्फोरस के वितरण एवं चयापयच को नियंत्रित करते हैं।

15.5.3 योग का प्रभाव–

A. षट्कर्मो का प्रभाव–

धौति के अन्तर्गत वस्त्र धौति, वमन, दण्ड, जिहवाशोधन, थाइरॉइड एवं पैराथॉइराइड पर प्रभाव डालकर इनसे निकलने वाले हॉर्मोन का स्रावण प्रभावित करते हैं। नेति और त्राटक पिट्यूटरी को प्रभावित करने के कारण परोक्ष रूप से थाइरॉइड को भी प्रभावित करते हैं।

B. आसनों का प्रभाव–

विपरीतकरणी, सर्वांगासन, शीर्षासन, कर्णपीड आसन, हलासन, अर्द्धहलासन, पद्म सर्वांग आसन, शलभासन, भुजंगासन, सिंहासन, मत्स्यासन आदि आसन प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से थाइरॉइड और पैराथॉइराइड ग्रन्थियों को प्रभावित करते हैं।

<u>हलासन</u>

थाइरॉइड ग्रन्थि से निकलने वाला हॉर्मोन थाइरॉक्सिन (जो कि आयोडीन और अमीनो अम्ल का मिश्रण होता है) ऑक्सीजन की खपत को नियन्त्रित करता है। किसी कारण वश जब यह क्रिया मन्द हो जाती है तो चयापचय पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। उपरोक्त वर्णित आसनों के माध्यम से थाइरौक्सिन स्रावण नियमित और नियन्त्रित होता है जो कि चयापचय के दृष्टिकोण से एक बड़ी उपलब्धि है। वास्तव में चयापचय ही हमारे शरीर को ऊर्जावान रखने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। इसके अन्तर्गत Anabolism द्वारा ऊर्जा निर्माण एवं Catabolism द्वारा ऊर्जा खपत की क्रिया सम्पादित होती है।

आसन मात्र शारीरिक ही नहीं बल्कि कहीं अधिक मानसिक प्रभाव डालने वाली योगिक अवस्था है। आसन यदि 'स्थिर सुखमासनम्' को ध्यान में रखकर किया जाये तो अन्तःस्रावी तंत्र निश्चित ही प्रभावित होता है। विश्रान्तिकारक आसन विशेष रूप से गले को साफ रखते हैं एवं विश्राम देते हैं। मकरासन में विशेष रूप से जब श्वास नली शिथिल अवस्था में होती है तो इस ग्रन्थि को भी आराम मिलता है।

C. प्राणायाम का प्रभाव–

प्राणायाम पूरक, कुम्भक और रेचक को वैज्ञानिक तरीके से करने की विधा है। प्राणायाम जहां प्राणों को नियन्त्रित करता है वहीं शरीर में फैले हुये विजातीय पदार्थो को

बाहर भी निकालता है। यह सूक्ष्म और स्थूल दोनों तलों पर शरीर का शोधन करने की विधा है। थाइरॉइड और पैराथाइरॉइड ग्रन्थि को प्रभावित करने वाले प्राणायामों में उज्जायी, कपालभाति, भस्त्रिका, भ्रामरी, शीतली, सीतकारी आदि प्राणायाम प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से इन ग्रन्थियों पर प्रभाव डालते हैं। नाड़ी शोधन प्राणायाम इस दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है कि यह सम्पूर्ण शरीर के नाड़ी तन्त्र की शुद्धि करता है। स्वामी निरंजनानंद सरस्वती के अनुसार ''भ्रामरी शरीर के उतकों के स्वस्थ होने की गति को बढ़ाता है'' अतः यह स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण क्रिया है।

D. बन्धों का प्रभाव–

थाइरॉइड, पैराथॉइराइड ग्रन्थि पर जालन्धर बन्ध प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालता है। सामान्य रूप से यह माना जाता है कि शरीर का विकास कार्य थॉइराइड ग्रन्थि द्वारा नियन्त्रित होता है। अगर थाइरॉइड ग्रन्थि में किसी प्रकार का विकार या असन्तुलन आ जाये तो शरीर का विकास रूक जाता है। बौनापन, थाइराइडिज्म (हापर/हाइपो) आदि रोग हो जाते हैं, बच्चों में केटिनिज्म एवं बड़ों में मिक्सीडीमा रोग थाइरॉक्सिन के अल्प स्रावण की वजह से ही होते हैं। जालन्धर बन्ध द्वारा कण्ठ प्रदेश के उद्दीपन के फलस्वरूप थाइरॉइड ग्रन्थि में सक्रियता उत्पन्न होती है। इस बंध के फलस्वरूप श्वास नली बन्द हो जाती है और ग्रीवा में स्थित विभिन्न अंगों पर दबाव पड़ता है। विशेषतः थाइरॉइड ग्रन्थि की मालिश होती है तथा इसकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है (स्वामी निरंजनानंद सरस्वती, घेरण्ड संहिता 1997)। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि सरवाइकल स्पॉण्डिलाइटिस, उच्च रक्तचाप, भ्रम, उच्च अन्तःकपालीय दबाव एवं हृदय रोगों से ग्रसित व्यक्ति इस बन्ध का अभ्यास नहीं कर सकते हैं।

E. योग निद्रा का प्रभाव–

वस्तुतः योग निद्रा सम्पूर्ण शरीर, अन्तःकरण को प्रशिक्षण देने की विधा है। यह शरीर और मन को मिलजुल कर कार्य करने का प्रशिक्षण देती है। शरीर जब विश्रान्ति प्राप्त करता है तो निश्चित ही अन्तःस्रावी संस्थान बल प्राप्त करता है। अवचेतन में दबे भाव इस अभ्यास के द्वारा सरलीकृत होते हैं एवं मन हल्का होता है।

F. भक्तियोग, यम, नियम–

थाइरॉइड रोगों के अनेक कारणों में सबसे महत्वपूर्ण कारण भावनाओं का दमन है। यौगिक उपचार में यम, नियमों का पालन, गहन निद्रा, कीर्तन, भजन बहुत अच्छा माध्यम है।

15.6 एड्रीनल ग्रन्थि एवं योग–

15.6.1 एड्रीनल ग्रन्थि का सूक्ष्म परिचय–

हमारे शरीर में दोनों वृक्कों के ऊपरी भाग में त्रिकोण आकार की एक जोड़ी एड्रीनल (सुप्रारीनल) ग्रन्थि या अधिवृक्क ग्रन्थि अवस्थित रहती है। एक वयस्क में 3–5 से0मी0 लम्बी, 2–3 से0मी0 चौड़ी एवं 1 से0मी0 से कम मोटी आकार की 3.5–5 ग्राम

वजन की ग्रन्थि होती है। प्रत्येक ग्रन्थि दो भागों से मिलकर बनती है। आन्तरिक भाग को मेड्यूला (Medulla) एवं बाह्रय भाग को कॉर्टेक्स (Contex) कहते हैं। इन दोनों भागों के अन्तःस्रावी कार्य भिन्न–भिन्न हैं। बाह्रय भाग से स्टीरॉइड हॉर्मोन, कॉर्टिसोल, कॉर्टिस्टीरॉन एवं सेक्स हॉर्मोन का स्रावण होता है।

आन्तरिक भाग से एड्रिनलीन तथा नॉरएड्रीनलीन नामक महत्वपूर्ण हॉर्मोनों का स्रावण होता है।

15.6.2 योग का प्रभाव–

A. षट्कर्मो का प्रभाव–

षट्कर्मों में जल नेति, वातकर्म, कपालभाति, शीतकर्म एवं व्युत्कर्म तथा त्राटक के अभ्यास मन को शान्त बनाते हैं। पेट की मसाज करते हैं। षट्कर्मों के अभ्यास से इस ग्रन्थि के स्राव नियमित होते हैं। एल्डोस्टीरॉन की अधिकता से रक्तचाप बढ़ जाता है, कमजोरी, झुनझुनी, रेंगावन आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। षट्कर्मों के अभ्यास से यह अनियमितता समाप्त हो जाती है।

B. यम, नियमों का पालन–

मानसिक अशान्ति के फलस्वरूप एड्रीनल ग्रन्थि प्रभावित होती है एवं दीर्घकालिक दबावों के कारण यह व्याधिग्रस्त हो जाती है। यम, नियमों के अभ्यास से मन शान्त, सबल एवं निश्चिन्त हो जाता है एवं आत्मिक बल बढ़ता है। यह आन्तरिक सन्तुलन देता है जिससे प्रतिकूल परिस्थितियों में भी व्यक्ति अपना सन्तुलन नहीं खोता है।

C. आसनों का प्रभाव–

पेट और पीठ पर प्रभाव डालने वाले अभ्यास एवं तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव डालने वाले अभ्यास मुख्य रूप से एड्रीनल ग्रन्थि को प्रभावित करके उसके स्रावों को नियन्त्रित कर सकते हैं। जैसा कि पूर्व में भी बताया जा चुका है यह ग्रन्थि भावनात्मक असंतुलन के फलस्वरूप अधिक प्रभावित होती है अतः संधि संचालन के अभ्यास अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं।

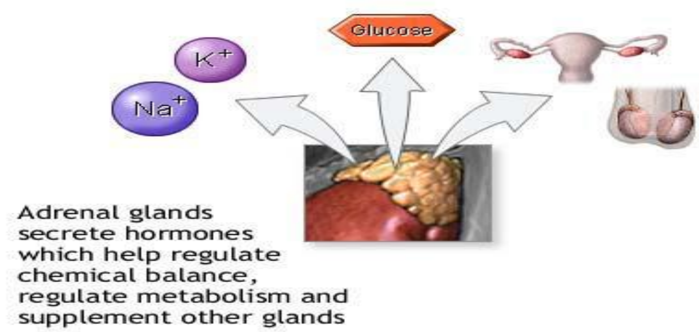

विभिन्न शोध अध्ययनों के परिणाम स्वरूप ज्ञात हुआ है कि सूक्ष्म भावनाऐं जोड़ों में एकत्र होकर वहां की लोच, शक्ति को प्रभावित करते हैं। संधि संचालन के अभ्यास से संधियों को ऊर्जा मिलती है। रक्त संचरण के ठीक होने से वहां के विजातीय द्रव्य उत्सर्जन, संस्थान

से बाहर चले जाते हैं। एवं अंग पुष्ट होता है, मन शान्त होता है एवं शरीर और मन दोनों ही सामन्जस्य प्राप्त करते हैं।

D. प्राणायाम का प्रभाव–

प्राणायाम प्राणों को साधने की कला है। इसके माध्यम से शरीर में ऑक्सीजन सुचारू रूप से एवं पर्याप्त मात्रा में संचालित होती है। प्राणों के विस्तारीकरण एवं नियन्त्रण के फलस्वरूप शरीर के विभिन्न संस्थान सुचारू रूप से कार्य करने लगते हैं। रक्त में रूके हुये विजातीय पदार्थ (Toxins) बाहर निकल जाते हैं एवं शरीर निर्मल व स्वच्छ होता है। हठ यौगिक ग्रन्थों में चर्चा मिलती है कि प्राणायाम से शरीर में हल्कापन आता है। हल्का शरीर निरोगी काया का लक्षण है। श्वास मानसिक और भावनात्मक स्थिति का आइना विशेष होता है। क्रोघ , तनाव, शोक, हर्ष में श्वास अलग–अलग होती है। यह चंचल हो तो मन भी चंचल होता है कहा भी गया है ''चले वातम् चले चिन्तम्'' अर्थात् वायु के चलने पर चितम् भी चलता है।

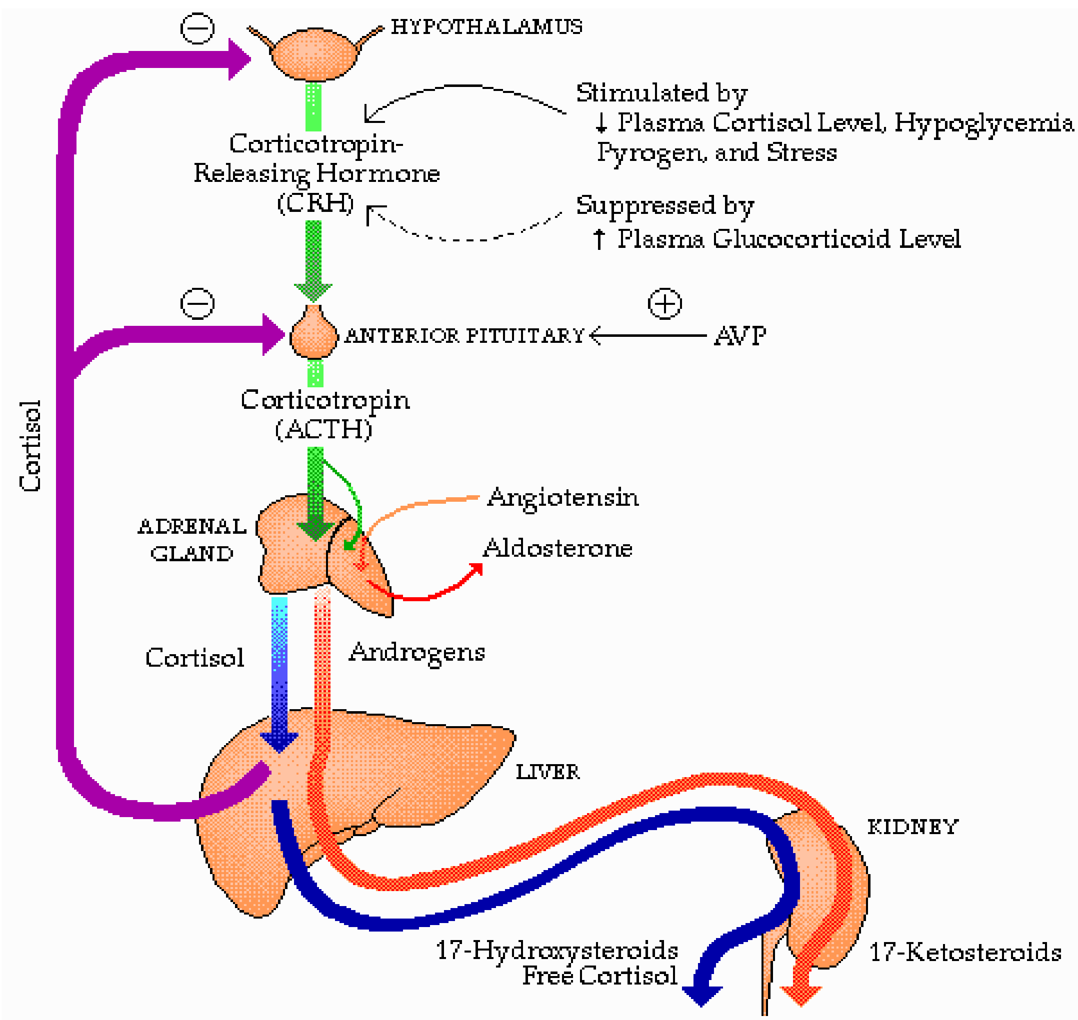

एड्रीनल ग्रन्थि के आन्तरिक भाग से निकलने वाले हॉर्मोन एड्रिनलीन एवं नारएड्रिनलीन नामक हॉर्मोन भावनात्मक परिवर्तन का कारक है। ''लड़ों या भागों स्थिति के लिये ये हॉर्मोन शरीर की रक्त धारा में बने रहकर किसी भी स्थिति में होने वाला प्रतिक्रिया को करने का कार्य करते हैं।

एड्रीनलीन ग्रन्थि से निकलने वाले हॉर्मोन चयापचय दर को भी प्रभावित करने का कार्य करते हैं। प्राणायामों के अभ्यास से इस ग्रन्थि को पर्याप्त ऊर्जा मिलती है जिससे इसके कार्य समन्वित एवं नियन्त्रित होते हैं। नाड़ी शोधन, उज्जायी, शीतली, सीत्कारी प्राणायाम विशेष रूप से फलदायी सिद्ध हो सकते हैं।

E. बन्ध एवं मुद्रा–

उड्यान बन्ध, प्राण मुद्रा, तड़ागी मुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा आदि अभ्यास लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं।

F. विश्रान्तिकारक अभ्यास–

योगनिद्रा, शवासन, मकरासन अभ्यास विशेष फलदायक सिद्ध होते हैं।

G. ध्यान साधना–

ध्यान का अभ्यास, अजपाजप साधना मानसिक शान्ति एवं स्फूर्ति प्रदान करने में सहायक होने से विशेष लाभकारी होते हैं।

15.7 पैन्क्रियाज ग्रन्थि एवं योग–

15.7.1 पैन्क्रियाज ग्रन्थि का सूक्ष्म परिचय–

सिर, काय एवं पूंछ में समावेशित यह अंग आमाशय के पीछे, बांयीं ओर फैला हुआ 12 से 15 से0मी0 लम्बा, मांसल अंग है। यह एक मिश्रित ग्रन्थि है क्योंकि यह अन्तःस्रावी एवं बहिस्रावी दोनों के कार्य कर सकती है। अन्तःस्रावी ग्रन्थि का स्राव सीधे रक्त धारा में प्रवाहित होता है एवं बहिस्रावी ग्रन्थि का स्राव वाहिका से होता हुआ निश्चित स्थान पर स्रावित होता है। अन्तःस्रावी ग्रन्थि का कार्य अग्नाशय के उपस्थित अग्नाशयिका दीपिकाऐं करती हैं जिन्हें लैंगरहैन्स की दीपिकाऐं भी कहा जाता है। अग्नाशयिक दीपिकाओं में कोशिकाओं के गुच्छे होते हैं जिनसे हॉर्मोन्स का उत्पादन, संचय एवं स्रावण होता है। यह ग्रन्थि ग्लाइकोजन संचय और परिवर्तन का कार्य, इन्सुलिन स्रावण का कार्य, तथा अग्रपिट्यूटरी से निकलने वाले वृद्धि हॉर्मोन के निकलने में बाधा पहुँचाने जैसा महत्वपूर्ण कार्य करता है।

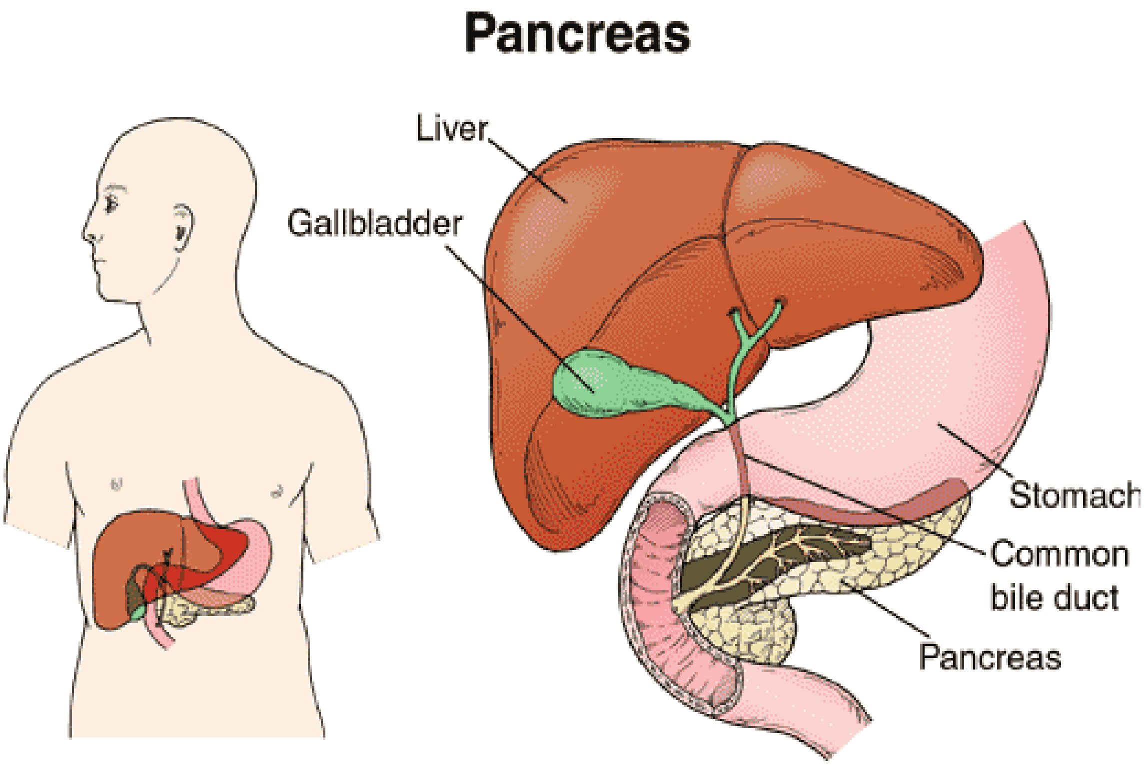
Pancreas
Liver
Gallbladder
Stomach
Common
bile duct
Pancreas

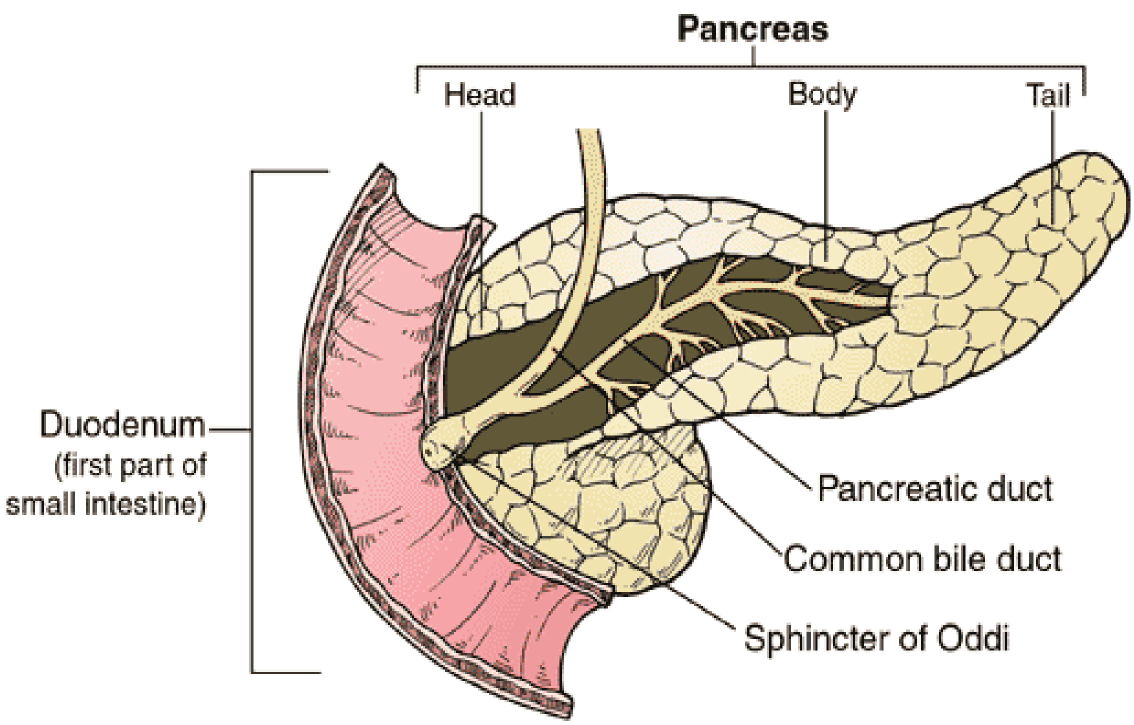
Pancreas
Head
Body
Tail
Duodenum
(first part of
small intestine)
Pancreatic duct
Common bile duct
Sphincter of Oddi

15.7.2 योग का प्रभाव–

षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्राएँ एवं ध्यान, आहार आदि इस ग्रन्थि को प्रभावित करते हैं।

A. षट्कर्म–

धौति के अन्तर्गत, वारिसार धौति, वमन जो कि मणिपुर चक्र को प्रभावित करते हैं। मणिपुर का कार्यक्षेत्र पैंक्रियाज ग्रन्थि भी है, अतः यह पैंक्रियाज को भी उत्तेजित करते हैं। अग्निसार क्रिया भी इस अंग को प्रभावित करती है। नौलि क्रिया का अभ्यास पेट की मांसपेशियों एवं उदरस्थ अंगों को प्रभावित करता है। नौलि क्रिया द्वारा Inslets of Langerhans को प्रभावित करने इंसुलिन के स्राव को प्रभावित किया जा सकता है। विशेषतौर पर डाइबिटीज रोगियों ने लिये यह क्रिया लाभप्रद है। वातक्रम कपालभाति विशेष लाभप्रद है।

B. आसनों का प्रभाव–

पेट पर प्रभाव डालने वाले सभी आसन विशेष लाभकारी हैं। सूर्य नमस्कार, प्रज्ञा योग व्यायाम मण्डूल आसन, वज्रासन, उत्तानपाद आसन, पाद चक्रासन, नौकासन, चक्रासन, मयूरासन, कुक्कुट आसन, पश्चिमोत्तान आसन, भुजंग, धनुर आसन आदि आसन विशेष प्रभाव डालते हैं।

अग्नाशयिक दीपिकाओं में अवस्थित एल्फा कोशिकाऐं जो कि ग्लूकागॉन नामक हॉर्मोन का उत्पादन करती हैं। इन आसनों के माध्यम से यह क्रिया प्रभावित होती है एवं शरीर को ऊर्जा प्राप्त होती है क्योंकि यह हॉर्मोन ग्लाइकोजन को ग्लूकोज में परिवर्तित कर देता है जो मांसपेशियों को कार्यशील बना देता है। इन्सुलिन ठीक इससे विपरीत कार्य करता है एवं यह ग्लाइकोजन यकृत एवं पेशियों में एकत्र हो जाता है। इन्सुलिन शरीर की उत्तक कोशिकाओं की पारगम्यता को बढ़ा देता है जिससे रक्त से ग्लूकोज कोशिकाओं में पहुंच जाता है। एवं रक्त में ग्लूकोज का स्तर सामान्य बना रहता है। डाइबिटीज होने पर यह क्रिया कम हो जाती है एवं रक्त में ग्लूकोज का स्तर बढ़ जाता है। उपरोक्त आसनों के माध्यम से इंसुलिन स्रावण प्रभावित होता है एवं इस रोग पर नियन्त्रण प्राप्त होता है। यहां यह बात ध्यान रखने योग्य है कि मधुमेह रोगी उचित सलाह एवं देख–रेख में ही अभ्यास करें एवं गोलियां अथवा इन्जेक्शन तुरन्त बन्द न करें बल्कि जाँच के बाद अंग के सही तरीके से कार्य करने पर ही दवाइयों का सेवन कम अथवा बन्द करें।

C. प्राणायाम एवं बन्धों का प्रभाव–

प्राणायामों के अन्तर्गत पेट पर प्रभाव डालने वाले एवं तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव डालने वाले प्राणायाम लाभप्रद होते हैं। इनमें नाड़ी शोधन, अनुलोम विलोम, कपालभाति, भस्त्रिका अति महत्वपूर्ण हैं। बन्धों में उड्यान बन्ध अत्यन्त लाभप्रद है। प्राणायाम एवं बन्ध का प्रयोग साथ–साथ करने से लाभ अधिक प्राप्त होता है।

D. विश्रान्तिकारक अभ्यास–

शवासन, योगनिद्रा लाभप्रद हैं।

E. ध्यान का प्रभाव–

मणिपुर चक्र पर ध्यान लाभप्रद सिद्ध हो सकता है।

सकारात्मक मानसिक तरंगे यदि उदरस्थ अंगों को दी जाये तो अंग पुष्ट होकर सुचारू रूप से कार्य करने लगते हैं।

अभ्यास प्रश्न–

सही / गलत

(i) पीयूष ग्रन्थि को हाइपोफाइसिस नाम से भी जाना जाता है।

(ii) पीयूष ग्रन्थि का अग्र खण्ड ही अन्तःस्रावी ग्रन्थि के रूप में मुख्यतया कार्य करता है।

(iii) पीयूष ग्रन्थि ही एक्रोमेगैली नामक स्थिति के लिये जिम्मेदार है

(iv) त्राटक का अभ्यास पीनियल ग्रन्थि को किसी भी रूप से प्रभावित नहीं करता है।

(v) थॉइराइड ग्रन्थि पैराथॉर्मोन नामक हॉर्मोन का स्रावण करती है।

(vi) जालन्धर बन्ध प्रत्यक्ष रूप से थाइरॉइड और पैराथाइराइड ग्रन्थि को प्रभावित करता है।

(vii) एड्रीनल ग्रन्थि भावनात्मन स्थिति में महत्वपूर्ण स्राव स्रावित करती है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति–

(i) पीयूष ग्रन्थि के पश्च खण्ड का नाम .... है

(ii) अग्र खण्ड से निकलने वाले वृद्धि हॉर्मोन के स्राव में कमी आ जाने पर .... नामन स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(iii) योगनिद्रा करने से मस्तिष्क की .... तरंगे प्रभावित होती हैं।

(vi) आध्यात्मिक दृष्टिबोव से पीयूष ग्रन्थि का सम्बन्ध .... चक्र से होता है।

(v) पीनियल ग्रन्थि का यह नाम उसकी आकृति का .... के समान होने से है।

(vi) एड्रीलन ग्रन्थि .... के ऊपर अवस्थित होती है।

(vii) एड्रनल ग्रन्थि .... हॉर्मोन का स्रावण करती है।

(viii) थाइरॉइड के रोगों का प्रमुख कारण .... दमन करना है।

(ix) पैन्क्रियाज ग्रन्थि के अन्तःस्रावी अंग .... है।

15.8 सारांश–

प्रस्तुत इकाई में आपने जाना कि किस प्रकार योग सम्पूर्ण अन्तःस्रावी तंत्र को प्रभावित करता है। योग पर अभी शोध कार्य चल रहे हैं। अतः किस अभ्यास का वास्तव में ग्रन्थि की कार्य क्षमता पर क्या प्रभाव पड़ता है यह निश्चित नहीं कहा जा सकता है। योग अनुभवात्मन हैं। योग चिकित्सा नहीं वरन् साधना है। परन्तु वर्तमान परिस्थियों को देखते हुये इसने चिकित्सकीय प्रभाव अत्यधिक महत्वपूर्ण बन गये हैं। योग का प्रभाव शरीर एवं मन पर क्या पड़ता है इस सम्बन्ध में कैवल्यधाम लोनावला के शोध पत्र, ब्रहम वर्चस् शोध संस्थान–शान्तिकुंन्ज हरिद्वार, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर आदि के शोध पत्रों पर दृष्टिपात किया जाना चाहिये।

15.9 शब्दावली–

एडिनोहाइपोफाइसिस– पीयूष ग्रन्थि का अग्र भाग

न्यूरोहाइपोफाइसिस– पीयूष ग्रन्थि का पश्च भाग

गोंनेड्स ग्रन्थि– जनन ग्रन्थि

षट्कर्म– हठयोग के अन्तर्गत शरीर शोधन की प्रक्रिया है इसके अन्तर्गत धौति क्रिया, वस्ति, नेति, नौली, त्राटक और कपालभाति क्रियाऐं सम्मिलित हैं।

यम– महर्षि पतंजलि द्वारा दी गई साधना। जिसमें अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, असंग्रही होना, ब्रह्मचर्य पालन आते हैं।

नियम– स्वयं को साधने के लिये महर्षि पतंजलि द्वारा दी गई साधना।

मुद्रा– शारीरिक और मानसिक विशेष स्थिति को मुद्रा कहा जाता है।

बंध– प्राणों को विशेष स्थान पर बांधने की क्रिया का नाम बंध है इसमें उड्डियान, जालन्धर और मूल बन्ध सम्मिलित हैं।

योग निद्रा– वैज्ञानिक निद्रा

धारणा– किसी विशेष स्थान पर मन को टिकाना धारणा है।

15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

सही / गलत

(i)	सही	(ii)	सही	(iii)	सही	(iv)	गलत
(v)	गलत	(vi)	सही	(vii)	सही		

रिक्त स्थानों की पूर्ति–

(i)	न्यूरोहाइपोफाइसिस	(ii)	बौनापन
(iii)	α	(vi)	सहस्रार
(v)	पाइन कोन	(vi)	दोनों वृक्कों
(vii)	सेक्स ग्रन्थि	(viii)	भावनाओं का
(ix)	अग्नाशयिक दीपिकाऐं		

15.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान, प्रो0 अनन्त प्रवाश गुप्ता (2010), सुसित प्रकाशन (आगरा)
2. Principles of Anatomy & Phisiology, General J. Tortorotra and Bryan H. Derrickson (2011), Johnwiley & Sons.
3. रोग और योग, स्वामी सत्यानंद सरस्वती, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार
4. नव योगिनी तंत्र, स्वामी मुक्तानंद, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार।

15.12 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. पीयूष ग्रन्थि पर योग के प्रभाव की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिये।
2. पीनियल ग्रन्थि योग द्वारा कैसे प्रभावित होती है विस्तार पूर्वक व्याख्या कीजिये।
3. गले से सम्बन्धित रोग योग से कैसे प्रभावित होते हैं समझाइये।
4. योग का प्रभाव पैंक्रियाज ग्रन्थि को कैसे प्रभावित करती है समझाइये।

इकाई – 16– मानव मस्तिष्क एवं मेरूरज्जु

इकाई की संरचना

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 तंत्रिका तंत्र

16.4 मानव मस्तिष्क

16.5 सुषुम्ना या मेरूरज्जु

16.6 सारांश

17.7 शब्दावली

17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

17.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

17.10 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व की इकाईयो में आपने शरीर के अनेक संस्थानों जैसे कि कंकाल तंत्र, पेशीय तंत्र, रक्त परिसंचरण तंत्र, पाचन तंत्र, श्वसन तंत्र इत्यादि की संरचना एवं कार्यप्रणाली का अध्ययन किया है तथा आप इन संस्थानों को भली – भॉति समझ गये होंगे। पाठकों, मानव शरीर रचना के इसी क्रम में प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय है – केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र जो शरीर के सभी संस्थानों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण इसे सभी तंत्रों का नियंत्रणकर्ता माना जाता है। केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र में मस्तिष्क तथा मेरूरज्जु या सुषुम्ना का अध्ययन किया जाता है। यह हमारे शरीर की सम्पूर्ण गतिविधियों का नियमन, नियंत्रण एवं संचालन करता है। प्रिय पाठकों आपके मन में अनेक प्रकार की जिज्ञासायें उत्पन्न हो रही होंगी। जैसे कि –

- मस्तिष्क की संरचना किस प्रकार की होती है?
- मस्तिष्क के कितने भाग है?
- मस्तिष्क किस प्रकार से कार्य करता है।
- मेरूरज्जु क्या है?
- मेरूरज्जु की कार्यप्रणाली क्या है, इत्यादि।

तो आइये, इन्हीं जिज्ञासाओं के समाधान के लिये सर्वप्रथम हम यह जाने कि तंत्रिका तंत्र क्या है।

16.2 – उद्देश्य –

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत ईकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- तंत्रिका तंत्र के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र क्या है? इसको स्पष्ट कर सकेंगे।
- मस्तिष्क के विभिन्न भागों का अध्ययन कर सकेंगे।
- मेरूरज्जु की संरचना एवं कार्यप्रणाली का वर्णन कर सकेंगे।
- केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र की उपयोगिता का विश्लेषण कर सकेंगे।

16.3 तन्त्रिका तन्त्र (Nervous System)

तन्त्रिका तन्त्र शरीर का एक महत्वपूर्ण तन्त्र या संस्थान है, जो सम्पूर्ण शरीर की तथा उसके विभिन्न भागों एवं अंगों की समस्त क्रियाओं का नियन्त्रण, नियमन तथा समन्वयन करता है और समस्थिति (Homeostasis) बनाये रखता है। शरीर के सभी एवं अनैच्छिक कार्यों पर नियन्त्रण तथा समस्त संवेदनाओं को ग्रहण कर मस्तिष्क में पहुँचाना इसी तन्त्र का कार्य है। यह शरीर के समस्त अंगों के आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण के परिवर्तनों के अनुसार द्रुत समंजन संभव बनाता है तथा तन्त्रिका आवेगों (Nerve impulses) का संवहन करता है। तन्त्रिका तन्त्र शरीर की अंसख्य कोशिकाओं की क्रियाओं में एक प्रकार का सामंजस्य उत्पन्न करता है ताकि सम्पूर्ण शरीर एक इकाई के रूप में कार्य कर सके। संवेदी तन्त्रिकाओं (Sensory nerves) द्वारा शरीर के अन्दर एवं बार वातावरणगत परिवर्तन या उद्दीपन (Stimuli) तन्त्रिका तन्त्र के सुषुम्ना या स्पाइनल कॉर्ड तथा मस्तिष्क में पहुँचते हैं। जहाँ पर उनका विश्लेषण होता है और अनुक्रिया (Response) में प्रेरक तन्त्रिकाओं (Motor nerves) द्वारा शरीर की विभिन्न क्रियायें संपादित होती है। तन्त्रिका तन्त्र तन्त्रिका ऊतकों (Nervous tissues) से बना होता है, जिनमें तन्त्रिका कोशिकाओं या न्यूरॉन्स (Neurones) और इनसे सम्बन्धित तन्त्रिका तन्तुओं (Nerve fibres) तथा एक विशेष प्रकार के संयोजी ऊतक जिसे न्यूरोग्लिया (Neuroglia) कहते हैं, का समावेश होता है।

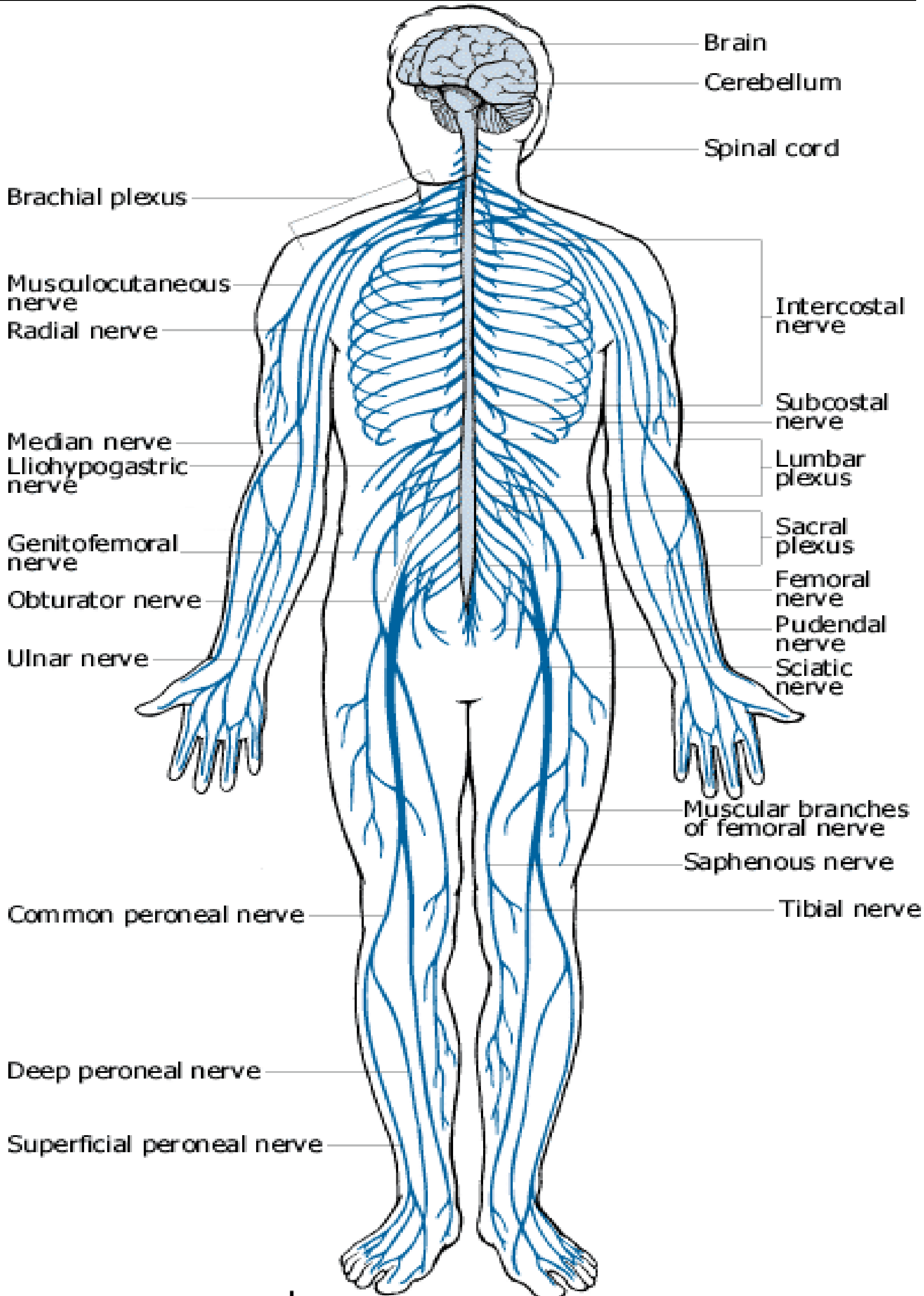

nervous system

तन्त्रिका तन्त्र के विभाग

तन्त्रिका तन्त्र के निम्न तीन भाग होते हैं–

1. केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र (Central nervous system)
2. परिसरीय तन्त्रिका तन्त्र (Peripheral nervous system)

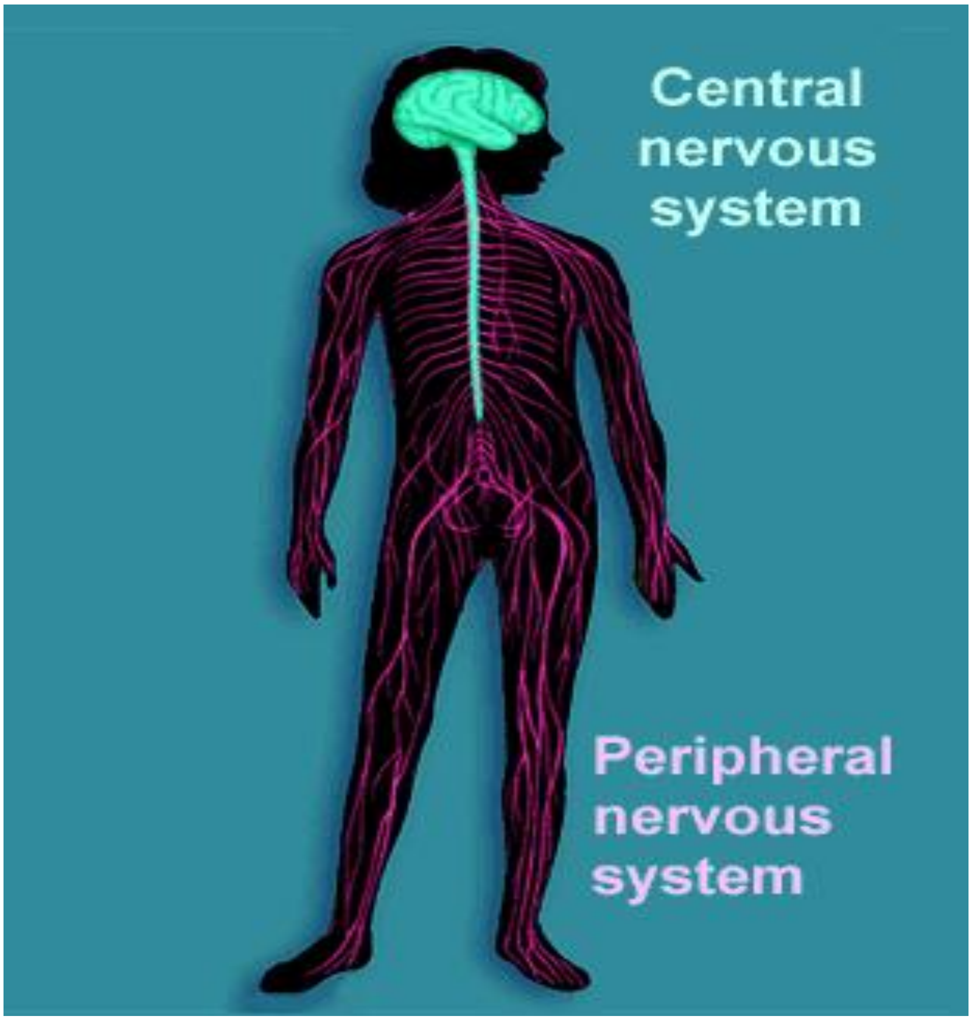

3. स्वायत्त तन्त्रिका तन्त (Autonomic nervous system)

केन्द्रिय तन्त्रिका तन्त्र (Central Nervous System)- इस भाग में मस्तिष्क एवं सुषुम्ना (Spinal cord) का समावेश होता है तथा यह मस्तिष्कावरणों (Meninges) से पूर्णतया ढँका रहता है।

16.4 मानवीय मस्तिष्क (Human Brain)

पूर्णरूप से विकसित मानवीय मस्तिष्क शरीर के भार का लगभग 1/50 होता है और कपाल गुहा (Cranial cavity) में अवस्थित रहता है। विकास की आरम्भिक अवस्था में मस्तिष्क को तीन भागों में विभाजित किया जाता है, जिन्हें अग्रमस्तिष्क (Fore brain), मध्यमस्तिष्क (Mid brain) तथा पश्चमस्तिष्क (Hind brain) कहते हैं।

1) अग्रमस्तिष्क (Fore brain) - यह मस्तिष्क का आगे का भाग होता है सिमें निम्न रचनाएँ स्थित रहती हैं–

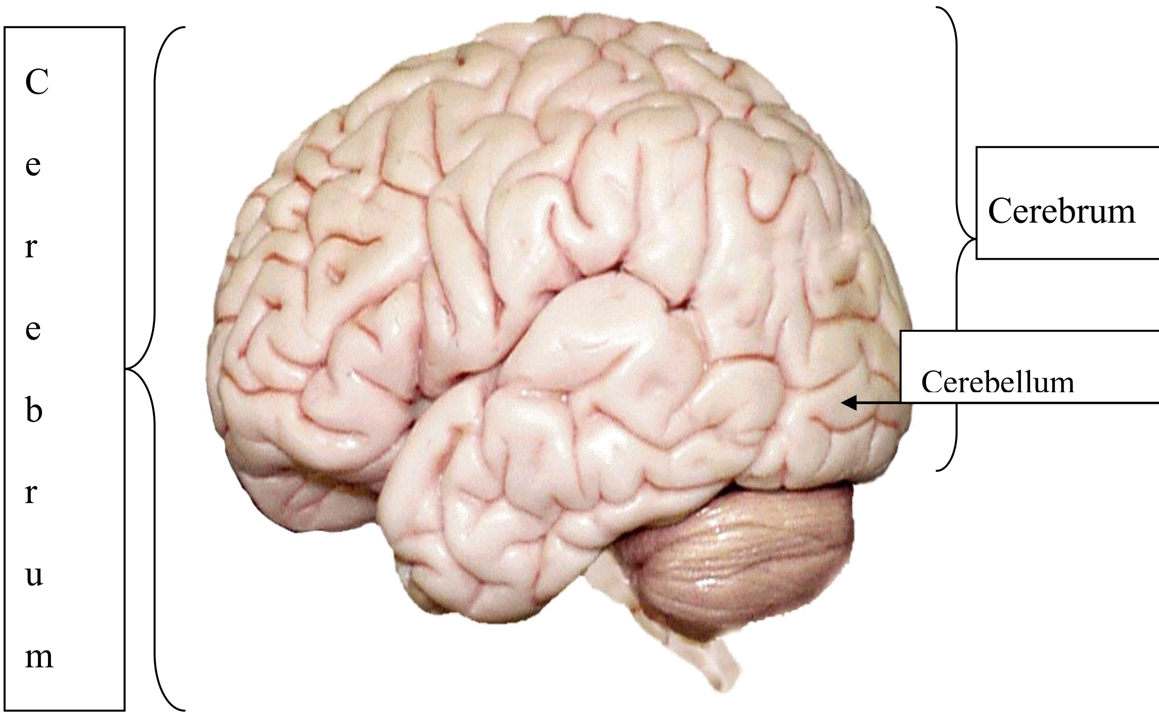

प्रमस्तिष्क या सेरीब्रम (Cerebrum)-

य ह केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र का प्रमुख तथा मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग है। गुम्बज की तरह और नीचे का भाग सुतल होता है। कपाल गुहा (Cranial cavity) का अधिक भाग प्रमस्तिष्क से भरा रहता है। प्रमस्तिष्क एक गहरी लम्बवत् दरार या विदर (Longitudinal cerebral fissure) के द्वारा दाहिने एवं बायें अर्द्ध गोलार्द्धों में विभाजित रहता है। यह पृथक्करण आगे एवं पीछे के भाग पर पूर्ण होता है लेकिन मध्य में ये अर्द्धगोलार्द्ध तन्त्रिका तन्तुओं की चौड़ी पट्टी के द्वारा आपस में जुड़े रहते हैं, जिसे **कॉर्पस कैलोसम** (Corpus callosum) कहते हैं। प्रमस्तिष्क की बाहरी सतह को प्रमस्तिष्कीय

कॉर्टेक्स (Cerebral cortex) कहते हैं जो तन्त्रिका कोशिकाओं (Nerve cells) का बना होता है और भूरे रंग का होता है। इसे गे मैटर (Grey matter) कहते हैं।

Cerebral Cortex

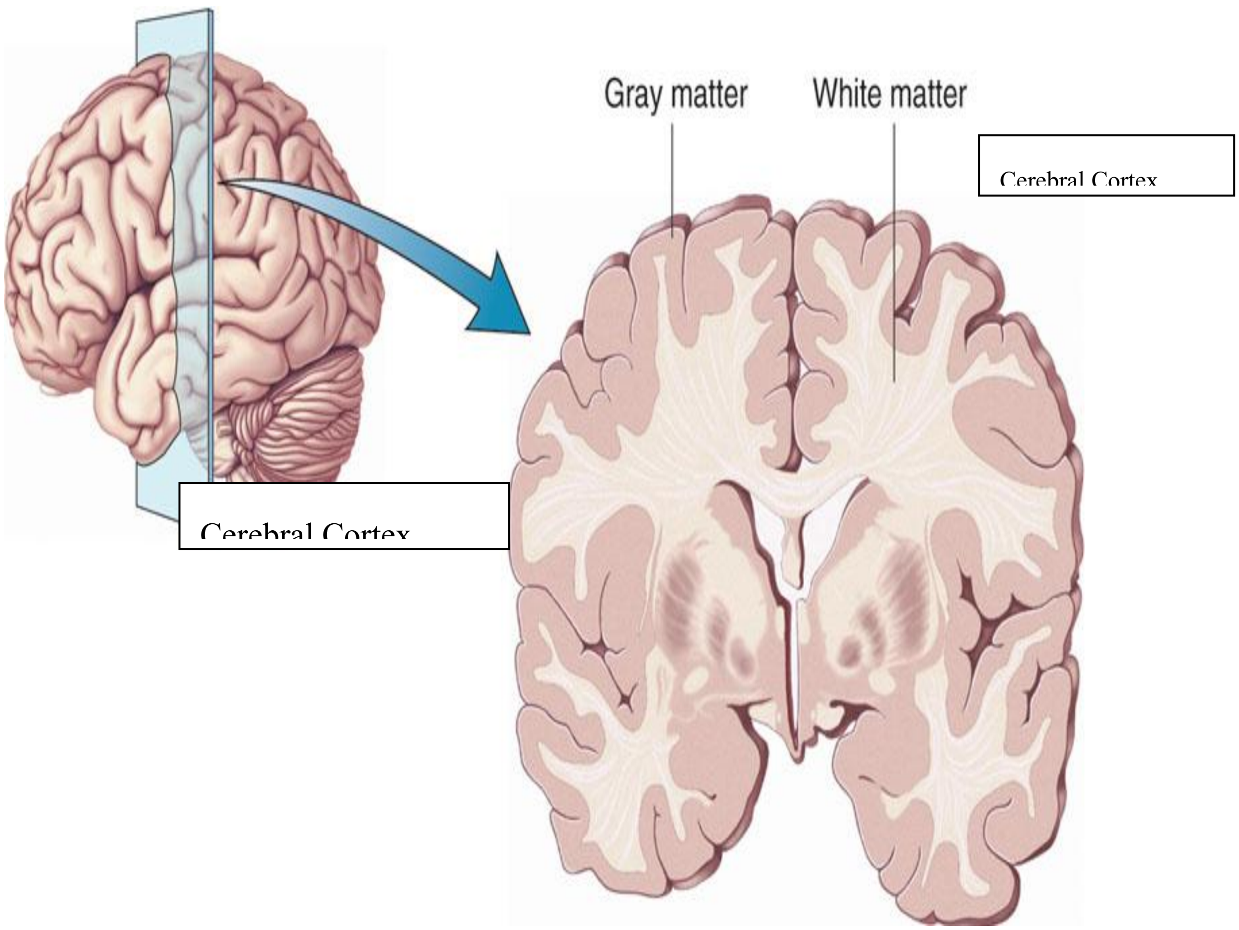

प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स से नीचे का भाग तन्त्रिका तन्तुओं (एक्सोन्स) से बना होता है और श्वेत रंग का होता है, जिसे व्हाइट मैटर (White matter) कहते हैं। प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स में बहुत से विभिन्न गहराइयों के खाँच बने होते हैं। खाँचों के उभार को कर्णक (Gyrus) कहते हैं और दबे हुए भाग को परिखा या विदर (Sulcus or fissure) कहते हैं, के द्वारा पृथक रहते हैं। इससे प्रमस्तिष्क का सतह खेत्र अधिक बढ़ जाता है। सभी मनुष्यों में उभारों (Gyrus) व दरारों (Sulcus) की सामान्य रूप रेखा समान होती है। तीन मुख्य दरारें (Sulci) प्रत्येक अर्द्धगोलार्द्ध को चार खण्डों (Lobes) में विभिाजित करती हैं, जिनमें वे स्थित होते हैं। **मध्य दरार** (Central sulcus) अर्द्धगोलार्द्ध के ऊपरी भाग से नीचे एवं आगे की ओर पार्श्वीय दरार (Lateral sulcus) के ठीक ऊपर तक फैली रहती है; **पार्श्वीय दरार** मस्तिष्क के सामने के निचले भाग के पीछे की ओर फैली

रहती है तथा पैराइटोऑक्सीपिटल दरार (Parietooccipital sulcus) अर्द्धगोलार्द्ध के ऊपरी पिछले भाग के कुछ दूर तक नीचे और आगे की ओर फैली रहती है। अर्द्धगोलार्द्ध के खण्ड हैं– **फन्टल लोब** (Frontal lobe) जो मध्य दरार के सामने एवं पार्श्वीय दरार के ऊपर स्थित रहता है; **पैराइटल लोब** (Parietal lobe) यह मध्य दरार एवं पैराइटोऑक्सिपिटल दरार के बीच तथा पार्श्वीय दरार के ऊपर स्थित रहता है; **ऑक्सिपिटल लोब** (Occipital lobe), अर्द्धगोलार्द्ध का पिछला भाग बनाता है, तथा **टेम्पोरल लोब** (Temporal lobe) यह पार्श्वीय–दरार के नीचे स्थित होता है और पीछे ऑक्सिपिटल लोब तक फैला रहता है।

प्रमस्तिष्क के दाहिने अर्द्धगोलार्द्ध द्वारा शरीर के बायें भाग की तथा बायें अर्द्धगोलार्द्ध द्वारा शरीर के दाहिने भाग की समसत चेतन एवं अचेतन क्रियाएँ संचालित एवं नियन्त्रित होती हैं। प्रमस्तिष्क बुद्धि, इच्छा, आवेश, स्मरणशक्ति जैसी उन अधिक विकसित क्षमताओं का स्थल है, जो मनुष्य को विशिष्ट रूप से सम्पन्न किए हुए हैं।

प्रमस्तिष्क का विशिष्ट क्षेत्र विशेष प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित करता है। ज्ञानात्मक क्रियाओं का नियन्त्रण एवं संपादन पैराइटल लोब, टैम्पोरल लोब एवं ऑक्सिपिटल लोब् द्वारा होता है। प्रेरक क्रियाओं का संचालन एवं नियन्त्रण मध्य दरार या सेन्ट्रल सल्कस के अग्रभाग से लगे हुए पिरामिड के आकार की कोशिकाओं द्वारा होता है। सोचना समझना, सीखना, चलना आदि का नियन्त्रण एएवं संचालन मस्तिष्क के कुछ विशेष क्षेत्र–संवेदीक्षेत्र (Sensory area), प्रेरक या गतिवाही क्षेत्र (Motor area) एवं फन्टल साहचर्य क्षेत्र (Frontal association) द्वारा होता है।

मध्य दरार (Central sulcus) के ठीक सामने स्थित क्षेत्र को प्रीसेन्ट्रल गाइरस

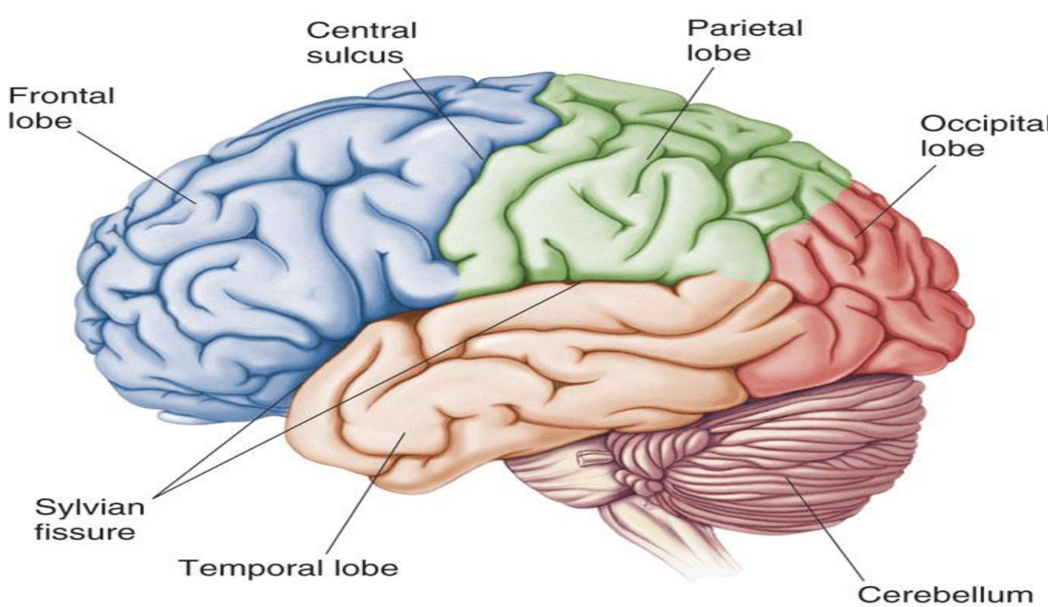

(Central sulcus) कहते हैं, यह प्रेरक या गतिवाही क्षेत्र (Motor area) है, जहाँ से केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के कई प्रेरक तन्तु निकलते हैं। मध्य दरार के ठीक पीछे संवेदी क्षेत्र (Sensory area) स्थित होता है जिसे पोस्ट सेन्ट्रल गाइरस (Postcentral gyrus) कहते हैं, इसकी कोशिकाओं में कई प्रकार के संवेदनों का अर्थ समझा जाता है।

प्रमस्तिष्क के कार्यात्मक क्षेत्र (Functional areas of cerebrum)

संवेदी क्षेत्र (Sensory area)- यह मध्य दरार (Central sulcus) के ठीक पीछे पैराइटल लोब में स्थित क्षेत्र होता है यहाँ पर वेदना, शीत, तापा, दबाव एवं स्पर्श, पेशी तथा जोड़ों पर संवेदना की अनुभूति होती है।

प्रेरक क्षेत्र (Motor area)- यह मध्य दरार के ठीक सामने फ्रन्टल लोब में स्थित क्षेत्र होता है। यहाँ से ऐच्छिक पेशियों में संकुचन होना आरम्भ होता है तथा उनकी गतियों को नियन्त्रित करता है।

प्रेरक पूर्व क्षेत्र (Premotor area)- यह फ्रन्टल लोब में प्रेरक क्षेत्र के ठीक सामने स्थित क्षेत्र होता है, जो पेशियों की गति के बीच समन्वय स्थापित करने से सम्बद्ध होता है।

ब्रोकाज क्षेत्र (Broca's area)- यह लेटरल सल्कस के ठीक ऊपर तथा प्रेरक पूर्व क्षेत्र के नीचे स्थित क्षेत्र होता है। यह क्षेत्र बोलने से सम्बद्ध होता है।

वाणी क्षेत्र (Speech area)- यह लेटरल लोब के निचले भाग में स्थित क्षेत्र होता है। इसी क्षेत्र में बोले गए शब्दों को ग्रहण किया जाता है।

दृष्टि क्षेत्र (Visual area)- यह ऑक्सिपिटल लोब के निचले सिरे पर स्थित क्षेत्र होता है जिसमें वस्तुओं के चित्रों एवं अन्य दृष्टि सम्बन्धी संवेदों को ग्रहण किया जाता है तथा उनका विश्लेषण दिया जाता है।

श्रवणीय क्षेत्र (Auditory area)- यह लेटरल सल्कस के ठीक नीचे टेम्पोरल लोब में स्थित क्षेत्र होता है। यहाँ पर ध्वनि संवेद ग्रहण किए जाते हैं और उनका विश्लेषण होता है।

स्वाद क्षेत्र (Taste area)- यह लेटरल सल्कस या पार्श्वीय दरार के ठीक ऊपर संवेदी क्षेत्र की गहन परतों में स्थित क्षेत्र होता है जिसमें स्वाद संवेद ग्रहण किए जाते हैं और उनका विश्लेषण किया जाता है।

गन्ध या घ्राण क्षेत्र (Smell area)- यह टेम्पोरल लोब के अगले भाग में गहराई में स्थित क्षेत्र होता है, जिसमें गन्ध संवेद पहुँचते हैं और उनका विश्लेषण होता है।

बेसल गैंगलिया (Basal ganglia)- प्रत्येक प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्ध में कॉर्पस कैलोसम के नीचे श्वेत द्रव्य (तन्त्रिका तन्तु) में धँसे हुए भूरे द्रव्य (सेल बॉडीज) केकुछ

छोटे–छोटे पिण्ड होते हैं, जिन्हें बेसल गैंगलिया कहा जाता है, ये हैं कॉडेट (Caudate), लेन्टिकुलर (Lenticular) एवं एमाइग्डैलॉइड न्यूक्लिाई (Amygdaloid nucli) तथा क्लॉस्ट्रम (Claustrum)। इनमें से कॉडेट एवं लेन्टिकुलर न्यूक्लिाई मिलकर कॉर्पस स्ट्रीएटम (Carpus striatum) का निर्माण करते हैं। इनका मुख्य कार्य गति (Motion) का समन्वय और शरीर की समस्थिति (Homoeostasis) बनाए रखना है ̇इनमें विकार उत्पन्न होने से हाथ–पैरों में झटकेदार गतियाँ और अस्थिरता पैदा हो जाती है।

थैलेमस (Thalamus)- प्रत्ये प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्धों के भीतर कॉर्पस कैलोसम के ठीक नीचे तथा कॉडेट एवं लेन्टिकुलर न्यूक्लिाई के मध्यवर्ती और प्रत्येक तृतीय वेन्ट्रिक्ल के पार्श्व में तन्त्रिका कोशिकाओं एवं तन्तुओं (Nerve bodies) का एक अण्डाकार पिण्ड होता है, जिसे थैलेमस कहा जाता है। यह प्रमस्तिश्कीय कॉर्टेक्स एवं स्पाइनल कॉड (सुशुम्ना) के बीच एक महत्वपूर्ण पुनः प्रसारण केन्द्र (Relay station) के रूप में कार्य करता है। थैलेमस शरीर को प्राप्त होने वाले संवेदी आवेगों (Sensory impulses) का वर्गीकरण करने और प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स तक उन्हें पहुँचाने का कार्य करता है।

हाइपोथैलेमस (Hypothalamus)- हाइपोथैलेमस, थैलेमस के नीचे और सामने तथा पिट्यूटरी गन्थि के ठीक ऊपर स्थित तन्त्रिका कोशिकाओं से बनी एक रचना है यह तृतीय वेन्ट्रिक्ल की पार्श्वीय भित्ति और तल (Floor) को बनाता है। हाइपोथैलेमस को दो भागों में विभक्त किया गया है– 1. पोस्टीरियर एवं लेटरल भाग 2. एन्टिरियर एवं सेन्ट्रल भाग। पोस्टीरियर एवं लेटरल भाग अनुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र (Sympathetic nervous system) के कार्यों को सम्पन्न करने में पूर्ण सहयोग देते हैं। एन्टीरियर एवं सेन्ट्रल भाग परानुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र (Parasympathetic nervous system) के कार्यों को सम्पन्न करते हें। इसके अतिरिक्त यह तन्त्रिका तन्तुओं को मेड्यूला आब्लांगेटा (Medulla oblogata) की ओर भेजकर श्वसन कार्य में सहायता करता है, शरीर के ताप को नियमित तथा नियन्त्रित करता है, वसा, कार्बोहाइड्रट तथा जल की पाचन क्रिया को नियमित रखता है एवं भावना (Emotions) को नियन्त्रित करने में भूमिका निभाता हैं पिट्यूटरी ग्रन्थि की सहायता से यह शरीर की समस्त अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों के कार्य में सहायता करता है।

मस्तिष्क की गहराई मे ̇थैलेमस एवं बेसल गैंगलिया के बीच स्थित उभरे हुए प्रेरक तन्तुओं (Motor fibres) से बना एक महत्वपूर्ण क्षेत्र होता है, जिसे **इन्टरनल कैप्सूल** कहा जाता हैं जिसके माध्यम से समस्त तन्त्रिका आवेगों (Nerve impulses) का संवहन होता है।

2) मध्यमस्तिष्क (Midbrain)

मध्यमस्तिष्क, अग्र–मस्तिष्क एवं पश्च–मस्तिष्क के बीच और मस्तिष्क स्तम्भ (Brain stem) के ऊपर स्थित रहता है। इसमें सेरीब्रल पेडन्क्ल्स (Cerebral peduncles) एवं कॉर्पोरा क्वाड्रिजेमिना (Corpora quadrigemina) का समावेश हाता

है, जो प्रमस्तिष्कीय कुल्या (Cerebral aqueduct) को घेरे रहते हैं, जो कि तृतीय एवं चतुर्थे वेन्ट्रिकलों के बीच एक नलिका (Channel) होती है। सेरीब्रल पेडन्क्ल्स डंठलनुमा रचनाएँ होती हैं जो इसकी वेंट्रल सतह (Ventral surface) पर स्थित होती है। कॉपोंरा क्वाड्रिजेमिना डॉर्सल सतह पर चार गोलाकार उभार होते हैं जिन्हें दो जोड़े संवेदी केन्द्रों (Sensory centres) में विभक्त किया गया है। एक को सुपीरियर कोलीकुलि (Superior colliculi) तथा दूसरे को इन्फीरियर कोलीकुलि (Inferior colliculi) कहते हैं। सुपीरियर कोलीकुलि द्वारा किसी वस्तु को देखने की क्रिया सम्पन्न होती है तथा इन्फीरियर कोलीकुलि द्वारा सुनने की क्रिया सम्पन्न होती है।

सेरीब्रल पेडन्क्ल्स के समीप लाल केन्द्रक (Red nucleus) स्थित रहता है। सुपीरियर कोलीकुलि के बीच पिनीयल बॉडी (Pineal body) स्थित रहती है।

3) पश्च मस्तिष्क (Hind brain)

यह मस्तिष्क का सबसे पीछे का भाग होता है, जिसमें पोन्स (Pons), मेड्यूला ऑब्लांगेटा (Medulla oblongata) तथा अनुमस्तिष्क (Cerebellum) का समावेश रहता है।

पोन्स (Pons)- यह अनुमस्तिष्क (Cerebellum) के आगे मध्यमस्तिष्क के नीचे तथा मेड्यूला ऑब्लांगेटा के ऊपर रहता है। यह मस्तिष्क स्तम्भ (Brain stem) के बीच का भाग होता है। इसके आधारी भाग को मिडिल सेरीबेलर पेडन्क्ल (Middle cerebellar peduncle) कहते हैं। इस भाग से होकर संवेदी एवं प्रेरक तन्त्रिकाओं के तन्तु गुजरते हैं, जो अनुमस्तिष्क को मध्य मस्तिष्क एवं मेड्यूला ऑब्लांगेटा से जोड़ते हैं।

इसमें पाँचवीं, छठी और सातवीं कपालीय तन्त्रिकाओं के न्यूक्लिाई स्थित रहते हैं। यहीं से उनके कुछ तन्तु कोशिकाओं से निकल कर तन्त्रिका तन्त्र के विभिन्न भागों में चले जाते हैं।

मेड्यूला ऑब्लांगेटा (Medulla oblongata)- यह मस्तिष्क स्तम्भ का सबसे नीचे का भाग होता है, जो ऊपर की ओर पोन्स एवं नीचे की ओर स्पाइनल कॉर्ड के बीच स्थित रहता है। इसका आकार बेलनाकार दण्ड की तरह होता है, जो औसतन 2.5 सेमी. लम्बा होता है। इसका ऊपरी भाग कुछ फूला रहता है। यह पोस्टीरियर क्रेनियल फोसा में स्थित होता है और ऑक्सिपिटल अस्थि के महा–रन्ध्र (Foramen magnum) के ठीक नीचे स्पाइनल कॉर्ड से जुड़ जाता है। इसका बाह्य भाग श्वेत द्रव्य तथा भीतरी भाग भूरे द्रव्य का बना होता है। इसमें हृदीय एवं श्वसनीय केन्द्र स्थित होते हैं, जो हृदय एवं श्वसन क्रिया को नियन्त्रित करते हैं। इसमें निद्रा, निगरण एवं लालास्त्राव (Salivation) के भी केन्द्र होते हैं, जो महत्वपूर्ण कार्यों का नियमन करते हैं।

अनुमस्तिष्क या सेरीबेलम (Cerebellum)- यह प्रमस्तिष्क के आक्सिपिटल लोब के नीचे पीछे की ओर उभरा हुआ भाग होता है, जो मेड्यूला ऑब्लांगेटा के ऊपर, पोन्स के

पीछे कपालीय गुहा (Cranial cavity) में स्थित होता है तथा डॉर्सल सतह की ओर प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्ध से ढँका रहता है।

अनुमस्तिष्क दो अर्द्धगोलार्द्धों में विभक्त रहता है परन्तु बीच में एक मध्यस्थ पट्टी, जिसे वर्मिस (Vermis) कहते हैं, से जुड़ा रहता है। इसमें प्रमस्तिष्क (Cerebrum) के समान भूरा द्रव्य (Gray matter) बाहर की ओर और श्वेत द्रव्य (White matter) भीतर की ओर स्थित होता है। अनुमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स (Cerebellar cortex) प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स की अपेक्षा अधिक पतला होता है। अनुमस्तिष्क का भार मस्तिष्क के कुल भार का दसवाँ भाग होता है।

अनुमस्तिष्कीय केन्द्रक (Cerebellar nuclei) श्वेत द्रव्य में गहराई में स्थित रहते हैं जो सुपीरियर सेरीबेलर पेडन्क्ल के द्वारा मध्य मस्तिष्क से, मिडिल सेरीबेलर पेडन्क्ल के द्वारा पोन्स से तथा इन्फीरियर सेरीबेलर पेडन्क्ल के द्वारा मेड्यूला ऑब्लांगेटा से जुड़े रहते हैं।

अनुमस्तिष्क ऐच्छिक पेशियों में समन्वय स्थापित करता है तथा शरीर की मुद्रा और उसके सन्तुलन को बनाए रखता है। यह पेशियों में तनाव की श्रेणी, सिन्धयों (Joints) की स्थिति और प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स से आने वाली जानकारी से सम्बन्धित संवेदी आवेगों को निरन्तर प्राप्त करता रहता है।

<u>मस्तिष्क स्तम्भ (Brain stem)-</u> मध्य मस्तिष्क, पोन्स एवं मेड्यूला ऑब्लांगेटा के एक साथ कई सामान्य कार्य हैं और इन्हें प्रायः संयुक्त रूप से मस्तिष्क स्तम्भ कहा जाता है। इस क्षेत्र में न्यूक्लिाइ (Nuclei) भी रहते हैं। जहाँ से कपालीय तन्त्रिकाएँ निकलती हैं।

<u>मस्तिष्कावरण या मेनिन्जीज (Meninges)-</u> मस्तिष्कावरण या मेनिन्जीज सुरक्षात्मक झिल्लियाँ (Membranes) हैं जो खोपड़ी एवं मस्तिष्क के बीच स्थित रहकर स्पाइनल कॉर्ड (सुषुम्ना) को पूर्णरूप से ढँके रहती हैं तथा इन्हें आघात से बचाती हैं मेनिन्जीज तीन प्रकार की होती हैं, जो बाहर से भीतर की ओर निम्न प्रकार व्यवस्थित होती हैं–

1. ड्यूरामैटर (duramater)
2. एराक्नॉइड मैटर (Arachnoid mater)
3. पाया मैटर (Piamater)

ड्यूरामैटर (Duramater)- ड्यूरामैटर सबसे ऊपरी आवरण (झिल्ली) होती है, जो कठोर सघन संयोजी ऊतकों की बनी होती है। इसमें दो परतें होती हैं, बाह्य परत खोपड़ी की अन्दरूनी सतह का अस्तर है और पेरिऑस्टिम (Periosteum) बनाती है। फोरामन मैग्नम के स्थान पर यह परत खोपड़ी की बाहरी सतह पर पेरिऑस्टियम के रूप में निरन्तर रहती है। इसकी आन्तरिक परत कुछ स्थानों पर अन्दर की ओर उभ्झरी होती है और दोहरी परत बनाती है, जो मस्तिष्क के भागों को अलग करती है एवं उन्हें स्थिति में बनाये रखने में

सहायता करती है। इससे चार शिरीय साइनस (Venous sinuses) तथा चार वलय (Folds) बनते हैं। **फ्लैक्स सेरेब्राइ** (Flax cerebri) एक ऐसा वलय है, जो दो प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्धों के बीच स्थित रहता है। इसका ऊपरी सिरा सुपीरियर लोंगिट्यूडिनल या सैजाइटल शिरीय साइनस बनता है, जो मस्तिष्क से शिरीय रक्त (Venous blood) उपलब्ध करता है इसका निचला सिरा इन्फीरियर लोंगिट्यूडिनल शिरीय साइनस बनता है, जो फॉक्स सेरेब्राई से रक्त को खींच लेता है। **टेन्टोरियम सेरेबेलाइ** (Tentorium cerebelli) वलय प्रमस्तिष्क एवं अनुमस्तिष्क के बीच स्थित रहता है। इस वलय से तीन साइनस बनते हैं। **फॉक्स सेरेबेलाइ** (Flax cerebelli) वलय दोनों अनुमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्धों के बीच में स्थित रहता हे। **डायाफ्रैग्मा सेली** (Diaphragma sellae) वलय स्फैनॉइड अस्थि में स्थित गड्ढ़े, सेला टर्शिका (Sella turcica) के ऊपर छत (Roof) बनाता है, जिसमें पिट्यूटरी ग्रन्थि स्थित रहती है, जो ऊपर हाइपोथैलेमस से जुड़ी होती है।

एराक्नॉइड मैटर (Arachnoid mater)- यह ड्यूरामैटर के ठीक नीचे स्थित पतला और कोमल आवरण होता है, जो तन्तु एवं लचीले ऊतकों का बना होता हैं यह एक संकरे (कैपिलरी) **सबड्यूरल अवकाश** (Subdural space) द्वारा ड्यूरामैटर से पृथक रहता है। एराक्नॉइड मैटर एवं पाया मैटर के बीच **सब–एराक्नॉइड अवकाश** (Sub-arachnoid space) रहता है। पायामैटर से जुड़ने के लिए राक्नॉइड से सब–एराक्नॉइड अवकाश से होते हुए बारीब ट्रैबीकुली (Trabeculae) निकलते हैं। सब–एराक्नॉइड अवकाश में सेरिब्रोस्पाइनल द्रव (CSF) विद्यमान रहता है, जो मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड को आघातों से बचाता है।

पायामैटर (Piamater)- पायामैटर एराक्नॉइड के नीचे वाला आवरण है। यह संयोजी ऊतक की एक पतली झिल्ली होती है, जिसमें बहुत–सी रक्तवाहिनियाँ (Highly vascular) होती हैं। यह मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड की सतह के सम्पर्क में रहती है और मस्तिष्क के सभी मोड़ों (Convolutions) को ढँकती हुई प्रत्येक दरार (Fissure) में धँसी होती है।

<u>मस्तिष्क के वेन्ट्रिकल्स (Ventricles of the brain)-</u>

मस्तिष्क में स्थित आन्तरिक गुहाओं (Internal cavities) को वेन्ट्रिक्ल या निलय कहते हैं, जिनमें सेरिब्रो–स्पाइनल द्रव (CSF) भरा होता है। ये निम्नलिखित प्रकार होते हैं–

दो लेटरल वेन्ट्रिकल्स (Lateral ventricles)

तृतीय वेन्ट्रिक्ल (Third ventricle)

चतुर्थ वेन्ट्रिक्ल (Fourth ventricle)

दोनों दाएँ बाएँ लेटरल वेन्ट्रिक्ल्स वृहदाकार होते हैं, जो प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्धों (Cerebral hemispheres) में स्थित रहते हैं। लेटरल वेन्ट्रिक्ल का मुख्य भाग (Body) प्रत्येक अर्द्धगोलार्द्ध के पैराइटल लोब में स्थित रहता है और वहाँ से एन्टीरियर हॉर्न के रूप में फ्रन्टल लोब के अन्दर, पोस्टीरियर हॉर्न के रूप में आक्सिपिटल क्षेत्र के अन्दर तथा इन्फीरियर हॉर्न के रूप में टेम्पोरल लोब में उभरा रहता है। प्रत्येक लेटरल वेन्ट्रिक्ल इन्टरवेन्ट्रिकुलर फोरामन द्वारा नीचे थैलेमस के बीच में मध्य रेखा में स्थित तृतीय वेन्ट्रिक्ल से सम्बन्धित रहते हैं। **तृतीय वेन्ट्रिक्ल** दाएँ एवं बाएँ थेलेमस के बीच में लेटरल वेन्ट्रिक्ल के नीचे स्थित रहता है। यह एक नलिका जिसे प्रमस्तिष्कीय कुल्या (Cerebral aqueduct or aqueduct of sylvius) कहते हैं, द्वारा चतुर्थ वेन्ट्रिक्ल से जुड़ता है। **चतुर्थ वेन्ट्रिक्ल** तृतीय वेन्ट्रिकल के नीचे, पोन्स एवं मेड्यूला (आगे) तथा सेरीबेलम (पीछे) के बीच में स्थित चौरस पिरामिडी गुहा (Flattened pyramidal cavity) होती है। चतुर्थ वेनिट्रक्ल के पार्श्व में दो छिद्र होते हैं, जिन्हें फोरमिना ऑफ लुस्चका (Formina of Luschka) कहते हैं। मध्य रेखा में एक छिद्र होता है, जिसे फोरामेन ऑफ मैंगेण्डी (Foramen of Magendie) कहते हैं। इन तीनों छिद्रों के द्वार वेन्ट्रिक्ल्स एवं सब एराक्नॉइड अवकाश के बीच सम्बन्ध होता हैं मेड्यूला अब्लांगेटा के अन्स सिरे (Termination) पर चतुर्थ वेन्ट्रिक्ल्स पर चतुर्थ वेन्ट्रिकल एकदम सँकरा हो जाता है और स्पाइनल कॉर्ड की केन्द्रीय नलिका (Central canal) के रूप में जारी रहता है। ये सभी वेन्ट्रिक्ल्स सेरिब्रो–स्पाइनल द्रव (CSF) से भरे रहते हैं।

सेरिब्रोस्पाइनल द्रव (Cerebrospinal fluid-CSF)- सेरिब्रोस्पाइनल द्रव प्लाज्मा से मिलता–जुलता एक स्वच्छ, रंगहीन द्रव है, जो सबएराक्नॉइड अवकाश एवं मस्तिष्क के वेन्ट्रिक्ल्स में भरा रहता है। यह मस्तिष्क के वेन्ट्रिक्ल्स के ऊपरी भागों (Roofs) में स्थित कोशिकाओं की जालिका–कोरॉइड प्लेक्ससेस (Choroid Plexuses) द्वारा स्त्रावित होता है। औसतल व्यक्ति में यह 720 मिली. प्रतिदिन की दर से स्रावित होता रहता है। इसका दाब 60 से 140 मिली. जल तथा आपेक्षिक घनत्व 1005 होता है। दोनों लेटरल वेन्ट्रिक्ल्स से स्रावित होने के बाद यह द्रव इन्टरवेन्ट्रिक्यूलर फोरामिन (छिद्र) से होकर तृतीय वेन्ट्रिकुल में जाता है और इसके बाद एक संकरी नली–एक्वीडक्ट और सिलवियस (Aqueduct of sylvius) के माध्यम से चतुर्थ वेन्ट्रिक्ल में जाता है। उसके बाद यह द्रव मैगेण्डी और लुस्चका के छिद्रों (Foramen of Magendie & Luschka) से होते हुए सबएराक्नॉइड अवकाश (Subarachnoid space) में चला जाता है जिससे यह मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड की सम्पूर्ण सतह पर परिसंचरित होता रहता है। अंततः यह द्रव एराक्नॉइड मैटर में स्थित छोटे–छोटे उभारों जिन्हें एराक्नॉइड विल्लाइ या ग्रैन्यूलेशन्स (Arachnoid villi or grqanulations) कहते हैं, के माध्यम से मस्तिष्कीय शिरीय विवरों (Cranial venous sinuses) में अवशोषित हो जाता है।

सेरिब्रोस्पाइनल द्रव की संरचना

सेरिब्रोस्पाइनल द्रव का संगठन निम्न प्रकार होता है–

प्रोटीन	–	20–30 मिग्रा. प्रतिशत
ग्लूकोज –		50–80 मिग्रा. प्रतिशत
यूरिया	–	10–30 मिग्रा. प्रतिशत
क्लोराइड	–	700–750 मिग्रा. प्रतिशत

इनके अतिरिक्त इसमे ंपोटैशियम, कैल्सियम, सोडियम, यूरिक अम्ल, सल्फेट, फॉस्फेट तथा क्रिएटिनिन भी मिले रहते हैं।

मस्तिष्कावरण शोध (Meningitis) आदि रोगों में इस द्रव की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे मस्तिष्क द्रव पर दाब पड़ता है और ज्वर अधिक हो जाता है। ऐसी स्थिति में लम्बर पंक्चर (Lumbar puncture) कर इस द्रव को स्पाइनल कॉर्ड से निकाल दिया जाता है।

कार्य (Functions)- सेरिब्रोस्पाइनल द्रव का मुख्य कार्य नाजुक तन्त्रिका ऊतकों एवं अस्थिल गुहाओं की भित्तिओं के बीच पानी की गद्दीनुमा रचना बनाकर मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड की सुरक्षा करता है और आघात अवशोशक (Shock absorber) की भाँति कार्य करता है। यह मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड के चारों ओर दबाव को स्थिर बनाये रखता है और व्यर्थ एवं विशाक्त पदार्थों को बाहर ले जाता है। पोषक तत्व एवं ऑक्सीजन भी मस्तिष्क को इसी के द्वारा पहुँचाए जाते हैं।

16.5 सुषुम्ना या मेरुरज्जू (Spinal cord)

इसे मेरुरज्जु या रीढ़ भी कहते हैं। शरीर के पृष्ठ भाग में ऊपर से देखने पर एक लम्बी अस्थि करोटि से लेकर नितम्ब तक दिखाई देती है। यह केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र का एक भाग है , जो एक मोटी एवं दृढ़ रस्सी की भाँति लम्बर वर्टिब्रा तक वर्टिब्रल कॉलम में सुरक्षित रहती है। वयस्क में इसकी लम्बाई लगभग 45 से.मी. होती है। यह मेड्यूला ऑब्लांगेटा के निचले भाग से आरम्भ होकर आक्सिपिटल अस्थि के महारन्ध्र–फोरामेन मैग्नम से निकलकर वर्टिबल कॉलम से होती हुई पहले लम्बर वर्टिब्रा के स्तर पर समाप्त होती है। यह अपने निचले सिरे पर शंकु–आकार आकृति के रूप में सँकरी हो जाती है, तब इसे **कोनस मेड्यूलेरिस** (Conus medullaris) कहते हैं, इसके सिरे से **फाइलम टर्मिनेली** (Filum terminale) नीचे की ओर कॉक्सिक्स तक जाते हैं, जो तन्त्रिका–मूलों (Nerve roots) से घिरे रहते हैं, इन्हें **कॉडा इक्विनी** (Cauda equine) कहते हैं।

स्पाइनल कॉर्ड की सम्पूर्ण लम्बाई से स्पाइनल तन्त्रिकाओं के जोड़े निकलते हैं। यह मोटाई में कुछ भिन्नता लिए रहती है, सर्वाइकल एवं लम्बर क्षेत्रों में यह अन्य भागों की अपेक्षा अधिक मोटी होती है, जहाँ से यह हाथ–पैरों को अत्यधिक तन्त्रिका सम्पूर्ति करती है। स्पाइनल तन्त्रिकाएँ (Spinal nerves) लम्बर फोरामेन एवं सैकल फोरामेन से होती हुई वर्टिब्रल कैनाल से बाहर निकलती हैं। स्पाइनल कॉर्ड में पीछे एवं सामने की ओर

गहरी दरार (Fissure) रहती है, जिससे यह प्रमस्तिष्क की भाँति दाएँ एवं बाएँ भाग के रूप में पूर्णतः विभाजित रहती है।

मस्तिष्क के समान स्पाइनल कॉर्ड भी श्वेत एवं भूरे द्रव्य से बनी होती है। परन्तु इसमें श्वेत द्रव्य सतह पर तथा भूरा द्रव्य मध्य में रहता है। **श्वेत द्रव्य** (White matter) स्पाइनल कॉर्ड एवं मस्तिष्क के बीच फैले हुए तन्तुओं से बना होता है। इसमें प्रेरक एवं संवेदी तन्तु (Motor and sensory fibres) होते हैं। **प्रेरक तन्तु** प्रमस्तिष्क एवं अनुमस्तिष्क के प्रेरक केन्द्रों से नीचे की ओर स्पाइनल कॉर्ड की प्रेरक कोशिकाओं तक फैले रहते हैं। **संवेदी तन्तु** स्पाइनल कॉर्ड की संवेदी कोशिकाओ से कॉर्ड के ऊपर की ओर मस्तिष्क के संवेदी केन्द्रों तक फैले रहते हैं। इन तन्तुओं के द्वारा शरीर विभिन्न अंगों से मस्तिष्क को संवेदना पहुँचाती है तथा मस्तिष्क से पेशियों को उत्तेजना पहुँचाती है।

अनुप्रस्थ काट में स्पाइनल कॉर्ड का **भूरा द्रव्य** (Gray metter) अंग्रेजी के 'H' अक्षर की आकृति में व्यवस्थित दिखाई देता है। भूरे द्रव्य के मध्य में ऊपर से नीचे तक एक छिद्र रहता है जिसे केन्द्रीय नलिका (Central canal) कहते हैं। यह नलिका मस्तिष्क के चतुर्थ वेन्ट्रिक्ल से जुड़ी रहती है और इसमें सेरिब्रोस्पाइनल द्रव भरा रहता है। इस भूरे द्रव्य के चार हॉर्नस (Horns) होते हैं– दो आगे और दो पीछे। आगे की ओर दोनों उभरे हुए भागों को **एन्टिरियर हॉर्न्स** (Anterior horns) तथा पीछे की ओर उभरे दोनों भागों को **पोस्टीरियर हॉर्न्स** (Posterior horns) कहते हैं। कॉर्टेक्स की भाँति स्पाइनल कॉर्ड के भरे द्रव्य में केवल तन्त्रिका कोशिकाएँ (Nerve cells) पायी जाती है।

एन्टीरियर हॉर्न्स से निकलने वाली तन्त्रिकाएँ धड़, पैर एवं बाहुओं की पेशियों में जाती हैं, जो **प्रेरक तन्त्रिकाएँ** (Motor nerves) कहलाती हैं। पोस्टीरियर हार्न्स से निकलने वाले तन्तु शरीर के विभिन्न भागों की त्वचा में जाते हैं, जिससे त्वचा को प्राप्त होने वाली संवेदनाएँ पोस्टीरियर हॉर्न्स में पहुँचाती हैं, इसलिए ये **संवेदी तन्त्रिकाएँ** (Sensory nerves) कहलाती है।

स्पाइनल कॉर्ड में संवेदी तन्त्रिका पथ (अभिवाही या आरोही) [Sensory nerve tracts (afferent or ascending) in the spinal cord]- स्पाइनल कॉर्ड के माध्यम से मस्तिष्क में संवेदन मुख्यतः दो स्रोतों– 1. त्वचा, 2. टेन्डन्स, पेशियों एवं सन्धियों से पहुँचते हैं। त्वचा में विद्यमान संवेदी रिसेप्टर्स या तन्त्रिका अन्त (Nerve endings) को **कुटेनियस रिसेप्टर्स** (Cutaneous receptors) कहा जाता है, जो दर्द, गमी, ठण्ड, स्पर्श एवं दबाव से उद्दीपित होते हैं। इनसे उत्पन्न तन्त्रिका आवेग (Nerve impulse) तीन न्यूरॉन्स द्वारा दूसरी ओर के प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्ध के संवेदी क्षेत्र में संचरित होते हैं। जहाँ इनके अनुभूति और स्थिति (Location) का पता चलता है।

टेन्डन्स, पेशियों एवं सन्धियों में विद्यमान संवेदी रिसेप्टर्स या तन्त्रिका अन्त (Nerve endings) को प्रोप्रियोसेप्टर्स (Proprioceptors) कहा जाता है, जो इनके फैलने (Stretch) से उद्दीप्त होते हैं। आँखों एवं कानों से आने वाले आवेगों (Impulses)

के साथ इनका सम्बन्ध शरीर के सन्तुलन एवं उसकी मद्रा (Posture) को बनाए रखने से सम्बद्ध है। ये तन्त्रिका आवेग दो स्थानों पर पहुँचते हैं:–1.तीन न्यूरॉन तन्त्र द्वारा आवेग दूसरी ओर के प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्ध के संवेदी क्षेत्र में पहुँचते हैं तथा 2. दो न्यूरॉन तन्त्र द्वारा तन्त्रिका आवेग उसी ओर के अनुमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्ध में पहुँचते हैं।

स्पाइनल कॉर्ड में प्रेरक तन्त्रिका पथ (अपवाही या अवरोही) [Motor nerve tracts (efferent or descending) in the spinal cord]

न्यूरॉन्स, जो तन्त्रिका आवेगों को मस्तिष्क से दूर संचारित करते हैं, प्रेरक न्यूरॉन्स (अपवाही या अवरोही) होते हैं। प्रेरक न्यूरॉन के उद्दीपित होने से कंकालीय (रेखित, ऐच्छिक) एवं चिकनी (अनैच्छिक) तथा हृदपेशी में संकुचन (Contraction) होता है तथा ग्रन्थियों के स्त्राव स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र की तन्त्रिकाओं द्वारा नियन्त्रित रहते हैं।

ऐच्छिक पेशी गति (Voluntary muscle movement)- प्रेरक तन्त्रिका आवेग प्रमस्तिष्क से स्पाइनल कॉर्ड के तन्त्रिका तन्तुओं की पूलिकाओं (Bundles of nere fibres) से होकर शरीर की ऐच्छिक पेशियों (voluntary muscles) में संचारित होते हैं, जिनमें संकुचन होता है और सन्धियों में गति होती है। यह मनुष्य की इच्छा पर निर्भर होती है। यद्यपि, कुछ तन्त्रिका आवेग जिनके कंकालीय पेशियों में संकुचन होता है, वे मध्यमस्तिष्क, मस्तिष्क स्तम्भ (Brain stem) तथा अनुमस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं। इस तरह की अनैच्छिक क्रिया पेशी क्रियाशीलता के समन्वय के साथ सम्बद्ध होती है, जैसे जब अत्यन्त हल्की सी गति की आवश्यकता होती है तथा शरीर की मुद्रा एवं सन्तुलन को स्थिर बनाए रखने की आवश्यकता होती है, तो इन पर इच्छा का नियन्त्रण नहीं होता।

अपवाही (Efferent) तन्त्रिका आवेग मस्तिष्क से शरीर को स्पाइनल कार्ड में स्थित तन्त्रिका तन्तुओं की पूलिकाओं के या पथों के माध्यम से संचारित होते हैं। मस्तिष्क से पेशियों तक जाने वाले प्रेरक पथ (Motor pathways) दो प्रकार के न्यूरॉन्स से बने होते हैं। जो निम्नलिखित हैं–

1. पिरामिडल (Pyramidal)
2. एक्स्ट्रा पिरामिडल (Extra pyramidal)

प्रेरक तन्तु जो परिमिडल पथों का निर्माण करते हैं वे इन्टरनल कैप्सूल (Internal capsule) से गुजरते हैं तथा ऐच्छिक (कंकालीय) पेशियों के लिए आवेगों का मुख्य पथ होते हैं। जो प्रेरक तन्तु एक्स्ट्रा पिरामिडल पथों का निर्माण करते हैं वे इन्टरनल कैप्सूल से नहीं गुजरते हैं तथा मस्तिष्क के कई भागों में बेसल न्यूक्लाइ सहित एवं थैलेमस से जुड़े रहते हैं।

ऊपरी प्रेरक न्यूरॉन (The upper motor neurone)- इस प्रकार के न्यूरॉन अपनी कोशिका काय (Betz's cell) प्रमस्तिष्क के प्रीसेन्ट्रल सल्कस क्षेत्र में स्थित होती है।

इसके अक्ष तन्तु (Axons) इन्टरन्ल कैप्सूल, पोन्स एवं मेड्यूला से होते हुए गुजरते हैं। नीचे स्पाइनल कॉर्ड में पहुँचकर ये श्वेत द्रव्य (White matter) के लेटरल कॉर्टिको–स्पाइनल पथ (Lateral corticospinal stracts) बनाते हैं तथा तन्तु भूरे द्रव्य के एन्टीरियर कॉलम में निचले प्रेरक न्यूरॉन्स (Lower motor neurons) की कोशिका कायों (Cell bodies) के साथ सम्बद्ध होकर अन्तर्ग्रथित (Terminate) हो जाते हैं। इन ऊपरी प्रेरक न्यूरॉन्स के अक्ष तन्तु पिरामिडल पथ तथा मेड्यूला आम्ब्लांगेटा में पहुँचकर लम्बा सँकरा उभार हैं जिसे पिरामिड (Pyramid) कहते हैं।

निचला प्रेरक न्यूरॉन (The lower motor neurone)- निचले प्रेरक न्यूरॉन की कोशिका काय स्पाइनल कॉर्ड के भूरे द्रव्य के एन्टीरियर हॉर्न में स्थित होती हे। इसका अक्ष तन्तु (Axon) एन्टीरियर रूट (Anterior root) के द्वारा स्पाइनल कॉर्ड से निकलता है तथा आने वाले संवेदी तन्तुओं से जुड़कर मिश्रित स्पाइनल तन्त्रिका (Mixed spinal nerve) बनाता है, जो इन्टर वर्टिब्रल फोरामेन से होकर गुजरती हैं पेशी में इसके अन्त (Termination) के समीप एक्सोन बहुत से सूक्ष्म तन्तुओं में विभाजित हो जाता है, जो प्रेरक अंत्य प्लेट्स (Motor end plates) बनाता है, इनमें से प्रत्येक अंत्य प्लेट किसी पेशीतन्तु की भित्ति के संवेदनशील क्षेत्र से जुड़े रहते हैं। प्रत्येक तन्त्रिका की प्रेरक अंत्य प्लेट्स से तथा पेशी तन्तुओं से निकी वे पूर्ति (Supply) करती हैं, एक प्रेरक इकाई (Motor unit) बनती है। एसीटाइलोकोलीन (Acetylcholine) नामक न्यूरोट्रान्समीटर जो तन्त्रिका आवेग को तन्तु मिलन स्थान (Synapse) को पार करके पेशी तन्तु में पहुँचता है, जिससे पेशी तन्तु उद्दीप्त (Stimulate) होता है और उसमें संकुचन (Contraction) होता है। किसी पेशी की सभी प्रेरक इकाईयाँ एक साथ संकुचित होती हैं तााि संकुचन की शक्ति एक ही समय में क्रियाशील होने वाली प्रेरक इकाईयों की संख्या पर निर्भर रहती है।

कंकालीय पेशियों को तन्त्रिका आवेग सामान्यतः निचले प्रेरक न्यूरॉन ही संचारित करते हैं। इन न्यूरॉन्स की कोशिका काय मस्तिष्क के विभिन्न भागों से उत्पन्न होने वाले ऊपरी प्रेरक न्यूरॉन्स तथा कुछ न्यूरॉन्स जो स्पाइनल कॉर्ड में उत्पन्न एवं अन्त होते हैं, से प्रभावित रहती है। इनमें से कुंछ न्यूरॉन्स निचले प्रेरक न्यूरॉन की कोशिका कायों को उद्दीप्त करते हैं, जबकि कुछ अन्यों का अवरोधक प्रभाव होता है। कुल मिलकर ये पेशी गति में समन्वय बनाए रखते हैं।

अनैच्छिक पेशी गति (Involuntary muscle movement)- ऊपरी प्रेरक न्यूरॉन की मध्यमस्तिष्क, मस्तिष्क स्तम्भ, अनुमस्तिष्क अथवा स्पाइनल कॉर्ड में सिथत कोशिकाएँ शरीर की मुद्रा (Posture) एवं सन्तुलन को बनाये रखने से सम्बन्धित पेशी सक्रियता (Suscle) को प्रभावित करती हैं, पेशी गति में समन्वय बनाये रखती हैं तथा पेशी तान (Muscle tone) को नियन्त्रित करती हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न –

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1. तंत्रिका तंत्र ....से बना होता है।
2. तंत्रिका तंत्र के ....भाग हैं।
3. केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र में..तथा ....का समावेश होता है।
4. पूर्ण रूप से विकसित मानवीय मस्तिष्क शरीर के भार का लगभग .... होता है।
5. ....मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग है।

16.6 – सारांश

तो पाठकों, उपर्युक्त विवेचन से आप भली – भॉति समझ गये होंगे कि तंत्रिका तंत्र क्या है? केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र किसे कहते है तथा किस प्रकार मस्तिष्क एवं मेरूरज्जु आपस मिलकर एक – दूसरे के कार्यो मे समन्वय या सामंजस्य बनाये रखते है।

पाठकों, जैसा कि आप सभी जानते है कि तंत्रिका तंत्र को शरीर के समस्त संस्थानों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है। अतः शरीर के सभी अंगों के सुचारू संचालन के लिये तंत्रिका तंत्र का सुदृढ़ होना अत्यावश्क है।

16.7 शब्दावली –

न्यूरॉन – तंत्रिका तंत्र की सबसे छोटी ईकाई

उद्दीपक – जो किसी प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न करे।

अग्रमस्तिष्क – मस्तिष्क का आगे का भाग।

ऐच्छिक – ईच्छानुसार संचालित होने वाला या ज़िस क्रिया पर व्यक्ति का नियंत्रण हो।

अनैच्छिक – ईच्छानुसार संचालित न होना या जिस क्रिया पर व्यक्ति का अपना कोई नियंत्रण या ईच्छा नहीं होती है।

16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. तंत्रिका ऊतकों
2. तीन
3. मस्तिष्क तथा मेरूरज्जु
4. 1/50
5. अग्रमस्तिष्क

16.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1.गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2.गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
3.शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
4.पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
5.वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1.2.3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली
6.दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा
7.सक्सेना, ओ0पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।
8.Chaurasis's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

16.10 निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न :1 तंत्रिका तंत्र से आप क्या समझते है? मस्तिष्क की संरचना एवं कार्यो का वर्णन कीजिए।
प्रश्न : 2 मेरूरज्जु की संरचना एवं कार्यो पर प्रकाश डालिये।

इकाई – 17– पेरीफेरल एवं क्रेनियल नर्व

इकाई की संरचना

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 परिसरीय तंत्रिका तंत्र (पेरीफेरल नर्वस सिस्टम)

17.4 कपालीय तंत्रिकाँए (क्रेनियल नर्व)

17.5 स्पाइनल तंत्रिकाएँ

17.6 तंत्रिका मूल

17.7 सारांश

17.8 शब्दावली

17.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

17.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

17.11 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 – प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व की इकाई में आप शरीर के सभी संस्थानों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के बारे में पढ़ चुके है। इसके अन्तर्गत आप मस्तिष्क तथा मेरूरज्जु की संरचना एवं कार्यो को विस्तार से समझ चुके हैं। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुये प्रस्तुत ईकाई में हम परिसरीय तंत्रिका तंत्र (पेरीफेरल नर्वस सिस्टम) के बारे में अध्ययन करेंगे। प्रिय पाठकों, परिसरीय तंत्रिका तंत्र में मस्तिष्क से निकलने वाली 12 जोड़ी कपालीय तंत्रिकायें तथा स्पाइनल कौर्ड से निकलने वाली 31 जोड़ी स्पाइनल तंत्रिकायें आती है। इन तंत्रिकाओं से शाखायें निकलकर शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचती है। तो आइये, सर्वप्रथम चर्चा करते हे – परिसरीय तंत्रिका तंत्र के विषय में।

17.2 – उद्देश्य

जिज्ञासु पाठकों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- परिसरीय तंत्रिका तंत्र के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।

- कपालीय एवं स्पाइनल तंत्रिकाओं का वर्गीकरण कर सकेंगे।
- तंत्रिका मूल को स्पष्ट कर सकेंगे।
- परिसरीय तंत्रिका तंत्र की उपयोगिता को स्पष्ट कर सकेंगे।

17.3 परिसरीय तन्त्रिका तन्त्र (Peripheral nervous system)

तन्त्रिका तन्त्र के इस भाग में मस्तिष्क से निकलने वाली 12 जोड़ी कपालीय तन्किाओं (Cranial nerves) एवं स्पाइनल कॉर्ड से निकलने वाली 31 जोड़ी स्पाइनल तन्त्रिकाओं (Spinal nerves) का समावेश होता है, जिनसे शाखायें निकलकर शरीर के विभिन्न अंगों एवं ऊतकों में पहुँचती हैं।

तन्त्रिका (Nerve)- तन्त्रिका, केन्द्रिय तन्त्रिका तन्त्र के बाहर मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड को शरीर के विभिन्न अंगों से सम्बद्ध करने वाली तन्त्रिका तन्तुओं (Nerve fibres) की एक पूलिका (बंडल) अथवा पूलिकाओं का एक समूह होती है–

1. **संवेदी या अभिवाही तन्त्रिकाएँ (Sensory or Afferent nerves)-** इस प्रकार की तन्त्रिकाएँ आवेगों को शरीर के परिसर (Periphery) से स्पाइनल कॉर्ड और फिर वहाँ से मस्तिष्क में ले जाती हैं। त्वचा में ये माइलिन रहित (Non-myelinated) होती हैं और बहुत बारिक सूत्रों (Filaments) में विभाजित हो जाती हैं। ये सूत्र भी अनेकों शाखाओं में विभाजित हो जाते हैं, जो संवेदी तन्त्रिका अन्त (Sensory nerve endings) होते हैं। उद्दीपन मिलने पर आवेग (Impulse) उत्पन्न होता है, जो मस्तिष्क को संचारित हो जाता है जहाँ पर अनुभूति का ज्ञान होता है।

2. **पेरक या अपवाही तन्त्रिकाएँ (Motor or Efferent nerves)-** इस प्रकार की तन्त्रिकाएँ मस्तिष्क, स्पाइनल कॉर्ड तथा स्वायत्त गण्डिकाओं (Autonomic ganglia) में उत्पन्न होते हैं। ये तन्त्रिकाएँ आवेगों को मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड से परिसर या बाहर की ओर ले जाती हैं। ये दो प्रकार की होती हैं–

   (i) सोमैटिक तन्त्रिकाएँ (Somatic nerves)

   (ii) स्वायत्त तन्त्रिकाएँ (Autonomic nerves)

   सोमैटिक तन्त्रिकाएँ ऐच्छिक एवं प्रतिवर्त कंकालीय पेशी (Relfex skeletal muscle) संकुचन में भूमिका निभाती हैं। स्वायत्त तन्त्रिकाएँ हृदयपेशी एवं चिकनी पेशी संकुचन एवं ग्रन्थिल स्त्राव (Glandular secretion) उत्पन्न करने में भूमिका निभाती हैं।

3. **मिश्रित तन्त्रिकाएँ (Mixed nerves)-** स्पाइनल कॉर्ड में संवेदी एवं प्रेरक तन्त्रिकाएँ अलग–अलग वर्गों (Groups) या पथों (Tracts) में व्यवस्थित रहती

हैं। स्पाइनल कॉर्ड से बाहर जब संवेदी एवं प्रेरक तन्त्रिकाएँ संयोजी ऊतक के उसी आवरण (Same steath of connective tissue) में बन्द रहती हैं तो उन्हें **मिश्रित तन्त्रिकाएँ** कहा जाता है।

17.4 कपालीय तन्त्रिकाएँ (Cranial nerves)

मस्तिष्क की इन्फीरियर सतह (Inferior surface) में स्थित केन्द्रकों से 12 जोड़ी कपालीय तन्त्रिकाओं की उत्पत्ति होती है। जिनमें से कुछ संवेदी (Sensory), कुछ प्रेरक (Motor) तथा कुछ मिश्रित (Mixed) तन्त्रिकाएँ होती हैं। उनके नाम एवं नम्बर निम्न कमानुसार हैं–

I ऑल्फेक्टरी (Olfactory)
II ऑप्टिक (Optic)
III ऑक्यूलोमोटर (Oculomotar)
IV ट्रॉक्लीयर (Trochlear)
V ट्राइजेमिनल (Trigeminal)
VI एब्ड्यूसेन्ट (Abducent)
VII फैशियल (Facial)
VIII वेस्टिब्यूलोकॉक्लीयर (Vestibulocochlear or auditory)
IX ग्लॉसोफैरिन्जियल (Glossopharyngeal)
X वैगस (Vagus)
XI एक्सेसरी (Accessory)
XII हाइपोग्लॉसल (Hypoglossal)

इनमें से I, II व VIII तन्त्रिकाएँ संवेदी होती हैं, जो मस्तिष्क को केवल संवेदी आवेग (Sensory impulses) पहुँचाती हैं। III, IV, VI, XI व XII नम्बर की तन्त्रिकाएँ मस्तिष्क को केवल प्रेरक आवेग (Motor impulses) पहुँचाती हैं। V, VII, IX व X नम्बर की तन्त्रिकाओं में प्रेरक एवं संवेदी दोनों तरह के तन्तु होते हैं। अर्थात् ये मिश्रित तन्त्रिकाएँ होती हैं।

I ऑलफेक्टरी तन्त्रिका (Olfactory nerve)- यह तन्त्रिका गन्ध–संवेदना को नाक के माध्यम से मस्तिष्क के घ्राण केन्द्र में पहुँचाती है, जिससे हमें सुगन्ध या दुर्गन्ध का ज्ञान होता है। इस तन्त्रिका की कोशिकाएँ नासिका गुहा के ऊपरी भाग की श्लेष्मिक कला (Olfactory mucosa) में स्थित रहती हैं। जिनसे उत्पन्न तन्त्रिका तन्तु इथमॉइड अस्थि की छिद्रित प्लेट (Cribriform plate) से होते हुए घ्राण बल्ब (Olfactory bulb) में पहुँचते हैं। घ्राण बल्ब की तन्त्रिका तन्तुओं की पूलिकाओं (Bundles) से घ्राण–पथ (Olfactory tract) बनता है, जो पीछे जाकर मस्तिष्क के प्रत्येक अर्द्धगोलार्द्ध में प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स के टेम्पोरल लोब में स्थित घ्राण क्षेत्र में पहुँचता है जहाँ गंध आवेगों का विश्लेषण होता है।

II आप्टिक तन्त्रिका (Optic nerve)- ऑप्टिक या दृष्टि तन्त्रिका प्रकाश संवेद की दो तन्त्रिकाएँ होती हैं जिनके द्वारा प्रकाश की संवेदना का संचरण होता है। दृष्टि तन्तुओं की उत्पत्ति नेत्रों के रेटिना में होती है। सभी तन्तु मैकुला ल्यूरिया से नासिका की ओर अभिसारित (Converge) होकर तथा आपस में संयोजित होकर दृष्टि तन्त्रिका बनाते हैं।

रेटिना में स्थित रॉड्स एवं कोन्स प्राथमिक संवेदी न्यूरॉन्स होते हैं, जो प्रकाश संवेद के लिए उत्तरदायी होते हैं। ये प्रकाश आवेगों को रेटिना में स्थित दूसरे न्यूरॉन को रिले करते हैं, जो आवेग को तीसरे न्यूरॉन को संचारित करते हैं, इनके तन्तु ऑप्टिक तन्त्रिका का निर्माण करते हैं। ये दोनों तन्त्रिकाएँ दोनों नेत्रकोटरीय गुहाओं (Orbital cavities) से निकलकर कुछ दूरी पर ऑप्टिक चियाज्मा (Optic chiasma) पर मिल जाती हैं, फिर दृष्टि पथों (Optic tracts) के रूप में पृथक हो जाती हैं, जो मध्यमस्तिष्क को घेरते हैं तथा लेटरल जेनीकुलेट बॉडी (Lateral geniculate body) की ओर गुजर जाते हैं। उत्तेजित करती है और पेशियों में संकुचन होता है, जिसके फलस्वरूप नेत्रगोलक नेत्रगुहा में घूमने लगता है। यह नेत्रों की मीडियल, इन्फीरियर एवं सुपीरियर रेक्टस पेशियों, इन्फीरियर ऑब्लीक एवं लीवेटर पल्पेब्री पेशियों, परानुकम्पी तंन्तुओं की तंन्त्रिका आपूर्ति करती है। इससे आइरिस एवं सिलीयरी पेशी की भी आपूर्ति होती है।

IV ट्रॉक्लियर तन्त्रिका (Trochlear nerve)- इस तन्त्रिका के तन्तु नेत्रगोलक की सुपीरियर ऑब्लीक पेशी की तन्त्रिका आपूर्ति करत हैं।

V ट्राइजेमिनल तन्त्रिका (Trigeminal nerve)- यह तन्त्रिका कपालीय तन्त्रिकाओं में सबसे बड़ी तन्त्रिका है, इसमें संवेदी एवं प्रेरक दोनों प्रकार के तन्त्रिका तन्तु होते हैं अर्थात् मिश्रित तन्त्रिका है। इसके प्राथमिक संवेदी न्यूरॉन्स की कोशिकाएँ कपालीय गुहा में स्थित वृहद ट्राइजेमिनल गैंग्लियोन (Trigeminal ganglion) में स्थित रहती हैं। जहाँ से यह तीन बड़ी–बड़ी शाखाओं में विभाजित हो जाती हैं, ये हैं–ऑफ्थेल्मिक, मैक्जिलरी एवं मैन्डिबुलर तन्त्रिकाएँ। **ऑफ्थेल्मिक तन्त्रिका** (Ophthalmic nerve) संवेदी तन्तुओं की बनी होती है, जो नेत्रकोटरीय गुहा (Orbital cavity) एवं नेत्र के स्तर से ऊपर की त्वचा की आपूर्ति करती हैं। **मैक्जिलरी तन्त्रिका** (Maxillary nerve) नासिका गुहा (Nasal cavity), मुँह एवं नेत्र के बीच के भाग को (चेहरे की) त्वचा तथा ऊपरी दाँतों के संवेदी तन्तुओं की आपूर्ति करती है। **मैन्डिबुलर तन्त्रिका** (Mandibular nerve) निचले जबड़े, मुँह का तल (Floor of mouth), जीभ के अगले 2/3 भाग एवं निचले दाँतों के संवेदी तन्तुओं की आपूर्ति करती है।

ट्राइजेमिनल तन्त्रिका की प्रेरक रूट (Motor root) कपालीय गुहा से स्वतन्त्र रूप से निकलकर मैन्डिबुलर डिविजन में मिल जाती है तथा निम्न आठ पेशियों की आपूर्ति करती है–

4 चर्वण पेशियाँ [लेटरल एवं मीडियल टेरीजॉइड्स (Pterygoids), मैसेटर (Masseter) एवं टेम्पोरैलिस] टेन्सर टिम्पैनी (Tensor tympani), टेन्सर वेलि पैलेटिनि (Tensor veli palatini), माइलोहॉयड (Mylohyoid), एवं एन्टीरियर बेली ऑफ डाइगैस्ट्रिक (Anterior belly of digastric)।

VI एब्ड्यूसेन्ट तन्त्रिका (Abducent nerve)- यह प्रेरक तन्त्रिका होती है जो नेत्रगोलक की लेटरल रेक्टस पेशी की आपूर्ति करती है।

VII फेशियल तन्त्रिका (Facial nerve)- यहसंवेदी एवं प्रेरक तन्तुओं की मिश्रित तन्त्रिका हैं मस्तिष्क स्तम्भ से निकलकर यह आठवीं तन्त्रिका के साथ आन्तरिक कर्ण कुहर (Internal auditory neatus) से गुजरती है, फिर फेशियल केनाल से गुजरकर खोपड़ी के स्टाइलोमेस्टॉइड फोरामेन (Stylomastoid) पर समाप्त हो जाती है, जहाँ इसकी स्टाइलोहॉयड पेशी, डाइगैस्ट्रिक की पोस्टीरियर बेली, एवं कान के चारों ओर की सुरपफीशियल पेशियों तिाि पश्चकपाल के लिए शाखाएँ निकलती हैं। इसके बाद यह पेरोटिड ग्रन्थि से होती हुई टर्मिनल शाखाओं में विभक्त हो जाती है, जो चेहरे की मुद्राओं की पेशियों (Muscles of facial expression) की आपूर्ति करती हैं।

इसका कॉर्डा टिम्पैनि (Chorda tympani) भाग जीभ के अगले 2/3 भाग से मस्तिष्क को स्वाद संवेदना पहुँचाता है।

VIII वेस्टिब्यूलोकॉक्लियर या ऑडिटरी तन्त्रिका (Vestibulocochlear or auditory nerve)- यह संवेदी तन्त्रिका होती है, जो आन्तरिक कान की आपूर्ति करती है। इसकी तन्त्रिका कोशिकाएँ दो स्थानों पर स्थित होती है। **कॉक्लियर भाग** की कोशिकाएँ कॉक्लिया (Cochlea) के स्पाइरल गैंग्लियोन में स्थित होती हैं। कॉक्लिया में स्थित कॉर्टाइ (Corti) ध्वनि से सम्बन्धित आवेगों को मस्तिष्क में संचारित करते हैं। **वेस्टिब्यूलर** भाग की तन्त्रिका कोशिकाएँ वेस्टिब्यूलर गैंग्लियोन में स्थित होती हैं, जो आन्तरिक कानों से आवेगों को शरीर के सन्तुलन को बनाए रखने के साथ मस्तिष्क में संचारित करती हैं।

IX ग्लॉसोफेरिन्जियल तन्त्रिका (Glossopharyngeal nerve)- यह संवेदी एवं प्रेरक तन्तुओं की मिश्रित तन्त्रिका है। यह जीभ एवं ग्रसनी (Pharynx) की आपूर्ति करती है। संवेदी तन्तु जीभ के पिछले (Posterior) तिहाई भाग से, टॉन्सिल्स से, ग्रसनी से स्वाद–संवेदना को ग्रहण करके मस्तिष्क को पहुँचाते हैं। प्रेरक तन्तु ग्रसनी की पेशियों (Stylopharyngeus muscle) तथा पैरोटिड ग्रन्थियों की स्रावी कोशिकाओं को उद्दीप्त करते हैं।

X वेगस तन्त्रिका (Vagus nerve)- यह अन्य कपालीय तन्त्रिकाओ ंसे सबसे अधिक फैली हुई संवेदी और प्रेरक तन्तुओं की मिश्रित तन्त्रिका है। इसके संवेदी तन्तु फेफड़ों, हृदय एवं वृहद वाहिकाओं (Major vessels), स्वरयन्त्र (Larynx), ग्रसनी (Pharynx), ग्रासनली (Oesophagus), अमाशय (Stomach) एवं छोटी आँत,

पित्ताशय (Gall bladder), तथा मुख के पश्च भाग में स्थित कुछ स्वाद कलिकाओं (Taste buds) से आवेगों को ग्रहण करके मस्तिष्क में पहुँचाते हैं तथा प्रेरक तन्तु स्वर यन्त्र, ग्रसनी, ग्रासनली, श्वासनली (Bronchi), अमाशय, छोटी आँत, हृदय की पेशियों एवं पाचक रस उत्पन्न करने वाल ग्रन्थियों की आपूर्ति करते हैं।

XI एक्सेसरी तन्त्रिका (Accessory nerve)- यह मस्तिष्क स्तम्भ एवं स्पाइनल कॉर्ड के ऊपरी भाग दोनों स्थानों से उत्पन्न होने वाली प्रेरक तन्त्रिका है। इसके दो भाग होते हैं। एक भाग वेगस तन्त्रिका के साथ मिलकर ग्रसनी एवं स्वरयन्त्र में जाता है और दूसरा भाग पृथम तन्कित्रा के रूप में टैपीजियम (Trapezium) एवं स्टर्नोक्लीडॉमेस्टॉइड (Sternocleidomastoid) पेशियों की आपूर्ति करता है।

XII हाइपोग्लॉसल तन्त्रिका (Hypoglossal nerve)- इस तन्त्रिका में केवल प्रेरक तन्तु होते हैं, जिसका उद्‌गम मेड्‌यूला ऑब्लांगेटा से होता है। यह जीभ की आन्तरिक एवं बाह्य (Intrinsic & Ectrinsic) पेशियों की एवं हॉयड अस्थि के चारों ओर की पेशियों की आपूर्ति करती हैं तथा निगलने एवं बोलने में सहायता देती है।

17.5 स्पाइनल तन्त्रिकाएँ (Spinal nerves)-

स्पाइनल कॉर्ड से 31 जोड़ी स्पाइनल तन्त्रिकाएँ निकलती हैं, जो सटी हुई वर्टिब्रीज से बने इन्टरवर्टिब्रल रन्ध्रों (Foramina) से होकर वर्टिब्रल कनोल के बाहर निकलती है। इनका नामकरण एवं वर्गीकरण उन्हीं वर्टिब्री के अनुसार किया जाता है, जिनसे ये सम्बद्ध होती हैं। ये तंन्त्रिकाएँ निम्नलिखित हैं–

1. 8 जोड़ी सर्वाइकल तन्त्रिकाएँ (Cervical nerves)
2. 12 जोड़ी थॉरेसिक तन्त्रिकाएँ (Thoracic nerves)
3. 5 जोड़ी लम्बर तन्त्रिकाएँ (Lumbar nerves)
4. 5 जोड़ी सैक्रल तन्त्रिकाएँ (Sacral nerves)
5. 1 जोड़ी कॉक्सिजियल तन्त्रिकाएँ (Coccygeal nerves)

सर्वाइकल तन्त्रिकाओं का प्रथम जोड़ा ऑक्सिपिटल अस्थि एवं एटलस वर्टिब्रा के नीचे से तथा शेष प्रत्येक सर्वाइकल वर्टिब्री के नीचे से निकलते हैं। थॉरैसिक तन्त्रिकाओं का प्रत्येक जोड़ा प्रत्येक थॅरैसिक वर्टिब्री के नीचे से निकलता है।

लम्बर, सैक्रल एवं कॉक्सिजियल तन्त्रिकाएँ प्रथम लम्बर वर्टिब्रा के स्तर पर स्पाइनल कॉडर्श्र के अन्त के पास से निकलती है और सबएराक्नॉइड अवकाश (Subarachnoid space) में वर्टिब्रल कैनाल के भीतर नीचे की ओर बढ़कर तन्त्रिकाओं का आवरण (Sheath of nerves) कॉडा इक्विना (Cauda equine) बनाती हैं। ये तन्त्रिकाएँ समुचित लम्बर, सैक्रल या कॉक्सिजियल स्तर पर अपने गन्तव्य स्थान के अनुसार वर्टिब्रल केनाल से बाहर निकल आती हैं।

स्पाइनल तन्त्रिकाएँ स्पाइनल कॉर्ड के दोनों ओर से उग्मित होती हैं तथा इन्टरवर्टिब्रल रन्ध्रों (Foramina) से होकर बाहर निकल जाती हैं। प्रत्येक तन्त्रिका एक प्रेरक एवं एक संवेदी तन्त्रिका मूल (Nerve root) के संयोग (Union) से बनती है, इसीलिए यह एक मिश्रित तन्त्रिका होती है।

17.6 तन्त्रिका मूल (Nerve roots)-

1. अग्र तन्त्रिका मूल
2. पश्च तन्त्रिका मूल

अग्र तन्त्रिका मूल में **प्रेरक तन्त्रिका तन्तु** (Motor nerve fibres) जो स्पाइनल कॉर्ड में स्थित भूरे द्रव्य (Gray matter) के एन्टीरियर कॉलम में, थॉरेसिक एवं लम्बर क्षेत्रों में स्थित तन्त्रिका कोशिकाओं के अक्ष–तन्तु (Axons), तथा **अनुकम्पी तन्त्रिका तन्तु** (Sympathetic nerve fibres) जो भूरे द्रव्य के लेटरल कॉलम्स में स्थित कोशिकाओं के अक्ष तन्तु (Axons) का समावेश होता है। इससे पेशियों में संकुचन एवं गति होती है।

पश्च तन्त्रिका मूल में **संवेदी तन्त्रिका तन्तुओं** (Sensory nerve fibres) का समावेश होता है।

दोनों मूलों से निकली तन्त्रिकाएँ वर्टिब्रल कनोल के भीतर आपस में मिलकर एक हो जाती हैं ओर इन्टरवर्टिब्रल फोरामेन से होकर बाहर निकल जाती है। बाहर निकलने के उपरान्त प्रत्येक स्पाइनल तन्त्रिका अग्र एवं पश्च शाखाओं (Anterior and posterior ramus) में विभाजित हो जाती है। पश्च शाखाएँ (Posterior ramus) सिर, गर्दन एवं धड़ के पिछले भाग की त्वचा एवं पेशियों की आपूर्ति करती हैं तथा अग्र शाखाएँ (Anterior rami) जो अपेक्षाकृत लम्बी होती है, गर्दन, धड़ एवं हाथ–पैरों के एन्टीरियर एवं लेटरल भाग की आपूर्ति करती हैं।

अग्र शाखाएँ अन्य स्पाइनल तन्त्रिकाओं की शाखाओं से मिलकर बड़ी जालिकाएँ या प्लेक्सस बनाती (Plexus) हैं। थॅरैसिक क्षेत्र को छोड़कर वर्टिब्रल कॉलम के प्रत्येक ओर मिश्रित तन्त्रिकाओं के 5 बड़े प्लेक्सस बनते हैं। ये निम्नलिखित होते हैं–

1. सर्वाइकल प्लेक्सस (Cervical plexus)
2. ब्रैकियल प्लेक्सस (Brachial plexus)
3. लम्बर प्लेक्सस (Lumbar plexus)
4. सैक्रल प्लेक्सस (Sacral plexus)
5. कॉक्सिजियल प्लेक्सस (Coccygeal plexus)

सर्वाइकल प्लेक्सस (Cervical plexus)- यह प्रथम चार सर्वाइकल तन्त्रिकाओं की अग्र शाखाओं (Anterior rami) द्वारा बनता है और स्टर्नोक्लीडोमैस्टॉइड पेशी के नीचे ग्रीवा क्षेत्र में स्थित रहता है। तन्त्रिकाएँ ऊपर की ओर चढ़ने वाली (Ascending) एवं नीचे की

ओर उतरने वाली (Descending) अनेकों शाखाओं में विभाजित हो जाती है। C_2 की ऊपर की ओर जाने वाली शाखा C_1 की अग्र शाखा (Anterior ramus) के साथ मिलकर एक लूप बनाती हैं। इसी प्रकार C_2, C_3, एवं C_4 की ऊपरी की ओर एवं नीचे की ओर जाने वाली शाखाओं से दूसरा एवं तीसरा लूप बनते हैं। C_4 की अग्र शाखा की नीचे की ओर उतरने वाल शाखा ब्रैकियल प्लेक्सस से मिल जाती है। (नोट– C_1, C_2, C_3, C_4 क्रमशः पहली, दूसरी, तीसरी एवं चौथी सर्वाइकल स्पाइनल तन्त्रिकाएँ हैं)

सर्वाइकल प्लेक्सस से निकलने वाली **सेगमेन्टल शाखाएँ** (Segmental branches) गर्दन की गहन पेशियों (Deep levator scapula), इन्फ्राहायॅाड पेशियों, थॅरैसिक डायाफ्राम तथा ग्रीवा क्षेत्र एवं ऊपरी क्ष की त्वचा की आपूर्ति करती है, **एन्सा सर्वाइकैलिस** (Ansa cervicalis) तन्त्रिका स्टर्नोहायॅाड, स्टर्नोथायरॅाइड, थाइरोहॅाड पेशियों की आपूर्ति करती हैं। **फेनिक तन्त्रिकाएँ** (Phrenic nerves) ग्रीवा क्षेत्र से नीचे उतर कर वक्षीय गुहा (Thoracic cavity) में पहुँचकर डायाफाम की आपूर्ति करती है, इनके अतिरिक्त 4 क्यूटेनियस तन्त्रिकाएँ **लेसर ऑक्सिपिटल** (Lesser occipital), **ग्रेटर ऑरिकुलर** (Greater auricular), **ट्रान्सवर्स सर्वाइकल** (Transverse cervical) एवं **सुप्राक्लैविकुलर** (Supraclavicular) तन्त्रिकाएँ भी निकलती हैं, जो क्रमशः सिर के पीछे पार्श्व भाग की त्वचा, कान के निचले भाग एवं सामने की त्वचा, ग्रीवा के सामने की त्वचा तथा वक्ष (Chest) के ऊपरी भाग एवं कन्धे (Shouder) की त्वचा की आपूर्ति करती हैं।

ब्रैकियल प्लेक्सस (Brachial plexus)- ब्रैकियल प्लेक्सस एक जटिल तन्त्रिका नेटवर्क (जाल) होता है, जिसमें से बहुत सी घटक (Component) संरचनाओं जैसे–मूल (Roots), प्रकाण्ड (Trunks), विभाजन (Division), रज्जु (Cords), एवं शाखाओं (Branches) का समावेश होता हे। यह नीचे की चार सर्वाइकल तन्त्रिकाओं की अगग्र शाखाओं (Anterior rami) एवं प्रथम थॉरैसिस तन्त्रिका के एक बहुत बड़े भाग से बनता है और ग्रीवा एवं कन्धे के ऊपर एवं सब–क्लेवियन वाहिकाओं (Subclavian vessels) के पीछे तथा बगल (Axilla) में स्थित रहता है।

ब्रैकियल प्लेक्सस की तन्त्रिकाओं के मूल (Roots) वर्टिब्रल कॉलम में ग्रीवा के निचले भाग में स्थित होते हैं, जो एन्टीरियर एवं मिडिल स्कैलीन पेशी (Scalene muscle) के बीच से गुजरकर तीन प्रकाण्ड (Trunks) बनाते हैं, जिन्हें क्रमशः ऊर्ध्व (Upper), मध्य (Middle) एवं अधो (Lower) प्रकाण्ड कहते हैं। ऊर्ध्व प्रकाण्ड पाँचवीं एवं छठी सर्वाइकल तन्त्रिका (C_5&C_6), मध्य प्रकाण्ड सातवीं सर्वाइकल तन्त्रिका (C_2) तथा आधो प्रकाण्ड आठवीं सर्वाइकल एवं पथम थॉरैसिक तन्त्रिका (C_8&T_1) से बनता हैं ये प्रकाण्ड क्लैविक्ल से होते हुए बगल (Axilla) में प्रवेश करते हैं, जहाँ ये एन्टीरियर एवं पोस्टीरियर विभाजनों (division) में विभक्त हो जाते हैं। बगल में ऊर्ध्व एवं मध्य प्रकाण्ड के एन्टीरियर डिवीजन्स लेटरलकॉर्ड (पार्श्व रज्जु), अधो प्रकाण्ड के एन्टीरियर

डिवीजन्स मीडियल कॉर्ड (अभिमध्य रज्जु) तथा सभी तीनों प्रकाण्डों के पोस्टीरियर डिवीजन्स कॉर्ड (पश्च रज्जु) बनाते हैं।

ब्रैकियल प्लेक्सस से निकलने वाली तन्किाएँ ऊर्ध्व भुजाओं (Upper extremities) की पेशियों एवं त्वचा की आपूर्ति करती हैं। पीठ एवं वक्ष की पेशियाँ जो स्कन्ध मेखला (Shoulder girdle) को गतिशील बनाती हैं, को भी आपूर्ति करती है। इससे निम्नलिखित पाँच प्रमुख तन्त्रिकाएँ निकलती हैं–

सकमफ्लेक्स तन्त्रिका (Circumflex nerve)- इसे एक्जिलरी (Axillary) तन्त्रिका भी कहा जाता है। यह ह्यूमरस अस्थि की सर्वाकल ग्रीवा को चारों ओर से लपेटते हुए नीचे की ओर सूक्ष्म शाखाओं में विभक्त हो जाती है तािा डैल्टॉइड पेशी, कन्धे के जोड़, एवं उनके ऊपर की त्वचा की आपूर्ति करती है।

रेडियल तन्त्रिका (Radial nerve)- यह ब्रैकियल प्लेक्सस की सबसे बड़ी शाखा होती है, जो ह्यूमरस अस्थि के पिछले भाग से नीचे की ओर अग्रभुजा के बाहरी भाग तक फैली रहती है। यह बाहु एवं अग्रबाहु की प्रसारक (Extensor) पेशियों तथा बाहु, अग्रबाहु एवं हाथ की डॉर्सल सतह की त्वचा की आपूर्ति करती है।

मीडियन तन्त्रिका (Median nerve)- यह बाहु (Arm) की मध्यरेखा से होकर ब्रैकियल धमनी (Brachial artery) के साथ–साथ नीचे की ओर जाती है। यह कोहनी के जोड़ के सामने से गुजरती हुई अग्रबाहु की सामने की फ्लेक्सर (Flexor) पेशियों की आपूर्ति करती है और फिर हाथ में पहुँचकर अँगूठे, प्रथम दो अंगुलियों के सामने की तथा तीसरी अंगुली के लेटरल आधे भाग की छोटी–छोटी पेशियों एवं त्वचा की आपूर्ति करती है। कोहनी से ऊपर इसकी शाखाएँ नहीं होती हैं।

अलनर तन्त्रिका (Ulnar nerve)- यह ब्रैकियल धमनी के मीडियल ओर रहकर ऊपरी बाहु से नीचे की ओर उतरती है और ह्यूमरस अस्थि के मीडियल एपिकॉण्डाइल के पीछे से होकर अग्रबाहु की अल्ना अस्थि की ओर की दो फ्लेक्सर (Flexor) पेशियों की आपूर्ति करती है। इसके बाद यह नीचे की ओर जाकर हथेली के पेशियों तथा सम्पूर्ण छोटी अंगुली (Little finger) की एवं तीसरी अंगुली के मीडियल आधे भाग की आपूर्ति करती है।

मस्कुलोक्यूटेनियस तन्त्रिका (Musculocutaneous nerve)- यह नीचे की ओर अग्रबाहु के लेटरल भाग में पहुँचती है। यह ऊपरी बाहु की पेशियों (Biceps brachii, Coracobrachialis and Brachialis) की तथा अग्रबाहु की त्वचा की आपूर्ति करती है।

लम्बर प्लेक्सस (Lumbar Plexus)- यह प्लेक्सस प्रथम तीन लम्बर तन्त्रिकाओं की अग्रशाखाओं (Anterior rami) तथा चौथी लम्बर तन्त्रिका के कुछ भाग से मिलकर बनता है, जो लम्बर वर्टिब्री के ट्रान्सवर्स प्रवर्धों (Processes) के सामने तथा सोआस पेशी

(Psoas muscle) के पीछे स्थित होता हैं इसे प्लेक्सस से निकली तन्त्रिकाएँ एन्टीरोलेटरल उदर भित्ति की पेशियों एवं त्वचा नितम्बों के ऊपरी भाग की त्वचा, जंघा के एन्टीरियर एवं मीडियल भाग की पेशियों एवं त्वचा तथा टांग एवं पाद (Foot) के एन्टीरियर भाग की त्वचा की आपूर्ति करती है। इस प्लेक्सस में निम्नलिखित तन्त्रिकाओं का समावेश होता है–

फीमोरल तन्त्रिका (Femoral nerve)- यह एक बड़ी तन्त्रिका है, जो फीमोरल धमनी के साथ–साथ इन्वाइनल लिगामेन्ट के पीछे होकर जंघा में प्रवेश करती है। यह क्यूटेनियस एवं मस्क्यूलर शाखाओं में विभक्त होकर जंघा के सामने की प्रसारक (Extensor) पेशियों एवं त्वचा की आपूर्ति करती है। इसकी एक शाखा **सैफेनस तन्त्रिका** (Saphenous nerve) टांग, टखने एवं पाद के मीडियल भाग की आपूर्ति करती है।

आब्टुरेटर तन्त्रिका (Obturator nerve)- यह जंघा की मध्यवर्ती भाग की अभिवर्तनी पेशियों तथा उनके ऊपर की त्वचा की आपूर्ति करती है। यह घुटने (Knee joint) के ठीक ऊपर समाप्त हो जाती है। **इलियोहापोगैस्ट्रिक** (Iliohypogastric), **इलियोइंग्वाइनल** (Ilioinguinal) एवं **जिनाइटोफीमोरल** (Genitofemoral) तन्त्रिकाएँ निचले उदर, जंघा के ऊपरी, जंघा के ऊपरी एवं मीडियल भाग तथा इंग्वाइनल प्रदेश (Inguinal region) की पेशियों एवं त्वचा की आपूर्ति करती हैं। **लेटरल फीमोरल क्यूटेनियस** (Lateral femoral cutaneous) तन्त्रिका जंघा के लेटरल भाग के ऊपर की त्वचा की आपूर्ति करती हैं। **लम्बोसैकल प्रकाण्ड** (Lumbosacral trunk)। यह पाँचवीं एवं चौथी लम्बर तन्त्रिकाओं के कुछ भाग से बना होता है, जो नीचे की ओर पेल्विस में उतरता है और सैकल प्लेक्सस में सहयोग करता है।

सैकल प्लेक्सस (Sacral plexus)- सैकल प्लेक्सस लम्बोसैकल पकाण्ड की चौथी एवं पाँचवीं लम्बर तन्त्रिका की एन्टीरियर शाखाओं (Antrerior rami) तथा पहली, दूसरी एवं तीसरी सैकल तन्त्रिकाओं की एन्टीरियर शाखाओं से बना होता है। इन तन्त्रिकाओं की अग्रशाखाएँ (Anterior rami) एन्टीरियर एवं पोस्टीरियर डिवीजन्स (विभाजन) में विभाजित हो जाती हैं जो श्रोणितल (Pelvic floor) की पेशियों एवे त्वचा की, कूल्हे के जोड़ (Hip joint) तथा श्रोणि में स्थित अंगों (Pelvic organs) के चारों ओर की पेशियों की आपूर्ति करती है। इनके अतिरिक्त इस प्लेक्सस से अग्र तन्त्रिकाएँ निकलती हैं–

शियाटिक तन्त्रिका (Sciatic nerve)- यह शरीर की सबसे मोटी एवं बड़ी तन्त्रिका होती है, जिसमें चौथी एवं पाँचवीं लम्बर तथा पहली दूसरी एवं तीसरी सैकल तन्त्रिकाओं के तन्तु विद्यमान रहते हैं। यह अपने उद्गम स्थल पर लगभग 2 सेमी. चौड़ी होती है। यह ग्रेटर शियाटिक फोरामेन (रन्ध्र) से होकर निकलती हुई नितम्ब (Buttock) में पहुँचती है, फिर जंघा के पोस्टीरियर भाग से होती हुई नीचे की ओर उतर जाती है और हेमस्ट्रिंग पेशियों (Hamstring muscles) की आपूर्ति करती है तथा जानुपृष्ठीय क्षेत्र (Popliteal region) में यह **टिबियल** (Tibial) एवं **कॉमन पेरोनियल** (Common

peroneal) तन्त्रिकाओं में विभाजित हो जाती है, जो टांग एवं पादइ की समस्त पेशियों की आपूर्ति करती है।

टिबियल तन्त्रिका (Tibial nerve)- पॉपलिटियल फोसा से होते हुए, नीचे उतरकर टांग के पोस्टीरियर भाग की पेशियों (Flexor muscles), पाद के प्लान्टर सतह की पेशियों एवं वहाँ की त्वचाकी आपूर्ति करती है।

कॉमन पेरोनियल तन्त्रिका (Common peroneal nerve)- यह पॉपलिटियल फोसा के लेटरल भाग के साथ–साथ नीचे की ओर तिरछी उतरकर फिब्यूला अस्थि की ग्रीवा को चारों ओर तिरछी उतरकर फिब्यूला अस्थि की ग्रीवा को चारों ओर से लपेटती है। जहाँ यह गहन या डीप पेरोनियल (एन्टीरियर टिबियल) तथा उपरिस्थ या सुपरफीशियल पेरोनियल (मस्क्यूलोक्यूटेनियस) तन्त्रिकाओं में विभाजित हो जाती है। सुपरफीशियल पेरोनियल तन्त्रिका पेरोनियस लाँगस एवं ब्रेविस पेशियों तथा टाँग के सामने की ऊपरी एक तिहाई त्वचा एवं गाँव के डॉर्सल भाग की आपूर्ति करती है। डीप पेरोनियल तन्त्रिका टाँग की प्रसारक (Extensor) पेशियों, पाँव की एक्सटेन्सर डिजिटोरम ब्रेविस तथा अंगूठे एवं दूसरी अंगुली के बीच की त्वचा की आपूर्ति करती है।

इनके अतिरिक्त इस प्लेक्सस की **सुपीरियर ग्लूटियल तन्त्रिका** (Superior gluteal nerve) ग्लूटियस मीडियस, ग्लूटियल मिनिमस (Gluteus minimus) एवं टेन्सर फेशिया लाटा (Tensor fascia lata) पेशियों तथा **इन्फीरियर ग्लूटियल तन्त्रिका** (Inferior gluteal nerve) ग्लूटियस मैक्सिमस (Gluteus maximus) पेशी की आपूर्ति करती है।

पुडेन्डल तन्त्रिका (Pudendal nerve)- पेरीनियल की ऐच्छिक पेशियों विशेषकर यूरेथ्रा एवं एनस की ऐच्छिक संकोचिनी पेशियों (Voluntary sphincters) की आपूर्ति करती है।

कॉक्सिजियल प्लेक्सस (Coccygeal plexus)- यह प्लेक्सस बहुत छोटा प्लेक्सस होता है। यह कॉक्सिजियल तन्त्रिकाओं (Co) तथा चौथी एवं पाँचवी सैक्रल तन्त्रिकाओं की शाखाओं से मिलकर बनता है, जो श्रोणि गुहा (Plevic cavity) के पिछले भाग पर स्थित होता है। इस प्लेक्सस की तन्त्रिकाएँ कॉक्सिस के क्षेत्र की त्वचा, श्रोणि तल (Pelvic floor) की लीवेटर्स एनाई (Levator ani) एवं कॉक्सिजियस पेशियों ताा बाह्य गुदा संकोचिनी (External anal sphincter) की आपूर्ति करती हैं।

अन्तरापर्शुकी या इन्टरकॉस्टल तन्त्रिकाएँ (Intercostal nerves) इन्टकॉस्टल तन्त्रिकाएँ (थॉरैसिक तन्त्रिकाओं की एन्टीरियर शाखाएँ या रेमाई) दूसरी से बारहवीं थॉरैसिक तन्त्रिकाओं (T_2 से T_{12}) तक होती हैं। ये वक्षीय एवं उदरीय भित्तियों की पेशियों एवं त्वचा की आपूर्ति करती हैं। इन्टरवर्टिब्रल रन्ध्रों (Foramina) को छोड़ने के बाद ये तन्त्रिकाएँ पर्शुकाओं (Ribs) के समानान्तर (Parallel) गुजरती हैं, किन्तु इन्हें छोड़कर

निरन्तर आगे बढ़ जाती हैं। दूसरी से छटवीं थॉरैसिक तन्त्रिकाओ की इन्टरकॉस्टलन तन्त्रिकाएँ अन्तरापर्शुकी पेशियों (Intercostal muscles) की तथा लेटरल एवं एन्टीरियर वक्षीय भित्तियों की त्वचा की आपूर्ति करती है। सातवीं से बारहवीं थॉरैसिक तन्त्रिकाओं की तन्त्रिकाएँ अन्तरापर्शुकी पेशियों तथा उदरीय भित्ति एवं इसके ऊपर की त्वचा की आपूर्ति करती हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न –

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. मस्तिष्क की इन्फीरियर सतह में स्थित केन्द्रकों से 12 जोड़ी .... की उत्पत्ति होती है।
2. ....से 31 जोड़ी स्पाइनल तंत्रिकायें निकलती है।
3. ....तंत्रिकायें आवेगों को शरीर के परिसर से स्पाइनल कौर्ड और फिर वहाँ से मस्तिष्क को ले जाती है।
4. प्रेरक तंत्रिकायें ....प्रकार की होती है।
5. प्रेरक तंत्रिकायें आवेगों को ....एवं ....से परिसर या बाहर की ओर ले जाती है।

17.7 – सारांश

प्रिय पाठकों, उपर्युक्त विवेचन से आप समझ गये हैं कि परिसरीय तंत्रिका तंत्र क्या है तथा मानव शरीर के समुचित संचालन में इसकी कया उपयोगिता है। परिसरीय तंत्रिका तंत्र में दो प्रकार की तंत्रिकायें आती है– कपालीय (क्रेनियल) तंत्रिकायें ताा स्पाइनल तंत्रिकायें। इन तंत्रिकाओं से अनेक शाखायें निकलकर सम्पूर्ण शरीर में फैल जाती है। जिससे विभिन्न शारीरिक गतिविधियों का संचालन होता है।

तो पाठको, इस प्रकार स्पष्ट है कि मानव शरीर की देखभाल एवं इसके समुचित संचालन में परिसरीय तंत्रिका तंत्र की महती भूमिका है।

17.8 शब्दावली –

क्रेनियल – मस्तिष्क से संबधित।
स्पाइनल – रीढ़ की हड्डी से संबधित।
स्वायत्त – स्वतंत्र अर्थात अपने आप संचालित होना।
ऐच्छिक – जिस क्रिया में हमारी ईच्छा या नियंत्रण होता है।
ऑलफेक्टरी – नाक से संबधित।
आप्टिक – आँख से संबधित।
फेशियल – चेहरे से संबधित।
सर्वाइकल – गर्दन से संबधित

लम्बर –_कमर वाले हिस्से से संबधित।

17.9 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. कपालीय तंत्रिकाओं
2. स्पाइनल कौर्ड
3. संवेदी या अभिवाही तंत्रिकायें
4. दो
5. मस्तिष्क एवं स्पाइनल कौर्ड

17.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1.गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2.गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
3.शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
4.पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
5.वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1.2.3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली
6.दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा
7.सक्सेना, ओ0पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।
8.Chaurasis's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

17.11 – निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न – 1 परिसरीय तंत्रिका तंत्र के अर्थ को स्पष्ट करते हुये कपालीय तंत्रिकाओं का विस्तार से विवेचन कीजिये।

प्रश्न – 2 स्पाइनल तंत्रिकाओं का वर्णन कीजिये।

इकाई – 18 – परानुकंपी एवं अनुकंपी तंत्रिकायें

इकाई की संरचना

18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3 स्वायत्त तंत्रिका तंत्र

18.4 अनुकंपी स्वायत्त तंत्रिका तंत्र

18.5 परानुकंपी स्वायत्त तंत्रिका तंत्र

18.6 स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के कार्य

18.7 सारांश

18.8 शब्दावली

18.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

18.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

18.11 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 – प्रस्तावना –

प्रिय विद्यार्थियों इससे पूर्ण की ईकाइयों में आपने केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र तथा परिक्षरीय तंत्रिका तंत्र की संरचना एवं कार्यविधि का अध्ययन किया है। प्रस्तुत ईकाई में ध्ययन के इसी क्रम में हमारा विषय है– स्वायप्त तंत्रिका तंत्र केन्द्रीय एवं परिक्षरीय तंत्रिका तंत्र के समान ही स्वायप्त तंत्रिका तंत्र का भी शरीर की क्रियाओं के संचालन एवं नियमन में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है। यह तंत्रिका तंत्र शरीर में स्वतः होने वाली अर्थात् अनैच्छिक क्रियाओं का नियमन करता है। अनुकंपी एवं परानुकंपी के भेद से इस तंत्रिका तंत्र के दो प्रकार माने गये है, जो विभिन्न शारीरिक गतिविधियों का संचालन एवं नियमन करते है। तो पाठकों, आइये चर्चा करते है, स्वायप्त तंत्रिका तंत्र की संरचना एवं क्रियाविधि के बारे में।

18.2 – उद्देश्य –

जिज्ञासु पाठकों, प्रस्तुत ईकाई को पढ़ने के बाद आप–

- तंत्रिका तंत्र क्या है? इस स्पष्ट कर सकेंगे।
- स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के विभिन्न प्रकारों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- अनुकंपी तंत्रिका तंत्र की संरचना एवं कार्यो को स्पष्ट कर सकेंगे।
- परानुकंपी तंत्रिका तंत्र की संरचना एवं क्रियाविधि का वर्णन कर सकेंगे।
- स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के कार्यो का अध्ययन कर सकेंगे।
- स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के महत्व को स्पष्ट करे सकेंगे।

18.3 स्वायत्त या ऑटोनॉमिक तन्त्रिका तन्त्र

स्वायत्त या ऑटोनॉमिक तन्त्रिका तन्त्र, तन्त्रिका तन्त्र का स्वसंचालित या अनैच्छिक भाग होता है, जो शरीर में स्वतः (Automatically) होने वाली क्रियाओं को नियन्त्रित करता है। यह तन्त्र शरीर के समस्त अन्तरांगों (Viscera), ग्रन्थियों एवं रक्त वाहिकाओं को तन्त्रिका आपूर्ति करता है। इसे अन्तरांगी अपवाही या प्रेरक तन्त्र (Visceral efferent or motor system) भी कहा जाता है। इसका प्राथमिक कार्य शरीर का होमियोस्टैसिस बनाए रखने के लिए अन्तरांगी कियाशीलता का नियमन करना है। अन्तरांगों का कार्य सामान्यतः बिना संचेतना के होता रहता है। ऑटोनॉमिक तन्त्रिका तन्त्र का अधिकांश भाग अपवाही (Efferent) होता है, जिसकी अपवाही या प्रेरक तन्त्रिकाएँ मस्तिष्क में स्थित तन्त्रिका कोशिकाओं (न्यूरॉन्स) से उगमित होती हैं तथा मध्य मस्तिष्क (Mind brain) एवं स्पाइनल कॉर्ड के सैक्रल क्षेत्र के बीच विभिन्न स्तरों (Levels) पर निकल आती हैं, जिनसे तन्त्रिका तन्तु (Nerve fibres) निकलते हैं। इनमें से बहुत से उसी तन्त्रिका आवरण (Nerve sheath) में से होकर गुजरते हैं, जिसमें से होकर केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र की परिसरीय तन्त्रिकाएँ (Peripheral nerves) उन अंगों तक पहुँचने के लिए गुजरती हैं जिनकी वे तन्त्रिका आपूर्ति करती है। इनके अतिरिक्त ऑटोनॉमिक तन्त्रिका तन्त्र में बहुत सी गोंग्लिया (Ganglia) तन्त्रिका कोशिकाओं (न्यूरॉन्स) के समूह, होती हैं, जो वर्टिब्रल कॉलम के पास, अन्तरांगों के पास में अथवा उनकी भित्तियों में पायी जाती हैं। मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड से निकलकर गेंग्लिया तक पहुँचने वाले तन्त्रिका तन्तु प्रीगेंग्लियोनिक (Preganglionic) तन्तु कहलाते हैं तथा गोंग्लिया से निकलकर अन्तरांगों की तन्त्रिका आपूर्ति करने वाले तन्तु पोस्टगेंग्लियोनिक (Postanglionic) तन्तु कहलाते हैं।

मस्तिष्क एवं स्पाइनल कॉर्ड में स्थित न्यूरॉन्स से ऑटोनॉमिक तन्त्रिका तन्त्र के केन्द्रीय भाग तथा तन्त्रिका तन्तुओं (Nerve fibres) एवं गेंग्लिया (Ganglia) से परिसरीय भाग बनता है। ऑटोनॉमिक तन्त्रिका तन्त्र को दो भागों में विभाजित किया गया है–

1. अनुकम्पी या सिम्पेथेटिक तन्त्रिका तन्त्र (Sympathetic nervous system or thoracolumbar outflow)

2. परानुकम्पी या पैरासिम्पेथेटिक तन्त्रिका तन्त्र (Parasympathetic nervous system or cran iosacral outflow)

उपरोक्त भागों में संरचनात्मक एवं क्रिया त्मक दोनों तरह के अन्तर होते हैं। ये सामान्यतः एक–दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं, परन्तु शरीर में समस्थिति (Homeostasis) बनाए रखते हैं। सिम्पेथेटिक सक्रियता तनावयुक्त दशाओं (Stressful situations) में प्रभावी होती है तथा पैरासिम्पेथेटिक सक्रियता विश्राम (Rest) के दौरान होती है।

प्रत्येक भाग में इसके परिसरीय पथों (Pathways), जो केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र एवं इफेक्टर अंगों (चिकनी पेशी, हृदपेशी एवं ग्रन्थियों) के बीच होते हैं, में दो अभिवाही (Efferent) न्यूरॉन्स होते हैं। जो निम्नलिखित होते हैं–

1. प्रीगेंग्लियोनिक न्यूरॉन

2. पोस्टगेंग्लियोनिक न्यूरॉन

प्रीगेंग्लियोनिक न्यूरॉन की कोशिका (Cell body) मस्तिष्क या स्पाइनल कॉर्ड में होती हैं। इसके एक्सॉन (Axon) टर्मिनल्स केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के बाहर ऑटोनॉमिक गेंग्लियोन (Autonomic ganglion) में पोस्टगेंग्लियोनिक न्यूरॉन की कोशिका के साथ मिल जाते हैं। पोस्टगेंग्लियोनिक न्यूरॉन इफेक्टर अंग को आवेगों (Impulses) का संचारण करते हैं।

गोंग्लिया (Ganglia)- तन्त्रिका कोशिकाओं के समूह को गेंग्लियोन (Ganglion) कहा जाता है। शरीर में विभिन्न तरह की गेंग्लिया होती हैं। उदाहरण के लिये, पश्चमूल की गेंग्लियोन (Posterior root ganglion) में प्राथमिक संवेदी न्यूरॉन्स की कोशिकाएँ विद्यमान होती हैं किन्तु गेंग्लियोन के अन्दर कैसा भी तन्तु मिलन (Synapses) नहीं होता है। जबकि ऑटोनॉमिक तन्त्रिका तन्त्र की गेंग्लिया में अधिकांश तन्तु जो गेंग्लिया में प्रवेश करते हैं वे वहाँ स्थित पोस्टगेंग्लियोनिक न्यूरॉन्स की एक या एक से अधिक कोशिकाओं के साथ सिनप्सेस बनाते हैं। दूसरा अन्तर यह है कि पश्च मूल गेंग्लियोन में संवेदी न्यूरॉन कोशिकाएँ विद्यमान होती हैं, जबकि ऑटोनॉमिक गेंग्लिया में प्रेरक न्यूरॉन कोशिकाएँ होती हैं।

सिम्पेथेटिक गेंग्लिया (Sympathetic ganglia)- ऑटोनॉमिक तन्त्रिका तन्त्र के सिम्पेथेटिक भाग में गेंग्लिया के निम्न दो वर्ग होते हैं–

1. वर्टिब्रल (Vertebral)
2. प्रीएओर्टिक (Preaortic)

वर्टिब्रल गेंग्लिया, वर्टिब्रल कॉलम के साथ–साथ दोनों ओर स्थित होते हैं। ये गेंग्लिया तन्त्रिका ऊतक के तन्तुओं द्वारा एक–दूसरे से माला की तरह जुड़े रहते हैं, इसीलिए इसे 'वर्टिब्रल या सिम्पेथेटिक श्रृंखला' भी कहते हैं। गेंग्लिया की यह सिम्पेथेटिक श्रृखला कपाल के नीचे से प्रारम्भ होकर कॉक्सिक्स के अन्त तक फैली होती है। थॉरैसिक एवं लम्बर क्षेत्रों में प्रायः इस श्रृखला के गेंग्लियोन प्रत्येक स्पाइनल तन्त्रिका के साथ सम्बद्ध रहते हैं। लेकिन सर्वाइकन एवं सेक्रल क्षेत्रों में केवल दो या तीन गेंग्लिया होती हैं।

प्रीएओर्टिक गेंग्लिया महाधमनी (Aorta) एवं इसकी मुख्य शाखाओं के निकट गुच्छों में स्थित होती हैं जिनका नामकरण धमनियों की शाखाओं के अनुसार होता है, इनमें से ये मुख्य हैं– सीलियक (Coeliac), सुपीरियर मीजेन्ट्रिक एवं इन्फीरियर मीजेन्ट्रिक गेंग्लिया। वर्टिब्रल गेंग्लिया के समान प्रीएआर्टिक गेंग्लिया में केवल पोस्टगेंग्लियोनिक सिम्पेथेटिक तन्त्रिका कोशिकाओं का समावेश होता है।

पैरासिम्पेथेटिक गेंग्लिया (Parasympathetic ganglia)- ऑटोनॉमिक तन्त्रिका तन्त्र के पैरासिम्पेथेटिक भाग में गेंग्लियाओं के दो वर्ग सम्बद्ध रहते हैं। पहले वर्ग में सिर में चार छोटी–छोओी गेंग्लिया हीेत हैं। जिनमें पोस्टगेंग्लियोनिक कोशिकाएँ आक्यूलोमोटर (Oculomotor), फेशियल (Facial) एवं ग्लॉसोफरेंजियल (Glossopharyngeal) कपालीय तन्त्रिकाओं के साथ सम्बद्ध रहती है। दूसरे वर्ग की गेंग्लिया उन विशिष्ट अंगों के समीप या उनमें स्थित रहते हैं, जो उनकी आपूर्ति करती हैं उदाहरण के लिए पोस्टगेंग्लियोनिक पैरीासिम्पेथेटिक न्यूरॉन्स जो आंतों की तन्त्रिका आपूर्ति करती हैं, ये पेशी की परतों अथवा आंतों की भित्ति की सबम्यूकोजल परत के बीच गेंग्लिया में स्थित रहते हैं।

ऑटोनॉमिक प्लेक्ससेस (Autonomic plexuses)- कुछ विशिष्ट स्थानों पर पोस्टगेंग्लियोनिक तन्त्रिका कोशिकाओं की गेंग्लिया से बेलनाकार तन्त्रिका तन्तु निकले होते हैं तथा शाखामयी जालिका में व्ययस्थित रहते हैं। जिन्हें ऑटोनॉमिक तन्त्रिका म्पेक्ससेस कहा जाता है। ये निम्नलिखित होते हैं–

कार्डियक प्लेक्सस (Cardiac plexus)- यह हृदय के आधार (Base) से निकलने वाली वृहत रक्त वाहिकाओं में तथा बायें एट्रियम की सतह पर स्थित होता है। इसके तन्तु हृदपेशी की तन्त्रिका आपूर्ति करते हैं। इस प्लेक्सस की शाखाएँ एल्मोनरी धमनियों के साथ मिलकर **पल्मोनरी प्लेक्सस** (Pumonary plexus) एं कॉरोनरी धमनियों के साथ मिलकर **कौरोनरी प्लेक्सस** (Coronary plexus) बनाती हैं। अधिकांश पल्मोनरी प्लेक्सस प्रत्येक फेफड़े के पिछले भाग में स्थित होते हैं। सिम्पेथेटिक तन्त्रिका तन्तु श्वास नलिका या ब्रोन्काई (ट्रेकिया से फेफड़ों तक) को विस्फारित (Dilate) करते हैं तथा मेरासिम्पेथेटिक तन्तु उन्हें संकुचित करते हैं।

सीलियक प्लेक्सस (Celiac plexus)- इसे सोलर प्लेक्सस (Solar plexus) भी कहा जाता है।यह केन्द्रीय तन्त्रिका तन्तु के बाहर तन्त्रिका कोशिकाओं का सबसे बड़ा पिण्ड होता है। यह आमाशय के पीछे सीलियक धमनी एवं इसकी शाखाओं के चारों ओर महाधनी (Aorta) पर स्थित होता है। डायाफ्राम के एकदम अन्दर की ओर स्टर्नम के नीचे सोलर

फ्लेक्सस पर तीक्ष्म मुक्का (Sharp blow) पड़ने पर हृदयगति धीमी पड़कर तथा मसितष्क की रक्त आपूर्ति घटकर अचेतना (Unconsciousness) उत्पन्न हो सकती है।

हाइपोगैस्ट्रिक प्लेक्सस (Hypogastric plexus)- यह सीलियक प्लेक्सस को नीचे पेल्विक प्लेक्सस से जोड़ता है। यह श्रोणि क्षेत्र (Pelvic region) के अंगों एवं रक्तवाहिकाओं की तन्त्रिका आपूर्ति करता है।

एन्टेरिक प्लेक्सस (Enteric plexus)- इस प्लेक्सस में सिम्पेथेटिक एवं पेरासिम्पेथेटिक दोनों तरह के तन्तु होते हैं तथा ये पाचन तन्त्र की लोंगिट्यूडिनल एवं सरकुलर पेशियों के बीच स्थित होते हैं। ये क्रमाकुंचन (Peristalsis) को नियमित करने में सहायक होते हैं।

कैरोटिड प्लेक्सस (Carotid plexus)- ग्रीवा क्षेत्र में सर्वाइकल सिम्पेथेटिक गेंग्लिया (मुख्यतः सुपरीरियर सर्वाइकल सिम्पेथेटिक गेंग्लियोन) से तन्तु निकलकर कैरोटिड धमनियों एवं इनकी शाखाओं के चारों ओर जालिका बनाते हैं। ये सिम्पेथेटिक तन्तुओं को पथ प्रदान करते हैं, जो चेहरे एवं सिर में की संरचनाओं की तन्त्रिका आपूर्ति करते हैं।

कुछ विशिष्ट तन्त्रिकाएँ जो वक्ष, उदर एवं श्रोणि (Pelvis) के अन्तरांगों की तन्त्रिका आपूर्ति करती हैं, उन्हें स्प्लेन्कनिक (Splanchnic) या अन्तरांगी (Visceral) तन्त्रिकाएँ कहते हैं। ये तन्त्रिकाएँ सिम्पेथेटिक अथवा पैरासिम्पेथेटिक तन्त्रिका तन्त्र के प्रीगेंग्लियोनिक या पोस्टगेंग्लियोनिक तन्तुओं की बनी होती हैं। थॉरैसिस स्प्लेन्कानिक तन्त्रिकाएँ हृदय एवं फेफड़ों की तथा पेल्विक स्प्लेन्कानिक तन्त्रिकाएँ श्रोणिगत अन्तरांगों (Pelvec viscera) की आपूर्ति करती हैं।

18.4 सिम्पेथेटिक (अनुकम्पी) ऑटोनॉमिक तन्त्रिका तन्त्र

इस तन्त्र को 'वक्ष–कोटी–भाग' (Thoracolumbar outflow) भी कहा जाता है, इसमें अनुकम्पी तन्त्रिकाओं (Sympathetic nerves) का समावेश होता है, जो कि स्पाइनल कॉर्ड के थॅरैसिक एवं लम्बर भाग के भूरे द्रव्य के लेटरल हॉर्न में स्थित कोशिकाओं से निकलकर वर्टिब्रल कॉलम के सामने दोनों ओ स्थित होती हैं। दोनों ओर वर्टिब्रल कॉलम से बाहर आकर अनुकम्पी तन्त्रिकाओं के तन्तु 'सिम्पेथेटिक श्रृंखला' की गेंग्लिया में प्रवेश करते हैं, जिन्हें प्रीगेंग्लियोनिक तन्तु कहा जाता है। इन गेंग्लिया से फिर तन्त्रिका तन्तु निकलकर विभिन्न अंगों में पहुँचाते हैं, जिन्हें पोस्टगेंग्लियोनिक तन्तु कहा जाता है।

सिम्पेथेटिक श्रृंखला में विभिन्न क्षेत्र के अनुसार इसके सर्वाइकल, थॉरैसिक, लम्बर एवं पेल्विक चार–भाग होते हैं, जिनमें गेग्लिया जोड़े के रूप में व्यवस्थित रहती हैं। सर्वाइकल भाग में तीन जोड़ी सर्वाइकल गेंग्लिया (Cervical ganglia), थॉरैसिक भाग में ग्यारह जोड़ी थॉरैसिक गेंग्लिया (Thoracic ganglia), लम्बर भाग में चार–जोड़ी लम्बर गेंग्लिया (Lumbar ganglia) एवं पेल्विक भाग में चार जोड़ी सैकल गेंग्लिया (Sacral ganglia) होती हैं। इस प्रकार कुल 22 जोड़ी गेंग्लिया सिम्पेथेटिक श्रृंखल में व्यवस्थित रहती हैं, जो केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र से स्पाइनल कॉर्ड के माध्यम से जुड़ी रहती हैं। अन्य

सिम्पेथेटिक गेंग्लिया अपने तन्तुओं द्वारा इसी सिम्पेथेटिक श्रृंखला से जुड़ी रहती हैं और सिम्पेथेटिक प्लेक्सस बनाती हैं।

शरीर के विभिन्न अंगों पर सिम्पेथेटिक (अनुकम्पी) प्रभाव (Sympathetic effects on various parts of the body)- सिम्पेथेटिक तन्त्रिकाओं द्वारा शरीर के अनेक अंगों की क्रियाओं का नियन्त्रण एवं नियमन होता है। क्यूटेनियस तन्त्रिकाओं के साथ मिलकर ये त्वचा की अनैच्छिक पेशियों से क्रिया कराती हैं। त्वचा स्थित रक्तवाहिकाएँ इनके उद्दीपन से ही संकुतिच होती हैं और हृदय, मस्तिष्क तथा पेशियों को अधिक रक्त मिलता है, परिणास्वरूप रक्तदाब बढ़ जाता है, शरीर की पेशियाँ तन जाती हैं, मुख लाल हो जाता है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं और नथुने फूल जाते हैं आदि। यह सब सिम्पेथेटिक या अनुकम्पी तन्त्रिका की सक्रियता के फलस्वरूप होता है।

18.5 पैरासिम्पेथेटिक (परानुकम्पी) ऑटोनॉमिक तन्त्रिका तन्त्र

इस तन्त्र को 'कपालत्रिक विभाग' (Craniosacral division) भी कहते हैं। इसमें परानुकम्पी कोशिकाओं, तन्त्रिका तन्तुओं एवं गेंग्लियाओं का समावेश होता है। परानुक्मपी कोशिकाएँ मस्तिष्क स्तम्भ (Brain stem) तथा स्पाइनल कॉर्ड के सैक्रल भाग में स्थित होती हैं। कपालीय भाग (Cranial portion) सिर, ग्रीवा, वक्ष एवं अधिकांश उदरीय अन्तरांगों की परानुकम्पी तन्त्रिका आपूर्ति करता है तथा सैक्रल भाग निम्नोदर (Lower abdomen) एवं श्रोणि के अन्तरांगों की आपूर्ति करता है।

पैरासिम्पेथेटिक डिवीजन के कपालीय भाग से निकलने वाले प्रीगेंग्लियोनिक तन्तु तीसरी (III), सातवीं (VII), नौंवी (IX), एवं दसवीं (X) कपालीय तन्त्रिकाओं के भाग होते हैं। ये कपालीय तन्त्रिकाएँ मध्य मस्तिष्क, पोन्स एवं मेड्यूला में स्थि केन्द्रकों से उद्गमित होती हैं और मस्तिष्क से बाहर शरीर के विभिन्न अंगों में पहुँचकर इनके तन्तुओं का अन्त हो जाता है। सैक्रल भाग से निकलने वाले प्रीगेंग्लियोनिक तन्तु स्पाइनल कॉर्ड को दूसरी, तीसरी एवं चौथी स्पाइनल तन्त्रिका के अग्रमूलों (Anterior roots) के रूप में छोड़ते हैं, वे अलग तन्त्रिका के रूप में नहीं रहते।मध्य मस्तिष्क में स्थित कोशिकाओ से आने वाले प्रीगेंग्लियोनिक तन्तु तीसरी (III) कपालीय या ओक्यूलोमोटर तन्त्रिका के केन्द्र से निकलते हैं और सिलियरी गेंग्लियोन में मिलते हैं। पोस्ट गेंग्लियोनिक एक्सॉन टर्मिनल्स पुतली (Pupil) एवं सिलियरी पेशियों की आपूर्ति (Innervation) करती हैं, जिससे नेत्र की पुतली संकुचित और प्रसारित होती है। फेशियल तन्त्रिका (VII) जो पोन्स में स्थित होती है, के परानुकम्पी तन्तु अवअधोहनुज (Submandibular), जिह्वा के नीचे स्थित (Sublingual) लार ग्रन्थियों, अश्रुप्रवाही ग्रन्थियों (Lacrimal glands) जो आँसू स्रावित करती हैं तथा अन्य ग्रन्थियों, जो नासिका एवं मुखीय गुहाओ में स्थित रहती हैं, की तन्त्रिका आपूर्ति करती हैं। मेड्यूला में स्थित ग्लॉसोफैरेंजियल तन्त्रिका (IX) के परानुकम्पी तन्तु पेरोटिड ग्रन्थियाँ, जो लार स्रावित करती हैं कि तन्त्रिका आपूर्ति करते हैं। मेड्यूला ऑब्लांगेंटा के डॉर्सल वेगस न्यूक्लियस से उगमित होने वाली वेगस तन्त्रिका (X) के

परानुकम्पी तन्तु हृदय, फेफड़े, रक्त वाहिकाएँ, पित्ताशय, यकृत, अग्न्याशय, गुर्दे, ग्रासनली, आमाशय, छोटी आँत एवं बड़ी आँत के पहले आधे भाग की तन्त्रिका आपूर्ति करते हैं।

स्पाइनल कॉर्ड के सैक्रल भाग से निकलने वाले परानुकम्पी तन्तु तीसरी एवं चौथी सैक्रल स्पाइनल तन्त्रिकाओं की कोशिकाओं से निकलते हैं, जो निचली बड़ी आँत, गर्भाशय, जननांगों, मूत्राशय एवं यूरेथ्रा की संकोचिनी पेशियों तथा गुदा की आन्तरिक संकोचिनी (Sphincter) की तन्त्रिका आपूर्ति करते हैं।

18.6 स्वायत्त (ऑटोनॉमिक) तन्त्रिका तन्त्र के कार्य

शरीर के अधिकांश आन्तरिक अंगों में ऑटोनॉमिक तन्त्रिका तन्त्र के सिम्पेथेटिक एवं पेरासिम्पेथेटिक दोनों डिवीजनों की तन्त्रिकाओं द्वारा आपूर्ति होती है, जिनकी एक दूसरे के विपरीत क्रियाएँ होती हैं। सिम्पेथेटिक तन्त्रिकाओं के उद्दीपन से किसी अंग विशेष की कोई क्रिया त्वरित (Accelerale) होती है, तो पैरासिम्पेथेटिक तन्त्रिकाओं के उद्दीपन से उसकी गतिविधि रुकती (Check) है। इस प्रकार इन दो परस्पर विरोधी प्रभावों के परिणामस्वरूप शरीर में समस्थिति (Homeostasis) बनी रहती है और अन्तरांग सुचारू रूप से अपना कार्य करते रहते हैं। उदाहरण के तौर पर सिम्पेथेटिक तन्त्रिका उद्दीपर से हृदय गति तीव्र हो जाती है तथा पैरासिम्पेथेटिक तन्त्रिका उद्दीपन से हृदय गति मन्द हो जाती है और इस प्रकार दोनो ंके परस्पर विरोधी प्रभाव से हृदय गति सामान्य बनी रहती है। सिम्पेथेटिक तन्त्रिका उद्दीपन से रक्तवाहिकाएँ संकुचित हो जाती हैं और रक्त दाब (Blood pressure) बढ़ जाता है तथा पैरासिम्पेथेटिक तन्त्रिका उद्दीपन से रक्त वाहिकाएँ विस्फारित हो जाती है और रक्तदाब कम हो जाता है, परिणामस्वरूप रक्त दाब सामान्य बना रहता है। सिम्पेथेटिक तन्त्रिका उद्दीपन से शरीर से ऊष्मा (Heat) की हानि कम होती है, जबकि पेरासिम्पेथेटिक तन्त्रिका उद्दीपन से शरीर से ऊष्मा की हानि बढ़ जाती है और इस प्रकार दोनों तन्त्रिकाओं के परस्पर विरोधी प्रभाव से शरीर का तापमान सामान्य बना रहता है। ऐसे अनेकों प्रभाव हैं जिनका वर्णन पूर्व में कर चुके हैं।

प्रतिवर्ती क्रिया (Reflex action)- मस्तिष्क एवं शरीर के अधिकांश भाग को जोड़ने के अतिरिक्त स्पाइनल कॉर्ड प्रतिवर्त क्रिया में समन्वय स्थापित करती है। बाह्य उद्दीपन (स्पर्श, दर्द, ताप आदि) के कारण अपने आप एकाएक हो जाने वाल अनुक्रिया (Response) जैसे किसी गर्म वस्तु से छू जाने पर तन्तु ीह अपने हाथ को खींच लेना, आँखों के सामने कीड़ा आ जाने से पलक तुरन्त बन्द हो जाना, पैर में काँटा चुभते ही पैर को पीछे को खींच लेना, पटेला (Patella) लिगामेन्ट पर हलकी थपकी देने से क्वाड्रिसेप्स एक्सटेन्सर पेशी का संकुचन होना और नी–जर्क (Knee jerk) होना आदि **प्रतिवर्ती कियाएँ** कहलाती हैं। कंकालीय पेशियों में होने वाले प्रतिर्व **कायिक या सोमेटिक प्रतिवर्त** (Somatic reflex) कहलाते हैं। चिकनी पेशी, हृदपेशी अथवा ग्रन्थियों (Glands) में होने वाले प्रतिवर्त **अन्तरांगी या विरल प्रतिवर्त** (Visceral reflex) कहलाते हैं। दोनों तरह की प्रतिवर्त कियाएँ शरीर में समस्थिति (Homeostasis) बनाए रखने के लिए शरीर को आन्तरिक एवं बाह्य परिवर्तनों के प्रति त्वरित (Quick) अनुक्रिया कराती है।

स्पाइनल प्रतिवर्ती कियाए (Spinal reflexes)- ये क्रियाएँ केवल स्पाइनल कॉर्ड में स्थित न्यूरॉन्स द्वारा सम्पन्न होती हैं। मतिष्क से इनका तुरन्त कोई सम्बन्ध नहीं होता, बाद में मस्तिष्क को इन क्रियाओं का ज्ञान होता है। जैसे पैर में काँटा चुभते ही पैर पीछे को खिंच जाता है, अंगुली में पिन चुभते ही बचाव के लिए अंगुली पीछे की ओर खिंच जाती है आदि। ऐसा प्रतिवर्त निम्न क्रम में होता है–

सर्वप्रथम ग्राह्य संवेदी अंग जैसे त्वचा पर उद्दीपन (Stimulus) ग्रहण किया जाता है जिससे तन्त्रिका आवेग (Nerve impuslse) उत्पन्न होता है, जो संवेदी (अभिवाही) तन्त्रिका तन्तु के द्वारा पोस्टीरियर रूट गेंग्लियोन में पहुँचता है। जहाँ से गेंग्लिया के तन्तु इसे (आवेग) स्पाइनल कॉर्ड के पोस्टीरियर हॉर्न में पहुँचाते हैं। यहाँ से आवेग सीधे अथवा इन्टरन्यूरोन्स (Interneurons) के द्वारा स्पाइनल कॉर्ड के एन्टीरियर हॉर्न में पहुँचते हैं। जहाँ प्रेरक न्यूरॉन (Motor neuron) आवेग को प्राप्त करता है तथा उसे प्रेरक अंग, जैसे किसी पेशी की इफेक्टर कोशिकाओं (Effector cells) को संचारित कर देता है, जिससे प्रतिवर्ती क्रिया के परिणामस्वरूप ऐच्छिक पेशी संकुचन (Contraction) होता है।

नी–जर्क (Knee jerk) के मामले में, पटेला टेन्डन (Patellar tendon) पर हल्की–सी थपकी देने से क्वाड्रिसेप्स एक्सटेन्सर टेन्डन एवं पेशी और पेशी में स्थित कुछ एक न्यूरोमस्कूलर स्पिन्डल्स (Neuromuscular spindles) अचानक तन जाते हैं। तने हुए (Stretched) स्पिन्डल्स, स्पिन्डल्स के भीतर स्थित अभिवाही (Afferent) तन्तुओं के संवेदनशील रिसेप्टर्स (Receptors) को उत्तेजित करते हैं और तन्त्रिका आवेग उत्पन्न करते हैं। अपवाही तन्तु इन तन्त्रिका आवेगों को स्पाइनल कॉर्ड के दूसरे या तीसरे लम्बर वर्टिब्रा के क्षेत्र में ले जाते हैं। यहाँ अभिवाही न्यूरोन्स (Afferent neurons) निचले प्रेरक न्यूरॉन्स के साथ मिलते हैं। निचले प्रेरक न्यूरॉन्स के एक्सॉन्स (Axons) त्वरित गति से आवेगों को क्वाड्रिसेप्स फीमोरिस पेशी की प्रेरक अन्त प्लेटों (Motor end plates) में ले जाते हैं, जिससे इसमें (पेशी) संकुचन होता है। परिणास्वरूप निचली टाँग आगे की ओर गति (Extend) करती है। उपर्युक्त पूरे चक्र को **पतिवर्ती चाप** (Reflex arc) कहा जाता है।

अन्तरांगी या विसरल प्रतिवर्ती क्रिया (Visceral reflex action)- यह ऐसी क्रिया है, जिस पर मनुष्य का नियन्त्रण नहीं रहता। खाँसना, छींकना, उल्टियाँ होना आदि इसके उदाहरण हैं। कुछ ऐसी भी प्रतिवर्ती क्रियाएँ होती हैं, जिनका मनुष्य को ज्ञान रहता है, जैसे भोजन को मुँह में रखते ही लार निकलने लगना।

ऐसी क्रियाओं के सपांदन में निम्नलिखित रचनाओं की आवश्यकता होती है, जिससे एक विरल प्रतिवर्ति चाप (Visceral reflex arc) बनता है।

1. रिसेप्टर (Receptor)

2. अभिवाही (Afferent) न्यूरॉन, जो संवेदी आवेग को केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र को पहुँचाता है।
3. इन्टरन्यूरॉन्स (संयोजी तन्त्रिका कोशिकाएँ)– केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के भूरे द्रव्य (Gray matter) के भीतर स्थित प्रीगेंग्लियोनिक न्यूरॉन्स से जुड़ते हैं।
4. दो अपवाही (Efferent) न्यूरॉन्स
5. विसरल इफेक्टर (Visceral effector)

स्पाइनल कॉर्ड में होने वाले ऑटोनॉमिक विसरल रिफलेक्स आर्क (Autonimic visceral reflex arcs) के उदाहरण हैं– पूर्ण रूप से भरे मूत्राशय में संकुचन होना, आँतों में पेशीय संकुचन होना तथा रक्तवाहिकाओं का संकीर्णन अथवा विस्फारण होना। मेड्यूला ऑब्लांगेटा में होने वाले रिफलेक्स आर्क के उदाहरण हैं– ब्लड प्रेशर, हृदय गति, श्वसन क्रिया, पाचन आदि का नियमन। उपर्युक्त समस्त क्रियाएँ हमारे ज्ञान अथवा चेतना नियन्त्रण के बिना होती हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न–

रिक्त स्थानो की पूर्ति कीजिए–

(i) स्वायप्त तंत्रिका तंत्र –––––– क्रियाओं को नियंत्रित करता है।

(ii) मस्तिष्क एवं स्पाइनल कोई में स्थित न्यूरॉन्स से ऑटोनॉयिक तंत्रिका तंत्र का ––––– भाग बनता है।

(iii) स्वायप्त तंत्रिका तंत्र को ––––– भागों में विभाजित किया गया है।

(iv) अनुकंपी तंत्रिका तंत्र को ––––– भी कहा जाता है।

(v) ––––– एवं –––––से स्पायप्त तंत्रिका तंत्र का परिक्षरीय भाग बनता है।

18.7 सारांश

प्रिय पाठकों, उपर्युक्त विवेचन से आप जान गये है कि स्वायप्त तंत्रिका तंत्र क्या है? इसकी संरचना एवं कार्यविधि क्या है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि स्वायप्त तंत्रिका तंत्र वह है, जो शरीर की अनैच्छिक क्रियाओं पर नियंत्रण रखता है। इस तंत्रिका तंत्र के दो भाग है– अनुकंपी एवं परानुकंपी तंत्रिका तंत्र यद्यपि इनकी क्रियाये एक दूसरे के विपरीत होती है। तथापि ये दोनों तंत्र एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते है। सिम्पेथेटिक या अनुकंपी तंत्रिका तंत्र के कारण शारीरिक अंगों की क्रियाविधि तेज हो जाती है। जैसे – रक्त चाप का बढ़ना ह्रदय की गति का बढ़ जाना, श्वसन की गति का बढ़ जाना इत्यादि । इसके विपरीत पैरासिम्पेथेटिक या परानुकंपी तंत्रिका तंत्र के कारण अंगों

की क्रियाविधि कम हो जाती है। इस प्रकार पाठकों, इन दो परस्पर विरोधी प्रभावों के परिणामस्वरूप शरीर में समस्थिति बनी रहती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शारीरिक क्रियाओं के सुचारू संचालन में स्वायप्त तंत्रिका तंत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

18.8 – शब्दावली

स्वायप्त – स्वतः होने वाली
स्वायप्त तंत्रिका तंत्र – शरीर में स्वतः होने वाली अर्थात् अनैच्छिक क्रियाओं पर नियंत्रण रखने वाला तंत्र
न्यूरॉन – तंत्रिका तंत्र की सबसे छोटी ईकाई ।
भित्ति – दीवार
उद्दीपन – उत्तेजित होना / सक्रिय होना
मन्द – धीमी / कम
स्पाइनल कॉर्ड – मेरूदण्ड या मेरूरज्जु

18.9 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(i) स्वतः होने वाली या अनैच्छिक (ii) केन्द्रीय (iii) दो (iv) वक्ष – कोटी–भाग (v) तंत्रिका तन्त्रुओं एवं गेंग्लिया

18.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2.गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
3.शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
4.पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
5.वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1.2.3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली
6.दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा
7.सक्सेना, ओ0पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।
8.Chaurasis's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

18.11 – निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. स्वायत्त तंत्रिका तंत्र से आप क्या समझते हैं? इसके प्रमुख कार्यों पर प्रकाश डालिये।

प्रश्न 2. स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के प्रकार बतलाते हुए इनकी संरचना एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।

इकाई – 19– ज्ञानेन्द्रियों की संरचना एवं कार्य

इकाई की संरचना

19.1 प्रस्तावना

19.2 उद्देश्य

19.3 ज्ञानेन्द्रियाँ

19.4 स्पर्शेन्द्रिय या त्वचा : संरचना तथा कार्यविधि

19.5 स्वादेन्द्रिय या जीभ : संरचना तथा कार्य

19.6 तंत्रिका मूल

17.7 सारांश

17.8 शब्दावली

17.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

17.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

17.11 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 – प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व की इकाई में आपने तंत्रिका तंत्र के बारे में विस्तृत अध्ययन किया है। केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र, परिसरीय तंत्रिका तंत्र तथा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र की संरचना एवं क्रिया विधि से आप भलीभॉति परिचित हो चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय है– ज्ञानेन्द्रियों की संरचना एवं कार्यो का अध्ययन करना।

पाठकों, आपकी जानकारी के लिये बता दें कि हमें किसी भी बाहरी घटना, पदार्थ, व्यक्ति इत्यादि की जानकारी संवेदनाओं के माध्यम से होती है और इन संवेदनाओं के ग्रहण करने में हमारी ज्ञानेन्द्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, जो पाँच है– स्पशेन्द्रिय (त्वचा), स्वादेन्द्रिय (जीभ), घ्राणेन्द्रिय (नाक), श्रवणन्द्रिय (कान) तथा दृश्येन्द्रिय (आँख)। इन ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ही हमें वाह्य जगत का ज्ञान होता है। इसीलिए इन्हें ''ज्ञानेन्द्रियाँ'' कहा जाता है। पाठकों, अब आपके मन में अनेक प्रश्न उठ रहे होंगे कि –

- ये ज्ञानेन्द्रियाँ किस प्रकार से कार्य करती है ?
- इन ज्ञानेन्द्रियों की संरचना किस प्रकार की होती है।
- इनके माध्यम से हम किस प्रकार बाहरी चीजों की जानकारी प्राप्त करते हैं। इत्यादि।

तो आइये इन प्रश्नों का समाधान पाने के लिये हम चर्चा करें, ज्ञानेन्द्रियों की संरचना एवं कार्यो के बारे मे।

19.2 – उद्देश्य

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

- ➢ ज्ञानेन्द्रियाँ क्या है? इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- ➢ ज्ञानेन्द्रियाँ कितने प्रकार की होती हैं, इसका वर्णन कर सकेंगे।
- ➢ ज्ञानेन्द्रियों की संरचना को स्पष्ट कर सकेंगे।
- ➢ ज्ञानेन्द्रियों की क्रियाविधि का अध्ययन कर सकेंगे।

19.3 ज्ञानेन्द्रिया (Sense organs)-

बाह्य जगत के ज्ञान की प्राप्ति विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं (Sensations) के द्वारा ही संभव होती है। संवेदना का अनुभव तभी संभव है जब उससे संबन्धित संवेदी तन्त्रिकाओं (Sensory nerves) को उचित उद्दीपन (Stimulus) प्राप्त हो सके। उद्दीपनों के उत्पन्न हो जाने पर और उनके मस्तिष्क या स्पाइनल कॉर्ड में संचारित होने के बाद उनका विश्लेषण केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के द्वारा होता है और हम उस विशेष संवेदना का अनुभव मस्तिष्क के द्वारा अनुवादित होने पर ही करते हैं। शरीर ध्वनि, प्रकाश, गंध, दाब आदि के सांवेदनिक अंगों (Special sense organs) पर निर्भर करती है, जो शरीर के विभिन्न भागों में स्थित होते हैं।

विशिष्ट सांवेदनिक अंगों से तन्त्रिका तन्तुओं का सम्बन्ध रहता है। तन्त्रिका तन्तुओं का विशिष्ट सांवेदनिक अंगों में अन्त (Termination) होने से पहले ये अपने न्यूरोलीमा (Neurolemma) तथा मायलिन आवरण (Myelin sheath) का त्याग कर देते हैं। प्रत्येक संवेदी तन्त्रिका का अन्तिम भाग कुछ विशेष प्रकार का बना होता है, जिसे अन्तांग (End organ) कहते हैं और ये अन्तांग ही संवेदन (Sense) के विशेष अंग होते हैं। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय से सम्बन्धित अनेक उपांग होते हैं, जो उद्दीपन को अन्तांग तक संचारित (Transmit) करते हैं। परन्तु, वास्तविक उद्दीपन अन्तांग में ही होता है और वहाँ से यह मस्तिष्क में पहुँचता है, जहाँ इसका विश्लेषण होता है और विशिष्ट संज्ञा (Special sense) का ज्ञान होता है।

मानव शरीर में निम्न पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (Sense organs) होती हैं, जिनके द्वारा बाह्य जगत का ज्ञान होता है। ये हैं–

1. **स्पर्शेनिद्रय या त्वचा (Skin)-** इससे स्पर्श, दाब, पीड़ा, वेदना, ताप (ceat) एवं शीत (cold) का ज्ञान होता है।
2. **स्वादेन्द्रिय या जीभ (Tongue)-** इससे किसी वस्तु को चखने से उसके स्वाद का ज्ञान होता है।
3. **घ्राणेन्द्रिय या नाक (Nose)-** यह किसी वस्तु की गंध का ज्ञान कराती है।
4. **श्रवणेन्द्रियाँ या कान (Ears)-** कान हमें विभिन्न प्रकार की ध्वनियों का ज्ञान कराते हैं।
5. **द्रश्येन्द्रियाँ या आँख (Eyes)-** इनके द्वारा संसार की वस्तुओं को देखा जाता है।

19.4 स्पर्शेन्द्रिय या त्वचा (Skin) संरचना तथा कार्यविधि -

स्पर्शेन्द्रिय (Sense of touch) का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है, जबकि शरीर की अन्य समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ स्थानीय होती हैं, तथा एक निश्चित क्षेत्र में कार्य करती हैं। स्पर्श के अतिरिक्त ताप, शीत, दाब, पीड़ा, वेदना, हल्का, भारी, सूखा, चिकना आदि संवेदनाओं का ज्ञान इसी के द्वारा होता है। समस्त शरीर की त्वचा में तन्त्रिका तन्तुओं के अंन्तांगों (Nerve endings) का एक जाल–सा फैला रहता है, जो भिन्न–भिन्न संवेदनाओं को ग्रहण कर मस्तिष्क में पहुँचाते हैं, इन्हें रिसेप्टर्स (Receptors) कहा जाता है।

किसी एक संवेदना के रिसेप्टर्स एक समान होते हैं तथा विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं के रिसेप्टर्स एक–दूसरे से भिन्न होते हैं और इनकी रचना में भी भिन्नता होती

है। त्वचा में विद्यमान विभन्नि प्रकार के रिसेप्टर्स एक–दूसरे से पर्याप्त दूरी पर स्थित रहते हैं। उचित प्रकार के उद्दीपक को त्वचा पर लगाकर विशिष्ट वर्ग के रिसेप्टर की स्थिति (Location) को ज्ञात किया जाता है। उस बिन्दु को उस विशाष संवेदना का बिन्दु (Spot) कहा जाता है। त्वचा के जिन बिन्दुओं पर कुछ कड़े बाल (hair) के द्वारा स्पर्श कराने से स्पर्श की संवेदना (Sense of touch) का ज्ञान होता है, उन क्षेत्रों को 'ताप बिन्दु (Warm spots), 'शीत बिन्दु' (Cold spots), पीड़ा बिन्दु (Pain spots) कहा जाता है। किसी विशष संवेदना के बिन्दु, त्वचा के किसी भाग पर अधिक और कहीं कम रहते हैं।

यदि किसी कड़ी वस्तु जैसे पेन्सिल की नोंक से त्वचा पर दबाव डालते हुए स्पर्श कराया जाए तो वह दाब (Pressure) की संवेदना होती है, जिसके रिसेप्टर्स विशेष वर्ग के होते हैं। इस प्रकार के रिसेप्टर्स त्वचा के अतिरिक्त शरीर के अन्य भाग, जैसे अस्थिआवरण (Periosteum), टेन्डन्स के नीचे, आन्त्रयोजनी (Mesentery) ग्रन्थियों में भी पाए जाते हैं। इस संवेदना से हमें अपने शीर या इसके विभिन्न भागों की स्थिति एवं उनकी गति का ज्ञान होता है। इस प्रकार के रिसेप्टर्स को लेमीलेटेड या पैसिनियन (Lamellated or Pacinian) कॉर्पसल्स (कणिका) कहते हैं। इसी से शरीर में स्थिति और गति की जानकारी होती हे। उदाहरण के तौर पर यदि आप एक व्यक्ति को दोनों आँखे बन्द कर उसके एक हाथ को टेबल पर रख दें और उसे अपने दूसरे हाथ को ठीक वैसी ही स्थिति में टेबल पर रखने को कहें, तो वह सहज ही पहले रखे गए हाथ के समीप दूसरे हाथ को ठीक वैसी ही स्थिति में रख लेगा।

ठसी प्रकार विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं के लिए रिसेप्टर्स भी विशिष्ट प्रकार के होते हैं, जैसे स्पर्श की संवेदना के लिए 'स्पर्श कणिकाएँ' (Tactile corpuscles), दाब के लिए 'पैसिनियन कणिका' (Pacinian corpuscles), कॉर्पसल्स ऑफ रफीनी (Corpuscles of Ruffini), कार्पसल्स ऑफ क्रॉज (corpuscles of Krause), ताप के लिए गॉल्जी–मेजोनी (Golgi-Mazzoni organs) एवं रफीनी (Ruffini) कॉर्पसल्स के तन्त्रिका–अन्तांग, शीत के लिए बल्बस कॉर्पसल्स ऑफ क्रॉज (Bulbous corpuscles of Krause) के तन्त्रिका अन्त्रांग, आदि कुछ विशिष्ट संयोजक ऊतकों से निर्मित अन्तांग हैं, जिनमे ंक्यूटेनियस तन्त्रिकाओं के छोरों (Cutaneous nerve endings) का अंत होता है। पेशी स्पिन्डल (Muscle spindle), गाल्जी बॉडी तथा अन्तांग प्लेट्स (End plates) आदि भी त्वचा संवेदनाओं के माध्यम हैं। इनके अतिरिक्त पीड़ा एवं वेदना के आवेगों को ले जाने वाली तन्त्रिकाओं के अन्तांग स्वतन्त्र (Free nerve endings) रहते हैं अर्थात् ये त्वचा पर स्वतन्त्र रूप से फैले रहते हैं। स्पर्श संवेदन से सम्बन्धित कुछ तन्त्रिका–अन्तांग बालों की जड़ों में भी लिपटे रहते हैं, जिनसे स्पर्श का ज्ञान होता है।

इस प्रकार विभिन्न वर्ग के रिसेप्टर भिन्न–भिन्न संवेदनाओं को ग्रहण करते हैं। किसी एक प्रकार के रिसेप्टर्स किसी एक ही संवेदना को ग्रहण कर सकते हैं, जो तन्त्रिका अन्तांग ताप के लिए हैं उनसे स्पर्श की संवेदना नहीं हो सकती है।

19.5 स्वादेन्द्रिय या जीभ (Tongue)-

जीभ या जिह्वा का मुख्य कार्य किसी वस्तु को चखकर उसके स्वाद को ज्ञात करना है क्योंकि स्वाद के रिसेप्टर्स (Receptors) इसी में स्थित होते हैं। स्वाद के कुछ रिसेप्टर्स कोमल तालू (Soft palate), टॉन्सिल्स एवं कंठच्छद (Epiglottis) आदि की म्यूकस मेम्ब्रेन में भी होते हैं।

जीभ एक अत्यधिक गतिशील अंग है, जो स्वाद–संवेदन के अतिरिक्त चबाने (Mastication), निगलने (Swallowing) तथा बोलने (Speech) जैसे महत्वपूर्ण कार्यों को भी संपदित करती है। जीभ मुख में स्थित म्यूकस मेम्ब्रेन से पूर्णतः ढँकी हुई ऐच्छिक पेशियों से निर्मित एक संवेदांग है। जीभ की पेशियाँ आन्तरिक (Intrinsic) एवं बाह्य (Extrinsic) दोनों प्रकार की होती हैं। आन्तरिक पेशियाँ जीभ के मुख्य अंग बनाती हैं तथा सभीप्रकार की नाजुक गतियाँ (Extrinsic) कराती हैं एवं बाह्य पेशियाँ जीभ तथा हॉयाड अस्थि (Hyoid bone), निचले जबड़े (Mandible) और टेम्पोरल अस्थि के स्टाइलॉइड प्रवर्ध के बीच में स्थित रहती हैं तथा चबाने एवं निगलने में होने वाली गतियाँ (ऊपर–नीचे, आगे–पीछे) कराती है।

जीभ के छोर या अग्रभाग (Tip), काय (Body) एवं आधार (Base or root) तीन भाग होते हैं। इसका आधार हॉयाड़ अस्थि से जुड़ा होता है जबकि इसका छोर तथा काय स्वतन्त्र होते हैं। जीभ की ऊपर की सतह डॉर्सम (Dorsum) कहलाती है, जो स्ट्रैटिफाइड स्क्वेमस एपीथीलियम (Stratified squamous epithelium) से स्तरित होती है। जब जीभ को ऊपर की ओर पलटा (Turned up) जाता है तो इसकी निचली सतह पर ऊपर की ओर मध्य रेखा की ओर आती हुई म्यूकस मेम्ब्रेन की कई तहें दिखाई देती हैं, जिसे **जिह्वा बंध** या **फ्रेनुलम** (Frenulum-linguae) कहते हैं। यह जीभ के पोस्टीरियर भाग को मुख के तल से जोड़ती है। जीभ का एन्टीरियर भाग स्वतन्त्र (Free) रहता है। जीभ को बाहर की ओर निकालने पर इसका छोर (Tip) नुकीला हो जाता है, किन्तु जब यह मुख तल में तथा शिथिल रहती है, तो इसका छोर (अग्रभाग) गोल रहता है।

स्वस्थ अवस्था (Health) में जीभ की म्यूकस मेम्ब्रन तर (Moist) एवं गुलाबी रहती है। इसकी ऊपरी सतह मखमली (Velvety) दिखाई पड़ती है तथा बहुत से उभारों (protuberances) से आच्छादित रहती है, जिन्हें **अंकुरक** या **पैपिली** (Papillae) कहते हैं। अंकुरक, जीभ की केवल ऊपरी सतह पर रहते हैं, निचली सतह पर इनका पूर्णतः अभाव रहता है किन्तु ये तालू (Palate), गले (Throat) एवं कंठच्छद (Epiglottis) की पोस्टीरियर सतह पर भी पाए जाते हैं। अंकुरकों में रक्तकोशिकाएँ (Capillaries) जाल के रूप में फैली रहती है। स्वाद–तन्त्रिकाओं–सातवीं (VII), नौवीं (IX), तथा दसवीं (X), कपालीय तन्त्रिकाओं के तन्तुओं का अन्त इन्हीं अंकुरकों (पैपिली) में होता है। इन अंकुरकों को **'स्वाद कलिकाएँ'** (Taste buds) भी कहा जाता है। मानव में लगभग 10,000 स्वाद कलिकाएँ रहती हैं। वृद्धवस्था में इनकी संख्या में कमी आ जाती है।

अंकुरक (पैपिली) मुख्यतः निम्न तीन प्रकार के होते हैं–

1. **परिवृत्त या सरकमवैलेट पैपिली** (Circumvallated Papillae)
2. **छत्रिकांकुर या फन्गिफॉर्म पैपिली** (Fungi form Papillae)
3. **सुत्रिकांकुर या फिलिफॉर्म पैपिली** (Filiform Papillae)

परिवृत्त अंकुरक (Circumvallated Papillae)- ये जीभ की सतह पर पीछे की ओर अर्थात् पोस्टीरियर दो तिहाई भाग के समीप अंग्रेजी के उल्टे 'V' के आकार में दो समान्तर पंक्तियों (Rows) में 10 से 12 की संख्या में व्यवस्थित रहते हैं। प्रत्येक परिवृत्त या सरकमवैलेट पैपिली में 90 से 250 स्वाद कलिकाएँ विद्यमान रहती हैं। ये काफी बड़ी आकार के और आसानी से दिखाई देने वाले अंकुरक (पैपिली) होते हैं।

छत्रिकाकुंर (Fungi form Papillae)- ये जीभ पर विशेषकर उसके छोर (अग्रभाग) तथा किनारों प8र स्थित मशरूम (Mushroom) के समान दिखाई देने वाले, एकल फैले हुए (Singly scattered) अंकुरक होते हैं। इन प्रत्येक अंकुरक में 1 से 8 स्वाद कलिकाएँ विद्यमान रहती हैं।

सूत्रिकांकुर (Filiform Papillae)- ये जीभ के अगले दो तिहाई भाग की सतह पर पाए जाने वाले धागे के समान (Thread like) नुकीले अंकुरक होते हैं। इनमें स्वाद कलिकाओं का अभाव रहता है। इनका कार्य स्वाद ज्ञान कराने की अपेक्षा वस्तु को प्रतीत कराना है। स्वाद की अनुभूति सरकमबैलेट एवं फन्गिफॉर्म पैपिली से ही होती है।

स्वाद कलिकाएँ एवं स्वद ग्रहण करने की किया विधि– स्वाद कलिकाएँ (Taste buds) ही स्वाद की विशिष्ट अन्तांग हैं। इनकी प्रत्येक कोशिका में स्वाद–तन्त्रिका (Lingual and gloss pharyngeal nerve) की शाखा आती है। प्रत्येक स्वाद कलिका अंकुरक (पैपिली) की सतह पर सूक्ष्म रन्ध्र (Tiny pore) से खुलती है और उसकी सभी कोशिकाएँ जो इस स्थान पर सामूहिक रूप से पहुँचती है, उनका अन्त सूक्ष्म बाल के समान अनेकों उभारों में होता है। खाद्य पदार्थ इन रन्ध्रों में प्रवेश कर इन उभारों को अपने संस्पर्श से उद्दीप्त करते हैं। इनमें उत्पन्न उद्दीपन के आवगे स्वाद–संवेद की तन्त्रिकाओं (VII, IX व X कपालीय तन्त्रिकाएँ) के द्वारा मस्तिष्क के स्वाद केन्द्र (Taste centre) में संचारित होते हैं और वहाँ स्वाद का विश्लेषण होता है, तत्पश्चात ही हमें विभिन्न प्रकार के स्वादों का ज्ञान होता है।

प्रत्येक स्वाद कलिका अण्डाकार होती है। इनके अक्ष सतह पर सीधे एवं सम्बद्ध (Perpendicular) दिशा में स्थित रहते हैं। इनमें नीचे की ओर से रक्तवाहिकाएँ और तन्त्रिकाएँ भी प्रवेश करती हैं स्वाद कलिकाओं में कीमोरिसप्टर या गस्टेटरी कोशिकाएँ तथा सहारा देने वाली समोर्टिंग कोशिकाएँ रहती हैं।

मूलभूत स्वाद संवेदन (Basic taste sensation)- मुख्य रूप से स्वाद की अनुभूतियाँ मीठी, खट्टी, कड़वी एवं नमकीन चार प्रकार की होती है। आधिकांश खाद्य पदार्थों में स्वाद के साथ–साथ महक (Flavor) भी होते हैं, किन्तु यह गंध की संवेदना से सम्बन्धित रहती है और गंध के रिसेप्टर्स को उद्दीप्त करती है न कि स्वाद के रिसेप्टर्स को।

मूलभूत स्वाद संवेदनाएँ जीभ की सतह पर समस्त भागों में समानरूप से उत्पन्न नहीं होती हैं। जीभ के निश्चित भाग ही विशेष स्वाद द्वारा प्रभावित होते हैं। मीठे एवं नमकीन स्वाद जीभ के छोर या अग्रभाग (Tip) पर, खट्टा स्वाद जीभ के दोनों पार्श्वों (Sides) में तथा कडुवा स्वाद जीभ के पिछले भाग (गले के पास) में पता लगता है। जीभ के मध्य भाग में विशेष 'स्वाद संवेदना' नहीं रहती है। इस प्रकार, प्रत्येक निश्चित विशेष स्वद के लिए जीभ में निश्चित विशेष स्वाद कलिकाएँ (Taste buds) रहती हैं, जो किसी विशेष प्रकार के उद्दीपन से ही प्रभावित होती हैं।

स्वाद आवेगों का पथ (Pathways for taste impulses)- स्वाद संवेदनाओं के आगेग जीभ के अगले दो तिहाई भाग से फेशियल तन्त्रिका (Facial nerve) की शाखा द्वारा, पिछले एक तिहाई भाग से ग्लॉसोफेरन्जियल तन्त्रिका (Glosso pharyngeal nerve) द्वारा तथा तालू (Palate) एवं ग्रसनी (Pharynx) से वेगस तन्त्रिका (Vagus nerve) द्वारा मस्तिष्क तक को संचारित होते हैं। उपर्युक्त तीनों कपालीय तन्त्रिकाओं के स्वाद तन्तु (Taste fibres) मेड्यूला ऑब्लांगेटा समाप्त (Terminate) होते हैं। यहाँ से अक्षतन्तु या एक्सॉन्स (Axons) थैलेमस (Thalamus) की ओर निकलते हैं तथा फिर प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स के पैराइटल लोब् में स्थित 'स्वाद केन्द्र' (Taste centre) में पहुँच जाते हैं।

ध्राणेन्द्रिय या नाक (Nose)- नाक का कार्य किसी वस्तु या पदार्थ की गन्ध का ज्ञान करना या सूँघना (Olfaction) है। जिस प्रकार स्वाद के ज्ञान के लिए पदार्थ का घोल रूप में होना अनिवार्य है, उसी प्रकार गन्ध के ज्ञान या सूँघने के लिए पदार्थ या वस्तु का गेस या वाष्पा के रूप में होना आवश्यक है। नाक में पहुँचकर वाष्प या गैस स्थानीय स्राव में घुल जाता है और घ्राण क्षेत्र की कोशिकाओं (Olfactory cells) को उद्दीप्त करता है। यहाँ से उद्दीपन के आवेग घ्राण बल्ब में और फिर घ्राण–पथ से होकर मस्तिष्क के घ्राण क्षेत्र में पहुँचते हैं जहाँ पर आवेगों का विश्लेषण होकर गन्ध का ज्ञान होता है।

19.6 नाक या नासिका की संरचना एवं घ्राण या गन्ध संवेदन

नासा गुहा (Nasal cavity) की श्लेष्मा, तीन छोटी अस्थियों (Nasal conchae) द्वारा कई कक्षों में बँट जाती है, जो नाक की बाहरी भित्ति से आरम्भ होते हैं। तीनों अस्थियों (Nasal conchae) के कारण इस स्थान पर तीन छोटे टीलों के समान उभार बन जाते हैं। सम्पूर्ण क्षेत्र पर नेजल म्यूकस मेम्ब्रेन बिछी रहती है, जो कॉल्यूमनर सिलिएटेड एपीथीलियम से बनी हैं। इन कोशिकाओं के स्राव से नाक की म्यूकस मेम्ब्रेन तर, चिकनी तथा चिपचिपी–सी रहती है।

नेजल कोंचा से नासिका में ऊर्ध्व, मध्य तथा निम्न क्षैतिज खाँचें बन जाती हैं। अस्थि निर्मित तीनों खाँचें नासिका के प्रत्येक आधे भाग को अपूर्ण रूप से चार कक्षों में विभाजित के प्रत्येक आधे भाग को अपूर्ण रूप से चार कक्षों में विभाजित कर देती है, जो सामने से पीछे की ओर जाते हैं तथा एक के ऊपर एक स्थित रकते हैं। प्रष्वसिकत वायु, नीचे के तीन कक्षों से हाकर जाती है, परतु सबसे ऊपर वाले में सामान्य रूप से नहीं जाती है। घ्राण (Smell) के अंग, सबसे ऊपर वाले कक्ष की घ्राण श्लेष्मिक कला (Olfactory mucous membrane) में स्थित होते हैं। घ्राण कोशिकाओं के अन्तांत इसी मेम्ब्रेन में फैले रहते हैं। नासा गुहा का सबसे ऊपर वाला कक्ष एक अंधगुहा या पॉकेट के समान है, जिसका वही अंत हो जाता है। घ्राण उपकला (Olfactory epithelium) घ्राण (गंध) के लिए संवेदनशील होती है, जो नाक की छत के समीप होती है। इन ग्रन्थियों का स्राव समस्त सतह को तर रखता है तथा गंधयुक्त वाष्पों (Odorous vapours) को घोलने का कार्य करता हैं सहारा देने वाली कोशिकाओं का आधार (Base) ऊपर की ओर रहता है और एक सतही

मेम्ब्रेन बनाता है, जिसके बीच के रिक्त स्थानों में से घ्राण कोशिकाओं (Olfactory cells) के बाल के समान प्रवर्ध (Cilia) बाहर की ओर निकले रहते हैं।

वस्तुतः द्विध्रुवीय तन्त्रिका कोशिकाएँ (Bipolar nerve cells) ही घ्राण की **रिसेप्टर कोशिकाएँ** (Receptor cells) होती हैं। मानव में ये 25 मिलियन से अधिक होती हैं तथा प्रत्यक सहारा देने वाली कोशिकाओं से घिरी रहती है। प्रत्येक रिसेप्टर कोशिका में एक गोल न्यूक्लियस तथा एक लम्बे धागे के रूप में प्रोटोप्लाज्म रहता है। ये कोशिकाएँ म्यूकस मेम्ब्रेन में घँसी रहती है। प्रत्येक कोषिका के दो प्रवर्ध (Processes) दोनों ध्रुवों पर से निकले रहते हैं। कोशिकाएँ लम्बे अक्ष में एक–दूसरी से सटी हुई, सतह से लम्बबद्ध दिशा में (Perpendicular) खड़ी–सी स्थित रहती हैं। इन कोशिकाओं के पार्ष्वतन्तु (डेण्ड्राइट) छोटे आकार के अभिवाही प्रवर्ध रिक्त स्थानों से निकले रहते हैं। ऊपर ये थोड़े प्रसारित होकर ऑल्फेक्टरी रॉड्स बनाते हैं तथा विस्फारित घ्राण स्फोटिका (Bulbous olfactory vesicle) में समाप्त हो जो हैं। प्रत्येक स्फोटिका (Vesicle) से 6–20 लम्बे बाल के समान प्रवर्ध (Cilia) निकले रहते हैं, जो सतही एपीथीलियम (Surface epithelium) को आच्छादित किए रहते हैं। इन्हें **घ्राण–रोम–कोशिका** कहते हैं। स्फोटिका (Vesicle) एवं इसके प्रवर्ध (Cilia) ही घ्राण के अन्तांग (Olfactory end organs) होते हैं। रिसेप्टर कोशिकाओं के अक्षतन्तु (एक्सोन्स) जो **घ्राण तन्त्रिका** (Olfactory nerve) का निर्माण करते हैं, दूसरे सिर`से निकलकर ऊपर उठते हैं और इथमॉइड अस्थि की छिद्रित प्लेट (Cribriform plate) से होकर गुजरते हैं और घ्राण–बल्ब्स (Olfactory bulbs) में पहुँचते हैं। **घ्रण बल्ब्स** भूरे द्रव्य की विशेष संरचनाएँ हैं, जो मस्तिष्क के घ्राण–क्षेत्र (Olfactory region) के स्तम्भाकार विस्तार होते हैं। घ्राण–बल्ब के अन्दर रिसेप्टर कोशिकाओं के टर्मिनल एक्सॉन्स (अक्ष तन्तुओं के अन्तांग) गुच्छित कोशिकाओं (Tufted cells), ग्रैन्यूल कोशिकाओं (Granule cells) एवं माइट्रल कोशिकाओं (Mitral cells) के डेण्ड्राइट्स (पार्ष्वतन्तुओं) के साथ तन्तुमिलन (Synapse) होता है। जिससे एक विशिष्ट गोलकार अंग **घ्राण गुच्छिका या ऑल्फेक्टरी ग्लोमेरूलाई** (Olfactory glomeruli) बनता है। प्रत्येक ग्लोमेरूलस (Glomerulus) रिसेप्टर कोशिका के लगभग 26,000 एक्सॉन्स से आवेगों को प्राप्त करता है। माइट्रल एवं गच्छित (Tufted) कोशिकाओं के अक्षतन्तु (एक्सॉन्स) ही **घ्राण–पथ** (Olfactory tract) बनाते हैं, जो पीछे जाकर प्रमस्तिष्क कॉर्टेक्स के टेम्पोरल लोब में घ्राण केन्द्र (Olfactory of smell centre) में पहुँचता है, जहाँ पर आवेगों का विश्लेषण होता है, और हमें विशेष गन्ध का ज्ञान होता है।

19.7 श्रवणेन्द्रियाँ या कान-

कान या कर्ण शरीर का एक आवश्यक अंग है, जिसका कार्य सुनना (Hearing) एवं शरीर का सन्तुलन (Equilibrium) बनाये रखना है तथा इसी से ध्वनि (Sound) की संज्ञा का ज्ञान होता है।

कान की रचना अत्यन्त जटिल होती है, अतः अध्ययन की दृष्टि से इसे निम्नलिखित तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया जाता है–

1. **बाह्य कर्ण** (External ear)
2. **मध्य कर्ण** (Middle ear)
3. **अंतः कर्ण** (Internal ear)

बाह्य कर्ण या कान (External Ear)- बाह्य कर्ण के बाहरी कान या कर्णपाली (Auricle or pinna) तथा बाह्य कर्ण कुहर (External auditory meatus), दो भाग होते हैं। **कर्णपाली** (Auricle or pinna) कान का सिर के पार्श्व से बाहर को निकला रहने वाला भाग होता है, जो लचीले फाइब्रोकार्टिलेज से निर्मित तथा त्वचा से ढँका रहता है। यह सिर के दोनों ओर स्थित रहता है। कर्णपाली का आकार टेढ़ा–मेढ़ा और अनियमित होता है, इसका बाहरी किनारा **हेलिक्स** (Anthelix) कहलाता है। हेलिक्स से अन्दर की ओर के अर्द्धवृत्ताकार उभार (Semicircular ridge) को **एन्टहेलिक्स** (Anthelix) कहा जाता है, ऊपर के भाग में स्थित उथले गर्त को **ट्रइएन्गूलर फोसा** (Triangular fossa) तथा बाह्य कर्ण कुहर से सटे हुए गहरे भाग को **कोन्चा** (Concha) कहते हैं एवं कुहर के प्रवेश स्थल के सामने स्थित छोटे से उत्सेघ (Projection) को **ट्रॅगस** (Tragus) कहते हैं। निचला लटका हुआ भाग (Ear lobule) कोमल होता है और वसा–संयोजक–ऊतक (Adipose connective tissue) से निर्मित होता है तथा इसमें रक्त वाहिनियों की आपूर्ति बहुत अधिक रहती हैं कर्णपाली कान की रक्षा करती है तथा ध्वनि से उत्पन्न तरंगों को एकत्रित करके आगे कान के अन्दर भेजने में सहायता करती है।

बाह्य कर्ण कुहर (External auditory meatus)- बाहर कर्णपाली से भीतर टिम्पेनिक मेम्ब्रेन या ईयर ड्रम (कान का पर्दा) तक जाने वाल अंग्रेजी के 'S' अक्षर के समान घुमावदार, लगभग 2.5 सेमी. (1") लम्बी–सँकरी नली होती है। टिम्पोनिक मेम्ब्रेन द्वारा यह मध्यकर्ण से अलग रहती है। इसका बाहरी एक तिहाई भाग कार्टिलेज का बना होता है तथा शेष भीतरी दो तिहाई भाग एक नली के रूप में टेम्पोरल अस्थि में चला जाता है, जो अस्थि निर्मित होता है। समस्त बाह्य कर्णकुहर रोमिल त्वचा से अस्तरित होता है, जो कर्णपाली को आच्छादित करने वाली त्वचा के सातत्य में ही रहता है। कार्टिलेजिन भाग की त्वचा में बहुत सी सीबेसियस एवं सेर्‌यूमिनस ग्रन्थियाँ होती हैं जो क्रमशः सीबम (तैलीय स्राव) एवं सेर्‌यूमेन (कान का मैल या ईयर वैक्स) स्त्रावित करती हैं। ईयर वैक्स (Ear wax) से, बालों (रोम) से तथा कुहर के घुमावदार होने से बाहरी वस्तुएँ जैसे धूलकण, कीट–पंतगें आदि कान के भीतर नहीं जा पाते हैं।

कर्णपटह या कान का पर्दा या टिम्पेनिक मेम्ब्रेन (Tympanic membrane)- इसे ईयर ड्रम (Ear drum) भी कहा जाता है। यह बाह्य कर्ण एवं मध्य कर्ण के बीच विभाजन (Partition) करने वाली चौरस कोन आकार की एक पतली फाइबर्स सीट होती है जो बाहर की ओर त्वचा के साथ तथा अन्दर की ओर मध्य कर्ण को आस्तरित करने वाल म्यूकस मेम्ब्रेन के सातत्य (Continuation) में रहती हैं। कर्णपटह मध्य कर्ण की ओर दबा सा रहता है। यह बिन्दु **अम्बो** (Umbo) कहलाता है। इसी स्थान पर मध्य कर्ण स्थित मैलीयस (Malleus) अस्थि कार्णपटह के भीतर की ओर से सटी रहती हैं। कर्णपटह के अधिकांश किनारे (Margin) टिम्पेनिक ग्रूव में जुटे (Embedded) रहते हैं। यह ग्रूव बाह्य कर्ण कुहर के

अन्दरूनी सिरे (Inner end) की सतह पर स्थित होता है। बाहरी कान तथा बाह्य कर्णकुहर दोनों ही ध्वनि तरंगों को एकत्रित करके भीतर भेजते हैं। जब ध्वनि तरंगें कर्णपटह से टकराती हैं तो उसमें प्रकम्पन (Vibration) उत्पन्न होता है, जिसे वह मध्यकर्ण की अस्थिकाओं (Ossicles) द्वारा अन्तःकर्ण में भेजता है।

मध्य कर्ण (Middle ear)- मध्यकर्ण, कर्णपटह (टिम्पोनिक मेम्ब्रेन) एवं अन्तःकर्ण के बीच स्थित एक छोटा कक्ष (Chamber) है। इसमें कर्णपटही गुहा (Tympanic cavity) एवं श्रवणीय अस्थिकाओं (Auditory ossicles) का समावेश होता है।

कर्णपटही गुहा (Tympanic cavity)- टेम्पोरल अस्थि के अश्माभ भाग (Petrous portion) में स्थित सँकरा, असमाकृति का वायु पूरित (Air filled) एक अवकाश या स्थान है। इसमें अग्र, पश्च, मध्यवर्ती एवं पार्श्वीय 4 भित्तियाँ तथा छत और फर्श होता है, जो सभी म्यूकस मेम्बेन से आस्तारित रहते हैं। टेम्पोरल अस्थि की पतली प्लेटें **छत** (Roof) एवं **फर्श** (Floor) बनाती हैं, जो टिम्पेनिक गुहा को ऊपर से मिडिल क्रेनियल फोसा से तथा नीचे से ग्रीवा की वाहिकाओं (Vessels) से पृथक करती हैं। **पश्चभित्ति** (Posterior wall) में एक द्वारा (Aditus) होता है जो 'कर्णमूल वायु कोशिकाओं' (Mastoid air cells) में खुलता है, इसमे ंअस्थि का एक छोटा–सा कोन आकार का पिण्ड (Pyramid) भी होता है, जो स्टैपीडियस पेशी (Stapedius muscle) से घिरा रहता है ंइस पेशी का टेन्डन, द्वार (छिद्र) से गुजरकर पिरामिड (Pyramid) के शिखर पर स्टैपीज (Stapes) से जुड़ता है। **पार्श्वीय भित्ति** (Lateral wall) टिम्पेनिक मेम्ब्रेन से बनती है। **मध्यवर्ती भित्ति** (Medial wall) टेम्पोरल अस्थि की एक पतली परत होती है। जिसमें दूसरी ओर अंतःकर्ण (Internal ear) होता है। इसमें दो छिद्र (Openings) होते हैं, जो मेम्ब्रेन से ढँके रहते हैं। ऊपर वाला छिद्र अण्डकार होता है, जो अन्तःकर्ण के प्रघाण (Vestibule) में खुलता है तथा इसे **फेनेस्ट्रा ओवेलिस** (Fenestra ovalis) कहते हैं। दूसरा छिद्र गोलाकार होता है जिसे **फेनेस्ट्रा रोटनडम** (Fenestra rotundum) कहते हैं। यह गोलाकार छिद्र मध्य कर्ण की म्यूकस मेम्ब्रेन से बन्द रहता है तथा इसका सम्बन्ध अन्तःकर्ण की कॉक्लिया से रहता है। **अग्रभित्ति** (Anterior wall) टेम्पोरल अस्थि से बनी होती है। इसमे ंकर्णपटह (Tympanic membrane) के बिल्कुल समीप ही एक छिद्र होता है जो यूस्टेचियन नली (Eustachian tube) का मुखद्वार होता है।

यूस्टेचियन नली या श्रवणीय नली (Auditory tube) अथवा फेरिन्जोटिम्पेनिक नली (Pharyngotympanic tube)- मध्यकर्ण की बुहा एवं नासाग्रसनी (Nasopharynx) के बीच सम्बन्ध बनाती है। मध्यकर्ण को आस्तारित करने वाली म्यूकस मेम्ब्रेन सातत्य में इस नली को भी आस्तारित करती है। मध्यकर्ण का सम्बन्ध कर्णमूल वायु कोशिकाओं (Mostoid air cells) से भी रहता है। गले के संक्रमण (Throat infections) प्रायः इसी नली के द्वारा मध्य कान में पहुँचते हैं तथा यहाँ से कर्णमूल कोशिकाओं में पहुँचकर विद्रधियाँ (Abscesses) उत्पन्न कर सकते हैं।

श्रवणीय अस्थिकाएँ (Auditory ossicles)- छोटी–छोटी तीन अस्थियाँ (मैलीयस? इन्कस या एन्विल तथा स्टैपीज) हैं, जो श्रृंखलाबद्ध तरह से कर्णपटह (Tympanic

membrane) से लेकर मध्यवर्ती पर स्थित अण्डाकार छिद्र (Fenestra ovalis) तक स्थित रहती हैं। प्रत्येक अस्थि (मैलीयस) का छोर दूसरी अस्थि के सिरे से संधिबद्ध रहता है। प्रथम अस्थि का सिरा टिम्पेनिक मेम्ब्रेन से सम्बन्धित रहता है और अन्तिम अस्थि (स्टैपीज) का छोर फेनेस्ट्रा ओवेलिस में सटा रहता है। श्रृंखलाबद्ध होने के कारण ध्वनि–तंरगों से उत्पन्न प्रकम्पन (Vibration) टिम्पेनिक मेम्ब्रेन से, इन तीनों अस्थिकाओं (Auditory ossicles) से होता हुआ इन्हीं के द्वारा अन्तःकर्ण तक पहुँच जाता है तथा बाह्यकर्ण का अन्तःकर्ण से सम्बन्ध स्थापित रहता है।

अन्तःकर्ण (Internal ear)- यह टेम्पोरल अस्थि के अश्माभ भाग (Petrous portion) में स्थित श्रवणेन्द्रिय का प्रमुख अंग है। इसी में सुनने तथा सन्तुलन के अंग अवस्थित होते हैं। अन्तःकर्ण की बनावट टेढ़ी–मेढ़ी एवं जटिल है जो कुछ–कुछ घोंघे (Snail) के सदृश होती है। इसमें **अस्थिल लैबिरिन्थ** (Bony labyrinth) तथा **कलामय लैबिरिन्थ** (Membranous labyrinth) दो मुख्य रचनाएँ होती हैं, जो एक दूसरे के भीतर रहती हैं।

अस्थिल लैबिरिन्थ टेम्पोरल अस्थि के अश्माभ भाग में स्थित टेढ़ी–मेढ़ी अनियमित आकार की नलिकाओं की एक श्रृंखला (Series of channels) है, जो परिलसीका (Perilymph) नामक तरल से भरा होता है।

कलामय लैबिरिन्थ अस्थिल लैबिरिन्थ में स्थित रहता है। इसमें यूट्रिक्ल (Utricle), सैक्यूल (Saccule), अर्द्धवृत्ताकार वाहिकाएँ (Semicircular ducts) एवं कॉक्लियर वाहिका (Cochlear duct) का समावेश रहता है। इन समस्त रचनाओं में अन्तःकर्णोद (Endolymph) तरल भरा रहता है तथा सुनने एवं सन्तुलन के समस्त संवेदी रिसेप्टर्स विद्यमान रहते हैं। अर्द्धवृत्ताकार वाहिकाएँ अर्द्धवृत्ताकार नलिकाओं के भीतर स्थित रहती हैं। अस्थिल नलिकाओं (Canals) एवं वाहिकाओं (Ducts) के बीच के स्थान में परिलसीका (Perilymph) भरा रहता है। चूँकि कलामय लैबिरिन्थ अस्थिल लैबिरिन्थ भीतर स्थित रहता है, इसीलिए इनकी आकृति समान रहती है। इनका वर्णन अस्थिल लैबिरिन्थ में ही किया गया है।

अस्थिल लैबिरिन्थ (Bony labyrinth) में निम्न तीन रचनाओं का समावेश रहता है–

1. प्रघाण या वेस्टिब्यूल (Vestibule)
2. तीन अर्द्धवृत्ताकार नलिकाएँ (3 Semicircular canals)
3. कर्णावर्त या कॉक्लिया (Cochlea)

प्रघाण या वेस्टिब्यूल (Vestibule)- यह लैबिरिन्थ का मध्य कक्ष है। इसके सामने कॉक्लिया और पीछे अर्द्धवृत्ताकार नलिकाएँ रहती हैं। वेस्टिब्यूल की बाहरी भित्ति के अण्डाकार छिद्र (Fenestra ovalis) में मध्य कर्ण की स्टैपीज अस्थिका की प्लेट लगी रहती है। इसी के द्वारा वेस्टिब्यूल का सीधा सम्पर्क मध्यकर्ण से रहता है। मध्यकर्ण और वेस्टिब्यूल के मध्य में केवल इस खिड़की के समान छिद्र में लगा हुआ झिल्ली कका पर्दा रहता है। वेस्टिब्यूल के भीतर अन्तःकर्णोद (Endollymph) से भरी कलामय लैबिरिन्थ की दो थैली (Sacs) होती हैं। जिन्हें **यूट्रिक्ल** (Utricle) तथा **सैक्यूल** (Saccule) कहा जाता है। प्रत्येक थैली (Sac) में संवेदी पैच (Sensory patch) विद्यमान रहता है, जिस **मैक्यूल** (Macule) कहा जाता है।

वेस्टिब्यूल के ऊपर (Superior), पीछे (Posterior) तथा पार्श्व में (Lateral), ये तीन अस्थिल अर्द्धवृत्ताकार नलिकाएँ होती हैं, जो वेस्टिब्यूल से संलग्न रहती हें। ये तीनों नलियाँ एक–दूसरे के लम्बवत् (Perpendicular) होती हैं। इनके भ्झीतर कलामय वाहिकाएँ (Ducts) रहती हैं कलामय वाहिकाओं (Membranous semicircular) एवं अस्थिल नलिकाओं (Bony semicircular ducts) के मध्य परिलसीका तरल भरा रहता है तथा कलामय वाहिकाओं के भीतर अन्तःकर्णोद तरल रहता है। प्रत्येक वाहिका का छोर कुछ फूला हुआ (Expanded) होता है, जिसे **'एम्पूला'** (Ampulla) कहते हैं, इसमें संवेदी रिसेप्टर–क्रिस्टा एम्पूलैरिस (Crista ampullaris) रहता है। इसमें कुपोला (Cupola) नामक रोम कोशिकाएँ (Hair cells) भी रहती हैं। यहीं पर आठवीं कपालीय तन्त्रिका की शाखा वेस्टिब्यूलर तन्त्रिका (Vestibular nerve) आती है।

यूट्रिक्ल, सैक्यूल एवं अर्द्धवृत्ताकार वाहिकाओं, तीनों का सम्बन्ध शरीर की साम्य स्थिति (Equilibrium) को बनाए रखने से है न कि सुनने की क्रिया से।

कर्णावर्त या कॉक्लिया (Cochlea)- कॉक्लिया अपने ही पर लिपटी हुई सर्पिल आकार की एक लनिका है, जो देखने में घोंघे के कवच के समान दिखाई देती है। यह मध्य में स्थित शंक्वाकार अस्थिल अक्ष स्तम्भ, जिसे मॉडियोलस कहते हैं, के चरों ओर दो और तीन चौथाई ($2\frac{3}{4}$) बार कुण्डलित होती है। नीचे का चक्र सबसे बड़ा होता है और ऊपर का सबसे छोटा। कॉक्लिया की नलिका अण्डाकार छिद्र की खिड़की फेनेस्ट्रा रोटण्डा (Fenestra rotunda) तक फैली रहती है। अस्थिल कॉक्लिया के भीतर, ठीक इसी आकार की कलामय कॉक्लिया की वाहिका (Duct) होती है। इन दोनों नलिकाओं के बीच परिलसीका (Perilymph) तरल भरा रहता है।

कलामय कॉक्लिया वाहिका वेस्टिब्यूलर एवं बेसिलर नामक दो मेम्ब्रेन्स द्वारा लम्बवत् रूप में तीन प्रथक कुण्डलित (सर्पिल) वाहिकाओं में विभक्त हो जाती है। जो निम्नलिखित हैं–

1. स्कैला वेस्टिब्यूलाइ
2. स्कैला मीडिया (Scala media) कॉक्लियर डक्ट
3. स्कैला टिम्पेनाइ

स्कैला वेस्टिब्यूलाइ का वेस्टिब्यूल से सम्बन्ध रहता है और स्कैला टिम्पेनाइ का समापन (End) गोलाकार छिद्र वाली खिड़की पर होता है तथा स्कैला मीडिया अन्य दोनों वाहिकाओं के बीच रहती है तथा इसमें अंतःकर्णोद (Endolymph) तरल भरा रहता है। स्कैला वेस्टिब्यूलाइ एवं स्कैला टिम्पेनाइ में परिलसीका (Perilymph) भरा रहता है। ये तीनों वाहिकाएँ (Ducts) समानान्तर व्यवस्थित रहकर अस्थिल अक्ष स्तम्भ (Modiolus) के चारों ओर कुण्डलित होकर ऊपर की ओर चढ़ती हैं। स्कैला मीडिया जिसे कॉक्लियर डक्ट भी कहते हैं, में स्पाइरल अंग (Spiral organ) भी विद्यमान रहते हैं, जो **श्रवण अंग** (Organ of Corti) कहलाते हैं।

श्रवण अंग (Organ of Corti) सहरा देने वाली कोशिकाओं (Supporting cells) एवं रोम कोशिकाओं (Hair hearing) से मिलकर बना श्रवण अन्तांग (End organ of hearing) है। रोम

कोशिकाएँ कुण्डली की सम्पूर्ण लम्बाई के साथ–साथ पंक्तियों में व्यवस्थित रहती हैं। बाहरी रोम कोशिकाएँ तीन पक्तियों में तथा आन्तरिक रोम कोशिकाएँ बेसिलर मेम्ब्रेन के भीतरी किनारे के साथ–साथ एक पंक्ति में व्यवस्थित रहती हैं। मानव में लगभग 3500 आन्तरिक रोम कोशिकाएँ तथा 20,000 बाहरी रोम कोशिकाएँ होती हैं। इन दोनों आन्तरिक एवं बाहरी रोम कोशिकाओं में सूख्मबाल के समान **संवेदी रोम** (Sensory hair), या **स्टीरियो सिलिया** (Stereocilia) रहते हैं। प्रत्येक बाहरी रोम कोशिका में 80 से 100 संवेदी रोम (Sensory hairs) तथा आन्तरिक रोम कोशिका में, रोम पंक्तियों में व्यवस्थित रहते हैं, जो अंग्रेजी के अक्षर 'W' या 'U' बनाते हैं। रोमों (Hairs) के छोर (Tips) आपस में मिलकर एक छिद्र युक्त झिल्ली (Perforated membrance) बनाते हैं, जिसे 'टेक्टोरियल मेम्ब्रेन' (Tectorial membrane) कहते हैं, जो श्रवण अंग (Spiral organ) के ऊपरी जीम (Firmly bound) रहती है।

कान की तन्त्रिकाएँ (Nerves of the Ear)- कान में आठवीं (VIII) कपालीय तन्त्रिका (Vestibulocochlear nerve) की आपूर्ति होती है। यह दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है। एक वेस्टिब्यूल (प्रघाण) में जाती है और दूसरी कॉक्लिया में। वेस्टिब्यूल में जाने वाली शाखा वेस्टिब्यूल तन्त्रिका (Vestibular nerve) कहलाती है। इसका सम्बन्ध शरीर की साम्य स्थिति (Equilibrium) बनाए रखने की क्रिया से है। उद्दीपन मिलने पर यह आवेगों को अनुमस्तिष्क (Cerebellum) में संचारित करती है।

दूसरी तन्त्रिका जो कॉक्लिया में जाती है, उसे कॉक्लियर तन्त्रिका (Cochlear nerve) कहते हैं। यह कॉक्लिया के मध्य में स्थित अस्थिल स्तम्भ (Modiolus) में प्रवेश करती है और श्रवण अंग (Organ of Corti) के समीप पहुँच कर इसकी अनेक शाखाएँ चारों ओर फैल जाती हैं। इस तन्त्रिका द्वारा ले जाए जाने वाले आवेग प्रमस्तिष्क (Cerebrum) के टेम्पोरल लोब में स्थित श्रवण केन्द्र (Hearing Centre) में पहुँचते हैं। जहाँ 'ध्वनि' (Sound) का विश्लेषण होता है और हमें विशष्ट ध्वनि की संवेदना का ज्ञान होता है।

श्रवण–क्रिया (Mechanism of Hearing)- ध्वनि के कारण वायु में तरंगें अथवा प्रकम्पन उत्पन्न होते हैं जो लगभग 332 मीटर प्रति सेकण्ड की गति से संचारित होते हैं। किसी स्वर का सुनना तभी संभव होता है जब कि उसमें वायु में तरंगें उत्पन्न करने की क्षमता हो और फिर वायु में उत्पन्न ये तरंगें कान से टकराएँ। ध्वनि का प्रकार, उसका तारत्व (Pitch), उसकी तीव्रता अथवा मन्दता (Intensity), उसकी मधुरता या रूक्षता आदि वायु तरंगों की आवृत्ति (Frequency), आकार (Size) तथा आकृति (Form) पर निर्भर करता है।

जैसा कि पूर्व में भी बताया जा चुका है कि बाह्यकर्ण की कर्णपाली (Auricle) ध्वनि तरंगों को संग्रहीत करती है और उन्हें बाह्य कर्ण कुहर (External auditory meatus) के द्वारा कान में प्रेषित करती है। तत्पश्चात् ध्वनि तरंगें कर्ण पटह (Tympanic membrane) से टकराकर उसी प्रकार का प्रकम्पन (Vibration) उत्पन्न करती है। कर्ण पटह के प्रकम्पन अस्थिकाओं (Ossicles) में गति होने से मध्यकर्ण से होकर संचारित हो जाते हैं। कर्णपटह का प्रकम्पन उसी से सटी मैलियस (Malleus) अस्थिका द्वारा क्रमशः इन्कस (Incus) एवं स्टैपीज (Stapes) अस्थिकाओं में होता हुआ अण्डाकार छिद्रवाली खिड़की (Fenestra ovalis) पर लगी मेम्ब्रेन में पहुँच जाता है। प्रकम्पन के यहाँ तक पहुँच जाने पर वेस्टिब्यूल

(Vastibule) में स्थित परिलसीका (Perilymph) तरल में तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं। स्कैला वेस्टिब्यूलाइ एवं स्कैला टिम्पेनाइ में स्थित परिलसिका वेस्टिब्यूल के परिलसिका से सम्बन्धित रहता है, फलतः वह भी तरंगित हो उठता है। स्कैला वेस्टिब्यूलाइ एवं स्कैला टिम्पेनाइ की तरंगें स्कैला मीडिया अथवा कॉक्लियर वाहिका (Cochlear duct) के एण्डोलिम्फ को भी तरंगित कर देती हैं, जिसके फलस्वरूप बेसिलर मेम्ब्रेन में प्रकम्पन उत्पन्न होता है तथा श्रवण अंग (Organ of Corti) की रोम कोशिकाओं (Hair cells) में के श्रवण रिसेप्टर्स (Auditory receptors) में उद्दीपन होता है। इससे उत्पन्न तन्त्रिका आवेग (Nerve impulses) आठवीं कापालीय तन्त्रिका (वेस्टिब्युलोकॉक्लियर तन्त्रिका) की कॉक्लियर शाखा के द्वारा प्रमस्तिष्क के टेम्पोरल लोब में स्थित श्रवण केन्द्र में पहुँचते हैं। यहाँ ध्वनि का विश्लेषण होता है और विशिष्ट ध्वनि का बोध होता है।

शरीर की साम्य स्थिति एवं सन्तुलन (Equilibrium and balance of the body)- शरीर को साम्य स्थिति एवं सन्तुलन में बनाए रखने का कार्य अन्तःकर्ण के वेस्टिब्यूलर उपकरण (Vestibular apparatus), यूट्रिक्ल, सैक्यूल एवं अर्द्धवृत्ताकार नलिकाओं द्वारा संपादित होता हे। सिर की स्थिति (Position) में कैसा भी परिवर्तन (हिलना) होता है, तो पेरिलिम्फ एवं एण्डोलिम्फ तरह हिल जाता है, जिससे रोम कोशिकाएँ (Hair cells) मुड़ (झुक) जाती हैं तथा यूट्रिक्ल, सैक्यूल एवं एम्पूलाओं (Ampullae) में स्थित संवेदी तन्त्रिका अन्तांग उद्दीप्त हो उठते हैं। इससे उत्पन्न तन्त्रिका आवेगों को वेस्टिब्यूलर तन्त्रिका (आठवीं कपालीय तन्त्रिका की शाखा) के तन्तु मस्तिष्क के सेरीबेलम को संचारित कर देते हैं। मस्तिष्क के आदेश से उन सभी पेशियों में तदनुकूल गति और क्रिया होती है जिससे शरीर की साम्य स्थिति गनी रहती हैं।

19.8 दृश्येन्दियाँ या आँखें (Eyes)-

आँखों या नेत्रों के द्वारा हमें वस्तु का 'दुष्टिज्ञान' होता है। दृष्टि वह संवेदन है, जिस पर मनुष्य सर्वाधिक निर्भर करता है। दृष्टि (Vision) एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमें प्रकाश किरणों के प्रति संवेदिता, स्वरूप, दूरी, रंग आदि सभी का प्रत्यक्ष ज्ञान सन्निहित है। आँखें अत्यन्त जटिल ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, जो दायीं–बायीं दोनों ओर एक–एक नेत्रकोटरीय गुहा (Orbital cavity) में स्थित रहती हैं। ये लगभग गोलाकार होती हैं तथा इनाक व्यास लगभग एक इंच (2.5 सेमी.) होता है। इन्हें **नेत्रगोलक** (Eyeball) कहा जाता है। नेत्रकोटरीय गुहा शंक्वाकार (Cone-shaped) होती है। इसके सबसे गहरे भाग में (Apex) में एक गोल छिद्र (फोरामेन) होता है, जिसमें से होकर द्वितीय कपालीय तन्त्रिका (ऑप्टिक तन्त्रिका) का मार्ग बनता है। इस गुहा की छत फ्रन्टल अस्थि से, फर्श मैक्जिला से लेटरल भित्तियाँ कपोलास्थि तथा स्फीनॉइड अस्थि से बनती हैं और मीडियल भित्ति लैक्राइमल, मैक्जिला, इथमॉइड एवं स्फीनॉइड अस्थियाँ मिलकर बनाती हैं। इसी गुहा में नेत्रगोलक वसीय ऊतकों में अन्तःस्थापित एवं सुरक्षित रहता है।

आँख की संरचना (Structure of the eye)- नेत्र गोलक (Eyeball) की भित्ति का निर्माण ऊतकों की निम्न तीन परतों से मिलकर हुआ होता है–

1. **बाह्य तन्तुमयी परत** (Outer fibrous layer)

2. **अभिमध्य वाहिकामयी परत** (Middle vascular layer)
3. **आन्तरिक तन्त्रिकामयी परत** (Inner nervous layer)

बाह्य तन्तुमयी परत (Outer fibrous layer)- नेत्रगोलक में यह सबसे बाहर की सहारा देने वाली परत (Supporting layer) है, जो मुख्यतः दृढ़, तन्तुमय संयोजी ऊतक (Fibrous connective tissue) की मोटी मेम्ब्रेन से निर्मित होती है। इसमें श्वेत पटल या स्क्लेरा (Sclera) एवं स्वच्छमण्डल या कॉर्निया (Cornea) का समावेश रहता है।

श्वेत पटल (स्क्लेरा) नेत्रगोलक के पिछले भाग (Posterior segment) की अपारदर्शी, दृढ़ तन्तु ऊतकों की श्वेत परत होती हैं। इससे नेत्रगोलक का 5/6 पिछला भाग ही ढँका रहता है। इसकी बाह्य सतह सफेद (White) रहती है और आँख का सफेद भाग बनाती है, जिस पर आँख को घुमाने वाली सभी पेशियाँ जुड़ी रहती हैं। यह नेत्रगोलक की आन्तरिक कोमल परतों की रक्षा करती है तथा उसकी आकृति (Shape) को स्थिर बनाए रखती है।

स्वच्छमण्डल (कॉर्निया) बाह्य तन्तुमयी परत का अग्र (Anterior) पारदर्शी भाग होता है, जो नेत्रगोलक के अग्र भाग उभरे भाग पर स्थित रहता है। कॉर्निया नेत्रगोलक का सामने वाला 1/6 भाग बनाता है। इसमें रक्तवाहिकाओं का पूर्णतया अभाव रहता है। प्रकाश किरणें कॉर्निया से होकर रेटिना पर पहुँचती हैं।

स्क्लेरा एवं कॉर्निया निरन्तरता में रहते हैं। बाह्य तन्तुमयी परत नेत्रगोलक को, पिछले भाग को छोड़कर जहाँ स्क्लेरा में एक छोटा–सा छिद्र होता है जिसमें से होकर ऑप्टिक तन्त्रिका के तन्तु नेत्रगोलक से मस्तिष्क में पहुँचते हैं, पूर्णतया ढँके रहती है।

अभिमध्य वाहिकायी परत (Middle vascular layer)- यह नेत्रगोलक की बीच (Middle) की परत होती है, जिसमें अनेकों रक्त वाहिकाएँ (Blood vessels) रहती हैं। इसमें रंजितपटल या कोरॉइड (Choioroid), रोमक पिण्ड या सिलियरी बॉडी तथा उपतारा या आइरिस (Iris) का समावेश होता है।

इस परत का रंग पिगमेन्टों के कारण गहरे रंग (Dark colour) का होता है जो आँख के भीतरी कक्ष को जिसमें प्रकाश की किरणें रेटिना पर प्रतिबिम्ब बनाती हैं, पूर्णताः अन्धकारमय (Light proof) बनाने में सहायक होती हैं। वाहिकामयी परत का पिछला (Posterior) 2/3 भाग एक पतली मेम्ब्रेन का बना होता है, जिसे **रंजितपटल या कोरॉइड** कहते हैं, स्क्लेरा एवं रेटिना के बीच रक्त वाहिकाओं एवं संयोजी ऊतक (Connective tissue) की एक परत होती है। यह (कोरॉइड) गहरे–भूरे रंग का होता है तथा रेटिना की रक्त पूर्ति करती है।

वाहिकामय परत आगे की ओर के भाग (Anterior portion) में मोटी होकर **सिलियरी बॉडी** (Ciliary body) बनाती है, जिसमें पेशीय एवं ग्रन्थिल ऊतक रहते हैं। **सिलियरी पेशियाँ** लेन्स की आकृति नियन्त्रित करती हैं तथा आवश्यकतानुसार दूर या समीप की प्रकाश की किरणों को केन्द्रित करने में सहायता करती हैं। इन्हें समायोजन (Accommodation) की पेशियाँ कहते हैं। सिलियरी ग्रन्थियाँ पानी जैसा द्रव स्त्रावित करती हैं जिसे **'नेत्रोद'** या **एक्वीयस ह्यूमर** (Aqueous humour) कहते हैं, यह आँख में लेन्स तथा कॉर्निया के बीच के

स्थान में भरा रहता है तथा आइरिस एवं कार्निया के बीच के कोण में स्थित छोटे–छोटे छिद्रों के माध्यम से शिराओं में जाता है।

कोरॉइड का अग्र प्रसारण (Anterior extension) एक पतली पेशीय परत के रूप में होता है जिसे **उपतारा** या **आइरिस** (Iris) कहते हैं। यह नेत्रगोलक का रंगीन भाग है, जिसे कॉर्निया से होकर देखा जा सकता है। यह कॉर्निया और लेन्स के मध्य स्थित रहता है तथा इस स्थान को एन्टीरियर एवं पोस्टीरियर चैम्बर्स में विभाजित करता है। कॉर्निया एवं आइरिस बे बीच का स्थान एन्टीरियर चेम्बर (अग्रज कक्ष) तथा आइरिस एवं लन्स के बीच का स्थान पोस्टीरियर चैम्बर (पश्चज कक्ष) होता है। आइरिस में वृत्ताकार (Circular) एवं विकीर्ण (Radiating) तन्तुओं के रूप में पेशीय ऊतक रहते हैं, वृत्ताकार तन्तु पुतली को संकुचित करते हैं और विकीर्ण तन्तु इसे विस्फारित (फैलाते) करते हैं।

आइरिस के मध्य में एक गोलाकार छिद्र रहता है। जिसे **पुतली** या **प्यूपिल** (Pupil) कहा जाता है, इसमें आप आने परावर्तित प्रतिबिम्ब (Reflected) को एक छोटी–सी डॉल (Doll) के समान देखते हैं। पुतली का परिमाण (Size) प्रकाश की तीव्रता के अनुसार घटता–बढ़ता रहता है। तेज रोशनी को आँख में प्रविष्ट होने से रोकने के लिए तीव्र प्रकाश के प्रभाव से यह संकुचित हो जाती है तथा कम (मन्द) प्रकाश में विस्फारित यानि फैल जाती है ताकि अधिक से अधिक प्रकाश (रोशनी) रेटिना तक पहुँच सके।

आन्तरिक तन्त्रिकामयी परत (Inner nervous layer)- नेत्रगोलक के सबसे भीतर की परत की **दृष्टिपटल** या **रेटिना** (Retina) कहा जाता है, जो तन्त्रिका कोशिकाओं (Nervous) एवं तन्त्रिका तन्तुओं की अनेकों परतों से बना होता है और नेत्र के पोस्टीरियर चैम्बर में अवस्थित होता है। इसके एक ओर कोरॉइड (Choroid) है और यह उससे सटा हुआ–सा रहता है। दूसरी ओर नेत्रकाचाभ द्रव (Vitrous humour) भरार रहता है। सिलियरी बॉडी के ठीक पीछे इसका अन्त हो जाता है। यह अण्डाकार होता है। रेटिना में एक मोटी एवं एक पतली परत होती है। मोटी परत तन्त्रिका ऊतक (Nervous tissue) की होती है जिसे **न्यूरोरेटिना** (Neuroretina) कहा जाता है, यह आप्टिक तन्त्रिका (Optic nerve) से जोड़ती है। इसके पीछे वर्णक युक्त उपकला (Pigmented epithelium) की एक पतली परत होती है, जो कोरॉइड से संलग्न करती है और रेटिना के पीछे से रिफ्लेक्शन को रोकती है। न्यूरोरेटिना में लम्बी छड़ के आकार की कोशिकाएँ– **रॉड्स** (Rods) एवं शंकु के आकार की कोशिकाएँ–**कोन्स** (Cones) रहती हैं जो अपने भीतर विद्यमान प्रकाश सुग्राही पिगमेन्टों के कारण प्रकाश के प्रति अति संवेदनशील होते हैं। इनके अतिरिक्त न्यूरोरेटिना में बहुत सी अन्य तन्त्रिकाकोशिकाएँ (न्यूरॉन्स) भी रहते हैं। प्रत्येक आँख में लगभग 125 मिलियन रॉड्स एवं 7 मिलियन कोन्स होती हैं, जिनके कार्य अलग–अलग होते हैं। अधिकांश कोन्स रेटिना के मध्य में लेन्स के ठीक पीछे के क्षेत्र, जिसे **पीत बिन्दु** या **मैक्यूला ल्यूटिया** (Yellow spot or macula lutea) कहते हैं, में अवस्थित रहते हैं। मैक्यूला ल्यूटिया के केन्द्र में एक छोटा–सा गड्ढ़ा रहता है, इसे **गर्तिका** (Fovea) अथवा **केन्द्रीय गर्तिका** या **फोबिया सेन्ट्रलिस** (Fovea centralis) कहते हैं, रेटिना के शेष भाग जिसे परिसरीय रेटिना (Peripheral ratina) कहते हैं में रॉड्स एवं कुछ कोन्स अवस्थित रहते हैं। **मैक्यूला ल्यूटिया**

रेटिना का वह स्थान है जहाँ पर सर्वाधिक स्पष्ट विम्ब बनता है। कोन्स रंग–बोध (Colour perception) कराते हैं। जबकि रॉड्स काली–सफेद छायाओं का बोध कराते है, इनके ही माध्यम से हम क्षीण प्रकाश में भी वस्तुओं को देख पाते हैं।

मैक्यूला ल्यूटिया के नाक वाले भाग की ओर लगभग 3 मिली. की दूरी पर से ऑप्टिक तन्त्रिका (Optic nerve) नेत्र गोलक से बाहर निकलती है, वह छोटा–सा स्थान **दृष्टि–चक्रिका या ऑप्टिक डिस्क** (Optic disc) कहलाता है और चूँकि यह प्रकाश के प्रति असंवेदनशील होता है इसलिए इसे **अन्ध बिन्दु** (Blind spot) भी कहते हैं। अन्ध बिन्दु पर बिम्ब न बनने का कारण यह है कि इस स्थान पर रॉड्स एवं कोन्स का पूर्णतः अभाव रहता है।

रॉड्स एवं कोन्स दृष्टि के वास्तविक संग्राहक अंग (Receptors) होते हैं तथा पकाश जो उन पर पहुँचता है, आवेग (Impulses) उत्पन्न करता है, जिनका संचारण ऑप्टिक तन्त्रिका के द्वारा मस्तिष्क के दृष्टि केन्द्र में होता है, जहाँ दृष्टि–प्रभाव (Visual impression) उत्पन्न होते हैं।

नेत्रगोलक की गुहाएँ (Cavities of the eyeball)- नेत्रगोलक को तीन गुहाओं में विभक्त किया गया है। कॉर्निया एवं आइरिस के बीच के क्षेत्र को **अग्र कक्ष** या **पन्टीरियर चैम्बर** (Anterior chamber) तथा आइरिस एवं लेन्स के बीच के क्षेत्र को **पश्च कक्ष या पोस्टीरियर चैम्बर** (Posterior chamber) कहा जाता है। दोनों कक्षों में पारदर्शी, पतला, जलीय तरल भरा रहता है जिसे **नेत्रोद** या **एक्वीयस ह्यूमर** (Aqueous humour) कहते हैं नेत्रगोलक के भीतर का दाब (Intraocular pressure) एक–सा चानि स्थिर बनाए रखना इसी के ऊपर निर्भर करता है। यह लेन्स तथा कॉर्निया को आवश्यक पोषक जैसे ऑक्सीजन, ग्लूकोज एवं अमीनो–एसिड्स की आपूर्ति करता है, जिनमें पोषण के लिए रक्त वाहिकाएँ नहीं होती हैं। नेत्रोद का उत्पादन सिलियरी बॉडी की केशिकाओं (Capillaires) द्वारा होता है। यह पोस्टीरियर चैम्बर से होकर गुजरता हुआ एन्टीयिर चैम्बर में पहुँचता है और कॉर्निया के आधार पर स्थित स्क्लेरल वीनस साइनस, जिसे श्लेमन की नलिका (Canal of Schlemn) भी कहते है में फैल जाता है।

नेत्रगोलक की तीसरी और सबसे बड़ी गुहा को **नेत्रकाचाभ या विट्रीयस चैम्बर** (Vitreous Chamber) कहा जाता है, जो नेत्रगोलक के लगभग 80 प्रतिशत भाग में होती है। यह लेन्स के पीछे के सम्पूर्ण स्थान (Space) को भरती है। इस चैम्बर में रंगहीन पारदर्शी जैली के समान पदार्थ भर होता है जिसे **नेत्रकाचाभ द्रव** या **विट्रीयस ह्यूमर** (Vitreous humour) कहते हैं, जो वास्तव में संयोजी ऊतक का रूपान्तरण होता है। इसका कार्य बाह्य दबाव के कारण नेत्रगोलक को बाहर निकलने से रोकना होता है। इसमें कोलेजन एवं हायलूरोनिक एसिड के अतिरिक्त अन्य संघटक नेत्रोद के समान ही होते हैं। नेत्रकाचाभ द्रव का उत्पादन सिलियरी बॉडी द्वारा होता है। यह लेन्स एवं रेटिना के लिए पोषण की आपूर्ति करता है।

लेन्स (Lens)- लेन्स नेत्रगोलक में आइरिस के एकदम पीछे स्थित रहता है। यह पारदर्शी, दृढ़ किन्तु लचीली, वृत्ताकार द्विउत्तल (Biconvex) रचना है, जिसमें रक्त वाहिकाएँ

होती हैं। यह एक पारदर्शक, लचीले कैप्सूल में बन्द रहता है तथा सस्पेन्सरी लिगामेन्ट्स (Suspensory ligaments) द्वारा सिलियरी बॉडी से जुड़ा होता है। ये ससपेन्सरी लिगामेन्ट्स लेन्स को स्थिति में बनाये रखते हैं और इन्हीं के माध्यम से सिलियरी पेशियाँ लेन्स पर खिंचवा डालती हैं और दूर या समीप की वस्तुओं के देखने के लिये लेन्स की आकृति को परिवर्तित करती है। ससमेन्सरी लिगामेन्ट्स के शिथिलन (Relaxation) से लेन्स दोनों ओर को उठ जाता है अर्थात् लेन्स की उत्तलता (Convexity) बढ़ जाती है तथा इनके तनाव से लेन्स की उत्तलता कम हो जाती है और वह चपटा–सा हो जाता है। ऐसी किया विभिन्न दूरियों की दृश्य वस्तुओं के अनुसार स्वतः होती है, जिसे 'नेत्रों का समायोजन' (Accomodation of eyes) कहते हैं।

आँख की सहायक संरचनाएँ (Accessory Structures of the Eye)- आँखें अत्यन्त नाजुक अंग हैं जो सहायक संरचनाओं के द्वारा सुरक्षित रहती है, ये रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

नेत्रगुहा (Orbit or orbital cavity)- इसका वर्णन पूर्व में दिया जा चुका है।

भौंहे (Eyebrows)

पलकें (Eyelids)

बरौनी (Eyelashes)

नेत्रश्लेष्मला या कॅन्जंक्टाइवा (Conjunctiva)

अश्रुप्रवाही उपकरण (Lacrimal apparatus)

नेत्र पेशियाँ (Muscles of the eye)

भौहें (Eyebrows)- फ्रन्टल अस्थि के आर्बिटल प्रवर्ध के ऊपर स्थित त्वचा पर तिरछेपन के साथ उगे छोटे, बोलों को भौंहे कहा जाता है। इनका प्रमुख कार्य सुरक्षा है। ये माथे पर आने वाले पसीने को आँखों में आने से रोकते हैं तथा अत्यधिक धूप से बचाते हैं।

पलकें (Eyelids)- ये प्रत्येक आँख के सामने ऊपर एवं नीचे पतली त्वचा से आच्छादित अवकाशी ऊतक (Areolar tissue) की दो गतिशील तहें (Movable folds) होती हैं। इन दोनों में से ऊपर वाली पलकें अधिक बड़ी एवं अधिक गतिशील रहती है। ऊपर एवं नीचे वाली पलकों के संगम स्थल को **'कैन्थाई'** (Canthi) कहा जाता है। नाक की ओर के भीतरी कैन्थस को **'मीडियल कैन्थस'** (Medial Canthus) और कान की ओर के बाहरी कैन्थस को **'लेटरल कैन्थस'** (Lateral canthus) कहा जाता है। पलकों को चार परतों में विभक्त किया जा सकता है– 1. त्वचीय परत, जिसमें बरौनियाँ (Eyelashes) होती हैं, 2. पेशीय परत, जिसमें आर्बिकुलैरिस ऑक्यूलाई (Orbicularis oculi) पेशी रहती है जो पलक को आँख के ऊपर गिराती है, 3. तन्तमयी संयोजी ऊतक (Fibrous connective tissue) की परत जिसमें बहुत–सी त्वग्वसीय ग्रन्थियाँ (Sebaceous glands) होती हैं, जो **मीबोमियन ग्रन्थियाँ** (Mebomian glands) कहलाती हैं। इनसे स्रावित होने वाला तैलीय पदार्थ दोनों पलकों को आपस में चिपकने से बचाता है। 4. सबसे अन्दर की परत एक पतली गुलाबी मेम्ब्रेन से आस्तरित होती है, जिसे कनजंक्टाइवा (Conjuctiva) कहा जाता है।

पलकें धूल एवं अन्य बाह्य वस्तुओं के आँखों में प्रवेश रोकने रके अतिरिक्त आँखों में अत्यधिक तीव्र प्रकाश को एकाएक प्रवेश करने से रोकती हैं। पलकों के प्रत्येक कुछ सेकण्डों पर झपकते (Blinking) रहने से ग्रन्थिल स्राव (आँसू) नेत्रगोलक पर फैल जाते हैं। जिससे कॉर्निया तर बनी रहती है। निद्रा के दौरान बन्द पलकें स्रावों के वाष्पीकरण होने से रोकती हैं। जब कोई वस्तु आँख के पास आती है, तो प्रतिवर्ती किया में (Reflexively) पलकें स्वतः बन्द हो जाती है।

बरौनियाँ (Eyelashes)- पलकों के किनारों (Margins) पर छोटे–छोटे मोटे बाल आगे की ओर निकलते रहते हैं, जिन्हें **बरौनी** (Eyelashes) कहा जाता है। ये बाह्य पदार्थों को आँखों में पवेश करने से रोकते हैं। प्रत्येक आँखों की पलक में लगभग 200 बरौनियाँ होती हैं। प्रत्येक बरौनी 3 से 5 माह में स्वतः गिर कर नवीन बरौनी उग आती हैं। इसके रोमकूपों (Hair follicles) के संक्रमित हो जाने पर गुहेरियाँ (Stye) निकल जाती है।

नेत्रश्लेष्मला या कनजंक्टाइवा (Conjunctiva)- कनजंक्टाइवा एक पतली पारदर्शक म्यूकस मेम्ब्रेन है जो पलको के आन्तरिक भाग को आस्तारित करती है तथा पलट कर नेत्र गोलक की ऊपर आकर सतह को आच्छादित करती है। पारदर्शक कॉर्निया पर आकर समाप्त हो जाती है, जो अनाच्छादित रहता है। पलक को आस्तारित करने वाला भाग **पल्पेब्रल कनजंक्टाइवा** (Palpebral conjunctiva) कहलाता है तथा आँख की सफेदी को आच्छादित करने वाला भाग **बल्बर कनजंक्टाइवा** (Bulbar conjunctiva) कहलाता है। इन दोनों भागों के बीच दो **नेत्रश्लेष्मकला कोष** (Conjunctival sacs) होते हैं। इन्हीं काषों के माध्यम से नेत्रगोलक एवं पलक में गति होना सम्भव होता है। नेत्र में डाली जाने वाली आईड्रॉप्स प्रयाः निचले पलक को पीछे की ओर खींच कर अधोवर्ती नेत्रश्लेष्मकला कोष (Inferior conjunctival sac) में डाली जाती है।

अश्रुप्रवाही उपकरण (Lacrimal apparatus)- प्रत्येक आँख में एक अश्रुप्रवाही उपकरण या लैक्राइमल एपरेटस होता है, जो अश्रुग्रन्थि (Lacrimal gland), अश्रुकोष (Lacrimal sac), अश्रुवाहिनियाँ (Lacrimal ducts) तथा नासा अश्रुवाहिनी (Nasolacrimal duct) से बनता है।

अश्रु ग्रन्थियाँ (Lacrimal glands)- प्रत्येक आँख की ऊपरी पलक के नीचे लेटरल कैन्थस के ऊपर स्थित होती हैं। जिनके स्राव से नेत्रगोलक तर रहता है। प्रत्येक अश्रुग्रन्थि बादाम के आकार की होती है तथा फ्रन्टल अस्थि के 'नेत्रगुहा प्लेट' के गर्त में अवस्थित होती है। यह स्त्रावी उपकला कोशिकाओं की बनी होती है। इन ग्रन्थियों में से अनेक वाहिनियाँ निकलती हैं जो नेत्रश्लेष्मलाकोष के ऊपरी भाग में खुलती हैं। इन ग्रन्थियों में आँसुओं (Tears) का निर्माण होता है, जो अश्रुवाहिनियों द्वारा पलकों के नीचे आ जाते हैं और नेत्रगोलक के सामने वाले भाग पर फैलने के बाद प्रत्येक आँख के मीडियल कैन्थस की ओर जाते हैं जहाँ पर ये दो अश्रुप्रवाही सूक्ष्मनलिकाओं (Lacrimal canaliculi) में प्रवेश कर जाते हैं। दोनों सूक्ष्मनलिकाएँ यहाँ स्थित मांस के एक छोटे–से लाल उभार जिसे माँसाकुर (Caruncle) कहते हैं, के एक ऊपर और एक नीचे से जाती है और जो 'अश्रुकोष' (Lacrimal sac) में प्रेवश कर जाती हैं। अश्रुकोष 'नासाअश्रुवाहिनी' (Nasolacrimal duct) के ही ऊपर का फैला हुआ विस्फारित भाग होता हैं। नासा अश्रुवाहिनी नासा गुहा (Nasal

cavity) की अस्थिल भित्ति को नीचे की ओर पार करती हुई नाक की इन्फीरियर मिएटस में आकर खुलती है, जिसके द्वारा आँसू नाक में पहुँच जाते हैं।

आँखें प्रत्येक 2 से 10 सेकण्ड पर झपकती रहती हैं, जिससे अश्रुग्रन्थि (Lacrimal glanc) उद्दीप्त होकर एक निर्जीवाणुक (Sterile) तरल स्रावित करती है, जिसे आँसू (Tears) कहते हैं। आँसूओं में जल, लवण, म्यूसिन (Mucin) तथा एक जीवाणुनाशक एन्जाइम लाइसोजाइम (Lysozyme) रहता है।

कार्य (Function)-

1. आँसू आँखों को चिकना एवं नम रखते हैं, जिससे पलकों की गति सहजतापूर्वक हो सके।
2. आँसू बाह्य वस्तुओं, धूलकणों आदि को धोकर साफ कर देते हैं।
3. आँसूओं में विद्यमान जीवाणुनाशक एन्जाइम, लाइसोजाइम से जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।
4. आँसू कॉर्निया एवं लेन्स को जल एवं पोषण की आपूर्ति करते हैं।
5. आँसू नेत्रगोलक को स्वच्छ, नम तथा चिकनी सतह प्रदान करते हैं।

नेत्र पेशियाँ (Muscles of the eye ball)- नेत्रगोलक की इसके सॉकेट में गति निम्न 6 पेशियों के सेट द्वारा सम्पादित होती है। इनमें चार सीधी और दो तिरछी (तिर्यक) पेशियाँ होती हैं।

सीधी पेशियाँ (Rectus muscles)-

1. मीडियल रेक्टस (Medial rectus)
2. लेटरल रेक्टस (Lateral rectus)
3. सुपीरियर रेक्टस (Superior rectus)
4. इन्फीरियर रेक्टस (Inferior rectus)

तिरछी या तिर्यक पेशियाँ (Oblique muscles)-

1. सुपीरियर ऑब्लिक पेशी (Superior oblique muscle)
2. इन्फीरियर ऑब्लिक पेशी (Inferior oblique muscle)

ये सभी पेशियाँ **बाह्य पेशियाँ** (Extrinsic muscles) कहलाती हैं, क्योंकि ये नेत्रगोलक के बाहर रहती हैं। प्रत्येक पेशी का एक सिरा कपालास्थि (Skullbone) से संलग्न रहता है तथा दूसरा सिरा नेत्रगोलक के स्क्लेरा (Sclera) से संलग्न रहता है। इन सभी पेशियों की सहायता से नेत्रगोलक को सभी दिशाओं में घुमाना संभव होता है। इन पेशियों की गतियों में समन्वय (Co-ordination) होने से ही आँखें घुमायी जाती हैं। जिससे दोनों आँखें एक ही वस्तु पर केन्द्रित होती हैं। दोनों आँखें सदैव एक–दूसरे के सहयोग से काम करती हैं और यही कारण है कि दोनों आँखों से देखने पर भी हम केवल एक ही वस्तु देखते हैं। पेशियों की कमजोरी की अवस्था में अथवा उनके रोगग्रस्त हो जाने पर दोनों आँखों की दृष्टि एक ही स्थान पर नहीं पड़ती है, जिससे वस्तु एक रहते हुए भी दो दिखाई देती हैं।

पेशियों की गतियाँ (Movements of the muscles)- उपर्युक्त पेशियों की गतिया एक–दूसरे के विपरीत होती है अर्थात् जब पेशियों का एक सेट संकुचित होता है तो इसके

ठीक विपरीत वाली पेशियों का एक सेट संकुचित होता है तो इसके ठीक विपरीत वाली पेशियों का सेट शिथिलन (Relaxation) की क्रिया करता है। जैसे– 'सुपीरियर रेक्टस' के संकुचन के साथ 'इन्फीरियर रेक्टस' में शिथिलन होता है, जिससे आँखें ऊपरी उठती हैं और इसके ठीक विपरीत जब 'इन्फीरियर रेक्टस' संकुचित होती है, तो सुपीरियर रेक्टस में शिथिलन होता है, जिससे आँखें नीचे की ओर गति करती हैं। इसी प्रकार मीडियल एवं लेटरल रेक्टस पेशियाँ आँखों को दाएँ–बाएँ घुमाती हैं। तिर्यक पेशियों की सहायता से आँखें ऊपर–नीचे और बाहर की ओर गतियाँ करती हैं। इसके साथ–साथ ये आँखों को चक्रवत घुमाने में भी सहायता देती हैं।

आँखों के अन्दर निम्न तीन चिकनी पेशियाँ रहती हैं, जिन्हें **अन्तरस्थ पेशियाँ** (Intrinsic muscles) कहा जाता है। **सिलियरी पेशी** (Ciliary muscle) लेन्स के ससपेन्सरी लिगामेन्ट के तनाव (Tension) को कम करती है तथा आँख को सही ढंग से समायोजित करने के लिए लेन्स को इसकी आकृति में परिवर्तन करने दती है। **सरकुलर पेशी** या **स्फिंक्टर प्यूपिला** (Circular muscle or sphincter), यह पेशी पुतली को चारों ओर वृत्ताकार दिशा में घेरे रहती है तथा पुतली को संकुचित करती है। **रेडियल पेशी** या **डाइलेटर प्यूपिला** (Raial muscle or dilator papilla), यह आइरिस की बाह्य परिधि से आरम्भ होकर पुतली के किनारों पर रेडियल दिशा में स्थित रहती है तथा पुतली को विस्फारित (फैलाती) करती है।

पलकों की पेशियाँ (Muscles of the eye lids)- ऑर्बिकुलेरिस ऑक्यूलाइ (Orbicularis ocule) पेशी आँखों को बन्द करने के लिए पलकों को गिराती है, तथा **लीवेटर पल्पेब्री सुपीरिओरिस** (Levator palpebrae superioris) पेशी आँखों को खोलने के लिए पलकों को ऊपर उठाती है। **सुपीरियर टार्सल** (Superior tarsal) चिकनी पेशी होती है, जिसकी तन्त्रिका आपूर्ति सिम्पेथेटिक तन्त्रिका तन्त्र द्वारा होती है। यह ऊपर पलक को उठाने में सहायक होती है, इसके पक्षाघातग्रस्त होने पर ऊपरी पलक नीचे को लटक (Ptosis) पड़ती है।

दृष्टि तन्त्रिका एवं दृष्टि पथ (Optic nerve and visual pathway)- ऑप्टिक या दृष्टि तन्त्रिकाएँ (द्वितीय /II कपालीय तन्त्रिका) प्रकाश संवेद की तन्त्रिकाएँ हैं, जिनके द्वारा देखने का कार्य होता है। इन तन्त्रिका तन्तुओं की उत्पत्ति आँखों के रेटिना में होती है, जो मैक्यूला ल्यूटिया से लगभग 0.5 सेमी. नाक की ओर अभिबिन्दु (Converge) होकर (अर्थात् एक बिन्दु पर मिलकर) तथा आपस में संयोजित होकर ऑप्टिक तन्त्रिका बनाते हैं। यह तन्त्रिका नेत्रगोलक के पिछले भाग से निकलती है और पिट्यूटरी ग्रन्थि के पास आकर दूसरी ओर की ऑप्टिक तन्त्रिका से मिल (Fuse) जाती है। इस क्रॉसिंग स्थल को **'ऑप्टिक चियाज्मा'** (Optic chiasma) कहते हैं। इस स्थान पर आकर दोनों आँखों की ऑप्टिक तन्त्रिका के नाक की ओर के (Nasal side) आधे–आधे तन्तु एक–दूसरे को क्रॉस कर सीधे आगे की ओर बढ़ जाते हैं। शेष (लेटरल साइड के) प्रत्येक रेटिना के तन्त्रिका तन्तु, बिना एक–दूसरे को क्रॉस किए, दोनों तरफ (उसी ओर) अग्रसर होते हुए मध्य मस्तिष्क में पहुँच जाते हैं। ऑप्टिक चियाज्मा से होकर गुजरने के उपरान्त तन्त्रिका तन्तुओं को **'दृष्टिपथ'** (Optic tracts) कहा जाता है। प्रत्येक दृष्टिपथ में दूसरी ओर की आँख के रेटिना के नासा तन्तुओं (Nasal fibres) एवं उसी ओर की आँख की रेटिना के लेटरल तन्तुओं का समावेश होता है।

प्रत्येक दृष्टिपथ सेरीब्रम से होकर पीछे की ओर जाता है तथा थैलेमस में के न्यूक्लियस में के न्यूरॉन्स, जिन्हें **'लेटरल जेनिकुलेट बॉडी'** (Lateral geniculate body) कहा जाता है, के साथ तन्तुमिलन (Synapses) करता है। वहाँ से लेटरल जेनिकुलेट बॉडी में के न्यूरॉन्स के अक्ष तन्तु (Axons) प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स के ऑक्सिपिटल लोब में प्राथमिक दृष्टिपरक कॉर्टेक्स (Primary visual) में प्रक्षेपित होते हैं। जहाँ दृष्टि आवेगों की व्याख्या एवं विश्लेषण होता है।

दृष्टि की क्रिया विधि (Mechanism of vision/sight)- प्रकाश दीप्तिमान ऊर्जा (Radiant energy) का एक रूप है, जो वायु के माध्यम से लगभग 3,00,000 किमी. प्रति सेकण्ड की गति से तंरगों में गमन करता है।

प्रकाश की किरणें सामान्यतः सामान्तर रेखा में चलती हैं, किन्तु जब ये एक घनत्व वाले माध्यम में को गुजरती हैं तो ये झुक (Bend) जाती हैं, इस झुकाव को **अपर्वतन या रिफ्रेक्शन** (Refraction) कहा जाता है। बाह्य वायु से आँख में प्रवेश करने वाली प्रकाश किरणें अपवर्तित हो जाती हैं और **अभिबिन्दुग** (Converse) होकर अर्थात् एक बिन्दु पर मिलकर रेटिना के फोकस बिन्दु (Focus point) पर केन्द्रित हो जाती है।

रेटिना पर पहुँचने से पूर्व प्रकाश की किरणें आँखों के पारदर्शी अपवर्तक माध्यमों (Refracting media) कॉर्निया, एक्वीयस ह्यूमर, लेन्स एवं विट्रीयस ह्यूमर से होकर गुजरती हैं। इनमें लेन्स ही एक ऐसी रचना है, जिसमें प्रकाश की किरणों को झुकाने या अपवर्तन करने की क्षमता रहती है, जिससे वे अभिबिछुग (Converse) होकर लेन्स के पीछे रेटिना पर बिम्ब (Image) बनाती हैं।

रचना की दृष्टि से आँखों (नेत्रगोलकों) की तुलना कैमरे से की जाती है, जिसमें पलके कैमरे के समान आँखों के लिए शटर का काम करती हैं, प्रकाश के प्रवेश के लिए खिड़की 'कॉर्निया' के रूप में रहती हैं, आइरिस भीतर प्रवेश करने वाले प्रकाश की मात्रा को नियन्त्रित करता है, क्रिस्टेलाइन लेन्स से प्रकाश की किरणें फोकस होती हैं, अभिमध्य वाहिकामयी परत (Middle vascular layer) कैमरे के प्रकाशरोधक बॉक्स का काम करती है तथा रेटिना कैमरे के समान प्रकाश के प्रति संवेदनशील (Photosensitive) प्लेट का काम करती हैं।

कैमरे के सामने जो वस्तु रहती है, कैमरे की प्लेट पर उसका उल्टा प्रतिबिम्ब बनता है। ठीक उसी प्रकार आँखों से देखी जाने वाली वस्तुओं का उल्टा प्रतिबिम्ब रेटिना पर बनता है। वस्तु से प्रकाश की किरणें निकलती हैं और एक्वीयस ह्यूमर, लेन्स एवं विट्रयस ह्यूमर को पार करके 'रेटिना' पर पड़ती है। लेन्स तथा कॉर्निया प्रकाश की सामान्तर किरणों को रेटिना पर केन्द्रीभूत करते हैं। कैमरे में लेन्स से फोकस–बिन्दु की दूरी निश्चित होती है और लेन्स को आगे–पीछे खिसका कर फोटोग्राफी प्लेट पर वस्तु का स्पष्ट प्रतिबिम्ब लिया जाता है। आँख में भी लेन्स तथा रेटिना की दूरी निश्चित होती है। अतः आँख में भी लेन्स से फोकस–बिन्दु की दूरी को सिलियरी पेशियों की संकुचन–क्रिया द्वारा बदल कर वस्तु के स्पष्ट प्रतिबिम्ब को रेटिना पर प्राप्त किया जाता है।

ऑप्टिक तन्त्रिका द्वारा प्रतिबिम्ब (Image) की विस्तृत सूचना प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स के ऑक्सिपिटल लोब् में पहुँचती है, जहाँ यह चेतना में विकसित होती है। इस प्रकार

ऑप्टिक तन्त्रिकाओं द्वारा संवेदनाएँ (Sensations) मस्तिष्क के दृष्टि क्षेत्र (Visual area) में पहुँचती हैं, फलतः मस्तिष्क को देखने की अनुभूति होती है। रेटिना के उल्टे बिम्ब को सीधा दिखाना मस्तिष्क का काम है।

समायोजन (Accommodation)- आँखों में प्रवेश करने वाली सभी सामान्तर प्रकाश किरणों को रेटिना पर केन्द्रित होने के लिए अपवर्तित होने या झुकने की आवश्यकता होती है। 6 मीटर (20 फीट) से अधिक दूर की वस्तुओं को देखने के लिए उनसे आने वाली प्रकाश किरणों को अधिक अपवर्तन की आवश्यकता नहीं होती है परन्तु जैसे–जैसे वस्तु पास आती जाती है तो उसे देखने के लिए उससे आने वाली प्रकाश किरणों को अधिक अपवर्तित होने की आवश्यकता होती है।

दूर की वस्तु से निकली प्रकाश की समान्तर किरणें लेन्स के वर्टिकल एक्सिस पर समकोण पर पड़ती हैं। आँखें इस प्रकार एडजस्ट होती है कि ये किरणें लेन्स के द्वारा झुका दी जाती हैं, जिससे वे स्पष्ट बिम्ब बनाने के लिए रेटिना पर फोकस हो जाती हैं। पास (6 मीटर से कम दूरी की) की वस्तु से निकली प्रकाश की किरणें अपबिन्दुक (Divergent) होती हैं तथा लेन्स पर तिरछे होकर पड़ती हैं, जो सामान्यतः रेटिना के पीछे फोकस होती हैं। ये किरणें रेटिना पर ठीक से फोकस हो सकें इसके लिए लेन्स को मोटा, गोल (Thicker) होना चाहिए। यह क्रिया सिलियरी पेशियों के द्वारा संपादित होती है। साथ ही बिम्ब की स्पष्टता के लिए आँखें में प्रवेश होने वाली किरणों की संख्याओं में, आइरिस के संकुचन से, कमी होती हैं। इस प्रकार लेन्स के आकार में परिवर्तन से तथा आइरिस के संकुचन से पुतली (Pupil) के छोटे होने की क्रिया को **'समायोजन'** (Accomodation) कहते हैं। यह क्रिया पास की वस्तु देखते समय सदैव होती है। विभिन्न दूरीयों के अनुसार लेन्स की मोटाई या उत्तलता (Convexcity) में अनुरूप परिवर्तन होने वाली शक्ति को ही अनुकूलन अथवा समायोजन (Accomodation) कहते हैं। आँख के लेन्स की फोकस दूरी की इन स्वयं एडजस्टिंग क्रियाओं को आँख की 'समायोजन क्षमता' कहते हैं। दोषमुक्त आँखों द्वारा 25 सेमी. से दूर रखी वस्तुओं को ही स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस दूरी को 'स्पष्ट दृष्टि' की 'न्यूनतम दूरी' कहा जाता है। जिस अधिकतम दूरी के स्थान तक आँखें वस्तुओं को स्पष्ट रूप में देख सकती है, उसे आँखों का 'दूर बिन्दु' (Far point) कहा जाता है।

जब कोई वस्तु आँखों के बिल्कुल समीप रहती है, तो उसका दोनों आँखों के रेटिना पर स्पष्ट फोकस प्राप्त करने के लिए आँखें स्वयं थोड़ा भीतर की ओर घूमती हैं। आँखों की यही क्रिया **'अनुकूलन'** कहलाती है।

अभ्यार्थ प्रश्न –

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1. वाह्य जगत के ज्ञान की प्राप्ति विभिन्न प्रकार की ....के द्वारा ही संभव होती हैं।
2. मानव शरीर में ....ज्ञानेन्द्रियाँ होती है।
3. घ्राणेन्द्रिय किसी वस्तु ....का ज्ञान कराती है।
4. जीभ एक अत्यन्त ....अंग है।

5. नेत्र गोलक का व्यास लगभग ....होता है।

19.9 सारांश –

प्रिय विद्यार्थियों, उपरोक्त विवरण से आप जान चुके हैं कि ज्ञानेन्द्रियाँ क्या है? इनके कितने भेद हैं तथा प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय की संरचना तथा कार्यविधि क्या है । वस्तुतः शरीर के जिन अंगों के माध्यम से वाह्य जगत का ज्ञान होता है, उन्हें ज्ञानेन्दियाँ कहा जाता है। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय की अपनी विशिष्ट संरचना तथा कार्य हे। त्वचा स्पर्श का, नाक गन्ध का, जिह्ववा स्वाद का, आँख दृश्य का तथा कान ध्वनि का अनुभव एवं जानकारी उपलबध करवाते है। यदि ज्ञानेन्द्रियाँ नहीं होती तो हम बाहरी घटनाओं व्यक्तियों एवं पदार्थो का अनुभव नहीं कर पाते। अतः स्पष्ट है कि शरीर के अन्य संस्थानों की तरह ही ज्ञानेन्द्रियों का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है।

19.10 – शब्दावली –

केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र – तंत्रिका तंत्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग जिसमें मस्तिष्क तथा मेरूरज्जु आते है

रिसेप्टर्स – तंत्रिका तन्तुओं के अन्तिम भागों की एक जाल जैसी संरचना जो संवेदनाओं को ग्रहण कर मस्तिष्क में पहुँचाने का कार्य करती है।

उद्दीपक – जिसके कारण किसी प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न हो।

अस्थि – हड्डी

द्विध्रवीय – दो ध्रुव वाली

ऑप्टिकल –आँख से संबधित

19.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. स्वेदनाओं 2 पाँच 3 गंध 4 गतिशील 5 1 इंच या 2.5 सेमी

19.12 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1.गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।

2.गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

19.13 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न – 1_ज्ञानेन्द्रियों_से आप क्या समझते है? किन्हीं दो ज्ञानेन्द्रियों की संरचना एवं कार्यो का वर्णन कीजिए।

प्रष्न –2_दृश्येन्द्रिय एवं कर्णेन्द्रिय की संरचना एवं क्रियाविधि पर प्रकाश डालिये।

इकाई– 20 – तंत्रिका तंत्र पर यौगिक प्रभाव

इकाई की संरचना

20.1 प्रस्तावना

20.2 उद्देश्य

20.3 तंत्रिका तंत्र पर यौगिक प्रभाव

20.4 सारांश

20.5 शब्दावली

20.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

20.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

20.8 निबंधात्मक प्रश्न

20.1 – प्रस्तावना –

प्रिय पाठकों, इससे पूर्व की ईकाइयों में आपने विविध शारीरिक संस्थानों जैसे की अस्थितंत्र, पेशीतंत्र, श्वसन तंत्र, पाचन तंत्र, तंत्रिका तंत्र इत्यादि की संरचना एवं क्रिया विधि का अध्ययन किया है। प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय थोड़ा हटकर है। इसमें हमें किसी संस्थान की मात्रा संरचना एवं कार्यो का अध्ययन न करके इस बात को समझना और जानना है कि इन तंत्रों की कार्यक्षमता को कैसे बढ़ाया जाये। ऐसी क्या पद्धति अपनायी जाये कि ये तंत्र सुचारू रू॰ से अपने कार्यो का संचालन कर सकें।

अतः इसी बात को दृष्टिगत रखते हुये प्रस्तुत ईकाई में हमें तंत्रिका तंत्र पर योगाभ्यासों के प्रभावों का अध्ययन करना है। पाठकों आपके मन में अनेक प्रकार की जिज्ञासायें ख्उत्पन्न हो रही होंगी, जैसे कि–

- कौन–कौन से ऐसे योगाभ्यास है जो तंत्रिकातंत्र को सुदृढ़ बनाते है?
- योगाभ्यास किस प्रकार से तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करते है, इत्यादि।

तो आइये आपकी इन्हीं जिज्ञासाओं के समाधान के लिये चर्चा करते है, तंत्रिका तंत्र पर

यौगिक प्रभावों की ।

20.2 –उद्देश्य –

प्रिय विद्यार्थियों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

- किन–किन योगाभ्यासों का तंत्रिका तंत्र पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है, इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- योगाभ्यासों की क्रिया विधि को स्पष्ट कर सकेंगे।
- योगाभ्यासों के तंत्रिका तंत्र पर पहुचने वाले विभिन्न प्रकार के प्रभावों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- एक सामान्य व्यक्ति किस प्रकार अपनी दिनचर्या में इन योगाभ्यासों को सम्मिलित करके, इनका लाभ ले सकता है, इसे स्पष्ट कर सकेंगे।

20.3 तंत्रिका तंत्र पर यौगिक प्रभाव

1. हमारा ध्यान हमेशा बाह्य वातावरण से आने वाली संवेदनाओं की तरफ आकर्षित होता है और इसीलिए हमारा मन बाहर की ओर रहता है। आँखे बंद करते ही बाहर से आने वाली 50–60 प्रतिशत संवेदनाएँ कम हो जाती हैं और हम अन्दर की ओर ध्यान दे पाते हैं। विचारों की संख्या भी कम होती है। इसलिए योगाभ्यास करते वक्त आंखें बन्द करना ही अच्छा है। मन और अन्दर जाने के लिए एकमात्र साधन है श्वास प्रश्वास। इसीलिए हठयोग ने प्राणधारणा की संकल्पना दी है।
2. रोज के दैनंदिन व्यवहार में हम हमेशा अपनी इच्छानुसार याने बड़े मस्तिष्क से काम करते हैं। ऐसे समय, हमारी वैचारिक, विश्लेषणात्मक बुद्धि काम करती है। योगाभ्यास में इस तरह का बड़े मस्तिष्क का हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है। जैसे, तैरना, साइकिल चलाना, टायपिंग आदि में खास ध्यान न देते हुए भी हम काम कर सकते हैं। जान बूझकर या प्रयत्नपर्वक कुछ करने की जरूरत नहीं होती वैसे ही आसन में शुरू–शुरू में हमारा ध्यान भले ही, पेशिओं का तान, जोड़ों से आने वाली संवेदनाएँ इनके तरफ जाता हो, बाद में प्राणधारणा या उसके बाद अनन्तकी ओर जाने देने से बड़े मस्तिष्क का प्रभाव हट जाता है और लघुमस्तिष्क के नाड़ी केन्द्रों को सुचारू रूप से काम करने की तथा अनैच्छिक नाड़ी संस्थान को भी उसका स्वाभाविक समतोल बनाएं रखने की सहूलियत मिलती है।
3. आसनों में पेशीसंकोच के रूप से किये गये प्रयत्न और बड़े मस्तिष्क का हस्तक्षेप कम होते ही अनुकंपी स्वायत नाड़ीतंत्र का प्रभाव भी कम हो जाता है। अब भावनाएँ अपना प्रभाव दिखा नहीं सकती। परानुंकपी स्वयत्त नाड़ी संस्थान को काम करने का और शांतता प्रस्थापित करने का अच्छा मौका व पर्याप्त समय मिलता है। इसके फलस्वरूप मनोकायिक शांतता व प्रसन्नता छा जाती है और नाड़ी तंत्र हृदय और श्वसन का कार्यभार हल्का हो जाता है।

4. आसन प्राणामायादि बहिरंग योग का प्रमुख उद्देश्य यह है कि नाड़ी तंत्र को अच्छी तरह से मजबूत व विकसित करना ताकि आध्यात्मिक शक्ति (कुंडलिनी शक्ति) जाग्रत होने पर उसे तोल सके, सहन कर सके। बिल्कुल वैसे ही जैसे प्रबल विद्युत प्रवाह का वहन करने के लिए उचित क्षमता वाली तार चाहिए। नाड़ी तंत्र अच्छी तरह से प्रशिक्षित तााि विकसित होने से ही मानसिक स्थिरता, एकाग्रता बढ़ती है जो ध्यानादि अंतरंग योग के लिए आवश्यक है।
   आसन प्राणायामादि क्रियाएँ मूलतः नाभि और उसके आसपास के प्रदेश तथा कटिप्रदेश और सुषुम्ना के आखरी हिस्से पर प्रभाव डालती है। वहाँ पर रक्तसंचार बढ़ता है जिससे नाड़ी तंत्र की शाखाएँ, संज्ञाग्राहक सशक्त बनते हैं और उत्तेजित भी होते हैं। इन्हीं संज्ञाग्राहकों से आने वाली सर्वथा नई किस्म की संवेगों के कारण नाड़ी केन्द्रों को नयी प्रेरणा मिलती है और वे इन संवेगों को समझने लगते हैं। इसी प्रदेश नयी प्रेरणा मिलती है और वे इन संवेगों को समझने लगते हैं। इसी प्रदेश में परानुकंपी स्वयत्त नाड़ी तंत्र होता है जिसे नयी तरह की उत्तेजनाएँ मिलती हैं। उनसे उसका 'मल' दूर होता है, यही नाड़ी शुद्धि है।

अभ्यासार्थ प्रश्न – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

(i) मन और अन्दर जाने के लिये एकमात्र साधन ––––––है।

(ii) रोज के दैनन्दिन व्यवहार में हम ––––––मस्तिष्क से काम करते है।

(iii) आसन प्राणायाम दिषटिरंग योग का प्रमुख उद्देश्य है–– तंत्र को अच्छी तरह से मजबूत एवं विकसित करना।

(iv) आसन प्राणायाम पि क्रियायें मूलतः –––– और असके आसपास के प्रदेश तथा –––– के आधिरी हिस्से पर प्रभाव डालती है।

20.4 – सारांश –

प्रिय विद्याथियों विवेचन से आव जान गये होंगे कि किस प्रकारसे आसन प्राणायाम ध्यान इत्यादि योगाभ्यास हमारे तंत्रिका तंत्र को प्रभवित करते हद्दै। वस्तुत सभी योगाभ्यास प्राण उर्जा के सिद्धांत पर कार्य करते है।

ठन अभ्यसों के माध्यम से हम ब्रह्माण्ड से शुद्ध प्राण उर्जा को बाहर निकालते है।

जैसे –जैसे नियमित अभ्यास के द्वारा प्राण अर्जा बढ़ती है वैसे–वैसे रजोगुण एवं तमोगुण कम होकर सतोगुण बढ़ने लगता है। परिणामस्वरूप ज्ञान एवं प्रकाश के उत्तरों बढ़ने से अर्जा पथ में जो भी अवरोध थे, वह हटने लगते है, शरीर के सभी अंग अपनी पूरी क्षमता को साथ कार्य करने लगते है तथा न केवल व्यक्ति का शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा होता है, वरन् वह मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य लाभ भी प्राप्त करता है।

20.5 शब्दावली –

पेशीसंकोच – मांसपेशियों में संकुचन होना

बहिरंग योग– अष्टांग योग के प्रारंभिक पाँच अंगों को बहिरंग योग के अंतर्गत रखा गया है।

ये है– यम, नियम, आसन, प्राणायाम ,पण्याहार ।

अन्तरंग योग – अष्टांग योग के अंतिम तीन अंग अन्तरंग योग में आते है।

ये है– धारणा ,ध्यान एवं समाधि।

श्वास – श्वास लेना या प्राण अर्जा को ग्रहण करना।

प्रश्वास– श्वास छोड़ना या दूषित प्राण को बाहर लिकालना।

अनैच्छिक क्रियायें – स्वतः होने वाली क्रियायें जिन पर हमारा नियंत्रण नहीं होता है।

20.6 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(i) श्वास प्रश्वास

(ii) बडे

(iii) नाडी तंत्र

(iv) नाभि, कटि प्रदेश

20.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
2.पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
3.वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1.2.3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली
4.दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा
5.सक्सेना, ओ0पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।

20.8 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 तंत्रिका तंत्र पर योगाभ्यास के प्रभाव का विवेचन किजिये।